3·1

संस्कृतसरणिः

तमसो मा ज्योतिर्गमय

डा॰ रामलखन शर्मा

श्रद्धेयानां डा० श्री प्रभुलाल गोस्वामी महोदयानां

करकमलयोः समर्पयति

[illegible]

१२।१२-८०

संस्कृत–सरणिः

(प्रारम्भ से उच्चकक्षाओं तक संस्कृत अध्ययन हेतु एकमात्र पुस्तक)

लेखक

डा० रामलखन शर्मा

एम. ए. (संस्कृत, इति०) पीएच.डी. आचार्य,

अव. प्राप्त, स० निरीक्षक, संस्कृत पाठशालाएं, लखनऊ

प्रकाशक

प्रशान्त प्रकाशन

५८ छित्वापुर रोड, लखनऊ

प्रथम संस्करण
१९७८

मूल्य १२ रु०

अधिकृत विक्रेता
रामप्रसाद एण्ड ब्रादर्स
इटावा, २०६००१

मुद्रक :—
ममता प्रेस, राजागंज
इटावा।

समर्पणम्

संस्कृतसमुपासकेभ्यः

येषामाश्रयेण प्रस्तुतोऽयमकिञ्चनः प्रयासः ।

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्धजाः ।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ।।

भर्तृहरिशतकम्

रामलखन शर्मा

भूमिका

भाषा और व्याकरण में कुछ भी अधिकार के साथ कहना कठिन होता है, क्योंकि इसमें अनेक उलझनें रहतीं हैं। संस्कृत में व्याकरण के किसी सूत्र की व्याख्या करना आपत्ति मोल लेना है जहाँ पाणिनि जैसे वैयाकरण के सूत्रों में भी त्रुटियाँ खोज लीं गयी हैं। फिर भी संस्कृत को प्राणमय रखने के लिए यह परम आवश्यक है कि मैं अपनी तोतली बोली में कुछ कहूँ तथा आशा करूं कि विज्ञजनों के सम्पर्क से यह अधिक उपयोगी, परिमार्जित और सबल बन जाय।

आज भी संस्कृत लिखी जाती है, पढ़ी जाती है, बोली जाती है, पर किन्हीं अपवादों को छोड़कर इसमें न तो वह स्वाभाविकता है जो पञ्चतन्त्र, वाल्मीकि रामायण या नाटकों की भाषा में है, न वह विदग्धता है जो बाण की कादम्बरी में है, न उसमें वह कल्पना है जो कालिदास, भास या माघ में है। आज तो संस्कृत की व्यावहारिकता में ही लोगों को सन्देह होने लगा है।

आज भारत का सामान्यजन इसे पढ़ना चाहता है। पर उसे इससे ऐसा भयाक्रान्त कर दिया गया है कि उसे पढ़ने का साहस ही नहीं होता। कदाचित् कोई साहस करता भी है तो हमारी अध्यापन शैली उसके आड़े आती है। इसका कारण है कि हम आज भी आशा करते हैं कि साधारण जन पाणिनि के ४००० सूत्र पढ़े, हम आज भी सोचते हैं कि 'इकोयणचि' को इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये' कह कर पढ़ाया जा सकता है। दूसरी ओर इसे सरल करने के पक्षपाती बच्चों से रामः—रामौ—रामाः कराते हैं जो आजकल के उन्नतिशील युग में उन्हें एकदम अरुचिकर लगता है। यदि बालक रूप कण्ठ भी कर लेता है तो भी उसे बोलने और लिखने में आत्म-विश्वास नहीं जगता। आज का एम. ए. प्रायः संस्कृत पाठशालाओं के मध्यमा के समकक्ष भी नहीं ठहरता। यह हमारी विडम्बना है। हम ३० वर्ष में यह भी नहीं निश्चय कर सके कि संस्कृत को कैसे प्राणवान् रखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त आज के संस्कृत अध्यापक का प्रायः मनोविज्ञान से कोई नाता नहीं होता। उसे संस्कृत का साहित्य की दृष्टि से तो बोध रहता है पर वह उसे व्यवहार में नहीं लाता। वह न तो स्वयं लिखता है न अपने छात्रों से ही लिखाता है। इस प्रकार के अध्यापन से यदि किसी को संस्कृत अच्छी नहीं लगती तो उसका दोष क्या। अतः संस्कृत की सरलता, सरसता तथा भावगम्भीरता को

यदि अक्षुण्ण रखना है तो नये सिरे से इस पर विचार करना होगा। इस समय हम न तो माध्यमिक विद्यालय पद्धति से पढ़ाने में सफल हैं न प्राचीन परिपाटी से। दोनों पद्धतियों में अपने अपने गुण दोष हैं। इसी बात का अनुभव करके उसके निराकरण स्वरूप इस पुस्तक की रचना की गयी है। इस पुस्तक में दोनों पद्धतियों का समन्वय है। इसमें यह दिखाया गया है कि हम बहुत ही थोड़े सूत्र पढ़कर केवल तीन माह में संस्कृत लिख और बोल सकते हैं।

इसी दृष्टि से पुस्तक के आरम्भ में अध्यापन शैली पर एक अध्याय दिया गया है। इसमें प्रतिपादित शैली का ही मूर्त रूप यह पुस्तक है। इसमें पहले पाणिनि के सूत्रों का सरलतम विवेचन है, तत्पश्चात् उनका व्यावहारिक पक्ष है जो शब्द निर्माण में सहायक होता है। शब्द निर्माण के साथ साथ अनुवाद में उनका प्रयोग है। यह अनुवाद भी एक शब्द से लेकर बड़े बड़े संश्लिष्ट वाक्यों तक है। अनुवाद की पूर्णता के लिए इसमें सिद्धान्त कौमुदी का कारक प्रकरण है। इसमें कारक और समास लिखते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि वे बी. ए. तथा एम. ए. के छात्रों के लिए भी उपयोगी हों। सिद्धान्त कौमुदी का ही समास अंश भी इसमें है। इसमें स्थान स्थान पर कोष भी है जिससे पाठक संस्कृत के स्वरूप को सरलता से समझ सकें। इसमें छन्द तथा अलंकार भी बी. ए. के पाठ्यक्रमानुसार रखे गये हैं। इसके अन्त में सूक्तियाँ और एक निबन्धावलि है। निबन्धों में प्रयास किया गया है कि भावप्रकाशन और विषय वस्तु के साथ सरल और सरस संस्कृत रहे। पाठक को निबन्ध पढ़कर भी एक आनन्द प्राप्त हो। ये निबन्ध परीक्षोपयोगी भी रहें इस हेतु इनका चयन विश्वविद्यालयों की स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं को दृष्टि में रख कर किया गया है। आशा है यह पुस्तक इस दिशा में सफल प्रयास सिद्ध होगी। इस ओर किसी नये सुझाव के लिए लेखक सदा आभारी रहेगा तथा आगामी संस्करण में उन्हें स्थान देने का प्रयास करेगा। इस प्रयास में अपने साथी डा० चन्द्रभानु त्रिपाठी तथा श्री ललिता प्रसाद पाण्डेय के प्रति उनके अपूर्व सुझावों के लिए लेखक विशेष आभारी है। लेखक ममता प्रेस, इटावा का भी कम ऋणी नहीं जिसने इसके उत्तम मुद्रण में भरपूर सहयोग प्रदान किया।

राम लखन शर्मा

५८ छित्वापुर रोड
लखनऊ ६/१०/७८

विषयानुक्रम

संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन

संस्कृत की समृद्धि : संस्कृत की गौरव-गरिमा किसी से छिपी नहीं। यह समस्त भारत की ही नहीं विश्व की प्राचीनतम भाषा है। इस भाषा की प्रौढ़ता विश्व विदित है तथा इसका साहित्य ज्ञान की अक्षयनिधि है। भारत के लिए तो यह प्राणरूप है। भारतीयता का सच्चा स्वरूप इसी में परिलक्षित है। आज भी भारत के लिए इसकी उपादेयता असीम हैं। राष्ट्रिय एकता के लिए जितनी उपयोगी यह भाषा है उतनी कोई अन्य भाषा नहीं। इसमें भारत का आचार विचार है। अतः नैतिकता के लिए इससे वड़ा कोई सम्बल नहीं। किम् अधिकम् इसमें भारत की आत्मा प्रतिष्ठित है।

संस्कृत का स्वरूप : आज संस्कृत के दो रूप हैं—वैदिक तथा लौकिक। इसका पहला रूप वैदिक है जो अत्यन्त प्राचीन है, दूसरा लौकिक जो आज व्यवहार में आ रहा है। वैदिक स्वरूप से लौकिक स्वरूप तक आने में इसमें अनेक परिवर्तन हो गये। पर जब से इसके लौकिक रूप का साहित्य समृद्ध हुआ—सहस्रों वर्ष बीत गये इसके कलेवर में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। परिवर्तन न होने के कुछ मूल कारण भी रहे, यथा—वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बनाया गया इसका पाणिनीय व्याकरण, कात्यायन द्वारा उसका परिमार्जन और पतंजलि जैसे महर्षि द्वारा उसका भाष्य। तत्कालीन समाज में भाषा का व्यवहार तथा देश के कौने-कौने में प्रसार। इसकी निराली अध्यापन पद्धति जिसमें शास्त्रार्थ द्वारा अनुदिन इसका रूप संवारा गया और जो शनैः शनैः निखरता गया। इस प्रकार संस्कृत भाषा शताब्दियों तक अपनी श्रीवृद्धि करती रही जो आज हमारे पास है।

आज परिस्थितियाँ सर्वथा भिन्न हैं। आज एक ओर तो बालक के सम्मुख नित्य नये विषय अध्ययन हेतु उपस्थित होते जा रहे हैं, पहले से पढ़ाये जाने वाले विषयों की परिधियों में परिवर्तन और परिवर्धन होता जा रहा है, दूसरी ओर बालक को अध्ययन के समय का अभाव है तथा उसकी धारणा शक्ति भी कम हो गयी है। सबसे बड़ी बात है कि संस्कृत से उसकी जीविका का सुन्दर साधन नहीं बनता।

ऐसी स्थिति में इस अनमोल साहित्य की कैसे रक्षा की जाय यह एक समस्या है। संतोष का विषय है कि संस्कृत की शब्दावली सरल और सरस है। इनमें गिनी चुनी लगभग २००० धातुएं हैं, २२ उपसर्ग हैं, कुछ प्रमुख प्रत्यय हैं। इसका कोष भी पद्य में है। इसे सामान्य रीति से व्याकरण के ५०० सूत्रों से सीखा जा सकता है।

मूल प्रश्न यह है कि इसे किस पद्धति से सिखाया जाय। इस समय संस्कृत का अध्यापन निम्नलिखित तीन पद्धतियों से किया जा रहा है—

१. व्याकरण और कोष पद्धति। **२. अनुवाद और व्याख्या पद्धति।**

३. प्रत्यक्ष या निर्वाध पद्धति।

१. व्याकरण और कोष पद्धति : यह पद्धति प्राचीन काल से अध्यापन में चल रही है। इसके अन्तर्गत अध्यापक केवल मार्ग दर्शन करता है। इसमें छात्र को पहले अष्टाध्यायी और कोष कंठस्य कराया जाता है। छात्र बड़े परिश्रम से लगभग ४००० सूत्र और २००० श्लोक रट लेता है। उसे यह बोध नहीं हो पाता कि उसने वह क्यों रटा या वह उसका कैसे प्रयोग करेगा। इसके अनन्तर उसे टीका सहित कोई काव्य कंठस्थ कराया जाता है। इस स्तर पर पहुँच कर छात्र शब्दरूपों का स्वयं निर्माण करता है। अध्यापक शब्दों का शास्त्रीय स्वरूप उसे समझाता है। इस प्रक्रिया से शब्दों का स्वरूप उसके मस्तिष्क में जम जाता है। अतः उसके लिए उनका प्रयोग सहज और सरल हो जाता है। इस आधार पर पला छात्र सरलता से संस्कृत बोलता है। इस परम्परा में पले विद्वान् आज भी अपने बच्चों को इसी पद्धति से संस्कृत पढ़ाते हैं। अधिक से अधिक आठ वर्ष की अवस्था तक वे अष्टाध्यायी और कोष कंठस्थ करा देते हैं। उनका विश्वास है कि इसका फ़ल बालक को बड़े होने पर मिलता है जब उसे उतने सूत्र कंठस्थ नहीं कराये जा सकते। उनका कहना है कि इसमें समय कुछ अधिक अवश्य लगता है और यह पद्धति मनोवैज्ञानिक भी नहीं पर इस प्रकार भाषा पर जो अधिकार हो जाता है वह अन्य पद्धतियों से सम्भव नहीं। इस पद्धति में दुर्वलता यह है कि छात्र को अपने भावप्रकाशन और लिखने का समय कम मिलता है। अतः इस पद्धति से पढ़ाया गया छात्र प्रायः अन्तर्मुख रह जाता है। वह अपनी पढ़ी हुई विषय वस्तु पर ही साधिकार बोल सकता है किसी नये विषय पर नहीं। इस पद्धति का आश्रय संस्कृत महाविद्यालयों में भी लिया जाता है जहाँ कुछ विशिष्ट छात्र इसमें पलते हैं। पर जब से इन महाविद्यालयों में आधुनिक विषयों का समावेश हुआ है इस पद्धति में ढिलाई आ गयी है। यही कारण है कि किन्हीं संस्कृत महाविद्यालयों के छात्रों का भी संस्कृत पर पहले जैसा अधिकार नहीं रहा। आज के युग का परिर्वातित परिवेश भी छात्र को इस वात के लिए विवश करता है कि वह संस्कृत के अतिरिक्त अन्य विषय पढ़े। फिर छात्र का पहले जैसा छात्र जीवन होता था आज वह गुरुकुलों के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं रह गया। अतः इस पद्धति की लोक प्रियता कम होती जा रही है। आज इस पद्धति से अध्यापन वहुत व्यावहारिक नहीं रहा।

२. **अनुवाद तथा व्याख्या पद्धति :** इस पद्धति से बहुधा माध्यमिक विद्यालयों में अथवा उच्च कक्षाओं में अध्यापन किया जाता है। इसके अन्तर्गत सबसे पहले बालक को कुछ शब्द रूप तथा धातुरूप कण्ठाग्र कराये जाते हैं। इन्हीं रूपों के सहारे उससे अनुवाद कराया जाता है और शनैः शनैः काव्यांशों का अध्यापन व्याख्यात्मक रीति से किया जाता है। इस पद्धति में अनुवाद और व्याख्या दोनों ही ऐसे तत्त्व हैं जिनमें अध्यापक का योग अधिक रहता है। इसमें और भी अनेक दोष हैं।

(i) पहली पद्धति के विपरीत इसमें छात्र तो क्या अध्यापक भी शब्द रूपों का निर्माण नहीं करता। छात्र पुस्तक के सहारे रूप रटता है। यह सर्वथा अमनोवैज्ञानिक है। उसे रूप रटने में कोई रस नहीं मिलता क्योंकि उस शब्द के स्वरूप के साथ उसका कोई निजी उद्योग नहीं रहता। इसीलिए बच्चा रूप रटने से घबराता है। इस पद्धति में भाषा का सच्चा स्वरूप छात्र के सम्मुख नहीं आता, न भाषा पर कभी ऐसे छात्र का अधिकार ही हो पाता है। वह सदा पल्लवग्राही रहता है।

(ii) अनुवाद कभी मूल को नहीं पा सकता, विशेषकर संस्कृत में जहां व्याकरण एक विशेष भूमिका निभाता है, जहां भाषा का लोक व्यवहार बालक के समक्ष नहीं है।

(iii) इन विद्यालयों में अध्यापक भी इस भाषा के विशेषज्ञ और अधिकारी नहीं होते। वे न कभी बोलते हैं न दूसरों को बोलने के लिए प्रेरित करते हैं। लिखना तो एक दूर की बात है। आज संस्कृत का छात्र विना संस्कृत लिखे संस्कृत की उच्च परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लेता है।

(iv) प्रत्येक भाषा की अपनी धारा होती है। वह उसे अपने मूल रूप से सीखने पर ही दे सकती है।

(v) भाषा अभ्यासजन्य कौशल है। अनुवाद और व्याख्या से बोलने वाले में कभी सहजता नहीं आ सकती।

(vi) इस पद्धति से पढ़ाने के लिए एक अन्य भाषा का ज्ञान अपेक्षित है।

३. **प्रत्यक्ष पद्धति :** यह नवीनतम पद्धति है। इसका आश्रय लेकर संस्कृत अध्यापन कुछ ही समय से प्रारम्भ किया गया है। इसका प्रचलन प्रशिक्षण महाविद्यालयों से सम्बद्ध माध्यमिक विद्यालयों में होता है। इस प्रद्धति में शब्द के स्थान पर वाक्य की इकाई पर बल दिया जाता है। बालक के सामने मूल भाषा में ही यथा सम्भव सम्भाषण किया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि हम पाठ्य भाषा के संप्रत्ययों को किसी अन्य भाषा के माध्यम के बिना प्रत्यक्ष रीति से देना चाहते हैं। इसके अन्तर्गत

एक या दो शब्द से अध्यापन आरम्भ किया जाता है, यथा—अयं वालकः, अयं हंसः, अयं पुरुषः अयं कपोतः, अयं शुकः, अयं गजः, अयं मयूरः, अयं मृगः आदि । इसमें चित्रों का सहारा लिया जाता है । इसके अनन्तर क्रिया के लिए सामान्य व्यापार का सहारा लेते हैं,—अयं वालकः पठति, अयं वालकः गच्छति, अयं मृगः धावति, स गजः पिवति, अयं मयूरः नृत्यति—आदि ।

इस पद्धति मे सूत्रों का ज्ञान प्रदान करना भी अपेक्षित है । कुछ संस्कृत संरचनाएं ऐसी होती हैं जिन्हें सूत्रों के ज्ञान विना स्पष्ट नहीं किया जा सकता, यथा—**"भ्रमता रामेण सीता न दृष्टा"** यह वाक्य सामान्य अनुवाद द्वारा नहीं समझाया जा सकता । इसमें "रामेण" में तृतीया, पुंल्लिंग और एकवचन है । **"भ्रमता"** में भी तृतीया पुंल्लिंग एकवचन है, पर "भ्रमता" का स्वरूप **"रामेण"** से भिन्न है । सामान लिंग, विभक्ति और वचन होने पर भी शब्दों का स्वरूप समान नहीं है । इस वात को समझाने के लिए सूत्रों का ज्ञान आवश्यक है । इस पद्धति में छात्र न तो पहली की भांति विना समझे सूत्र कंठस्थ करता है न दूसरी की भांति रूप रटता है और निराधार रहता है इस पद्धति को अंग्रेजा भाषा की **"स्ट्रक्चरल एप्रोच"** के समकक्ष कहा जा सकता है । समकक्ष इसलिए कि अंग्रेजी और संस्कृत की वाक्य संरचनाओं में अन्तर होता है । अंग्रेजी में स्थान का मूल्य होता है पर संस्कृत में समान्यतया नहीं । अतः अंग्रेजी संरचनाओं को जैसे का तैसा नहीं अपनाया जा सकता । उदाहरणार्थ—

This is a boy, This is a toy, This is a pen, This is a hen, आदि वाक्य अंग्रेजी की एक अत्यन्त सरल संरचना है, पर संस्कृत में इसे इसलिए नहीं अपनाया जा सकता कि इसमें प्रयुक्त शब्द वालकः, क्रीडनकम्, लेखनी और कुक्कुटी भिन्न भिन्न लिंगों के शब्द हैं । संस्कृत में लिंग का निर्णय शब्द के स्वरूप पर निर्भर करता है । जव कि अन्य भाषाओं में उसके अर्थ पर । अतः संस्कृत में हमें स्वयं अपनी वाक्य संरचनाएं वनानी होंगी । हमें ऐसे शब्द एकत्र करने होंगे जो एक ही रूप में ढलते हों । ऐसी ही पद्धति रूप निर्माण में अपनायी जाती है, अदन्त पुं०, इकारान्त, उकारान्त आदि । पर इनके साथ एक समय में एक ही लकार या क्रिया का प्रयोग करना होगा । इस पद्धति के अनुसार गद्य-पद्य, व्याकरण तथा अनुवाद सभी में अनेक सावधानियों की आवश्यकता है । इनका वहुत विशद विवेचन तो यहां सम्भव नहीं है पर कुछ परम आवश्यक विन्दुओं पर प्रकाश डाला जा रहा है ।—

गद्य—गद्य के अध्यापन में सवसे पहले आदर्श पाठ होना चाहिए । इससे शब्दों का

शुद्ध उच्चारण छात्रों के कान में पड़ता है। शुद्ध उच्चारण का अभ्यास भी (drilling) अत्यन्त आवश्यक है। छात्रों द्वारा पुनः पुनः सस्वर अनुवाचन कराया जाय।

बहुधा संस्कृत अध्यापक उच्चारण की शुद्धता पर स्वयं ध्यान नहीं देते। आदर्श सस्वर वाचन के अनन्तर क्लिष्ट शब्दों का उच्चारण छात्रों द्वारा कराना चाहिए। इसी अवसर पर उनकी अशुद्धियां दूर की जानी चाहिए।

इसके अनन्तर शब्दों का अर्थ वाक्यों में उनके प्रयोग द्वारा बताना अपेक्षित है। अध्यापक पहले स्वयं शब्दों का प्रयोग करे तदनन्तर स्तर का ध्यान रखकर छात्रों से कराये। इस स्तर पर भाषा का निर्माण करना हैं। बनी बनायी बूटी उसे नहीं पिलानी और उस का निर्माण कम से कम अज्ञात बिन्दु लेकर तथा छोटी से छोटी इकाई लेकर करना चाहिए। ये वाक्य छात्र के परिसर से सम्बन्धित विषयों पर चुने जायँ। संस्कृत अध्यापक प्रायः पिटे पिटाये उदाहरण छात्रों के सामने रखते हैं। उनमें न तो व्यापकता रहती है न उनका बार बार दोहरा कर अभ्यास ही कराया जाता है। भाषा के लिये अभ्यास (Drilling) की बड़ी आवश्यकता होती है। छात्रों के परिचित विषयों पर बात होने से उनकी रागात्मिका वृत्ति जगती है। यथा-गाय पर कुछ कहना है तो अपनी गाय पर कहना ही उनकी प्रवृत्ति को जगा देगा।

भाषा सिखाने के लिए सबसे प्रमुख तत्त्व आदर्श उपस्थित करना है। भाषा अनुकरण से सीखी जाती है। जहाँ किसी भाषा को सारा समाज नहीं बोलता तो अनुकरण सम्भव कैसे है! इसका एक ही समाधान है कि अध्यापक स्वयं उसका व्यवहार करे, साथ ही साहित्य के उपयोगी अंश छात्र के सम्मुख प्रस्तुत करे। इन अंशों का चयन इस रूप से किया जाय कि यथा सम्भव एक ही प्रकार की संरचनाएँ छात्र को मिलें।

इसके अतिरिक्त संस्कृत की प्रवृत्ति पर ध्यान देना भी अपेक्षित है। संस्कृत में कर्मवाच्य और भाववाच्य के प्रयोग बड़े स्वाभाविक होते हैं। बहुत सा व्यवहार कृदन्तों के प्रयोग से चल जाता है। यह कर्तृवाच्य से अधिक सुगम और सरस होता है। अतः कृदन्त का प्रयोग सिखाने में संकोच नहीं करना चाहिए। कृदन्त के साथ कुछ सामान्य अव्यय लेकर वाक्यों को रोचकता से फैलाया जा सकता है यथा— मया गन्तव्यम्, त्वया तत्र गन्तव्यम्, शनैः शनैः गन्तव्यम्, ध्यानेन सदा पठितव्यम्, बालकैः कार्यं कर्त्तव्यम्, इदं न निश्चितम्, किन्तु तन्निश्चितम्, नवीव पद्धति का प्राण इसमें है कि अध्यापक अनुवाद पद्धति से दूर रहे जब तक विवश न हो।

कभी कभी ऐसी स्थिति आ जाती है कि शब्दार्थ क्रियापरक नहीं होता, न उसका ज्ञान चित्र द्वारा सम्भव है, जैसे अव्ययों का ज्ञान— निकटम्, दूरम्, ऐसी स्थिति में छात्र के सम्मुख एक विशेष स्थिति (Situation) की परिकल्पना करना

उपयोगी होता है—यथा— मोहनः अत्र तिष्ठति, रमेशः तत्र तिष्ठति, मोहनः रमेशात् दूरम् अस्ति। सः वालकः निकटम् अस्ति। इसी प्रकार अयं वालकः सरोवरं शीघ्रं गच्छति।

सन्धि और समास द्वारा अर्थबोध में सहायता मिलनी चाहिए। ये अर्थबोध में साधक हों बाधक नहीं। एक सन्धि आने पर उसी के समान अन्य उदाहरण खोजे जायं—यथा इत्यादिः, प्रत्येकम्, स्वागतम् अभ्युदयः, इत्याह, ये उदाहरण यथा सम्भव व्यवहार में आने वाले हों शास्त्रीय ही नहीं।

पद्य : नवीन परपाटी में काव्य का अध्यापन भी आदर्श रीति से किया जाता है। इसका मूल है कि छात्र स्वयं भाव सौन्दर्य का उपासक होता है। वह अर्थ न समझते हुए भी पद्यों के श्रवण में आनन्द लेता है। पद्यांश पढ़ाते समय उसे व्याकरण की गुत्थियों में नहीं उलझाना, न उसे मूक श्रोता मात्र रखना हैं इसका अनुपालन प्रश्नोत्तर रीति से होता है। यदि किसी शब्द के अर्थ देने से बोध में स्पष्टता आती है तो उसका अर्थ अवश्य देना चाहिए। यदि किसी पंक्ति का अर्थ तुलना से स्पष्ट हो सकता है तो तुलना भी अवश्य करनी है। पर पद्य के अध्यापन में भावपूर्ण वाचन का विशेष महत्त्व है।इसी के साथ छन्द, रस, अलंकार का विश्लेषण भी आवश्यक है। मन्तव्य यह है कि जैसे भी कवि की मूल भावना अध्येता के सम्मुख आ जाय वैसा ही करना अपेक्षित है। कभी कभी अध्यापक पद्य को इस रीति से पढ़ा देते हैं जैसे वे गद्य पढ़ा रहे हों। इस प्रकार पद्य की पद्यात्मकता नष्ट हो जाती है।

व्याकरण : किसी भी भाषा का प्राण व्याकरण होता है विशेषकर संस्कृत जैसी शास्त्रीय भाषा का। संस्कृत व्याकरण के नियम बड़े ठोस हैं। इसके लिए पाणिनीय अष्टाध्यायी पर अधिकार आवश्यक है। पर अष्टाध्यायी की कौन कहे छात्रों का लघुकौमुदी पर भी अधिकार नहीं होता। माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में तो टिप्पणी रहती है कि छात्रों को सूत्रों का अर्थ और व्यवहार जानना आवश्यक है वे सूत्र न जाने तो कोई हानि नहीं। संस्कृत व्याकरण के विषय में बड़ी भ्रांति है कि वह दुरूह है। वस्तुतः आज उसकी अध्यापन विधि दुरूह है। जिस रीति से वह ५००० वर्ष पूर्व पढ़ाया जाता था उसी रीति से आज भी पढ़ाया जा रहा है। आज तक उसके ग्रन्थों की हिन्दी में अच्छी टीकाएँ नहीं हैं जबकि अन्य भाषाओं में हैं। संस्कृत व्याकरण में अच्छाई यह है कि इसकी समस्त शब्दावली सूत्रों से शासित है और ४००० में से ५०० सूत्र ही सामान्य व्यवहार भर के लिए पर्याप्त हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, इसमें १९४४ धातुएँ हैं, इनमें से यदि चार भ्वादि दिवादि, तुदादि, चुरादि वर्ग की भी धातुओं का अध्ययन कर लिया जाय तो ९/१०

धातुओं पर अधिकार हो जायेगा। इन वर्गों के पढ़ने में दुरूहता नहीं है बल्कि वे लगभग एक समान हैं। इनके रूप लगभग एक ही रीति से चलते हैं। नवीन पद्धति में रूपों का रटाना अपेक्षित नहीं बल्कि धातु का व्यावहारिक रूप छात्र के सम्मुख, उपस्थित करना है। उसके द्वारा उसका प्रयोग कराना है। उसके अभ्यास के लिए अन्य धातुओं की सूची उसके सम्मुख रखनी है। इन धातुओं का प्रयोग भी उसी आधार पर छात्र से कराना है। इससे छात्र में बोलने व लिखने की क्षमता आती है। इस शैली में केवल एक गण से किसी धातु का चयन ही नहीं करना बल्कि किसी एक समय में उसके किसी एक लकार, वचन और पुरुष का ही अभ्यास कराना है। एक चक्र में एक ही पुरुष सिखाया जाय तो उत्तम होगा। यथा– गच्छति, पठति क्रीडति, धावति, वदति, खादति, पतति आदि का वाक्य प्रयोग हो। इसके लिए बच्चे को तो केवल पठति ही एक दिन सिखाना चाहिए, प्रौढ़ को पठ्+शप्+तिप् सिखाया जा सकता है। प्रौढ़ से यह भी कह सकते हैं कि सभी धातुओं का अपना निजी स्वरूप होता है, उसी स्वरूप के आधार पर वे १० गणों में बँटीं हैं। उनके अलग अलग चिह्न रहते हैं, जैसे भ्वादि गण में शप् लगता है तो दिवादि में श्यन् तुदादि में श और चुरादि में णिच्। इनके आधार पर हजारों रूप अपने आप बन जाते हैं। इतना ही जानने से पढ़ने वाले का बोझ हल्का हो जायगा।

इसी प्रकार सन्धि और समास जो संस्कृत के भूषण हैं, जिनसे संस्कृत में मधुरता आती है– वे दूषण बना दिये जाते हैं। संस्कृत-अध्यापक बहुधा इनका एक पक्ष बतलाते हैं, उसकी उपयोगिता नहीं। वे प्रायः नियम का केवल पक्ष उपस्थित करते हैं उसका निषेधात्मक स्वरूप नहीं, यथा–

इति+आदिः=इत्यादिः, प्रति+एकम्=प्रत्येकम्, सु+आगतम्=स्वागतम्। इन शब्दों में यह तो सभी बतलाते हैं कि इ के स्थान पर य तथा उ के स्थान पर व होता है, पर बताना यह भी है कि यदि आदिः के स्थान में इदं लिख दें तो यण् न होगा, इसी प्रकार आगतम् के स्थान में यदि उक्तम् आ जाये तो सूक्तम् हो जायगा। इन दोनों उदाहरणों में शब्दों के बदलने पर भी यण् की प्रवृत्ति रहती है। अतः बच्चे के सामने इसका समाधान होना चाहिए कि यण् की प्रवृत्ति होते हुए भी यण् क्यों नहीं हुआ। सन्धि के विषय में सबसे बड़ी बात यह है कि किसी एक विधान की पुष्टि अनेक उदाहरणों द्वारा होनी चाहिए। यथासम्भव बालकों के द्वारा ही नियम निकलवाना चाहिए। जब अनेक उदाहरणों के आधार पर बालक नियम निकालने की स्थिति में हो तभी उसे सूत्र का भी ज्ञान देना अपेक्षित है। इस

प्रणाली को आगमन प्रणाली कहते हैं। पाठशालाओं में निगमन प्रणाली का प्रयोग होता रहा है। निगमन में छात्र पहले सूत्र पढ़ता है और केवल शास्त्रीय पक्ष ही ग्रहण कर पाता है। संस्कृत व्याकरण के अध्यापन में प्रायः यह दोष रहता है कि सूत्र की प्रवृत्ति कहाँ कहाँ है, यह विस्तार से नहीं बताया जाता। एक सुद्ध्युपास्यः के साधने में सप्ताह भर लग जाता है फिर भी छात्र को सुद्ध्युपास्यः के अतिरिक्त उसकी अन्यत्र प्रवृत्ति का ज्ञान नहीं होता।

इसी प्रकार विभक्तियों के नियम भी सोदाहरण पढ़ाना चाहिए। "सहयुक्तेऽप्रधाने" की प्रवृत्ति कितनी सरल और व्यावहारिक है पर छात्र केवल उसे कंठस्थ कर लेता है– उसका व्यवहार नहीं करता। "बालकः रामेण सह विद्यालयं गच्छति", "रामः भ्रात्रा सह वनं गच्छति" 'मया सह', त्वया सह' 'तेन सह' आदि से वह अधिक सीख सकता है। व्यवहार आने पर उसे "सहयुक्तेऽप्रधाने" कंठस्थ नहीं करना पड़ता। कहने का तात्पर्य यह है कि छात्र को व्याकरण के शुष्क नियमों से बोझिल नहीं करना बल्कि उसे व्यवहार में लाने का अवसर देना है।

अनुवाद : इस पद्धति में अनुवाद के लिए भी अध्यापक को बहुत सजग रहना है। अनुवाद के लिए पहला कार्य अनुवाद नहीं है, बल्कि वाक्यों का चयन है। जो वाक्य अनुवाद की पुस्तकों में दिये रहते हैं वे बहुधा किसी विशेष आधार को लेकर नहीं रखे जाते। उनके अन्तर्गत एक ही वाक्य में कई पाठ्य बिन्दु रहते हैं, यथा—

राम पुस्तक पढ़ता है। मैं कलम से लिखता हूं। मोहन ने अपने मित्र को पुस्तक दी।

इन वाक्यों को देखने से ऐसा लगता है कि सभी वाक्य सरल हैं, पर अनुवाद की दृष्टि से ये सर्वथा अनुपयुक्त हैं। बालक के लिए, इनमें कई अज्ञात बिन्दु हैं। बालक के सम्मुख सदा एक या अधिक से अधिक दो अज्ञात बिन्दु रहना चाहिए, यथा– मोहनः क्रीडति, मोहनः कुत्र क्रीडति ! मोहनः अत्र क्रीडति। रामः लिखति। रामः कुत्र लिखति ! रामः तत्र लिखति। आदि इस प्रकार के वाक्यों में छात्र को रूप नहीं रटने पड़ते। अतः स्वरादि क्रम से शब्द तथा लकारादि क्रम से वाक्य चुने जायें। वाक्यों के चयन के अनन्तर छात्रों के सहयोग से अनुवाद कराया जाय। अनुवाद में अज्ञात बिन्दुओं की गति क्रमिक हो और इतनी धीमी हो कि वह बोझिल न हो। इन स्थल पर यदि अध्यापक यह अनुभव करता है कि कृदन्त के प्रयोग से कार्य चल सकता है तो उसे निःसंकोच उसका प्रयोग सिखाना चाहिए, यथा– मया कार्यं कृतम्, त्वया कार्यं कृतम्, तेन कार्यं कृतम्, बालकेन कार्यं कृतम्,

इन वाक्यों में केवल वचन और लिंग भेद कर दिया जाय तो हज़ारों वाक्य बन सकते हैं।

इनके आधार पर संस्कृत की सहजता रहेगी और छात्र को सुगमता भी। संस्कृत आज समाज में व्यवहार की भाषा नहीं है। बालक किसी भी भाषा को भूल और सुधार की प्रक्रिया से सीखता है। अतः आवश्यक यह है कि बालक के सामने एक ही स्वरूप बार बार लाया जाय जिससे उसके संप्रत्यय बनें। किसी भी भाषा को सीखने के लिए उसके शब्द तथा रूपों का जानना बहुत जरूरी होता है। उस भाषा के शब्द रूप जानना और भी जरूरी है जिसका व्यवहार आज समाज में कम है। हर भाषा के शब्द-रूप अपने ढंग से चलते हैं। जैसे– हिन्दी में बालक एक मूल शब्द है और "बालक को", "बालक ने" उसके रूप हैं। इन रूपों के बिना शब्दों का परस्पर सम्बन्ध नहीं बैठ सकता। इस सम्बन्ध को बताने के लिए कारकों से काम लिया जाता है। कारकों के कुछ चिह्न होते हैं। ये चिह्न ही भाषा की प्रकृति के अनुसार मूल शब्दों में जोड़े जाते हैं। कभी कभी ये नहीं भी जोड़े जाते और काम चल जाता है। जैसे– "राम खाता है।" इस वाक्य में राम कर्त्ता है पर कर्त्ता कारक का चिह्न उसमें नहीं लगा। "राम ने पढ़ा" इस वाक्य में "ने" लगाया गया है। इसी प्रकार अँग्रेजी में "Ram reads" इस वाक्य में राम कर्त्ता है, वह अपनी जगह के द्वारा बतलाता है कि वह कर्त्ता है, यद्यपि इसमें भी कोई कारक का चिह्न नहीं लगा। पर "घर में" "In the house" कहने के लिए यह सम्भव नहीं हुआ कि बिना चिह्न के काम चल सके। इसी प्रकार हर भाषा में अन्य अनेक चिह्न प्रयोजन के अनुसार काम में लाये जाते हैं।

कोई भी शब्द बिना विभक्ति के प्रयोग में नहीं लाया जाता। संस्कृत में विभक्ति बताने वाले स्वरूप प्रत्यय कहलाते हैं। ये प्रत्यय शब्दों में ऐसे जोड़ दिये जाते हैं कि वे मूल शब्दों का अंग बन जाते हैं। ये हिन्दी या अंग्रेजी की तरह अलग नहीं बैठते। जैसे "रामः पठति" में रामः में राम में सु मिला है और पठति में पठ् में तिप्। ये अलग नहीं दिखायी देते। इनके जोड़ने के लिए व्याकरण में कुछ नियम रहते हैं जिनके आधार पर ये मिलते हैं। अतः संस्कृत बोलने और लिखने के लिए सबसे मुख्य कार्य इन प्रत्ययों के मिलाने को समझना है।

अध्याय २

संस्कृत वर्णों का क्रम

संस्कृत और हिन्दी की वर्णमालाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं। केवल अन्तर इतना है कि संस्कृत की वर्णमाला पहले की है और उसका एक विशेष क्रम है। उसी को घटा बढ़ाकर हिन्दी की वर्णमाला बना ली गयी है। संस्कृत वर्णों के लिखने का जो क्रम आज प्रचलित है वह संस्कृत के महान् वैयाकरण पाणिनि की देन है। पाणिनि का समय ५वीं शताब्दी ई०पू० माना जाता है। उनसे पहले भी संस्कृत व्याकरण के अनेक आचार्य हुए। उन्होंने भी ऐसा ही कोई क्रम अपनाया होगा। यही वर्णक्रम संस्कृत व्याकरण का वीज है—

अ इ उ ण्, 'ऋ लृ क्, ए ओ ङ्, ऐ औ च्, ह य व र ट्, लण्, ञमङणनम् झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथ चटतव्, कपय्, शषसर्, हल्,

इन्हें माहेश्वर सूत्र कहते हैं। कहते हैं पाणिनि जी ने इन्हें शंकर जी से प्राप्त किया था। इन सूत्रों में वर्णों का क्रम इतनी कुशलता से विठाया गया है कि संस्कृत के अन्य सूत्र इन्हीं की सहायता से काम करते हैं।

१. **हलन्त्यम्** उपदेश के अन्त में जो हल् (व्यञ्जन) वर्ण हैं उन्हें इत् कहते हैं। हल् का अर्थ ऐसा व्यञ्जन वर्ण जिसमें स्वर न हो। उपदेश का तात्पर्य पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि के द्वारा कहे हुए वचनों, प्रत्याहार और प्रत्यय आदि से है। इन वचनों आदि के अन्त में आने वाले हल् वर्ण इत् होते हैं। इस सूत्र के आधार पर ऊपर दी गयी संस्कृत वर्णमाला में अन्तिम हल् वर्ण इत् कहे जाते हैं—

जैसे अ इ उ ण् में ण् और ऋलृक् में क् आदि।

२. **तस्य लोपः** इन इत् कहे जाने वाले वर्णों का लोप हो जाय। इस के अनुसार वर्णमाला में दिये गये सभी हल् वर्णों का लोप हो जाना चाहिए पर यहां इन इतों का लोप नहीं होता। ये प्रत्याहार बनाने के लिए इत् बनाये गये हैं। दूसरे स्थानों पर जहां भी इत् होगा उसका लोप हो जायगा।

३. **अदर्शनं लोपः** किसी के न दिखायी देने या नष्ट हो जाने को लोप कहते हैं। संस्कृत व्याकरण में जहां यह कहना हो कि यह वर्ण गिर जाय या चला जाय तो उसे कहेंगे इसका लोप हो जाय। लोप करने के लिए ही पहले उसका नाम इत् रख देंगे और जैसे ही वह इत् हुआ कि उसका लोप भी हो जायगा।

४. **आदिरन्त्येन सहेता** (आदिः+अन्त्येन+सह+इता) इसका सही क्रम है-अन्त्येन इता सह आदिः अर्थात् अन्तिम इत् के साथ आदि, बीच में आने वाले वर्णो को तथा अपने को बताता है। जैसे अ इउण् में अन्तिम इत् ण् है उसके साथ यदि आदि वर्ण "अ" मिला दें तो अण् रूप बनता है। यह "अण्" अ इ उ को बतलाता है। अ तो उसमें है ही वह बीच वाले इ उ का भी बोध कराता है। इसी प्रकार अच् कहने से अ इ उ ऋ लृ, ए, ओ, ऐ, औ का बोध होता है। इस तरह से ४२ संकेत तक बना लिये जाते हैं। इन से व्याकरण में संक्षेप में बहुत सा कह दिया जाता है। यदि कहना है कि सभी स्वरों को अमुक कार्य हो तो अच् कह देंगे। व्यञ्जनों के लिए हल् कह देंगे। ये शब्दांश प्रत्याहार कहे जाते हैं। प्रत्याहार का भाव है संक्षेप में कुछ कहना। ये ४२ हैं—संस्कृत व्याकरण में इनका प्रयोग बहुत होता है।

१. अण्=अ इ उ, २. अक्=अ इ उ ऋ लृ, ३. अच्=सभी स्वर,
४. अट्=सभी स्वर तथा ह य व र, ५. अण्=(यह लण् के ण् को लेकर बनता है) =सभी स्वर, ह य व र ल
६. अम्=सब स्वर, ह य व र ल तथा ञ म ङ ण न।
७. अश्=सब स्वर, ह य व र ल तथा वर्ग का ३, ४, ५, वर्ण।
८. अल्=सभी वर्ण या कोई एक वर्ण।
९. इक्=इ उ ऋ लृ। १०. इच्=(अच् से अ कम करके)।
११. इण्=इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
१२. हल्=सभी व्यञ्जन वर्ण या एक व्यञ्जन।

इस आधार पर निम्नलिखित अन्य संज्ञाएं भी समझें। उक्, एङ्, एच्, ऐच्, हश्, यण् यञ्, यय्, यर्, वश्, वल्, रल् मय्, ङम्, झष् झश्, झय्, झर्, झल्, भष्, जश्, बश्, खय्, खर्, छव्, चव्, चर्, शर्, शल्। यदि अश् और खर् मिला दें तो भी पूरी वर्ण माला का बोध हो जाता है। वस्तुतः अश् और खर् ऐसे दो हिस्से हैं जिनमें अलग-अलग निश्चित कार्य होते हैं। जो कार्य एक खण्ड के रहते होगा व दूसरे के रहते नहीं होगा। आगे चलकर यह बात और स्पष्ट हो जायगी।

यहाँ पाठक को एक शंका हो सकती है कि इस वर्णमाला में हिन्दी की तरह "अ के साथ "आ" या "इ" के साथ "ई" और "उ" के साथ "ऊ" क्यों नहीं लिखे गये। इसका समाधान यह है कि हिन्दी में स्वर दो ही तरह का माना जाता है—ह्रस्व और दीर्घ। संस्कृत में अ, इ, उ, तथा ऋ के १८ भेद होते हैं। भेद सहित सभी स्वरों को वर्णमाला में गिनाने से अधिक असुविधा होती। अतः संस्कृत में केवल "अ"

या "इ" कहने से सभी प्रकार का "अ" और "इ" माना जाता है जब तक उसे अन्य किसी प्रकार के बन्धन से रोक न दें।

स्वर भेद

५. **ऊकालोऽज्ह्रस्व दीर्घ प्लुतः** (ऊ+कालः+अच्+ह्रस्व+दीर्घ+प्लुतः) इस सूत्र के अनुसार पहले सभी स्वर ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तीन खण्डों में बाँटे गये हैं। ह्रस्व का उच्चारण समय एक मात्रा का, दीर्घ का दो मात्राओं का तथा प्लुत का तीन मात्रा या उससे भी अधिक होता है। इस सूत्र का अर्थ है कि उ, ऊ, और ऊ (३) के काल के समान जिन स्वरों का उच्चारण काल हो वे सभी क्रम से ह्रस्व दीर्घ और ल्पुत कहे जायेंगे। यहां मात्रा से क्या समझा जाय यह भी एक प्रश्न उठता है। मात्रा नाप की एक इकाई है। यह उच्चारण का समय बतलाती है। बहुधा एक मात्रा का समय पलक गिरने या चुटकी बजाने भर का माना जाता है।

६. **उच्चैरुदात्त[1]:** वर्णों का उच्चारण मुँह के भिन्न-भिन्न भागों द्वारा किया जाता है। यदि किसी वर्ण का उच्चारण उसके उच्चारण स्थान के ऊपरी भाग से हो तो उसे उदात्त कहते हैं।

७. **नीचैरनुदात्त[2]:** जिस वर्ण का उच्चारण उसके उच्चारण स्थान के नीचे भाग से किया जाता है उसे अनुदात्त कहते हैं।

८. **समाहारः स्वरितः[3]** जिस स्वर का उच्चारण सम्पूर्ण भाग से किया जाता है उसे स्वरित कहते हैं। इसीलिए इसमें उदात्तत्व और अनुदात्तत्व दोनों धर्म रहते हैं।

९. **मुखनासिका वचनोऽनुनासिकः** जिसका उच्चारण मुख और नाक से किया जाय उसे अनुनासिक कहते हैं, जैसे अं, इं, जिसके उच्चारण में नाक का सहयोग नहीं होता उसे अननुनासिक कहते हैं।

इस प्रकार अ, इ, उ, के १८ भेद हो सकते हैं। अन्य स्वरों में ये इसलिए नहीं सम्भव कि जो दीर्घ हैं वे ह्रस्व नहीं हो सकते और जो ल्पुत होगा वह दीर्घ या ह्रस्व नहीं हो सकता।

१०. **तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** (तुल्य+आस्य+प्रयत्नं+सवर्णम्) तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न जिन वर्णों के समान होते हैं उन्हें परस्पर सवर्ण कहते हैं। (आस्य=मुख)।

---

१. उच्चैरुदात्तः (ताल्वादिपु सभागेपु स्थानेपूर्ध्वंभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञः स्थात्।
२. नीचैरनुदात्तः (ताल्वादिपु सभागेपु स्थानेष्वधो भागे निष्पन्नोऽजनुदात्त संज्ञः स्यात्।
३. समाहारः स्वरितः (उदात्तनुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाहिह्रियेते यत्र सोऽच् स्वरित संज्ञः स्यात्)

वर्णों के उच्चारण स्थान इस प्रकार हैं—

१. **अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः** अ, क ख ग घ ङ ह और विसर्ग का उच्चारण स्थान कण्ठ है।

२. **इचुयशानां तालु :** इ च छ ज झ ञ य और श का उ० स्थान तालु है।

३. **ऋटुरषाणां मूर्धा** ऋ ट ठ ड ढ ण र और ष का उ० स्थान मूर्धा है।

४. **लृतुलसानां दन्ताः** लृ त थ द ध न ल और स का उ० स्थान दाँत है।

५. **उपूपध्मानीयानामोष्ठौ** उ, प फ ब भ म और उपध्मानीय का स्थान ओंठ है।

टिप्पणी—प और फ के पहले ⌣ चिह्न उपध्मानीय कहलाता है, यह विसर्ग का आधा होता है।

६. **ञमङणनानां नासिका च :** ञ म ङ ण न का स्थान मुख के भाग के अलावा नाक भी है।

७ **एदैतोः कण्ठतालुः** ए और ऐ का स्थान कण्ठ तालु है।

८. **ओदौतोः कण्ठोष्ठम्** ओ और औ का स्थान कण्ठ और ओठ है।

९. **वकारस्य दन्तोष्ठम् :** व का स्थान दाँत और ओंठ है।

१०. **जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् :** क और ख के पहले ⌣ जिह्वामूलीय कहलाता है। उसका स्थान जिह्वा का मूल है।

११. **नासिका अनुस्वारस्य :** अनुस्वार का स्थान नाक है।

यत्न दो तरह का होता है—आभ्यन्तर और बाह्य। वर्णों का उच्चारण करने में कुछ चेष्टा करनी पड़ती है इसी चेष्टा को यत्न कहते हैं। आभ्यन्तर से तात्पर्य है वह चेष्टा जो वर्ण की ध्वनि निकलने से पहले मुख के अन्दर हो जाती है। इसका अनुभव वर्ण को उच्चारण करने वाला ही कर सकता है। दूसरा यत्न मुख से वर्ण के निकलते समय होता है। इसका अनुभव सुनने वाला भी कर सकता है।

आभ्यन्तर के पुनः पाँच भेद होते हैं—

(i) स्पृष्ट, (ii) ईषत् स्पृष्ट, (iii) विवृत, (iv) ईषत् विवृत, (vi) संवृत।

(i) क से म तक के वर्ण स्पर्श कहे जाते हैं क्योंकि इनके उच्चारण में जिह्वा तालु आदि स्थानों को स्पर्श करती है।

(ii) ईषत् स्पृष्ट का अर्थ है कि वर्ण के उच्चारण में जिह्वा हल्के से स्पर्श करे। इनमें य व र ल आते हैं, इन्हें अन्तःस्थ भी कहते हैं।

(iii) स्वरों का प्रयत्न विवृत होता है क्योंकि इनके उच्चारण में मुंह खोलना पड़ता है।

(iv) ईषत् विवृत में जिह्वा को कम खोलना पड़ता है। इनमें श ष स और ह आते हैं। इन्हें ऊष्म भी कहते हैं।

(v) संवृत का अर्थ है जिनमें वायु का मार्ग बन्द रहे। इसके अन्तर्गत केवल ह्रस्व 'अ' की प्रयोग की दशा मानी गयी है।

बाह्य प्रयत्न ग्यारह तरह का होता है—

विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित। इनमें तीन खण्ड हैं। विवार, संवार, श्वास नाद, घोष और अघोष का एक वर्ग। अल्पप्राण और महाप्राण दूसरा वर्ग और उदात्त, अनुदात्त स्वरित तीसरा वर्ग।

१. **विवार :** जिनमें मुंह खुले। (विवारयति विकासयति मुखम्) यथा क, च, ट, त, प, ।

२. **संवार :** जिसमें मुख का विकास नहीं होता, वल्कि स्वरतंत्री का मुख वन्द रहता है।

३. **श्वास :** इन वर्णों के उच्चारण में अन्दर की वायु स्वरतंत्री में विना झंकार पैदा किये वाहर आती है।

४. **नाद :** नाद वर्णों के उच्चारणों में अन्दर की वायु स्वरतंत्री में झंकार करती हुई या रगड़ती हुई बाहर आती है।

५. **घोष :** घोष वर्णों के उच्चारण में एक प्रकार की गूंज रहती है।

६. **अघोष :** अघोष वर्णों के उच्चारण में गूंज नहीं रहती।

७. **अल्पप्राण :** इन वर्णों के उच्चारण में थोड़ी प्राणवायु का उपयोग होता है।

८. **महाप्राण :** इन वर्णों के उच्चारण में अधिक प्राणवायु का उपयोग होता है।

बाह्य प्रयत्न सारणी

विवार श्वास अघोष	संवार नाद घोष	अल्पप्राण	महाप्राण	अनुदात्त, अनुदात्त स्वरित
क च ट त प	ज व ग ड द	क च ट त प	ख फ छ ठ थ	अ इ उ
ख फ छ ठ थ	घ झ ढ ध भ	ग ज ड द व	घ झ ढ ध म	ए ओ
श ष स	ङ ण ञ न म	ङ ञ ण न म	श ष स ह	ऐ औ
	य र ल व	य व र ल		ॠ ॡ

टिप्पणी—य व र ल को अन्तःस्थ कहते हैं क्योंकि ये वर्ण स्वर और व्यञ्जन के बीच की ध्वनि देते हैं। इ उ ऋ लृ के स्थान में इसीलिए ये वैठते हैं। श ष स ह को ऊष्म कहते हैं।

११. **अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः** अण्+उदित्+सवर्णस्य+च+अप्रत्ययः कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, और पवर्ग, को उदित् कहते हैं। इन्हें कु चु टु तु पु भी लिखा जाता है और इनका उ इत् करने से ये उत्+इत्=उदित् वन जाते हैं। अण् में ण् लण् वाला माना गया है और कहा गया है कि अन्य जगहों में अइउण् के ण् को ग्रहण करना है पर इस सूत्र में पर णकार ही लेना है। अतः अण् से अर्थ हुआ अ से लण् के ल तक के वर्ण। अण् और उदित् जव विधेय रूप में न हों तो सवर्ण के वोधक हों। जैसे इ के स्थान में य् होना है तो य् विधेय रूप में कहा जायगा क्योंकि उसका विधान इ के स्थान में किया गया है। इस प्रकार इ जो अविधीयमान है सवर्ण का वोधक होगी य् नहीं। इसीलिए इ किसी भी प्रकार की हो तो उसका य् हो जायगा। इसी सूत्र के आधार पर **त्यदादीनामः** में "अ" सवर्ण का वोधक नहीं होता क्योंकि वह विधीयमान होता है।

१२. **परः सन्निकर्षः संहिता** (परः—अत्यन्त, सन्निकर्ष—सामीप्य) किन्हीं वर्णों के अत्यन्त पास-पास होने को संहिता की स्थिति कहते हैं। जव दो वर्ण संहिता में होते हैं तभी सन्धि होती है।

१३. **हलोऽनन्तराः संयोगः** जब हल् (व्यञ्जन) वर्णों के वीच में स्वर न हो तो उन्हें संयोग की स्थिति में कहते हैं।

१४. **सुप् तिङन्तं पदम् :** जिस शब्द के अन्त में सुप् जुड़ा हो या तिङ् उसे पद कहते हैं। 'सुप् प्रत्यय संज्ञा या सर्वनाम में लगाये जाते हैं और तिङ् क्रिया में। क्रिया के मूल रूप को धातु कहते हैं। संस्कृत में अपद का प्रयोग नहीं किया जाता। अतः सुप् या तिङ् सहित ही शब्दों का प्रयोग सम्भव है। इस विषय में अव्यय इसके अपवाद होते हैं, क्योंकि उनका स्वरूप सदा एक ही रहता है।

१५. **अदेङ् गुणः** अ, ए और ओ की गुण संज्ञा होती है। यदि कहीं गुण का विधान करना है तो अ, ए ओ से ही कोई होगा।

१६. **वृद्धिरादैच्** आ, ऐ और औ की वृद्धि संज्ञा होती है। वृद्धि के विधान में इन्हीं में से कोई एक आयगा।

१७. **उपदेशेऽजनुनासिक इत्** उपदेश में अनुनासिक अच् की इत् संज्ञा होती है। आज अनुनासिक अच् का कोई चिह्न नहीं है। अतः कब अनुनासिक अच् है कब नहीं इसका निराकरण कठिन है। पहले कभी कोई चिह्न शायद रहा हो पर आज केवल व्यवहार से जानते हैं। जैसे प्रथमा विभक्ति में सु का उ इत् है और गिर जाता है, इसे अनुनासिक माना जाता है। सप्तमी विभक्ति में सुप् का उ इत् नहीं है उसे अनुनासिक नहीं मानते। इसी तरह लण् सूत्र में ल के "अ" की इत् संज्ञा होती है। इससे र प्रत्याहार बनता है जो हयवरट् के र् से प्रारम्भ होता है और ल के अ को लेकर बनता है। इससे र् और ल् दोनों का ग्रहण होता है।

१८. **ह्रस्वं लघुः** ह्रस्व की लघु संज्ञा हो।

१९. **संयोगे गुरुः** संयोग परे रहते ह्रस्व की भी गुरु संज्ञा हो।

२०. **दीर्घं च** दीर्घ की भी गुरु संज्ञा हो।

अध्याय ३

सन्धि विषय

वस्तुतः सन्धियाँ उस समय सिखायी जानी चाहिए जब पढ़ने वाले को शब्द का बोध हो जाय। वह दो पदों को मिला सके। पर यहाँ ऐसा इसलिए नहीं किया गया कि संस्कृत सम्पूर्ण समाज की भाषा नहीं है। पढ़ने वाले के पास मातृभाषा की भाँति शब्द नहीं हैं। यह भी ठीक है कि पहले सन्धियाँ सिखाने में पढ़ने वाले को रस नहीं मिलता। उसे ऊब सी लगती है। पर किसी भी शास्त्र को जानने के लिए उसके कुछ नियम पहले जानना बुरा नहीं। गणित और विज्ञान पढ़ने वाले भी न जाने कितनी बातें कण्ठस्थ करते हैं। जो अँग्रेजी के उपासक हैं वे तो अँग्रेजी के हर शब्द की वर्तनी रटते हैं, क्योंकि वहाँ हर शब्द का स्वरूप अलग होता है। संस्कृत एक संश्लिष्ट भाषा है। उसमें शब्दों का प्रत्ययों से मेल होना अनिवार्य है। अतः उस मेल के नियमों को पहले दिया जा रहा है।

२१. **इको यणचि** (इकः + यण् + अचि) इकः इक् का षष्ठी विभक्ति का रूप है। इसका अर्थ हुआ– 'इक् का'। "अचि" अच् का सप्तमी विभक्ति का रूप है। इसका अर्थ है– अच् परे होने पर। अर्थात् यदि किसी इक् से परे कोई अच् हो तो इक् के स्थान में यण् हो जाय। यथा—इति+आदिः = इत्यादिः।

स्वागतम् । इस सन्धि का व्यावहारिक रूप तो इतना ही है, पर इस सूत्र की कुछ बातें अन्य सूत्रों से स्पष्ट की जाती हैं। उनको स्पष्ट करने के लिए एक विशेष उदाहरण दिया जाता है। वह है- सुधी + उपास्यः । इस उदाहरण में सूत्र की अस्पष्टता का ज्ञान होता है– जैसे– सुधी में दो इक् हैं, सु में उ तथा धी में ई । प्रश्न है–यहाँ किस इक् का ग्रहण किया जाय । वस्तुतः बात स्पष्ट थी कि सन्धि संहिता में होती है और संहिता में धी की ई ही आती है, फिर भी शंका उठा दी कि सु के उ का ग्रहण क्यों न हो । इसका समाधान दूसरे सूत्र द्वारा ही किया जाता है—

२२. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य (तस्मिन् + इति + निर्दिष्टे + पूर्वस्य) तस्मिन् सप्तमी का रूप है । सप्तमी के निर्देश से जब किसी कार्य का विधान किया जाय तो वह उसके ठीक पहले वाले वर्ण को होगा । मूल सूत्र में सप्तमी अच् में है । उससे उपास्यः के अच् का ग्रहण होता है । उपास्यः के उ के ठीक पहले धी का ई होगा । तब सु ध् + ई + उपास्यः स्थिति बनी । आगे शंका हुई कि ई के स्थान में कौन सा यण् हो ? "यण्" कहने से य व र ल चार वर्ण आते हैं ।

२३ स्थानेऽन्तरतमः (स्थाने + अन्तरतमः) अनेक आदेश प्राप्त होने पर किसी के स्थान पर उसके सदृशतम (ठीक समान) वर्ण ही बैठे । यहाँ ई के स्थान में यण् होना है । ई का अत्यन्त समान य् होता है । इ और य् दोनों का उच्चारण स्थान तालु है । तब

सु + ध् + य् + उपास्यः स्थिति बनी ।

इसमें सु के बाद ध् यर् है । इससे परे य् आ गया अतः एक नयी बात पैदा हो गयी कि ध् का द्वित्व हो । इसका समाधान अगला सूत्र करता है ।

२४. अनचि च (अन् + अचि च)

अच् से परे यर् को विकल्प से द्वित्व होता है पर यदि यर् के परे पुनः अच् हो तो नहीं होता । विकल्प का अर्थ है कि कार्य अपनी इच्छा पर निर्भर करता है चाहे करें या न करें । ऐसी स्थिति में शब्द के दो रूप बन जाते हैं । पहला जिसमें कार्य होता है दूसरा जिसमें नहीं होता । इस उदाहरण में ध् और य् दोनों यर् में आते हैं । चूंकि य् से परे उपास्यः का उ बैठा है अतः य् का द्वित्व नहीं प्राप्त है, ध् का ही होगा । अतः द्वित्व होने तथा न होने से दो रूप बने–

सु ध् ध् य् + उपास्यः, सु ध् य् + उपास्यः ।

२५. झलां जश् झशि झलों के स्थान पर झश् परे जश् हो जाय । यहाँ दोनों ध् झल् हैं और झश् भी । अतः पहला ध् झल् और दूसरा झश् मानकर पहले का

जश् (द्) कर दिया जाता है— जश् में वर्ग का तीसरा वर्ण आता है। ध् तवर्ग का चौथा है। अतः उसका तीसरा द् हुआ। दूसरे ध् के स्थान पर जश् नहीं हुआ क्योंकि उसके वाद झश् नहीं हैं।

सु द् + ध् + य् + उपास्यः, सु ध् + य् + उपास्यः।

२६. **संयोगान्तस्य लोपः** जिस पद के अन्त में संयोग हो उसका लोप हो जाय। यहाँ सु द् + ध् + य्– संयोगान्त है तो इसका लोप प्राप्त हुआ।

२७. **अलोऽन्त्यस्य :** (अन्त्यस्य अलः) यदि किसी के स्थान पर आदेश का विधान षष्ठी विभक्ति के द्वारा किया जाय तो वह आदेश केवल अन्तिम वर्ण का होता है। इसके आधार पर पूरे पद का लोप न होकर केवल य् का लोप प्राप्त हुआ— उसमें भी एक वार्तिक लग गया—

२७ अ **वा० यणः प्रतिषेधो वाच्यः** संयोगान्त पद में यण् का लोप प्राप्त होने पर भी न करें— अतः इस उदाहरण के दो अन्तिम रूप इस प्रकार वने–

(१) सु द् ध् य् + उपास्यः = सुद्ध्युपास्यः।

(२) सु ध् य् + उपास्यः = सुध्युपास्यः।

यहाँ ध्यान रखना है कि ये सभी सूत्र हर उदाहरण में नहीं लगते। सामान्य उदाहरणों में इ का य्, उ का व् ऋ का र् और लृ का ल् हो जाता है।

मधु + अरिः = मध्वरिः,	गौरी + आयाति = गौर्यायाति।
यदि + अपि = यद्यपि,	पितृ + अनुमतिः = पित्रनुमतिः।
मातृ + आज्ञा = मात्राज्ञा।	भू + आदिः = भ्वादिः।
नदी + आवेगः = नद्यावेगः।	लृ + आकृतिः = लाकृतिः।
पठति + एकः = पठत्येकः।	अभि + उदयः = अभ्युदयः।
पश्यामि + अहम् = पश्याम्यहम्।	इति + अत्र = इत्यत्र।
खलु + आगच्छति = खल्वागच्छति।	इति + आह = इत्याह।
गुरु + आज्ञा = गुर्वाज्ञा।	मातृ + आगमनम् = मात्रागमनम्।

२८. **एचोऽयवायावः** एच् के स्थान पर क्रम से अय्, अव्, आय्, आव् हो जाय यदि एच् से परे कोई अच् हो। एच् में चार वर्ण हैं– ए, ओ, ऐ, औ,। इनके स्थान पर चार ही आदेश वैठने हैं– अय्, अव्, आय्, और आव्। अब प्रश्न है कि कौन किस के स्थान पर हो। उसका समाधान नया सूत्र करता है।

२९. **यथासंख्यमनुदेशः समानाम्** यदि स्थानी (जिसकी जगह कोई बैठता है) और आदेश (जो वैठता है) की संख्या बराबर हो तो उनमें क्रम से कार्य हो–

अर्थात् पहले का पहला, दूसरे का दूसरा आदि । यथा—

ए — अय्, ऐ — आय्
ओ — अव्, औ — आव्

हरे	+	ए	=	हरये,	गै	+	अकः	=	गायकः,
ने	+	अनम्	=	नयनम्,	नै	+	अकः	=	नायकः,
शे	+	अनम्	=	शयनम्,					
चे	+	अनम्	=	चयनम्,					
विष्णो	+	ए	=	विष्णवे,	भौ	+	उकः	=	भावुकः,
पो	+	अनः	=	पवनः,					
पो	+	इत्रम्	=	पवित्रम्,					
लो	+	अनः	=	लवणः,					
भो	+	अनम्	=	भवनम्,					

३०. वान्तो यि प्रत्यये (वान्तः, यि, प्रत्यये) यकारादि प्रत्यय परे रहते ओ और औ के स्थान पर क्रम से अव् और आव् आदेश हों । व+अन्त, व है जिसके अन्त में उसे वान्त कहते हैं । यकारादि से तात्पर्य है जिसके प्रारम्भ में य् हो ।

यथा— गो + यम् = गव्यम्
नौ + यम् = नाव्यम्

मूल सूत्र के अनुसार अव् अच् परे रहते ही होता था, वह यकारादि प्रत्यय परे भी हो जाय, इसीलिए यह सूत्र बनाया गया ।

३०. अ वा० अध्वपरिमाणे च (अध्व=मार्ग) मार्ग का परिमाण बताने के लिए भी गो शब्द का यूति परे रहते अव् आदेश हो जाय । इससे पहले के सूत्र में यकारादि प्रत्यय परे रहते अव् का विधान किया गया है और यूति प्रत्यय नहीं है अतः वार्तिककार ने इस वार्तिक की परिकल्पना की । वार्तिककार कात्यायन हैं । उन्होंने पाणिनि के सूत्रों में जहाँ भी कोई कमी देखी है वार्तिक जोड़ दिये हैं ।

गो + यूतिः = गव्यूतिः (चार मील की दूरी)

३१. धातोस्तन्निमित्तस्यैव (धातोः + तन्निमित्तस्य + एव)

यदि यकारादि प्रत्यय के कारण ही किसी धातु में ओ या औ हुआ हो तो भी उसके स्थान पर अव् आव् आदेश हो जाएँ । यथा—लूञ्—काटने के अर्थ में एक धातु है । इससे यत् प्रत्यय करने पर इसका लो– गुण हो जाता है तो इस सूत्र की

प्रवृत्ति होती है तथा लो + यम् = लव्यम् बनता है। इसी प्रकार नौ + यम् = नाव्यम्

उसी निमित्त क्यों कहा गया– ओ+य+ते = ओयते– यहाँ अव् नहीं हुआ क्योंकि यह ओ मूल है किसी प्रत्यय के कारण नहीं।

३२. क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे : "कार्य का होना" सम्भव है इस अर्थ में क्षि और जि धातुओं से य प्रत्यय होने पर ए के स्थान में अय् हो।

क्षे + यत् = क्षय्यम्

जे + यत् = जय्यम्

जहाँ कर सकना सम्भव नहीं वहाँ अय् नहीं होगा। उस स्थिति में क्षेयम् (नष्ट करना चाहिए) और जेयम् (जीतना चाहिए) रूप बनते हैं।

३३. क्रय्यस्तदर्थे : क्री + यत् = क्रे + यत्,

किसी वस्तु को खरीद करने वाला खरीदे इस दृष्टि से दूकान पर सामग्री रखने के लिए क्रय्य बनता है अन्यथा क्रेयम्।

३४. आद्गुणः : अवर्ण से अच् परे रहते पूर्व और पर दोनों के स्थान में गुण आदेश हो।

यथा — उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि अ का उच्चारण स्थान कण्ठ है और इ का तालु अतः अ+इ=ए ही होगा क्योंकि ए का उच्चारण स्थान कण्ठतालु होता है। इसी प्रकार अ+उ=ओ (कण्ठोष्ठ) होता है। अन्य उदाहरण— सुर+ईशः=सुरेशः

दिन + ईशः = दिनेशः, गज + इन्द्रः = गजेन्द्रः।

महा + ईशः = महेशः, गण + ईशः = गणेशः।

विद्या + उन्नतिः = विद्योन्नतिः, भाग्य + उदयः = भाग्योदयः।

त्वया + इदम् = त्वयेदम्, मया + इदम् = मयेदम्।

चन्द्र + उदयः = चन्द्रोदयः।

३५. उरण्रपरः : (उ + अण् + र परः) उः का अर्थ है ऋ का, उः ऋ का षष्ठी विभक्ति का रूप है। सूत्र का तात्पर्य है कि यदि ऋ के स्थान पर गुण हो तो उसके बाद र् और जुड़ जाय। ऋ का गुण अ होता है अतः यह अर् होकर बैठता है। यथा—

महा + ऋषिः = महर्षिः, देव + ऋषिः = देवर्षिः,

चूँकि र पर वाला र ल् को भी बतलाता है (र प्रत्याहार है) अतः लृ के स्थान

पर ल् और अ जाता है– यथा

तव + लृकारः = तवल्कारः।

३६. **लोपः शाकल्यस्य :** यदि पदान्त (किसी पद के अन्त में) य् अथवा व् हो, उसके पहले अ अथवा आ हो, और य् व् से परे अश् हो तो शाकल्य के मत में य् व् का लोप हो जाय। हरे + इह = हरय् + इह बनता है। यहाँ शाकल्य के मत में य् का लोप हो जाना चाहिए। तब हर + इह स्वरूप बना। चूँकि शाकल्य के मत से यहाँ य् का लोप कहा गया है तो दूसरे के मत में न होगा, ऐसी ध्वनि निकलती है। अतः दूसरों के मत में हरयिह ही रहेगा। इसी प्रकार विणव्+ इह = विष्ण इह और विष्ण विह बनेगा।

यहाँ एक शंका उपस्थित होती है– हर + इह, और विष्ण + इह में गुण क्यों न हो जाय ? इसका समाधान अगला सूत्र करता है।

३७. **पूर्वत्रासिद्धम् :** (पूर्वत्र + असिद्धम्) पूर्व सूत्रों के प्रति पर असिद्ध हो। इस सूत्र का तात्पर्य समझने के लिए इस सूत्र की स्थिति देखनी होगी। यह सूत्र अष्टाध्यायी के आठवें अध्याय के दूसरे पाद का पहला है। इसके अनुसार अष्टाध्यायी के पहले सात अध्याय तथा आठवें का प्रथम पाद पूर्वत्र पद से जाना जाता है। अतः इस स्थल से पहले सूत्रों के प्रति इसके बाद वाले असिद्ध होते हैं। आगे के तीन पादों में भी पूर्व के प्रति पर असिद्ध माना जाता है। इसका फल यह निकला कि आद्गुणः (६-१-८७) के प्रति लोपः शाकल्यस्य (८-३-१९) असिद्ध हो जाता है। अतः आद्गुणः की दृष्टि में य् का लोप ही नहीं होगा और जब तक लोप नहीं होता तब तक गुण सन्धि का प्रश्न ही नहीं होता।

३८. **वृद्धिरेचि** (वृद्धिः + एचि) (६-१-८८) अवर्ण से एच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि हो। यह गुण का अपवाद है। गुण में अवर्ण से परे अच् कहा गया है। इस सूत्र का कहना है, उन अचों में यदि एच् हो तो गुण न होकर वृद्धि हो। यथा—

एक + एकः = एकैकः, देव + ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्,
पञ्च + एते = पञ्चैते, मत + ऐक्यम् = मतैक्यम्
मा + एवम् = मैवम्, पुराण + ऐतिहासिकः = पुराणैतिहासिकः
सदा + एव = सदैव, फल + ऐहिकः = फलैहिकः
तथा + एव = तथैव
तव + एव = तवैव, परम + औदार्यम् = परमौदार्यम्

अद्य + एव = अद्यैव , तस्य + औदार्यम् = तस्यौदार्यम्
महा + औषधि = महौषधि , मम + औत्सुक्यम् = ममौत्सुक्यम्
गङ्गा + ओघः = गङ्गौघः , कस्य + औत्कण्ठ्यम् = कस्यौत्कण्ठ्यम्

३९. **एत्येधत्यूठसु :** अवर्ण से एजादि इण् तथा एजादि एध् धातु और ऊठ परे हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि हो। चूँकि इण् तथा एध सदा एजादि नहीं होते, पर जब भी वह एजादि अवर्ण से परे हो तब वृद्धि हो ऐसा इस सूत्र का भाव है।

यथा— उप + एति = उपैति। यहाँ एक शंका उपस्थित होती है कि अ + ए के स्थान पर तो वृद्धि वैसे ही हो जाती, इस सूत्र की क्या आवश्यकता ? बात यह है कि आगे एक सूत्र ऐसा आयेगा जो ऐसी स्थिति में पर रूप करता है, उस दशा में यहाँ उप + एति = उपेति बनता। उसको रोकने के लिए इस सूत्र की रचना की गयी।

प्रष्ठ + ऊह = प्रष्ठौह (यह गुण का बाधक है)

४०. **उपसर्गाः क्रियायोगे :** प्र आदि क्रिया के योग में उपसर्ग कहे जाते हैं। ये २२ हैं। प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप। ये सदा धातु के पहले जोड़े जाते हैं।

४०. अ **स्वादीरेरिणीः :** (स्वात् + ईर + ईरिन्) स्व शब्द से यदि ईर और ईरिन् आवें तो वृद्धि हो (गुण का अपवाद)

यथा— स्व + ईरः = स्वैरः, स्व + ईरिणी = स्वैरिणी

४०. आ **अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्** अक्ष शब्द से परे यदि ऊहिनी शब्द रहे तो वृद्धि हो,—

यथा— अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी

४०. इ **प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु** प्र उपसर्ग से परे यदि ऊह, ऊढ, ऊढि, एष, ऐष्य हो तो वृद्धि हो (गुण नहीं) इनमें एष और ऐष्य पर रूप के अपवाद हैं।

प्र + ऊहः = प्रौहः, प्र + ऊढ = प्रौढ, प्र + ऊढि = प्रौढि, प्र + एषः = प्रैषः
प्र + ऐष्यः = प्रैष्यः।

४०. ई **ऋते च तृतीया समासे :** यदि किसी अकारान्त शब्द का ऋत शब्द के साथ तृतीया समास में प्रयोग हो तो वृद्धि हो।

यथा— सुखेन + ऋतः = सुखार्तः, भयेन + ऋतः = भयार्तः इसके विपरीत
परम + ऋतः = परमर्तः में वृद्धि नहीं हुई क्योंकि तृतीया समास नहीं है।

४०. उ **प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे** प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, ऋण और दश से परे यदि ऋण शब्द हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि हो।

यथा— प्र + ऋणम् = प्रार्णम्, वत्सतर + ऋणम् = वत्सतरार्णम्।
कम्बल + ऋणम् = कम्बलार्णम्, दश + ऋणम् = दशार्णम्।
वसन + ऋणम् = वसनार्णम्, ऋण + ऋणम् = ऋणार्णम्।

४१. **उपसर्गादृति धातौ** (उपसर्गात्+ऋति+धातौ) अवर्णान्त उपसर्ग से परे यदि ऋकारादि धातु आवे तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो। यथा—

प्र+ऋच्छति=प्रार्च्छति, उप+ऋच्छति=उपार्च्छति।

४२. **अकः सवर्णे दीर्घः** अक् से यदि सवर्ण अच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में दीर्घ एकादेश हो जाय। अक् में अ, इ, उ, ऋ, लृ आते हैं, इनके सवर्ण से तात्पर्य है यदि ये ही क्रम से पुनः जावे---जैसे अ से परे अ, इ से परे इ, उ से परे उ आदि। इनमें ह्रस्व या दीर्घ कोई भी स्वर किसी भी ओर हो तो भी दीर्घ ही एकादेश होगा अर्थात् चाहे अ+अ, हो या आ+आ, एकादेश दीर्घ ही होगा। यथा—

सुर + अरिः = सुरारिः, रवि + इन्द्रः = रवीन्द्रः।
देव + अर्चनम् = देवार्चनम्। गिरि + ईशः = गिरीशः।
देव + आलयः = देवालयः। क्षिति + ईशः = क्षितीशः।
विद्या + अर्थी = विद्यार्थी। नदी + इच्छा = नदीच्छा।
देवी + इव = देवीव।
विद्या + आलयः = विद्यालयः। मही + ईशः = महीशः।
सु + उक्तिः = सूक्तिः।
राम + आश्रमः = रामाश्रमः। बधु + उत्सवः = बधूत्सवः।
पुस्तक + आलयः = पुस्तकालयः। विष्णु + उदयः = विष्णूदयः।
महा + आत्मा = महात्मा।
मदिरा + आलयः = मदिरालयः। विधु + उदयः = विधूदयः।
पितृ + ऋणम् = पितृणम्।

४३. **एङि पररूपम्** अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङ् आदि धातु होने पर पररूप एकादेश हो।

प्र + एजते = प्रेजते, उप + ओषति = उपोषति।
प्र + एषयति = प्रेषयति,

४४. **एङः पदान्तादति** (पदान्तात् एङः अति) पदान्त एङ् से अकार परे

रहने पर पूर्वरूप हो जाय ।

हरे+अव=हरेऽव , विष्णो+अत्र=विष्णोऽत्र ।

४५. अचोन्त्यादि टि : (अन्त्य अचः आदि टि) किसी भी शब्द में अन्तिम अच् जिस अंश के प्रारम्भ में होगा वह सम्पूर्ण टि कहा जाता है, यथा— मनस् में न का 'अ' अन्तिम स्वर है और यह "अ" स् के प्रारम्भ में है तो अस् की टि संज्ञा हुई ।

(४५-अ) शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् शकन्धु आदि के विषय में भी पर रूप एकादेश हो । यह एकादेश टि भर को हो (तच्च टेः) । यथा—

शक + अन्धुः = शकन्धुः, (यहाँ दीर्घ प्राप्त था पर नहीं हुआ) इसी प्रकार मनस्+ ईषा = मनीषा , कर्क + अन्धुः = कर्कन्धु;
हल + ईषा = हलीषा , सीम + अन्त = सीमन्त (जब इस का अर्थ केश हो)
सार + अङ्ग = सारङ्ग , सीम + अन्त = सीमान्त (सीमा का अन्त)
पतत् +अञ्जलिः= पतञ्जलिः , कुल + अटा = कुलटा,
मृत + अण्डः = मृतण्डः + अण् = मार्तण्डः आदि ।

४६. ओमाङोश्च अवर्ण से ओम् और आङ् परे हों तो पर रूप एकादेश हो ।
यथा— शिवाय + ओम् = शिवायोम् (वृद्धि नहीं हुई)
शिव + एहि = शिवेहि । इस उदाहरण में कुछ बातें विशेष हैं ।
एहि = आ + इहि होता है । तब शिव + आ + इहि स्थिति बन गयी । इस स्थिति में एक शंका उठी कि शिव के साथ पहले आ की सन्धि हो अथवा आ के साथ इहि की सन्धि पहले हो ? इसका समाधान यह है कि आ+इहि में उपसर्ग तथा धातु का सम्बन्ध है, शिव+आ में सन्धि कार्य का सम्बन्ध है । चूँकि धातु और उपसर्ग का सम्बन्ध (अन्तरङ्ग) अन्य सम्बन्ध (वहिरङ्ग) से घना होता है अतः पहले आ+इहि ही मिलेंगे । तब शिव+एहि बना । बहिरङ्ग सम्बन्धों की तुलना में अन्तरङ्ग बली होता है । अब दूसरी शंका उपस्थित हुई कि ४६ वाँ सूत्र आङ् को पररूप करता है, एहि को नहीं, तब पर रूप कैसे हो गया ? इसका समाधान एक नया सूत्र करता है ।

४७. अन्तादिवच्च जो एकादेश होता है वह पूर्व के अन्तवत् और पर के आदिवत्

माना जाता हैं। यहाँ एहि का "ए" पूर्वान्तवत् होने से आ ही मान लिया जाता है। अतः ए को आ मानकर ओमाङोश्च से पर रूप होता है। इसी प्रकार अन्य रूप अवेहि और उपेहि भी बनते हैं।

प्रकृति भाव

प्रकृति भाव का अर्थ है कि सन्धि कार्य द्वारा मिलने वाले वर्णों में कोई अन्तर न आवे, वे जैसे हैं वैसे ही रहें।

४८. **प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् :** प्लुत और प्रग्रह्य अच् परे होने पर प्रकृति भाव स्थिति में रहते हैं। यथा—

आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति। इस वाक्य में "कृष्ण" के ण में "अ" प्लुत है। †[1] अतः उससे परे अत्र के अ रहने पर प्रकृति भाव हो गया।

४९. **ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्** ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्य संज्ञा हो। यथा—

हरी एतौ, विष्णू इमौ, गंगे अमू,

५०. **अदसो मात् :** अदस् शब्द के मकार से परे ईकार और ऊकार की प्रगृह्य संज्ञा हो। अमी ईशाः अमू आसाते, (ये दो बैठे हैं।)

---

† १. **दूराद् धूते च** दूर से बुलाने में वाक्य की टि विकल्प से प्लुत होती है।

२. **सर्वत्र विभाषा गोः** पदान्त एङन्त गो शब्द से अत् परे रहने पर लोक और वेद में सर्वत्र विकल्प से प्रकृति भाव हो। यथा—

गो+अग्रम्=गो अग्रम्

जब विकल्प में प्रकृति भाव नहीं होगा तो 'एङः पदान्तादति' से पूर्व रूप हो जायगा। गो+अग्रम्=गोऽग्रम्।

३. **अवङ् स्फोटायनस्य** स्फोटायन के अनुसार पदान्त एङन्त "गो" शब्द के स्थान पर "अवङ्" आदेश हो यदि उसके परे अच् हो। चूँकि स्फोटायन के मत में यह विधान किया गया है इसलिए विकल्प से होगा। 'अवङ्' का ङ् इत् है, गिर जाता है केवल "अव" रह जाता है। अब प्रश्न है कि यह "गो" के कितने अंश के स्थान में हो। उसका निर्णय अगला सूत्र करता है।

५१. **चादयो सत्त्वे** जिनका अर्थ द्रव्य नहीं होता ऐसे च आदि 'निपात' कहे जाते हैं।

५२. **प्रादयः** प्र आदि उपसर्ग भी निपात कहे जाते हैं।

५३ **निपात एकाजनाङ्** (नियातः, एकाच्, अनाङ्) आङ् को छोड़कर एक अच् वाले निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है।

यथा— इ+इन्द्रः=इ इन्द्रः, उ+उमेशः=उ उमेशः।

आ और आङ् दोनों ही निपात हैं। दोनों का स्वरूप 'आ' ही रह जाता है क्योंकि आङ का ङ् इत् संज्ञक है। ऐसी स्थिति में इसे कहाँ आ समझा जाय और कहाँ आङ् ? इसका निर्णय यह है कि यदि आ वाक्य में हो अथवा स्मरण अर्थ में हो तो आ ही माना जाता है आङ् नहीं। इस प्रकार इन दो स्थलों में प्रयुक्त होने वाला

---

४. **अनेकाल् शित् सर्वस्य** यदि किसी आदेश में अनेक अल्- (वर्ण) हों तो वह पूरे स्थानी के स्थान पर होता है। इस सूत्र के आधार पर पूरे 'गो' के स्थान पर अवङ् होना था, पर और एक सूत्र इसे भी सीमित कर देता है।

५. **ङिच्च** यदि अनेक वर्ण वाला आदेश ङित् है (जिसकी ङ् इत् हो) तो वह केवल अन्तिम वर्ण के स्थान पर हो।

अतः गो+अवङ्+अग्रम्=गवाग्रम्।

जब अवङ् आदेश नहीं होगा, तो सर्वत्र विभाषा गोः से प्रकृति भाव रहेगा। प्रकृति भाव भी विकल्प से होता है अतः उस स्थिति में 'एङः पदान्तादति' से पूर्व रूप होगा। यहाँ एक शंका और है कि पदान्त गो क्यों कहा गया। सप्तमी में गो+ङि आता है, तो गो पद नहीं होता, उस समय ये सूत्र न लगें, इसीलिए पदान्त कहा गया। सप्तमी में गवि रूप बनता है।

इन्द्रे च इन्द्र शब्द परे रहते भी गो के स्थान में अवङ् आदेश हो जाता है। गो+इन्द्रः=गवेन्द्रः।

'आ' प्रगृह्य संज्ञक हो जाता है। इस सूत्र में 'आङ्' के निपात होने का निषेध है आ का नहीं। यथा—आ एवं नु मन्यसे में आ निपात है क्योंकि उसका वाक्य में प्रयोग है। 'आ एवं किल तत्' में इसका स्मरण अर्थ में प्रयोग हुआ है अतः यहाँ भी प्रगृह्य संज्ञक है।

अन्य अर्थों में आने वाला 'आ' 'आङ्' का आ माना जाता है अतः प्रगृह्य संज्ञक न होने से उसकी सन्धि हो जाती है— यथा—

आ + उष्णम् = ओष्णम् (आ = कम–ईषत्)
आ +अगच्छत्= आगच्छत् (क्रिया योग)

५४. **ओत्** ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा होती है। यथा— अहो ईशाः (इसमें सन्धि कार्य नहीं हुआ)

५५. **सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे** सम्बुद्धि परे रहते (सम्बोधन में) जहाँ 'उ' के स्थान पर 'ओ' हुआ हो वहाँ अवैदिक इति परे रहते उसकी प्रगृह्य संज्ञा विकल्प से हो जाती है।

यथा— विष्णो + इति = विष्णोइति विष्णो + इति = विष्ण इति
(यहाँ 'ओ' का अव् आदेश होकर लोपः शाकल्यस्य से व् का लोप हो गया।)

विष्णो+इति=विष्णविति (व् के लोप न होने से यह रूप बना)

५६. **इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च** पदान्त इक् के स्थान पर विकल्प से ह्रस्व हो यदि उससे परे असवर्णी अच् हो।

यथा— गौरी + आह = गौरि आह, चक्री + अत्र = चक्रि अत्र

यहाँ शंका उपस्थित होती है कि इसमें ह्रस्व होने पर भी यण् क्यों नहीं हुआ ? यदि ह्रस्व करने के उपरान्त यण् किया जाय तो ह्रस्व का विधान ही व्यर्थ है। चूँकि ह्रस्व विकल्प से होता है अतः ह्रस्व न होने पर यण् हो जाता है। उस स्थिति में

गौरी+आह=गौर्याह, चक्री+अत्र=चक्र्यत्र रूप बनते हैं।

५७. **ऋत्यकः** (ऋति+अक :) ऋ परे रहते पदान्त अक् के स्थान पर विकल्प से ह्रस्व होता है।

ब्रह्मा + ऋषि = ब्रह्म + ऋषिः।

जब ह्रस्व का विधान न होगा तो गुण सन्धि हो जायगी और ब्रह्मर्षि रूप बनेगा। यहाँ पदान्त इसीलिए कहा गया है कि पदान्त में ह्रस्व न हो।

आ + ऋच्छति = आर्च्छति।

हल् सन्धियाँ

५८. **स्तोः श्चुनाश्चुः** स् और तवर्ग (त थ द ध न) के स्थान में श् और चवर्ग आदेश हो यदि उनका योग श् और चवर्ग से हो। इस योग में कोई क्रम नहीं दिया गया। यह आवश्यक नहीं है कि स् का योग श् के साथ तवर्ग का चवर्ग के साथ ही हो। यदि क्रम होता तो श् परे रहते तवर्ग को श्चुत्व न होता, जबकि ऐसा होता है। यह योग पूर्व और पर दोनों का समझना चाहिए। इसका प्रमाण 'शात्' सूत्र है जो कहता है कि श् के परे तवर्ग का श्चुत्व न हो। इसका अर्थ है कि चवर्ग पहले हो और तवर्ग परे हो तो भी श्चुत्व सम्भव है।

रामस् + शेते = रामश्शेते (राम सोता है)
रामस् + चिनोति = रामश्चिनोति (राम चुनता है)

सत् + चित = सच्चित, सत् + जनः = सज्जनः।
उत् + ज्वलः = उज्ज्वलः, कतिचिद् + जनाः = कतिचिज्जनाः।
उत् + चारणम् = उच्चारणम्। याच् + ना = याच्ञा (माँग)
शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय।

थ के स्थान में छ या ध के स्थान में झ के उदाहरण नहीं मिलते।

५९. **शात् :** शकार से परे तवर्ग के स्थान में श्चुत्व न हो। यथा—

प्रश् + नः = प्रश्नः, विश् + नः = विश्नः।

६०. **ष्टुना ष्टुः :** सकार और तवर्ग के स्थान में षकार और टवर्ग का योग होने पर षकार और टवर्ग आदेश हों। यथा—

रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः। तत् + टीका = तट्टीका।
रामः + टीकते = रामष्टीकते। चक्रिन् + ढौकसे = चक्रिण्ढौकसे।

६१. **तोः षि** षकार परे रहते तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता।

सन् + षष्ठः = सन् षष्ठः।

६२· **झलां जशोऽन्ते :** पद के अन्त में झलों के स्थान पर जश् हो। जश् में वर्गों का तीसरा वर्ण आता है। झलों में वर्ग का प्रथम द्वितीय, तृतीय चतुर्थ वर्ण तथा शष स ह आते हैं। इस सूत्र से जहाँ वर्गों के वर्ण मिलते हैं, वे अपने अपने वर्ग के तीसरे वर्ण में बदल जाते हैं। यथा—

वाक् + ईशः = वागीशः, (क का ग हो गया)।
दिक् + ईशः = दिगीशः, अच् + अन्तः = अजन्तः।
सुप् + अन्तः = सुबन्तः, जगत् + ईशः = जगदीशः।
चित् + आनन्दः = चिदानन्दः, चित् + रूपम् = चिद्रूपम्।
मधुलिट् + गुञ्जति = मधुलिड गुञ्जति, मनाक् + हसति = मनाग् हसति।
कतिचित् + दिनानि = कतिचिद् दिनानि।

६३. **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा :** पदान्त यर् के परे यदि कोई अनुनासिक वर्ण हो तो यर् भी विकल्प से अनुनासिक हो जाय। यथा—

एतत् + मुरारिः = एतन्मुरारिः,
धिक् + मूर्खम् = धिङ् + मूर्खम्,
मद् + नीतिः = मन्नीतिः।
सत् + मार्गः = सन्मार्गः,

६३.अ **प्रत्यये भाषायाम् नित्यम्** यदि परे कोई अनुनासिकादि प्रत्यय हो तो पदान्त यर् के स्थान में नित्य अनुनासिक हो। इसमें विकल्प नहीं होगा।

मृङ् + मयम् = मृण्मयम्
चित् + मयम् = चिन्मयम्,
वाक् + मयम् = वाङ्मयम्।
तत् + मात्रम् = तन्मात्रम्।

६४. **तोर्लि** यदि तवर्ग से लकार परे हो तो तवर्ग का भी लकार हो जाय—यथा—

तत् + लयः = तल्लयः,
विद्वान् + लिखति = विद्वाँल् लिखति,
चिद् + लीनः = चिल्लीनः,
तद् + लीला = तल्लीला।

६५. **झयोहोऽन्यतरस्याम्** झय् के परे यदि ह हो तो ह का विकल्प से पूर्व सवर्ण हो, यथा—

वाक् + हरिः = वाग्घरिः, वाग्हरिः ।

६६. **शश्छोऽटि** झय् से परे श् का विकल्प से छ् हो यदि उस श् से परे अट् हो, यथा—

तद् + शिवः = तच्छिवः,

जगत् + शान्तिः = जगच्छान्तिः,

तत् + शून्यम् = तच्छून्यम् ।

इन उदाहरणों में कभी-अभी कई परिवर्तन होते हैं तब ये रूप बनते हैं । सबसे पहले यहाँ द् के स्थान पर "स्तोःश्चुनाश्चुः" से ज होना है क्योंकि द् वर्ग का तृतीय वर्ण है । उसके पश्चात् "खरि च" से ज् का च् होता है । इस स्थिति में "शश्छोऽटि" से एक बार छ् होगा और जब छ नहीं होगा तो ऐसा ही रह जायगा क्योंकि विकल्प से विधान किया गया है ।

६७. **उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य** उद् उपसर्ग से परे यदि स्था और स्तम्भ आवें तो पूर्व सवर्ण हो जाय । उद् + स्थानम्,

उद् + स्तम्भनम् ।

यहाँ शंका उपस्थित होती है कि स्था और स्तम्भनम् के कितने अंश का पूर्व सवर्ण हो, उसका निर्णय अगला सूत्र करता है ।

६८. **तस्मादित्युत्तरस्य** पञ्चमी के द्वारा जिस कार्य का विधान किया जाय वह कार्य उससे बिना अन्य व्यवधान वाले पर वर्ण के स्थान में हो । इसमें निमित्त और स्थानी के बीच कोई अन्य वर्ण नहीं होना चाहिए ।

६९. **आदेः परस्य** यदि पर वर्ण के स्थान पर किसी का विधान किया जाय तो उसके आदि के स्थान में हो । इसके अनुसार स् के स्थान में थ होगा क्योंकि इन दोनों के स्थान व प्रयत्न एक हैं । (विवार, श्वास, अघोष और महाप्राण)

तब उद् + थ् + थानम्, उद् + थ् + तम्भनम् स्थिति बनी ।

७० **झरो झरि सवर्णे** यदि हल् से परे झर हो और उस झर् के परे दूसरा झर् भी हो तो पहले झर् का विकल्प से लोप हो । इसके अनुसार पहले थ् का लोप हो गया ।

उद् + थानम्, उद् + तम्भनम् ।

दूसरी स्थिति में जब लोप नहीं होगा तो यह स्थिति इस प्रकार होगी

उद् + थ् + थानम्, उद् + थ् + तम्भनम्,

७१. **खरि च** यदि झलों के परे खर् हो तो झलों के स्थान में चर् हो। इसके अनुसार थ का त् हो जाता है— अतः निम्नलिखित रूप बनते हैं—

उत्थानम्, उत्तम्भनम्, इसी प्रकार उत्थापनम् आदि—

७२. **मोऽनुस्वारः** यदि किसी पद के अन्त में म् हो तो व्यञ्जन परे रहने पर म् के स्थान में अनुस्वार हो। यह अनुस्वार उस म् से पूर्व वर्ण पर लिखा जाता है। यथा—

हरिम् + वन्दे, हरिं वन्दे, इसी प्रकार गृहं गच्छति, पुस्तकं पठति। गुरुं नमति। इसके विपरीत म् के परे अच् होने पर म् ही रहता है। तम् अब्रवीत्, अहम् अगच्छम्।

७३. **अनुस्वारस्य ययि पर सवर्णः** यदि अनुस्वार से यय् परे हो तो उसके स्थान में पर सवर्ण आदेश हो। यय् में य व र ल और वर्गों के सभी वर्ण आते हैं। अतः जब किसी वर्ग का वर्ण परे होगा तो उसी का पञ्चम वर्ण आ जायेगा—

गङ्गा, कुण्ठित, चञ्चल, पण्डित, तन्त्र, गुञ्जति, शान्तः, गुम्फित, मुञ्चति, दम्भः, जब य व ल होंगे तो अनुनासिक य व ल हो जायेंगे।

७४. **वा पदान्तस्य** पदान्त अनुस्वार से परे यदि यय् हो तो विकल्प से पर सवर्ण होता है।

त्वं करोषि, त्वम् करोषि, भूमिं खनति, जलं पिबति, जलम् पिबति। भूमिम् खनति।

७५. **नश्चाऽपदान्तस्य** अपदान्त न् और म् के परे यदि झल् हो तो उनके स्थान में अनुस्वार हो।

यशान् सि = यशांसि, इसी प्रकार पयांसि, सरांसि।

७६ **डः सि धुट्** ड् से परे यदि सकार हो तो धुट् का विकल्प से आगम हो। आगम मित्र के समान होता है। वह आदेश की तरह किसी को हटा कर नहीं बैठता। धुट् से उट् गिर जाता है। केवल ध् रह जाता है। यदि उट् गिराना था तो लाया क्यों गया? इसे टित् बनाने के लिए लाया गया। टित् वाला अंश आद्यन्तौ टकितौ के अनुसार पहले आता है। उसे पहले लाना ही अभिप्रेत था। षड् + सन्तः,= षड् + ध् + सन्तः षट्त्सन्तः। षट् + सन्तः।

७७. **ङमो ह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्** यदि किसी ह्रस्व से परे ङम् अन्त वाला पद हो (जिसके अन्त में ङ ण न हो) और उसके परे कोई अच् हो तो उस अच् से पूर्व ङम् का आगम हो। यथा—

सुगण् + ईशः = यहाँ ग में ह्रस्व अ है, ङम् (ण) उस पद के अन्त में है और उससे परे अच् ई है। अतः ई से पहले एक ण् और आ जायगा।

सुगण्णीशः, इसी प्रकार एकस्मिन् + अहनि = एकस्मिन्नहनि।

एतस्मिन् + अवसरे = एतस्मिन्नवसरे।

७८. **समः सुटि** सम् के मकार को रु हो सुट् परे रहते। यथा—

सम् + स्कर्ता = स रु + स्कर्ता

७९. **अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा** इस रु प्रकरण में रु से पूर्व वर्ण विकल्प से अनुनासिक हो जाय।

सँ रु + स्कर्ता सँ र् स्कर्ता (रु के उ का लोप)

८०. **अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः** जहाँ अनुनासिक न हो वहाँ रु से पहले वाले वर्ण पर अनुस्वार का आगम हो जाय।

सँर् + स्कर्ता, संर् + स्कर्ता

८१. **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** पदान्त र् से परे यदि खर् हो या अवसान हो तो र् के स्थान पर विसर्ग हो जाय।

यथा— सँः + स्कर्ता, संः + स्कर्ता,

८१ अ **संपुंकानां सो वक्तव्यः** सम्, पुम्, और कान् के विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश हो।

सँस्कर्ता, संस्स्कर्ता। रामः,।

इसी प्रकार रामः, मुनिः, भानुः आदि में भी र के स्थान में विसर्ग हो जाता है।

८२. **नश्छव्यप्रशान्** यदि छव् से परे अम् हो तो उस छव् परे रहते नान्त पद के स्थान में रु हो जाता है।

यथा— चक्रिन् + त्रायस्व

चक्रिरु + त्रायस्व = चक्रिर् + त्रायस्व

यहाँ भी रु के पहले अनुनासिक और अनुस्वार हो जाते हैं।

चक्रिँर् + त्रायस्व, चक्रिंर् + त्रायस्व।

---

†आद्यन्तौ टकितौ—आगम टित् हो तो आदि में और कित् हो तो अन्त में बैठाया जाय।

रेफ के स्थान पर पहले विसर्ग और उसके भी स्थान पर विसर्जनीयस्य सः से स् होकर चक्रिँस्त्रायस्व और चक्रिंस्त्रायस्व रूप बनते हैं।

इसी प्रकार कस्मिन् + चित् = कस्मिंश्चित्
तस्मिन् + तथा = तस्मिंस्तथा

८३. **नश्च** नकारान्त पद से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम हो। यथा—
सन् + त् + सः, सन् + सः।

८४. **शि तुक्** पदान्त न् से परे यदि शकार हो तो विकल्प से तुक् का आगम होता है।†

---

† कभी-कभी कुछ सन्धियों का ऐसा मेल हो जाता है कि शब्दों के कई रूप बन जाते हैं और उन्हें बनाने में मानसिक व्यायाम हो जाता है। यहाँ एक शब्द है— सन् + शम्भुः। इसके चार रूप बनते हैं।

१, सन् + शम्भुः (शि तुक् पहले लगा क्योंकि पदान्त न् है और उससे परे शकार भी। इससे तुक् का आगम हुआ, तो दो रूप बने—

तुक् आने पर सन् + त् + शम्भुः } चूंकि तुक् विकल्प
तुक् न आने पर सन् + शम्भुः } से आता है।

अब सन् + त् + शम्भुः में दो सूत्र प्रवृत्त हुए।

पहला **शश्छोऽटि** (देखो सूत्र ६६) इसकी संख्या ८-४-६३ है जो श् को छ करने वाला है।

दूसरा **स्तोः श्चुना श्चुः** यह त् को च् कर सकता है। इसकी संख्या ८-४-४० है। चूंकि पहले की दृष्टि में अगला असिद्ध होता है अतः पहले श्तोः श्चुना श्चुः लगा। इससे श्चुत्व पहले हुआ। तब सन् + च् + शम्भुः बना।

पर अभी भी शश्छोऽटि की प्रवृत्ति है। अतः सन् + च् + छम्भुः बना। इसमें सन् के न् (तवर्ग) और च् का अभी भी योग है अतः श्चुत्व पुनः होगा। सञ् च् छम्भुः पहला रूप हो गया।

२. दूसरे रूप में पहले वाली स्थिति से (सञ् च् छम्भुः) च् का लोप होता है। यहाँ झरो झरि सवर्णे प्रवृत्त होता है। (देखो सूत्र ७०) यहां ञ् हल है, च् पहला झर् है तथा श् दूसरा झर्। अतः च् के लोप होने पर सञ् छम्भुः रहा।

विसर्गसन्धियां

८५. **विसर्जनीयस्य सः** खर् परे रहते विसर्ग के स्थान में स् हो जाय। खर् में वर्ग का पहला, दूसरा वर्ण तथा श ष स आते हैं।

यथा—छात्रः + तिष्ठति = छात्रस्तिष्ठति।
गौः + चरति = गौश्चरति। (यहां स् का श् स्तोः श्चुना श्चुः से हुआ)।

८६. **वा शरि** शर् परे रहते विसर्ग के स्थान पर विकल्प से स् हो जाता है। यथा— बालकः + सदा = बालकस्सदा। हरिः + शेते = हरिश्शेते।

८७. **ससजुषो रुः** पदान्त स् तथा सजुष् के स्थान में रु आदेश हो। यथा रामस् रामरु, शिवस् शिवरु।

८८. **अतो रोर प्लुतादप्लुते** अप्लुत अकार से परे रु के स्थान में उकार हो यदि उस रु से परे भी 'अ' हो। इस प्रकार रु के दोनों ओर 'अ' होना चाहिए।

यथा—शिवरु+अर्च्यः, शिव+उ+अर्च्यः, शिवो अर्च्यः, शिवोऽर्च्यः।
(अन्तिम रूप एङः पदान्तादति के आधार पर बना)

८९. **हशि च** ह्रस्व 'अ' से परे रु हो और उस रु से परे यदि हश् हो तो भी रु के स्थान पर उ हो जाता है। यथा रामरु हसति, रामो हसति। इसी प्रकार रामो गच्छति, रामो वदति, रामो नमति आदि।

९०. **भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि** यदि भोस्, भगोस्, अघोस्, और अ पूर्वक 'रु' हो तो उसके स्थान में य् आदेश हो जाय यदि उस रु के परे अश् हो।

यथा— देवास्+इह, देवा रु इह, देवा य् इह।

---

३. तीसरे में शि तुक् (देखो सूत्र ८४) विकल्प से लगता है। जिस स्थिति में शि तुक् से त् नहीं आयेगा तो च होने का प्रश्न नहीं। उस समय च् के कारण जो श् का छ् हुआ था वह भी नहीं होगा। अतः सञ् शम्भु रहेगा।

४. चूंकि शश्छोऽटि भी (देखो सूत्र ६६) विकल्प से लगता है और झरो झरि सवर्णे भी अतः श् का छ् न होगा और च् का लोप न होगा, तब सञ्च् शम्भुः बनेगा। इन सभी रूपों को एक श्लोक में बांध दिया गया है।

अछौ अचछा अचशा अशाविति चतुष्टयम्।
सूत्रागमिह तुक् छत्व चलोपानां विकल्पनात्।

९१. **हलि सर्वेषाम्** भोस्, भगोस्, अघोस्, अथवा अ पूर्वक य् का लोप हो यदि य् के परे हल् वर्ण हो। देवाय् यान्ति, देवा यान्ति। छात्रा स् हसन्ति, याजका यजन्ति,

९२. **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ् समासे हलि** क रहित एतद् और तद् शब्दों के सु का लोप हो यदि उनसे परे हल् वर्ण हो पर ऐसा नञ् समास में न हो।
यथा—एषः विष्णुः=एष विष्णुः, स शम्भुः, स बालकः, यहां 'क' रहित एतद् और तद् इसलिए कहा गया है कि 'क' सहित में लोप नहीं होता यथा—

एषको रुद्रः, इसी प्रकार नञ् समास होने पर भी नहीं होता– यथा असः शिवः (न सः असः नञ् समास में वनता है)

९३. **रोऽसुपि** अहन् के न् के स्थान पर रु आदेश हो यदि उसके परे कोई विभक्ति न हो। अहन् + अहः, = अहरहः।

९४. **रोरि** र् से परे र् ही हो तो पहले र् का लोप हो जाय।

९५. **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** यदि कहीं ढ के कारण ढ का लोप हो या र् के कारण र् का लोप हो तो पहले र् से पूर्व का अण् दीर्घ हो जाय। यथा—

पुनर् रमते = पुनारमते। हरिर् रम्यः = हरी रम्यः।

शुम्भुर् राजते = शम्भू राजते।

९६. **विप्रतिषेधे परं कार्यम्** विप्रतिषेध का अर्थ है तुल्यवलविरोध। जब बराबर बलवाले सूत्रों की प्रवृत्ति एक साथ आ जाय तो पर वाले का कार्य हो पूर्व का नहीं। यह स्थिति मनस्+रथ में आती है। मनस्+रथ का पहले मनर्+रथ होता है। इस स्थिति में रोरि (८-३-१४) के अनुसार मनर् के र् का लोप होना चाहिए, पर हशि च (६-१-११४) से र् के स्थान में उ आना चाहिए। ९६वें सूत्र के अनुसार रोरि का कार्य होना चाहिए क्योंकि पर कार्य है, किन्तु पहले पूर्वत्रासिद्धम् (देखो सूत्र (३७) से रोरि त्रिपादी का होने से असिद्ध हो जाता है। तब हशि च से मन उ रथः बनकर मनोरथः सिद्ध होता है।

९७. **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** सस् के सु का लोप हो अच् परे होने पर यदि उस लोप होने से पाद की पूर्ति होती हो। यथा 'सैष दाशरथी रामः' एक पाद है। इसमें अनुष्टुप् छन्द है। इसके प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते हैं। यदि यहाँ सः एषः में स के विसर्ग का लोप न किया जाता तो ९ वर्ण हो जाते और पाद की पूर्ति न होती। अतः विशेष परिस्थिति के लिए यह सुविधा दे दी गयी।

अध्याय ४

पद निर्माण (सुबन्त)

पीछे कहा जा चुका है कि वाक्य में विभक्ति के बिना शब्द का प्रयोग नहीं होता। विभक्तियों में शब्द के स्वरूप का ज्ञान यहाँ दिया जा रहा है। शब्द के दो रूप सम्भव हैं—

(i) जिसके अन्त में अच् हो (अच्+अन्त=अजन्त)

(ii) जिसके अन्त में हल् हो (हल्+अन्त=हलन्त)

ये सभी सुबन्त कहलाते हैं (सुप्+अन्त=सुबन्त) क्योंकि इन सबके अन्त में सुप् रहते हैं। इनमें जो प्रत्यय लगाये जाते हैं उन्हें सुप् कहते हैं क्योंकि उनमें पहला सु है और अन्तिम सुप्।

कुल विभक्तियाँ आठ होती हैं—

	कारक	संख्या	हिन्दी का चिह्न	संस्कृत प्रत्यय		
१.	कर्त्ता	प्रथमा	ने	सु	औ	जस्
२.	कर्म	द्वितीया	को	अम्	औट्	शस्
३.	करण	तृतीया	द्वारा, से,	टा	भ्याम्	भिस
४.	सम्प्रदान	चतुर्थी	के लिए	ङे	भ्याम्	भ्यस्
५	अपादान	पञ्चमी	से	ङसि	"	"
६.	सम्बन्ध कारक नहीं	षष्ठी	का के की रा रे री	ङस्	ओस्	आम्
७.	अधिकरण	सप्तमी	में, पर पै,	ङि,	ओस्	सुप्
८.	सम्बोधन	—	यह आठवीं है पर इसे अष्टमी नहीं कहते। (इसमें प्रथमा विभक्ति के ही प्रत्यय जोड़े जाते हैं।)			

इन विभक्तियों में शब्द रूप वनाने से पूर्व इनका सामान्य प्रयोग भी जानना आवश्यक है—

१. **कर्त्ता** रामः गच्छति । में राम कर्त्ता है ।
इसमें प्रथमा विभक्ति के प्रत्यय जोड़े गये हैं ।

२. **कर्म** रामः **पुस्तकं** पठति । में पुस्तकं कर्म है ।
कर्म में द्वितीया विभक्ति के प्रत्यय जोड़े जाते हैं ।

३. **करण** रामः वाणेन हन्ति । में वाणेन में करण है ।
इसमें तृतीया विभक्ति के प्रत्यय लगाये जाते हैं ।

४. **चतुर्थी** रामः वालकाय पुस्तकं यच्छति । राम वालक को पुस्तक देता है । वालकाय में सम्प्रदान है । इसमें चतुर्थी विभक्ति के प्रत्ययों का प्रयोग किया गया है ।

५. **पञ्चमी** वृक्षात् पत्राणि पतन्ति । वृक्ष से पत्ते गिरते हैं । वृक्षात् में अपादान है । इसमें पञ्चमी विभक्ति के प्रत्यय लगाये गये हैं ।

६. **षष्ठी** रामस्य गृहं शोभनम् अस्ति । राम का घर सुन्दर है । **रामस्य** में सम्बन्ध है । इसमें षष्ठी विभक्ति के प्रत्यय लगाये गये हैं ।

७. **सप्तमी** स आसने उपविशति । वह आसन पर बैठता है । आसन में अधिकरण है और सप्तमी विभक्ति के प्रत्यय लगाये गये हैं ।

८. **सम्बोधन** राम ! इहागच्छ । राम यहाँ आओ ।

टिप्पणी—इस प्रकार इन विभक्तियों में जो रूप वनते हैं वे सव इन्हीं प्रत्ययों के द्वारा बनाये गये हैं । संज्ञाओं में ही नहीं सर्वनाम और विशेषणों में भी ये ही प्रत्यय लगते हैं । अब इनमें से प्रत्येक का विशेष स्वरूप दिया जाता है ।

१०१. **अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** जो धातु न हो, प्रत्यय न हो और प्रत्ययान्त न हो पर अर्थवान् शब्द स्वरूप हो उसे प्रातिपदिक कहते हैं । जैसे—राम, वालक, मृग आदि ।

१०२. **कृत्तद्धित समासाश्च** कृत् प्रत्यय वाले, तद्धितान्त और समास की भी प्रातिपदिक संज्ञा हो ।

(i) वालक+सु = उ की इत् संज्ञा है, अतः गिर जाता है ।
(देखो सूत्र उपदेशेऽजनुनासिक इत्)

(ii) वालक+स् = ससजुषो रुः से स् के स्थान में रु ।
(रु के उ की पुनः इत् संज्ञा)

(iii) वालक+र् = **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** से र् के स्थान में विसर्ग हो जाता है । वालकः

इससे स्पष्ट है कि "**वालकः**" वनाने के लिए केवल सन्धि के नियम पर्याप्त हैं । इसका व्यवहार पक्ष और भी सरल है । किसी भी पुल्लिग शब्द में (जिसके अन्त में अ ई, उ हो) प्रथमा का एक वचन केवल विसर्ग लगाने से वनता है । इस प्रकार पुत्रः, रामः, हरिः, भानुः, गजः, अश्वः, सिंहः, नरः, आम्रः, नृपः, शुकः, खगः, मयूरः, समयः, अभ्यासः, विश्वासः, पाठः, घटः, पटः, वृक्षः, करः, कुमारः, पवनः, दीपकः, पुरुषः, देवः, गुणः, दोषः, भावः, कविः, रविः, साधुः, आचारः, आगमः, आदर्शः, आधारः, आमोदः, आघातः, उत्साहः, उपदेशः, कामः, क्रोधः, ग्रामः, प्रभावः, जापः, योगः, द्रोहः नाशः, रागः, लाभः, लेखः, वासः, निषेधः पाकः, पाठः, प्रकाशः, प्रकर्षः प्रणामः, प्रवेशः, प्रहारः, वोधः, भेदः, मेलः, वोधः, वेदः, शोकः, शापः, संतोषः, संयमः. स्नेहः, हर्षः ।

(१) तव=तुम्हारा (२) मम=मेरा (३) अयं=यह, (४) सः=वह ।

ऊपर दिये गये शब्दों का इन शब्दों से मेल करने से सैकड़ों जोड़े ऐसे वनेंगे जो लिखने और बोलने में सदा सहायक होंगे । यथा—तव स्नेहः, मम विश्वासः, अयं बालकः, सः पुरुषः, मम पाठः, तव आदर्शः, तवाचारः, ममामोदः, सः खगः, स अश्वः, तव पुत्रः, मम घटः, अयं उपदेशः, तव संतोषः, ममाघातः, अयं मम नाशः, स तव शापः, अयं सः समयः ।

वालक+औ (यहाँ सन्धि मात्र से वालकौ वन सकता था, पर हरि, भानु आदि वनाने में इस से काम न चलता । अतः नया सूत्र वनाना पड़ा)

१०३ **प्रथमयोः पूर्व सवर्णः** अक् से परे यदि प्रथमा या द्वितीया का अच् हो तो पूर्व सवर्ण दीर्घ आदेश हो जाय । अर्थात् जिस शब्द के अन्त में अ इ उ, ऋ या लृ हो तो उसके आगे अच् आने पर वह दीर्घ अ, इ, उ, ऋ, लृ हो जाय । यथा-बालक+औ= बालका, हरि+औ=हरी, भानु+औ=भानू । यहाँ हरी और भानु तो ठीक बन गये लेकिन वालका द्विवचन नहीं होता । ऐसी स्थिति में एक नया सूत्र वनाना पड़ा ।

१०४. **नाऽऽदिचि** (न+आत्+इचि) यदि किसी शब्द के अन्त में "अ" है और उससे परे इच् (अ को छोड़ कर सभी स्वर) से कोई स्वर आवे, तो पूर्व सवर्ण दीर्घ न करें । अतः वालक में सवर्ण दीर्घ न करके वृद्धि कर दी । व्यवहार में सीधा सा नियम यह है कि—

अ के स्थान में औ,

इ के स्थान में ई,
उ के स्थान में ऊ. करने से द्विवचन का रूप वन जायगा।

यथा—

अकारान्त में वालकौ, गजौ, नृपौ, शुकौ, अश्वौ, वृक्षौ, आदि। इकारान्त में हरी, कवी, मुनी, रवी, निधी, राशी आदि। उकारान्त में साधू, भानू, दस्यू, वायू, शत्रू, वन्धू,।

अयं का द्विवचन (५) **इमौ** और **सः** का (६) **तौ** वनता है। इनकी साधनिका आगे दी गयी है।)

इनको साथ लेकर पुनः अनेक युग्म वनाये जा सकते हैं। यथा—इमौ वालकौ, इमौ तव पुत्रौ, तौ मम अश्वौ, इमौ मुनी, तौ कवी, मम वृक्षौ,

निम्नलिखित अंश में द्विवचन के रूप खोजो—

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ, राजपुत्रौ यशस्विनौ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ, ददर्शाश्रमवासिनौ।
तौ तु गन्धर्वतत्त्वज्ञौ, स्थानमूर्च्छनकोविदौ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ, गन्धर्वाविव रूपिणौ।

रूपलक्षणसम्पन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ।
विम्बादिवोत्थितौ विम्वौ रामदेहात्तथापरौ॥
महात्मानौ महाभागौ सर्वलक्षण-लक्षितौ।
तौ कदाचित् समेतानामृषीणां भावितात्मनाम्॥

बालक + जस् प्रथमा वहुवचन में यह स्थिति होने पर—

१०५. **चुटू** प्रत्यय के प्रारम्भिक चवर्ग और टवर्ग की इत् संज्ञा होती है। इसके अनुसार जस् का ज् गिर जाता है।

बालक + अस्, सूत्र १०३ से बालकास् और रुत्व विसर्ग होकर **'बालकाः'** बन जाता है। इसी प्रकार देवाः गजाः, आदि। व्यवहार में अकार के स्थान पर आकार करके विसर्ग लगा देना है।

१०६. **जसि च** जस् परे रहते ह्रस्व अन्त वाले अङ्ग के स्थान में गुण आदेश हो। इसके अनुसार इ के स्थान में ए और उ के स्थान में ओ हो जाता है।

यथा— हरि + जस्, हरि + अस्, हरे + अस् = हरयः (एचोऽयवायावः से)

भानु + जस्, भानु + अस्, भानो + अस् = भानवः इसी प्रकार कवयः,

अरयः, मुनयः, अग्नयः, निधयः, राशयः, अद्रयः, साधवः, शत्रवः, दस्यवः, बन्धवः, वायवः ।

इन शब्दों को बनाने के पश्चात् इन्हें व्यवहार में लाने के लिए एक क्रिया पद यहां जोड़ा जा रहा है । इससे व्याकरण की नीरसता समाप्त हो जाती है । क्रिया पदों का पूर्ण ब्यौरा तो धातु प्रकरण में मिलेगा पर प्रथम पुरुष के तीन शब्दों का सामान्य ज्ञान यहां दिया जा रहा है । प्रथम पुरुष में क्रम से तिप्, तस् और झि प्रत्यय लगाये जाते हैं । भ्वादि गण की धातुओं में इनसे पहले शप् (अ) और आ जाता है । झि का अन्त हो जाता है । इस प्रकार पठ् + अ + ति = पठति, पठ् + अ + तस् = पठतः, और पठ् + अ + अन्ति पठन्ति रूप बनते हैं । इसी आधार पर भवति गच्छति, पश्यति, कर्षति, वहति, आदि रूप होते हैं ।

अभ्यास

(७) इमे— ये (बहु वचन) (८) ते (वे)

(i) बालक पढ़ता है ।	बालकः पठति ।
(ii) दो बालक पढ़ते हैं ।	बालकौ पठतः ।
(iii) (अनेक) बालक पढ़ते हैं ।	बालकाः पठन्ति ।
(iv) तोता बोलता है ।	शुकः वदति ।
(v) दो तोते बोलते हैं ।	शुकौ वदतः ।
(vi) (बहु०) तोते बोलते हैं ।	शुकाः वदन्ति ।
(vii) हरि हँसता है ।	हरिः हसति ।
(viii) मुनि याद करता है ।	मुनिः स्मरति ।
(ix) (बहु०) मुनि याद करते हैं ।	मुनयः स्मरन्ति ।
(x) हिरन देखता है ।	मृगः पश्यति ।
(xi) दो हिरन देखते हैं ।	मृगौ पश्यतः ।
(xii) (बहु०) हिरन देखते हैं ।	मृगाः पश्यन्ति ।
(xiii) किसान जोतता है ।	कृषकः कर्षति ।
(xiv) दो किसान जोतते हैं ।	कृषकौ कर्षतः ।
(xv) (बहु०) किसान जोतते हैं ।	कृषकाः कर्षन्ति ।
(xxi) मोर नाचता है ।	मयूरः नृत्यति ।
(xxii) दो मोर नाचते हैं ।	मयूरौ नृत्यतः ।

(xviii) (बहु०) मोर नाचते हैं। मयूराः नृत्यन्ति।
खिलाड़ी खेलते हैं। क्रीडकाः क्रीडन्ति।
सूर्य तपता है। सूर्यः तपति।
ईश्वर रक्षा करता है। ईश्वरः रक्षति।
वृक्ष फलते हैं। वृक्षाः फलन्ति।
भक्त पूजता है। भक्तः अर्चति।
अग्नि जलाता है। अग्निः दहति।
छात्र प्रणाम करता है। छात्रः नमति (प्रणमति)।
प्राण जाते हैं। प्राणाः व्रजन्ति।
हाथी ले जाता है। गजः नयति।

इसी प्रकार निम्नलिखित धातुओं का अपने वाक्यों में प्रयोग करो।

वद् (बोलना), खाद् (खाना), पत् (गिरना), अर्ह् (योग्य होना), त्यज् (छोड़ना), हृ (हरति छीनना), पा (पिवति-पीना), वस् (रहना), भू (भवति-होना) फल (फलना)।

द्वितीया विभक्ति द्वितीया विभक्ति के रूप बनाने के लिए अम्-औट्-शस् प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

बालक + अम् (यहाँ दीर्घ हो जाना चाहिए था, पर व्यवहार में बालकम् ही रहता है अतः नये सूत्र का विधान किया गया है।

१०७. **अमि पूर्वः** अक् से परे यदि विभक्ति का अम् हो तो अम् के अ का पूर्वरूप हो। यथा—

बालक + अम् = बालकम्, हरि + अम् = हरिम्,
साधु + अम् = साधुम्, इसी प्रकार मुनिम्, रामम् पाठम्, अभ्यासम् आदि। व्यवहार के लिए जब तक किसी शब्द के अन्त में अ, इ, उ है तब तक केवल म् जोड़ देना है।

द्वितीया के द्विवचन का रूप ठीक वैसा ही रह जाता है जैसे प्रथमा का द्विवचन।

बालक + शस् (बहुवचन में)

१०८. **लशक्व तद्धिते** (ल + श + कु + अतद्धिते) तद्धित को† छोड़कर अन्य प्रत्ययों के आरम्भ में यदि ल् श् या कवर्ग हो तो इत् संज्ञक हों। इसके अनुसार शस् का श् इत् होकर गिर जाता है।

बालक + अस् = बालकास्।

---

† तद्धित किसी संज्ञा शब्द (प्रातिपदिक से) होने वाले प्रत्यय तद्धित कहलाते हैं।

१०९. **तस्माच्छसो नः पुंसि** (तस्मात् + शसः + नः पुंसि) तस्मात् का अर्थ है पूर्व सवर्ण दीर्घ से—

शसः–शस् का, नः पुंसि–पुंल्लिग में न् हो जाय। इसके अनुसार पूर्व सवर्ण दीर्घ के परे स् के स्थान पर न् होना है। बालकास् से बालकान्, इसी प्रकार रामान्, हरीन्, भानून्, मुनीन्, अरीन्, हंसान्, पुरुषान्, मानवान् कवीन् आदि।

११०. **पदान्तस्य** पदान्त न् को ण् न हो। र या ष के परे न का ण् हो जाता है। यहां उसकी प्रवृत्ति थी, पर यह न् पद के अन्त में था अतः नहीं हुआ।

अभ्यास

(i) ये बालक पाठ पढ़ते हैं।	इमे बालकाः पाठान् पठन्ति।
(ii) वे छात्र विद्यालय जाते हैं।	ते छात्राः विद्यालयं गच्छन्ति।
(iii) हरि गुरु को प्रणाम करता है।	हरिः गुरुं प्रणमति।
(iv) मुनि लोग देवताओं को पूजते हैं।	मुनयः देवान् अर्चन्ति।
(v) बन्दर खेलते हैं।	वानराः क्रीडन्ति।
(vi) अध्यापक मुनियों को प्रणाम करते हैं।	अध्यापकाः मुनीन् प्रणमन्ति।
(vii) वे लोग हंसों को देखते हैं।	ते जनाः हंसान् पश्यन्ति।
(viii) तुम्हारे छात्र पाठ स्मरण करते हैं।	तव छात्राः पाठान् स्मरन्ति।
(ix) मनुष्य बुराई छोड़ते हैं।	मानवाः अशुभं त्यजन्ति।
(x) साधु लोग दयालु होते हैं।	साधवः दयालवः भवन्ति।

तृतीया **बालक + टा,** इस स्थिति में 'टा' से "चुटू" के द्वारा ट् का लोप होकर बालक + आ रहता, पर उससे पहले दूसरा सूत्र उसे रोक देता है।

१११. **टाङसिङसामिनात् स्याः** (टा, ङसि, ङसाम्, इन, आत्, स्य,) अकारान्त से परे टा के स्थान् में इन, ङसि के स्थान में आत् और ङस् के स्थान में स्य हो जाय।

बालक + इन = बालकेन।

राम + इन = रामेन = रामेण,

११२. **रषाभ्यां नो णः समान पदे** यदि किसी पद में र या ष हो तथा उसके बाद उसी पद में न आवे तो न के स्थान पर ण हो जाय। यहाँ शंका होती है कि किस-किस वर्ण के बीच में होने पर भी ण हो जाय। उसका समाधान अगले सूत्र से किया जाता है।

११३. **अट् कुप्वाङ्, नुम् व्यवाये ऽपि** यदि र् या ष् के बाद न हो और बीच

में अट्, कवर्ग, पवर्ग, आङ्, नुम्, अलग-अलग या कई एक साथ हों तो भी न के स्थान में ण हो जाय।

रामेन में र् और न के बीच आ, म्, ए, आ गये, फिर भी ण हो गया। इसी आधार पर प्राण, मरण, त्राण, शरण, चरण में ण होता है, पर रचना, प्रश्न, सर्वनाम और रघुनाथ में नहीं।

११४. **सुपि च** बालक + भ्याम् आने पर इस सूत्र से बालक के अन्तिम अ के स्थान में दीर्घ हो जाता है। सूत्र का भाव है अकारान्त अङ्ग से यञादि सुप् परे हो तो अकारान्त अङ्ग के स्थान पर दीर्घ हो जाय। यञ् में य व र ल ञ म ङ ण न झ भ वर्ण आते हैं इसके अनुसार भ्याम् का आदि भ् यञ् में है। तब बालकाभ्याम्, रामाभ्याम्, देवाभ्याम् गजाभ्याम् हस्ताभ्याम् आदि रूप बनते हैं। व्यवहार में अन्तिम अ के स्थान पर भ्याम् आने पर अ को दीर्घ कर देना है।

बालक + भिस्

११५. **अतो भिस् ऐस्** अकारान्त से परे भिस् के स्थान पर ऐस् हो जाय। बालक + ऐस् = बालकैः। यहां शंका होती है कि हर जगह मूल प्रत्यय के स्थान पर एक नये सूत्र द्वारा दूसरा प्रत्यय बिठाया जा रहा है। तब सु–औ–जस् आदि की मूल कल्पना ही व्यर्थ है। मूल में ही ऐस्, इन, आत् क्यों नहीं रखे गये। ऐसी बात नहीं। सु–औ–जस् आदि मूल प्रत्ययों की प्रवृत्ति हजारों अन्य स्थानों में ठीक बैठती है पर अजन्त में नहीं। चूंकि अचों में 'अ' पहले आता है अतः यह उलट फेर करना पड़ा। इसी प्रकार गजैः, मृगैः, मयूरैः, रामैः, देवैः रूप बनते हैं। इकारान्त और उकारान्त में भिस् ही रहेगा अतः हरिभिः, मुनिभिः, ऋषिभिः, वायुभिः, साधुभिः आदि रूप बनते हैं।

(९) करोति-करता है। (१०) कुरुतः-दो करते हैं।

(११) कुर्वन्ति = करते हैं (बहुवचन)

इन शब्दों की साधनिका तिङन्त (धातु से होने वाले प्रत्यय) में मिलेगी। यहां व्यवहार की सरलता के लिए शब्दों का ग्रहण किया गया है।

अभ्यास

१. अन्न से बल होता है। अन्नेन बलं भवति।

२. बल से लोग परिश्रम करते हैं। बलेन जनाः परिश्रमं कुर्वन्ति।

३. श्रम से धन होता है। श्रमेण धनं भवति।

४.	धन से सुख होता है।	धनेन सुखं भवति ।
५.	ये बालक स्वच्छ रास्ते से जाते हैं।	इमे बालकाः स्वच्छेन मार्गेण गच्छन्ति ।
६.	वे छात्र परिश्रम से पढ़ते हैं।	ते छात्राः परिश्रमेण पठन्ति ।
७.	दूध से शरीर पुष्ट होता है।	दुग्धेन शरीरं पुष्टं भवति ।
८.	ये लोग वेग से चलते हैं।	इमे जनाः वेगेन चलन्ति ।
९.	मोहन हल से भूमि जोतता है।	मोहनः हलेन भूमिं कर्षति ।
११.	बैल कन्धों से हल ले जाते हैं।	वृषभौ स्कन्धाभ्यां हलं वहतः ।
१२.	राम लक्ष्मण के साथ वन जाते हैं।	रामः लक्ष्मणेन सह वनं गच्छति ।
१३.	किसानों से देश सम्पन्न है।	कृषकैः देशः सम्पन्नः अस्ति ।
१४.	लोग समय से अभ्यास करते हैं।	जनाः समयेन अभ्यासं कुर्वन्ति ।
१५.	अध्यापक समय से विद्यालय जाते हैं।	अध्यापकाः समयेन विद्यालयं गच्छन्ति ।
१६.	पिता स्नेह से पुत्र की रक्षा करता है।	जनकः स्नेहेन पुत्रं रक्षति ।
१७.	ये घोड़े वायु के साथ दौड़ते हैं।	इमे अश्वाः पवनेन सह धावन्ति ।
१८.	मृग घास चरते हैं।	मृगाः घासं चरन्ति ।
१९.	श्याम गोपाल के साथ बाजार जाता है।	श्यामः गोपालेन सह आपणं गच्छति ।
२०.	बालक ध्यान से पढ़ता है।	बालकः ध्यानेन पठति ।
२१.	खिलाड़ी सहयोग से खेलते हैं।	क्रीडकाः सहयोगेन क्रीडन्ति ।
२२.	छात्र शिक्षकों को प्रणाम करते हैं।	छात्राः शिक्षकान् प्रणमन्ति ।

चतुर्थी—बालक + ङे इस स्थति में—

११६. ङेर्यः अदन्त अङ्ग से परे ङे के स्थान में य हो जाय। बालक + य्। यहाँ सुपि च की (११४) प्रवृत्ति है पर एक शंका होती है कि सुपि च तो सुप् परे रहने लगता है और ङे सुप् था य नहीं। ङे चला गया। इसका निराकरण अगला सूत्र करता है।

११७. स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ (स्थानिवद् + आदेशः + अनल्विधौ) आदेश स्थानी के समान हो यदि एक अल् वाला कार्य करना हो। यहां ङे (य) एक अल् वाला नहीं है अतः य ङे के समान हो गया। इस प्रकार सुप् होने का जो धर्म ङे में था वह य में आ गया। तब य परे रहते भी 'सुपिच' की प्रवृत्ति हो गयी। अतः बालक + य = बालकाय बना। व्यवहार में चतुर्थी विभक्ति के एक वचन के लिए अकारान्त अङ्ग का अन्तिम "अ" आय में बदल देना चाहिए। इसी आधार पर गणेशाय, मोहनाय, रामाय, शिवाय, ब्राह्मणाय, गजाय, हंसाय, मयूराय आदि। द्विवचन में तृतीया के समान बालकाभ्याम् रूप बनता है।

वहुवचन में वालक+भ्यस् आने पर

११८. **बहुवचने झल्येत्** अदन्त अंग से झलादि वहुवचन सुप् परे हो तो अ के स्थान में एकार हो जाय। वालकेभ्यः, इसी प्रकार रामेभ्यः, मृगेभ्यः, छात्रेभ्यः आदि।

अभ्यास

कुछ अव्यय शब्दों का योग।

(१२) अत्र = यहाँ, (१३) कुत्र = कहाँ

(१४) तत्र = वहाँ, (१५) यत्र = जहाँ

(१६) शनैः शनैः = धीरे धीरे (१७) मन्दम् = धीरे

(१८) सत्वरम् = शीघ्र (१९) अपि = भी

(२०) एव = ही

१.	छात्र पढ़ने के लिए विद्यालय जाते हैं।	छात्राः पठनाय विद्यालयं गच्छन्ति।
२.	कृषक जोतने के लिए खेत को जाते हैं।	कृषकाः कर्षणाय क्षेत्रं गच्छन्ति।
३.	लोग धन के लिए परिश्रम करते हैं।	जनाः धनाय परिश्रमं कुर्वन्ति।
४.	मेघ वरसने के लिए गरजते हैं।	मेघाः वर्षणाय गर्जन्ति।
५.	राम श्रमिक को पारिश्रमिक देता है।	रामः श्रमिकाय पारिश्रमिकं यच्छति।
६.	राजा कवि को धन देता है।	नृपः कवये धनं यच्छति।
७.	अध्यापक वालकों को फल देता है।	अध्यापकः वालकेभ्यः फलं यच्छति।
८.	दो मुनि यहाँ तप करते हैं।	मुनी अत्र तपः आचरतः।
९.	जहां राम पढ़ता है वहीं मोहन।	यत्र रामः पठति तत्रैव मोहनः।
१०.	शिकारी हिरनों के लिए वन जाते हैं।	आखेटकाः मृगेभ्यः वनं गच्छन्ति।
११.	खरगोश तेजी से चलता है।	शशकः वेगेन गच्छति।
१२.	गुरु छात्रों को विद्या देता है।	गुरुः छात्रेभ्यः विद्यां यच्छति।
१३.	यहाँ शीतल पवन बहता है।	अत्र शीतलः पवनः वाति।
१४.	वहाँ मेघ बरसते हैं।	तत्र मेघाः वर्षन्ति।
१५.	हिरन तेजी से दौड़ते हैं।	मृगाः वेगेन धावन्ति।

पञ्चमी बालक + ङसि = बालक + आत् = बालकात्
(देखो सूत्र १११)

इसी प्रकार विद्यालयात्, वृक्षात्, अश्वात्, सिंहात्, दीपकात्, ईश्वरात्, देवात्, मेघात्, सागरात्, हिमालयात्। अकारान्त द्विवचन तथा बहुवचन चतुर्थी की भाँति ही रहेंगे।

द्विवचन में बालकाभ्याम्, अश्वाभ्याम् आदि तथा बहुवचन में बालकेभ्यः, मृगेभ्यः, वृक्षेभ्य : आदि।

अभ्यास

१.	यमुना हिमालय से निकलती है।	यमुना हिमालयात् निर्गच्छति।
२.	छात्र पुस्तकालय से पुस्तकें लेते हैं।	छात्राः पुस्तकालयात् पुस्तकानि आहरन्ति।
३.	बच्चे दूर से आते हैं।	बालकाः सुदूरात् आगच्छन्ति।
४.	राम प्रयाग से वन जाते हैं।	रामः प्रयागात् वनं गच्छति।
५.	साधु मनुष्यों को पापों से बचाता है।	साधुः मानवान् पापेभ्यः रक्षति। (वारयति)
६.	नदियाँ पर्वतों से निकलतीं हैं और समुद्र को जाती हैं।	आपगाः पर्वतेभ्यः प्रभवन्ति समुद्रं च गच्छन्ति।
७.	सेवक कुए से जल लाता है।	अनुचरः कूपात् जलम् आनयति।
८.	वृक्षों से पत्ते गिरते हैं।	वृक्षेभ्यः पत्राणि पतन्ति।
९	मेरी आँखों से आँसू गिरते हैं।	मम नेत्राभ्याम् अश्रूणि पतन्ति (क्षरन्ति)
१०.	विद्याध्ययन से लाभ होता है।	विद्याध्ययनात् लाभः भवति।
११.	श्रम से धन आता है, धन से सुख।	श्रमेण धनम् आयाति, धनेन सुखं भवति।

षष्ठी बालक + ङस्. बालक + अस्, बालकस्य (देखो सूत्र १११)

द्विवचन में बालक + ओस् — आने पर,

११९. **ओसि च** अदन्त अङ्ग से परे ओस् रहने पर अन्तिम 'अ' के स्थान में 'ए' हो जाय। इसके अनुसार बालके + ओस् बना, बालकयोः बहुवचन में बालक + आम् आने पर।

१२०. **ह्रस्व नद्यापो नुट्** ह्रस्वान्त से, नदी संज्ञक से तथा आप् अन्त वालों से परे आम् को नुट् का आगम हो। बालक + न् + आम्।

१२१. नामि नाम् परे रहने पर अजन्त अङ्ग के स्थान में दीर्घ हो जाय। वालकानाम्।

रामाणाम्,	पुरुषाणाम्,	अश्वानाम्,	देवानाम्,
हरीणाम्,	भानूनाम्,	पाठानाम्,	अभ्यासानाम्,
वीराणाम्,	मृगाणाम्,	मानवानाम्,	वत्सानाम्।
साधूनाम्,	मुनीनाम्,	शिशूनाम्,	अरीणाम् आदि।

अभ्यास

१. हिरन की टाँगें लम्बी होती हैं। मृगस्य पादाः दीर्घाः भवन्ति।
२. सूर्य की किरणें सुनहरी होती हैं। सूर्यस्य किरणाः पीताः भवन्ति।
३. साधुओं के आश्रम पवित्र होते हैं। साधुनाम् आश्रमाः (पूताः) पवित्राः भवन्ति।
४. विश्व के कवियों में कालिदास श्रेष्ठ हैं। विश्वस्य कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः।
५. चतुर वालकों में गोविन्द उत्तम है। पटूनां वालकानां गोविन्दः उत्तमः।
६. पानी की बूंदें गिर रही हैं। तोयबिन्दवः पतन्ति।
७. हाथों के अभ्यास से कार्य होता है। करयोः अभ्यासेन कार्यं भवति।
८. नेत्रों की पीड़ा मनुष्य को व्याकुल कर देती है। नेत्रयोः पीडा मानवम् आकुलं करोति।
९. मोहन का गाँव स्वच्छ है। मोहनस्य ग्रामः स्वच्छः।
१०. दीपकों का प्रकाश सुन्दर होता है। दीपानां प्रकाशः शोभनः मनोहरः/रमणीयः भवति।

सप्तमी बालक + ङि = वालक + इ = वालके।
बालक + ओस् = वालके + ओस् = वालकयोः।
वालक + सुप् = बालक + सु, (बहुवचने झल्येत् से वालके + सु आने पर—

१२२. आदेश प्रत्ययोः इण् और कवर्ग से परे आदेश रूप में आये हुए अपदान्त स् (जो पद के अन्त में न हो) के स्थान में ष् हो जाय। वालकेषु।
इसी प्रकार—रामे—रामयोः—रामेषु, मृगे—मृगयोः—मृगेषु, ग्रामे—ग्रामयोः—ग्रामेषु, अभ्यासे—अभ्यासयोः—अभ्यासेषु, गुणे—गुणयोः—गुणेषु, भावे—भावयोः—भावेषु।

अभ्यास

१. ये लोग विचारों में डूबते हैं। इमे जनाः भावेषु निमज्जन्ति।
२. योग अभ्यास से आता है। योगः अभ्यासाद् आयाति।
३. कमरे में बच्चे पढ़ते हैं। प्रकोष्ठे बालकाः पठन्ति।
४. छात्र वेदों की ध्वनि सुनते हैं। छात्राः वेदानां ध्वनिं शृण्वन्ति।
५. विद्यालय में विद्याध्ययन होता है। विद्यालये विद्याध्ययनं भवति।
६. पानी आकाश से पर्वत पर बरसता है। जलमाकाशात् पर्वते वर्षति।
७. वृक्षों पर पक्षी कूजते हैं। वृक्षेषु खगाः कूजन्ति।
८. अपकारी पर जो भला है वही भला होता है। अपकारिषु यः साधुः स एव साधुः।
९. वचपन में विद्याभ्यास होता हैं। शैशवे विद्याभ्यासः भवति।
१०. ग्रीष्म ऋतु में धूप तेज होती है। ग्रीष्मे आतपः तीव्रः भवति।

अध्याय ४

प्रथमा सर्व+सु = सर्व स् = सर्वः (राम की भाँति)
सर्व+औ = सर्वौ = सर्वौ (रामौ की भाँति)
सर्व+जस् यह स्थिति होने पर—

१२३. **जसः शी** अकारान्त सर्वनाम से परे जस् के स्थान में शी हो जाय। शी के श् का लोप होने पर सर्व+ई = सर्वे इसी प्रकार अन्यः अन्यौ अन्ये

द्वितीया सर्वम्—सर्वौ—सर्वान्
तृतीया सर्वेण—सर्वाभ्याम्—सर्वैः } (राम की भाँति)

चतुर्थी सर्व+ङे = यह स्थिति होने पर

१२४. **सर्वनाम्नः स्मै** अदन्त सर्वनाम से परे ङे के स्थान पर स्मै आदेश हो जाय। सर्व+स्मै = सर्वस्मै, इसी प्रकार अन्यस्मै, एकस्मै, द्वितीयस्मै, विश्वस्मै, द्विवचन और बहुवचन सर्वाभ्याम् सर्वेभ्यः राम के समान होंगे।

पञ्चमी **सर्व+ङसि** आने पर—

१२५. **ङसिङ्योः स्मात् स्मिनौ** अदन्त सर्वनाम से परे ङसि के स्थान में स्मात् और ङि के स्थान में स्मिन् हो जाय।

अतः सर्वस्मात्, सर्वाभ्याम्—सर्वेभ्यः

इसी प्रकार अन्यस्मात् एकस्मात् द्वितीयस्मात्।

षष्ठी एक वचन में सर्वस्य तथा द्विवचन में सर्वयोः राम की भांति वनते हैं। वहुवचन में सर्व+आम् आने पर—

१२६. **आमि सर्वनाम्नः सुट्** अवर्णान्त सर्वनाम से परे आम् आने पर सुट् का आगम हो। अतः सर्व+स्+आम्। वहुवचने झल्येत् से ए होने तथा आदेश प्रत्यययोः से स् के स्थान पर ष् होने पर सर्वेषाम् रूप वनता है। इसी प्रकार अन्येषाम्, अपरेषाम्, कतरेषाम्, आदि।

सप्तमी में सर्व + ङि = सर्व + स्मिन् = सर्वस्मिन् सर्वयोः, सर्वेषु, (वालक की भाँति)।

अभ्यास

१. यहाँ सव लड़के पढ़ते हैं। अत्र सर्वे वालकाः पठन्ति।

२. अन्य छात्र यहाँ नहीं आते। अन्ये छात्राः अत्र न समायान्ति।

३. अव सभी लोग काम करते हैं। इदानीं सर्वे जनाः कार्यं कुर्वन्ति।

४. किसान परिश्रम से खेत जोतते हैं। कृषकाः परिश्रमेण क्षेत्रं कर्षन्ति।

५. राजा सदा दुर्वलों का सहायक होता है। नृपः सदैव दुर्वलानां सहायकः भवति।

६. दूसरों का वन्धन अच्छा नहीं होता। अन्येषां वन्धनं शोभनं न भवति।

७. सभी विद्यालयों में विद्यार्थी हिन्दी पढ़ते हैं। सर्वेषु विद्यालयेषु छात्राः हिन्दी-भाषां पठन्ति।

८. यत्नशील सदा जीतता है। यत्नशीलः सदा जयति।

९. राम मीठे स्वर से पढ़ता है। रामः मधुरेण स्वरेण पठति।

१०. वहाँ लोग तिल का ताड़ वनाते हैं। तत्र जनाः तिले तालं पश्यन्ति।

११. भगवान सभी का भला चाहता है। ईश्वरः सर्वेषां कल्याणं वाञ्छति।

१२. मेरा कल्याण भी वही करता है। मम कल्याणं स एव करोति।

इकारान्त तथा उकारान्त

प्रथमा हरिः — हरी — हरयः (देखो सूत्र १०६)

१२७ **ह्रस्वस्य गुणः** सम्वुद्धि परे रहने पर ह्रस्वान्त अङ्ग के स्थान में गुण हो जाय।

हरि और भानु ह्रस्वान्त हैं। सम्वोधन में इनका गुण होकर हे हरे, हे भानो रूप वनते हैं।

द्वितीया—हरिम् — हरी — हरीन् (बालक के समान)

तृतीया—हरि टा यह स्थिति होने पर।

१२८. **शेषो घ्यसखि** सखि को छोड़कर तथा नदी संज्ञा वाले शब्दों को छोड़कर ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त की **'घि'** संज्ञा हो।

१२९. **यूस्त्र्याख्यौ नदी** दीर्घ ईकारान्त और ऊकारान्त नित्य स्त्रीलिङ्ग शब्दों की नदी संज्ञा होती है। इस प्रकार हरि घि संज्ञक होता है।

१३०. **आङो नास्त्रियाम्** स्त्रीलिंग को छोड़कर घि संज्ञक से परे आङ् के स्थान में ना हो जाय। हरि + ना (रषाभ्याम् नो णः से) हरिणा।

हरिभ्याम् — हरिभिः (इनमें कोई नया सूत्र अपेक्षित नहीं)।

चतुर्थी—हरि + ङे आने पर।

१३१. **घेर्ङिति** (घेः ङिति) घि संज्ञक अङ्ग से ङित् (ङे, ङसि, ङस्, ङि,) प्रत्यय परे रहते उसके स्थान पर गुण हो। हरे + ए = हरये। हरिभ्याम्, हरिभ्यः। (पूर्ववत्)

पञ्चमी—हरि + ङसि हरे + ङस् = हरे + अस् (१३१ के आधार पर)

१३२. **ङसि ङसोश्च** ए अथवा ओ के परे ङसि या ङस् होने पर पूर्व रूप हो जाय।

हरेः, इसी प्रकार शिशोः, भानोः, कवेः आदि।

हरिभ्याम्, हरिभ्यः पूर्ववत्।

हरि + ओस् = हर्योः,

हरि + आम् = हरीणाम्। (राम के समान)।

सप्तमी—हरि + ङि। आने पर

१३३. **अच्च घेः** ह्रस्व इकार और उकार से परे ङि के स्थान में औत् और घि संज्ञक अङ्ग के स्थान में 'अ' हो जाय। इस प्रकार हर + औ = हरौ। हर्योः हरिषु पूर्ववत्।

सखि + सु आने पर—

१३४. **अनङ् सौ** सम्बोधन को छोड़कर सखि रूप अङ्ग के स्थान में अनङ् आदेश हो सु परे रहने पर। अनङ् का अङ् इत् है। इससे केवल अन् रह जाता है। चूंकि अनङ् ङित् है अतः ङिच्च से अन्तिम वर्ण के स्थान पर ही होगा। इस प्रकार

सख् + अन् + सु = सखन् + सु। स्थिति बनी।

१३५. **अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा** अन्तिम् अल् से पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा हो।

१३६. **सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ** सम्बोधन को छोड़कर सर्वनाम स्थान परे होने पर नान्त (जिसके अन्त में न् हो) की उपधा को दीर्घ हो। इस आधार पर सखान् + स् स्थिति बनी। सखन् में उपधा ख का अ है।

१३७. **हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्** हलन्त से, दीर्घ "ई" से (जो स्त्रीलिंग बनाने के लिए आयी हो) तथा "आ" से (जो स्त्रीलिंग बनाने के लिए आया हो) परे यदि सु, ति या सि का अपृक्त हल् हो तो उस हल् का लोप हो जाय। सु, ति, सि में सु ही सुवन्त से आता है ति और सि धातुओं से होने वाले प्रत्यय हैं। इससे यह स्पष्ट है कि ई और आ लग कर बने हुए स्त्रीलिंग शब्दों से तथा हलन्त शब्दों से सु के स् का सदा लोप हो जाता है। यथा— नदी, पार्वती, गौरी, पञ्चवटी, लता, गङ्गा, रमा, शोभा, सरित्, जगत् आदि। यहाँ ध्यान देने की बात है कि जो मूलतः स्त्रीलिंग शब्द होते हैं उनमें सु का लोप नहीं होता— जैसे लक्ष्मी, श्री क्योंकि उनकी ई अपनी है, प्रत्यय की नहीं। अतः सखान् + स् से स् का लोप हो गया। सखान् होने पर

१३८. **न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य** प्रातिपदिक के अन्तिम् न् का लोप हो। सखा। इसकी साधनिका से ऐसा लगता है कि इसे बड़े घुमाव से बनाया गया। वस्तुतः जो सूत्र इसमें लगते हैं वे अन्य अनेक शब्दों में लगते हैं। उनका तत्तत् शब्दों में अंशतः प्रयोग होता है पर अलग-अलग स्थानों के इन सूत्रों की यहाँ एक साथ प्रवृत्ति होने से ऐसा प्रतीत होता है। दूसरी शंका यह उठती है कि जब 'सु' का लोप हो गया तो यह पद कैसे बना। इसका निराकरण **"प्रत्यय लोपे प्रत्यय लक्षणम्"** से किया गया है, अर्थात् प्रत्यय आकर लोप हो जाय तो भी प्रत्यय लगा माना जाना चाहिए। सखि + औ आने पर।

१३९. **सख्युरसम्बुद्धौ** (सख्युः + असम्बुद्धौ) सम्बोधन को छोड़कर सखि से परे यदि सर्वनाम स्थान विभक्तियाँ हों तो उनको णित् के समान माना जाय। सर्वनाम स्थान सु से लेकर द्वितीया के औट् तक पाँच विभक्तियों को कहते हैं यदि वे पुंल्लिग और स्त्रीलिंग की है। इसके अनुसार औट् टित् था पर णित् माना जायगा।

१४० **अचो ञ्णिति** अजन्त अङ्ग से परे यदि ञित् या णित् प्रत्यय हों तो अङ्ग के स्थान में वृद्धि हो जाय।

सखि + औ में सखि अङ्ग है। उसके ख की इ की वृद्धि ऐ हो जायगी।
सखै + औ = सखायौ।
सखि + जस्, सखि + अस्, सखै + अस् = सखायः।
सखि + अम्, सखै + अम् = सखायम्।
सखि + औट्, सखै + औट् = सखायौ।
सखि + शस्, सखि + अस् (तस्माच्छसो नःपुंसि) से सखीन्।
सखि + टा, सखि + आ = सख्या, सखिभ्याम्=सखिभिः।
(पूर्ववत्)

चतुर्थी सखि + ङे = सखि + ए = सख्ये।
सखि + भ्याम् = सखिभ्याम् = सखिभ्याम्।
सखि + भ्यस् = सखिभ्यस् = सखिभ्यः पूर्ववत्।

पञ्चमी सखि + ङसि, सखि + अस् आने पर।

१४१. **ख्यत्यात् परस्य** यण् किये गये ह्रस्व खि, ति तथा दीर्घ खी, ती से परे ङसि और ङस् के स्थान में उ हो जाय। सखि + अस् = सख्यस् = सख्युः सखिभ्याम्, सखिभ्यः पूर्ववत्।

षष्ठी सखि + ङस् = सखि + अस् = सख्युः (पञ्चमी की भांति)
सखि +ओस् = सख्योः, सखि + आम्।
सखि + न् + आम्, सखि + नाम् = सखीनाम्।

सप्तमी सखि + ङि अने पर।

१४२. **औत्** ह्रस्व इकार और उकार से परे ङि के स्थान में औत् आदेश हो। सखि + औ = सख्यौ। सख्योः, सखिषु पूर्ववत्।

१४३. **पतिः समास एव** (पति) शब्द की समास में ही घि संज्ञा हो। अर्थात् अकेले पति शब्द की घि संज्ञा नहीं होती। घि संज्ञा होने का फल हरि शब्द में दिखाया जा चुका है। (टा के स्थान में ना, ङितों में गुण, ङि में औ), अतः ये कार्य भूपति, नृपति, सभापति, लोकपति आदि में होते हैं— भूपतिना, भूपतये, भूपतेः, भूपतौ रूप वनते हैं। जव घि न होगी तो पत्या, पत्ये, पत्युः, पतौ आदि रूप वनते हैं।

टिप्पणी—"अस्" का अर्थ "होना" है। इसमें प्रथम पुरुष एकवचन में ति जुड़ने पर अस्ति वनता है, द्विवचन में और वहुवचन में "अस्" का 'अ' गिर जाता है। तब स् + तस् = स्तः, स् + अन्ति = सन्ति रूप बनते हैं। इनका विशेष

विवरण धातु प्रकरण में मिलेगा ।

अस्ति = है, स्तः = दो हैं, सन्ति—हैं (बहु०) ।

अभ्यास

१. मेरे मित्र इसी समय आते हैं ।	मम सखायः इदानीमेव आगच्छन्ति ।
२. तुम्हारे देश के शासक कर्त्तव्यनिष्ठ हैं ।	तव देशस्य शासकाः कर्त्तव्यनिष्ठाः ।
३. मित्रों के साथ सभी का संलाप प्रिय होता है ।	सखिभिः सह सर्वेषां संलापः प्रियः भवति ।
४. मित्रों का व्यवहार सभी के साथ मृदु होता है ।	सखीनां व्यवहारः सर्वैः सह मृदुः भवति ।
५. सभी देशों में प्रतिभाशाली कवि पूज्य होता है ।	सर्वेषु देशेषु प्रतिभासम्पन्नः कविः पूज्यः भवति ।
६. लेखक और कवियों की रचनाएँ देश को उन्नति के मार्ग पर ले जाती हैं ।	लेखकानां कवीनाञ्च रचनाः देशं उन्नतिपथे नयन्ति ।
७. मेरे प्यारे भारत का शासन अनुकरणीय है ।	मम प्रियस्य भारतस्य शासनम् अनुकरणीयम् अस्ति ।
८. तुम्हारे प्रधानाचार्य के ये दोनों बच्चे भले हैं ।	तव प्रधानाचार्यस्य इमौ द्वौ पुत्रौ साधू स्तः ।
९. बच्चे ही देश की सम्पत्ति होते हैं ।	बालकाः एव देशस्य सम्पत्तयः भवन्ति ।
१०. पर्वत पर शीतल वायु बहती है ।	पर्वते शीतलः पवनः प्रवहति ।
११. ऋषि लोग अग्नि के पास तप कर रहे हैं ।	ऋषयः अग्नेः समीपं तपः आचरन्ति ।
१२. समुद्र में रत्न होते हैं ।	समुद्रे रत्नानि भवन्ति ।

इदम् = यह **किम्** = कौन

१४४. **किमः कः** किम् को कः आदेश हो विभक्ति परे रहते ।

पुंल्लिंग क + सु = कः = कौन, इसके सभी रूप सर्व के समान बनेंगे ।

कः	—	कौ	—	के
कम्	—	कौ	—	कान्
केन	—	काभ्याम्	—	कैः
कस्मै	—	काभ्याम्	—	केभ्यः
कस्मात्	—	काभ्याम्	—	केभ्यः
कस्य	—	कयोः	—	केषाम्
कस्मिन्	—	कयोः	—	केषु

तद् = वह

१४५. **त्यदादीनामः** (त्यदादीनाम् + अः) त्यद् आदि के स्थान् में 'अ' हो जाय। इसके अनुसार तद् के द् के स्थान् में अ होने पर "त + अ" बना।

१४६. **अतो गुणे** (अपदान्त ह्रस्व 'अ' से गुण परे रहने पर पररूप हो जाय। त + अ में त में अ उसके परे 'अ' है अतः मिलकर त ही रहा।

१४७. **तदोः सः सावनन्त्ययोः**, त्यद् आदि के अनन्त्य (जो अन्त में न हो) त और द् के स्थान में स् हो जाय। तद् + सु आने पर — त का स होता है।

स + सु = सः इसके शेष सभी रूप सर्व के समान बनेंगे।

सः	—	तौ	—	ते	तस्मात्		ताभ्याम्	—	तेभ्यः
तम्	—	तौ	—	तान्	तस्य	—	तयोः	—	तेषाम्
तेन	—	ताभ्याम्	—	तैः	तस्मिन्	—	तयोः	—	तेषु
तस्मै	—	ताभ्याम्	—	तेभ्यः					

यह और वह ऐसे शब्द हैं जिनका हर भाषा में बहुत उपयोग होता है। संस्कृत में इनके लिए अलग-अलग लिङ्गों में अलग-अलग रूप होते हैं—

१४८. **इदमो मः** इदम् से सु परे रहने पर इदम् के म् के स्थान में म् ही रहे यहाँ शंका उठती है कि म् के स्थान पर म् करना कौन सा परिवर्तन हुआ। वस्तुतः "इदम्" त्यदादि में आता है। और त्यदादीनामः से इसके म् के स्थान पर अ होना था। अतः उसे रोकने के लिए इस सूत्र की कल्पना की गयी।

इदम् + सु आने पर

१४९ **इदोऽय् पुंसि** पुंल्लिग में इदम् के इद् भाग के स्थान में 'अय्' आदेश हो यदि उससे परे सु हो।

अय् + अम् + सु, अयम् + सु, अयम् + स् अयम्
(देखो सूत्र १३७)

इदम् + औ आने पर त्यदादीनामः से म् के स्थान पर 'अ' आया।
इद + अ + औ। अतो गुणे से पररूप होकर इद + औ बना।

१५० **दश्च** विभक्ति परे रहते इदम् के द् के स्थान पर म् हो।
इम + औ = इमौ।

इसी प्रकार बहुवचन में इम + शी = इम + ई = इमे। (देखो सूत्र १२३)

द्वितीया इम् + अम् = इमम् (अमि पूर्वः)
इमौ, इमान् आदि पूर्ववत्।

तृतीया इदम् + टा, इदम् + आ आने पर।

१५१. **अनाप्यकः** (अन् + आपि + अकः) क रहित इदम् के इद् भाग के स्थान में "अन्" आदेश हो जाय यदि उससे परे टा से लेकर सुप् तक की कोई विभक्ति हो।

इद + आ (म् के स्थान में अ होकर)
इद् का अन् होने पर अन् + अ + आ, अन + आ
(यहाँ अन अकारान्त होने से टा के स्थान पर इन होगा)।
अन + इन = अनेन

द्विवचन में इदम् + भ्याम् आने पर—
इद + भ्याम् (त्यदादीनामः से)

'क' रहित इदम् के इद् भाग का लोप हो यदि उससे परे हलादि टा से सुप् तक की कोई विभक्ति हो। इससे इद् के लोप होने पर अ + भ्याम् स्थिति हुई। इस स्थिति में "सुपि च" प्रवृत्त होता है और 'अ' को दीर्घ कर देता है। अतः आभ्याम् रूप बनता है। वहुवचन में इसी प्रकार एभिः बनता है।

चतुर्थी	अस्मै	—	आभ्याम्	—	एभ्यः—और आगे भी
	अस्मात्	—	आभ्याम्	—	एभ्यः
	अस्य	—	अनयोः	—	एषाम्
	अस्मिन्	—	अनयोः	—	एषु

ये सभी रूप पहले दिये गये सूत्रों से बन जाते हैं। इसी प्रकार यद् = जो के रूप सरलता से बन जाते हैं।

यः	—	यौ	—	ये
यम्	—	यौ	—	यान्
येन	—	याभ्याम्	—	यैः
यस्मात्	—	याभ्याम्	—	येभ्यः
यस्य	—	ययोः	—	येषाम्
यस्मिन्	—	ययोः	—	येषु

अभ्यास

१.	ये बच्चे उस स्थान से तेजी से दौड़ते हैं।	इमे शिशवः तस्मात् स्थानात् वेगेन धावन्ति।
२.	वह हिरन सदा धीमे-धीमे चलता है।	स मृगः सदा मन्दं-मन्दं चलति।
३.	इस युग में जो परिश्रम करता है वह उन्नति करता है।	अस्मिन् युगे यः परिश्रमं करोति स उन्नतिं गच्छति।
४.	जिस गुरु से राम पढ़ता है उसी से मोहन।	यस्मात् गुरोः रामः पठति तस्मादेव मोहनः।
५.	वे लोग यहाँ से विद्यालय किस मार्ग से जाते हैं।	ते जनाः अस्मात् स्थानात् विद्यालयं केन मार्गेण गच्छन्ति।
६.	वे इसी मार्ग से नित्य वहाँ जाते हैं।	ते अनेनैव मार्गेण नित्यं तत्र गच्छन्ति।
७.	जिस किसी मार्ग से जाते हैं ठीक ही है।	येन केनापि मार्गेण गच्छन्ति, शोभनम् एव।
८.	ईश्वर से सभी डरते हैं।	ईश्वरात् सर्वे भयभीताः भवन्ति।
९.	कण-कण में ईश्वर रहता है।	कणे-कणे ईश्वरः तिष्ठति।
१०.	क्षण-क्षण में संसार का नियम बदलता है।	क्षणे—क्षणे संसारस्य नियमः परिवर्तितः भवति।
११.	सभी छात्र इस समय पाठों का अभ्यास करते हैं।	सर्वे छात्राः इदानीं पाठानाम् अभ्यासं कुर्वन्ति।
१२.	वह न किसी जय पराजय की चिन्ता करता है न लाभ या हानि की।	स न कस्यापि जयस्य पराजयस्य वा चिन्तां करोति न लाभस्यालाभस्य वा।

स न कमपि जयं पराजयं विचिन्तयति न च लाभम् अलाभम् वा ।

१३. राजकुमार सदा वीर होते हैं । राजकुमाराः सर्वदा वीराः भवन्ति ।

१४. देशभक्त पूज्य होते हैं । देशभक्ताः पूज्याः भवन्ति ।

१५. इसमें किसी सन्देह की गुंजायश नहीं है । नात्र कस्यापि सन्देहस्य अवकाशः अस्ति ।

अध्याय ५

स्त्रीलिंग शब्द

प्रथमा लता+सु=लता, (देखो सूत्र १३७)

इस दृष्टि से हिन्दी के आकारान्त शब्द ज्यों के त्यों संस्कृत में प्रथमा एक वचन में आते हैं । इसी प्रकार बालिका, रमा, शोभा, आभा, समस्या प्रतिभा आदि ।

लता+औ

१५३. औङ् आपः आवन्त अङ्ग से परे औङ् के स्थान में शी हो जाय । आवन्त का अर्थ है जिसके अन्त में आप् हो । यह आप् स्त्रीलिंग बनाने के लिए लगाया जाता है । इसके मूल प्रत्यय चाप् और टाप् हैं । इसके अनुसार सभी आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों से 'औ' आने पर 'शी' हो जाता है । लता+इ (शी का श् इत् है ।)=लते । इसी प्रकार बालिके, रमे, शोभे आदि ।

लता+जस् = लता+अस्=लताः ।

द्वितीया लताम्—लते—लताः (पूर्ववत्)

सम्बोधन १५४. सम्बुद्धौ च सम्बोधन परे रहते आवन्त अङ्ग के स्थान में 'ए' हो जाय । हे लते, हे सीते ।

तृतीया लता+टा आने पर

१५५. आङि चापः आङ् और ओस् परे रहते भी आबन्त अङ्ग के स्थान में एकार हो जाय । लते + आ = लतया, इसी प्रकार कृपया, शोभया, अनुकम्पया, बालिकया आदि ।

लता+भ्याम् = लताभ्याम्, लता+भिस् = लताभिः ।

चतुर्थी लता + ङे आने पर

१५६. याड् आपः आवन्त अङ्ग से ङित् प्रत्यय आने पर याट् का आगम हो। टित् होने से यह ङे के पहले आयेगा। लता + या + ए, **लतायै,** इसी प्रकार वालिकायै, शोभायै, कृपायै आदि।

लताभ्याम् — लताभ्यः = पूर्ववत्

पञ्चमी लता+ङसि, लता+या+अस्=लतायाः

इसी प्रकार वालिकायाः, शोभायाः, समस्यायाः,

लताभ्याम् — लताभ्यः (पूर्ववत्)

षष्ठी लता + ङस् = लतायाः (सूत्र १५६)

लता + ओस् = लतयोः, (सूत्र १५५)

लता + आम् = लतानाम् (रामवत्)

सप्तमी लता+ङि आने पर

१५७. ङेरामृनद्यां नीभ्यः (ङे+आम्+नद्यां+नीभ्यः) नदी संज्ञा वाले शब्दों से, आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों से तथा नी शब्द से परे ङि के स्थान में आम् हो जाय।

लता+या+आम् = लतायाम्,

(ङित् होने से याट् का आगम होने पर)

लता + ओस् = लते + ओस्=लतयोः,

लता + सु = लतासु (यहाँ ष नहीं होगा)

सर्वा=सब

सर्वा के रूप लता के समान होंगे। साथ ही इसमें सर्वनाम के सूत्र भी लगेंगे। इनके अतिरिक्त एक नया सूत्र लगेगा।

१५८. सर्वनाम्नः स्याड् ढ्रस्वश्च (सर्वनाम्नः + स्याट् + ह्रस्वश्च) आबन्त सर्वनाम से परे ङित् प्रत्यय आने पर उनके पहले स्याट् का आगम हो और आप् के स्थान में ह्रस्व हो। ङित् प्रत्ययों में ङे, **ङसि,ङस् तथा** ङि आते हैं। अतः इनके पहले 'स्या' आयगा। सर्वा के स्थान में सर्व हो जायगा। अतः इसके रूप इस प्रकार होंगे—

प्रथमा	सर्वा — सर्वे—सर्वाः	}	लता केतुल्य
द्वितीया	सर्वाम् — „ — „		
तृतीया	सर्वया —सर्वाभ्याम्—सर्वाभिः		

चतुर्थी सर्वा + स्या + ङे = सर्वस्यै, सर्वाभ्याम्—सर्वाभ्यः
पञ्चमी सर्वा + स्या + ङसि = सर्वस्याः, „ — „
षष्ठी सर्वस्याः — सर्वयोः—सर्वासाम्—पूर्ववत्
सप्तमी सर्वस्याम् — „ —सर्वासु —

प्रथमा मति + सु = मतिः (पूर्ववत्)
मति + औ = मती (प्रथमयोः पूर्व सवर्णः)
मति + जस्= मतयः (मति की घि संज्ञा होने पर गुण)

द्वितीया मति + अम्= मतिम् (अमि पूर्वः)
मति +औट्=मती
मति + शस्=मति + अस् = मतीः (प्रथमयोः पूर्व सवर्णः से दीर्घ होकर)

तृतीया मति + टा=मत्या, मतिभ्याम्—मतिभिः

चतुर्थी मति + ङे =-मति+ए, मतये (घि संज्ञा होने पर)

१५९. **ङिति ह्रस्वश्च** ङिति प्रत्यय परे रहते नित्य स्त्रीलिंग **ह्रस्व** इकारान्त उकारान्त शब्दों की भी विकल्प से नदी संज्ञा हो। नदी संज्ञा केवल दीर्घ ईकारान्त ऊकारान्त नित्य स्त्रीलिंग शब्दों की होती है, पर लोक में **मत्यै** आदि रूप मिलते हैं अतः इस सूत्र से ह्रस्व इकारान्त उकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों की भी नदी संज्ञा का विकल्प से विधान किया गया है।

नदी संज्ञा होने चार कार्य होते हैं।

१. सम्बोधन में ह्रस्व, २. ङितो को आट् का आगम
३. आम् के पहले नुट् का आगम ४. ङि के स्थान में आम्

१६०. **अम्बार्थ नद्योर्ह्रस्वः** माता के अर्थ वाले तथा नदी संज्ञक अङ्ग के स्थान में ह्रस्व हो यदि सम्बोधन का सु परे हो। हे नदि। हे मते।

१६१. **आण् नद्याः** नद्यन्त शब्दों से ङित् प्रत्ययों के परे रहते आट् का आगम हो जाय। यहाँ ह्रस्व इकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों की ङित् परे रहते विकल्प से नदी संज्ञा होगी तो नदी संज्ञा के चारो कार्य होंगे। इसके अभाव में घि संज्ञा रहेगी।

मति+ङे = मते+ए = मतये (घि होने पर)
= मति+आ+ए = मत्यै (नदी होने पर)

मतिभ्याम्, मतिभ्यः,

पञ्चमी मति + ङसि, मत्याः (नदी होने पर)
मतेः (घि होने पर)
मतिभ्याम्, मतिभ्यः,

षष्ठी मति + ङस् = मत्याः (नदी होने पर)
मतेः (घि होने पर)
मत्योः — मतीनाम् (पूर्ववत्)

सप्तमी मति + ङि होने पर
मति — आ — आम् (नदी होने पर) मत्याम्
मति + ङि = मतौ (घि होने पर)
मत्योः मतिषु (पूर्ववत्)

१. नदी + सु = नदी (हल्ङ्याब्भ्यो से)
नदी + औ = नद्यौ (सन्धि कार्य)
नदी + जस् = नद्यः ,, ,,

२. नदी + अम् = नदीम् (अमिपूर्वः)
नदी + औट् = नद्यौ (पूर्ववत्)
नदी + शस् = नदी + अस् (पूर्व सवर्ण दीर्घ होकर)
नदीः

३. नदी + टा = नद्या, नदीभ्याम् — नदीभिः

४. नदी + ङे = नदी + आ + ए आने पर

१६२. **आटश्च** आट् से अच् परे रहते दोनों के स्थान में वृद्धि एकादेश हो।
नदी + आ + ए = नद्यै।

पञ्चमी —	नद्याः —	नदीभ्याम् —	नदीभ्यः	पूर्ववत्
षष्ठी —	,, —	नद्योः —	नदीनाम्	
सप्तमी —	नद्याम् —	,, —	नदीषु	

इसी प्रकार गौरी, पार्वती, देवी, जानकी, रमणी, महती आदि

अभ्यास

१. ये लताएँ सदा हरी रहती हैं। इमाः लताः सदा हरिताः भवन्ति।
२. वे नदियाँ आजकल सूखी हैं। ताः नद्यः अद्यत्वे शुष्काः सन्ति।
३. सभी बालिकाएँ पाठ याद कर रहीं हैं। सर्वाः बालिकाः पाठान् कण्ठस्थीकुर्वन्ति।

४. इन वालिकाओं के साथ वह देवी विद्यालय जाती है।
आभिः वालिकाभिः सह सा देवी विद्यालयं गच्छति।
५. पार्वती पर्वतराज हिमालय की पुत्री है।
पार्वती पर्वतराजस्य हिमालयस्य पुत्री अस्ति।
६. नदियों की धारा तेज होती है।
नदीनां धारा वेगवती भवति।
७. आजकल देश में अनेक समस्याएँ हैं।
अद्यत्वे देशे अनेकाः समस्याः सन्ति।
८. इन समस्याओं में खाद्य समस्या प्रमुख है।
आसु समस्यासु खाद्य-समस्या प्रमुखा अस्ति।
९. दूसरा समस्या वस्त्रों की है।
अपरा समस्या वस्त्राणाम् अस्ति।
१०. सभी लोग इन समस्याओं का हल चाहते हैं।
सर्वे जनाः आसां समस्यानां निराकरणं वाञ्छन्ति।
११. परिश्रम से अनेक देश फल रहे हैं।
परिश्रमेण अनेके देशाः फलन्ति।
१२. उन आदमियों के धन से यह कार्य होता है।
तेषां जनानां धनेन इदं कार्यं प्रचलति।
१३. किसके आदेश से वह घर जाता है।
कस्य आदेशेन स गृहं गच्छति।
१४. इस रीति से अध्ययन करना ठीक होता है।
अनया रीत्या अध्ययनं समीचीनं भवति।
१५. किस रीति से भाषण करना अच्छा होता है।
कया रीत्या सम्भाषणं शोभनं भवति।

इदम् का स्त्रीलिंग में रूप इयम् होता है। अगले कुछ ही सूत्रों से इसके स्त्रीलिंग के रूप वनाये जा सकते हैं।

१६३. यः सौ स्त्रीलिंग में इदम् शब्द के दकार के स्थान में यकार हो जाय 'सु' परे रहते।

इयम्,

द्विवचन— इदम्+औ, आने पर त्यदादीनामः से म के स्थान में अ होता है।

इद+अ+औ, अतो गुणे से पर रूप होने पर इद+औ वनता है। **"दश्च"** से द के स्थान में म होने पर इम+औ होता है। इम+औ में इम का स्त्रीलिंग रूप वनाने के लिए आ आता है— (इम+आ+औ) तथा आवन्त से परे औ के स्थान में शी आदेश होने पर **"इमे"** रूप, बनता है।

वहुवचन— इदम् + जस् आने पर अत्व, पर रूप, टाप् करने पर इदम् का इदा वन जाता है। इदा का इमा होकर इमा —जस्=इमाः रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार द्वितीया में इमाम्— इमे—इमाः रूप वनते हैं।

तृतीया टा और ओस् परे रहते इदम् के इद् भाग के स्थान में "अनाप्यकः" से अन हो जाता है। (देखो १५१) अन + आ आने पर टाप् का आ आता है। अना+आ, लता की भाँति अने+आ = अनया रूप वनता है। आगे हलिलोपः (१५२) से इदम् के इद् भाग का लोप हो जाता है तो अ+भ्याम् स्थिति वनती है, सुपि च से दीर्घ होकर आभ्याम् सिद्ध होता है। इसी प्रकार आभिः,

चतुर्थी—इदम्+ङे आने पर सर्वा की भाँति अस्यै, आभ्याम्—आभ्यः, रूप बनते हैं।

पञ्चमी	अस्याः —	आभ्याम् —	आभ्यः	} पूर्व सूत्रों से
षष्ठी	,, —	अनयोः —	आसाम्	
सप्तमी	अस्याम् —	,, —	आसु	

तद् = वह। स्त्रीलिंग में तदोः सः से स होने पर सा हो जाता है। आबन्त से सु का लोप होने पर सा ही रह जाता है।

सा —	ते —	ताः	का —	के —	काः
ताम् —	,, —	,,	काम् —	,, —	,,
तया —	ताभ्याम् —	ताभिः	कया —	काभ्याम् —	काभिः
तस्यै —	,, —	ताभ्यः	कस्यै —	,, —	काभ्यः
तस्याः —	,, —	,,	कस्याः —	,, —	,,
,, —	तयोः —	तासाम्	,, —	कयोः —	कासाम्
तस्याम् —	,, —	तासु	कस्याम् —	,, —	कासु

इसी प्रकार या — ये—याः आदि—

प्रथमा धेनु + सु = धेनुः, — धेनू — धेनवः (घि संज्ञा होकर)

द्वितीया धेनु + अम् = धेनुम्— (हरि वत्) धेनू — धेनूः (प्रथमयोः)

तृतीया धेनु + टा, = धेनु+आ = धेन्वा,—धेनुभ्याम्—धेनुभिः।

चतुर्थी धेनु + ङे, = धेनु+ए = धेनवे (मति के तुल्य, धेन्वै।)

धेनुभ्याम् --धेनुभ्यः नदी संज्ञा होने पर

पञ्चमी धेनु + ङसि = धेनु+अस्, धेनु+आ+अस् (आट् आने पर)
=धेनोः =(घि संज्ञा होने पर)=धेन्वाः, (नदी संज्ञा होने पर)
धेनुभ्याम्—धेनुभ्यः ।

षष्ठी धेनु+ङस् =
धेनोः — धेन्वाः, धेनु + ओस् = धेन्वोः, धेनूनाम्,

सप्तमी धेनु+ङि = धेन्वाम्—धेनौ, धेन्वोः, — धेनुषु ।
हे धेनो — हे धेनू — हे धेनवः ।

मातृ+सु—

माता	—	मातरौ	—	मातरः
मातरम्	—	,,	—	मातृः
मातृ+टा	=	मात्रा,	मातृभ्याम् —	मातृभिः
मातृ+ङे	=	मात्रे,	,, —	मातृभ्यः
मातृ+ङसि	=	मातुः,	(पूर्ववत्)	
मातृ—ङस्	=	,,	(पूर्ववत्)	
		मात्रोः,	मातृणाम् ,,	
मातरि—		,,	मातृषु —	
सरित्	—	सरितौ	—	सरितः
सरितम्	—	,,	—	,,
सरिता	—	सरिद्भ्याम्	—	सरिद्भिः
सरिते	—	,,	—	सरिद्भ्यः
सरितः	—	,,	—	,,
,,	—	सरितोः	—	सरिताम्
सरिति	—	,,	—	सरित्सु
दिक्	—	दिशौ	—	दिशः
दिशम्	—	,,	—	,,
दिशा	—	दिग्भ्याम्	—	दिग्भिः
दिशे	—	,,	—	दिग्भ्यः
दिशः	—	,,	—	,,
,,	—	दिशोः	—	दिशाम्
दिशि	—	,,	—	दिक्षु

अध्याय ६

नपुंसकलिंग

नपुंसकलिंग शब्दों के रूप केवल एक ही विभक्ति में सीखने पड़ते हैं क्योंकि प्रथमा के ही रूप द्वितीया में भी होते हैं। तृतीया से वे पुंल्लिग के समान चलने लगते हैं।

प्रथमा ज्ञान + सु आने पर—

१६४. **अतोऽम्** अकारान्त नपुंसक लिंग अङ्ग से परे सु तथा अम् के स्थान में अम् आदेश हो। इससे सु के स्थान में अम् आने पर ज्ञान + अम् स्थिति बनती है। इस स्थिति में "अमि पूर्वः" से 'अम्' के 'अ' का पूर्व रूप होकर ज्ञानम् रूप बनता है। इसी प्रकार फलम्, वनम्, पुस्तकम्, धनम्, पुष्पम्, जलम्, कथनम्, आसनम्, स्थानम्, कारणम्, क्रीडनम्, तपनम्, भोजनम्, भाषणम्, निवेदनम्, चयनम्, गर्जनम्, पठनम्, भ्रमणम्, मानम्, लोचनम्, शयनम्, सदनम्, साधनम्, व्याख्यानम्, ध्यानम्, मानम्, मौनम् आदि।

यहाँ दो बातें ध्यान देने की हैं — अकारान्त नपुंसक लिंग शब्दों के एकवचन के रूप प्रथमा में पुंल्लिग के द्वितीया एकवचन की भाँति होते हैं। अतः यह प्रसंग से ही जाना जा सकता है कि वह किस विभक्ति का है। दूसरी शंका यह है कि सूत्र में 'अम्' के स्थान में अम् का ही विधान क्यों किया गया? इसका समाधान यह है कि आगे एक सूत्र 'अम्' का सर्वत्र लोप करता है। अदन्त में उसका लोप न हो इसलिए सूत्रकार को ऐसा करना पड़ा।

द्वितीया ज्ञान + औ आने पर—

१६५. **नपुंसकाच्च** नपुंसक लिंग शब्दों से परे औङ् के स्थान में 'शी' आदेश हो जाय। ज्ञान + ई स्थिति बनी।

१६६. **यस्येति च** ईकार और तद्धित प्रत्यय परे रहते 'भ' संज्ञक अङ्ग के इवर्ण और अवर्ण का लोप हो। यहाँ 'ज्ञान' की 'भ' संज्ञा हो जाती है क्योंकि उससे परे अजादि प्रत्यय ई आया है। अतः ज्ञान के 'अ' का लोप प्राप्त होता है, पर उसे एक वार्तिक रोक देता है।

१६६. अ **औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः** औङ् से परे शी आने पर यस्येति से 'अ' का लोप न हो।

ज्ञान + ई = ज्ञाने, इसी प्रकार फले, पुस्तके आदि।

इस प्रकार पुस्तके, जले, वने, धने, नगरे आदि रूप अकारान्त पुंल्लिग के सप्तमी एकवचन के समान हो जाते हैं क्योंकि दोनों में क्रम से इ व ई जोड़ी जाती है।

ज्ञान + जस् आने पर,

१६७. **जश्शसोः शि** नपुंसक लिङ्ग में जस् और शस् के स्थान में शि हो जाय।

ज्ञान + शि, ज्ञान + इ

१६८. **नपुंसकस्य झलचः** (नपुंसकस्य, झल् + अचः) झलन्त और अजन्त नपुंसक लिङ्ग अङ्ग से परे सर्वनामस्थान प्रत्यय आने पर नुम् का आगम हो। नुम् से केवल न् रह जाता है और मित् होने से यह शब्द के अन्त में तथा प्रत्यय के पहले आता है। (ज्ञान + न् + इ) जैसा कि अगला सूत्र वतलाता है।

१६९. **मिदचोऽन्त्यात् परः** मित् (जिसका म् इत् हो) वाला आगम अन्तिम अच् के वाद आवे। यहां ज्ञान + इ में ज्ञान के न में 'अ' अन्तिम अच् है अतः ज्ञान+न्+इ उपस्थित हुए। नान्त की उपधा के स्थान में दीर्घ होने पर ज्ञानानि वना। इसी प्रकार जलानि, पुस्तकानि, वनानि, धनानि आदि। द्वितीया में भी ठीक यही रूप बनेंगे। तृतीया से सप्तमी तक पुंल्लिग के समान होंगे।

इकारान्त नपुंसकलिंग शब्द

वारि + सु आने पर

१७०. **स्वमोर्नपुंसकात्** नपुंसक लिंग शब्दों से परे सु और अम् का लोप हो। इस सूत्र के आधार पर अकारान्त शब्दों को छोड़कर सभी अजन्त शब्दों से परे सु और अम् का लोप हो जाता है। अतः इन विभक्तियों में वारि, दधि, मधु, शब्द ऐसे ही रहते हैं

वारि + औ आने पर

१७१. **इकोऽचि विभक्तौ** अजादि विभक्ति परे रहते इगन्त अङ्ग के आगे नुम् का आगम हो। वारि + न् + औ, (औ का शी होने पर)

वारि + न् + शी = वारि + न् + ई, 'अट् कुप्वाङ् से वारिणी, दधिनी, मधुनी आदि।

वारि + जस् आने पर तथा जस् का शि होने पर वारि + इ आता है। शि परे रहने पर यहाँ भी नुम् का आगम होता है— (देखो सूत्र १६८)

वारि + न् + इ नान्त की उपधा का दीर्घ होने पर वारीणि बनता है, इसी प्रकार दधीनि, मधूनि, द्वितीया में भी ये ही रूप रहेंगे।

तृतीया वारि + टा आने पर,

वारि + आ, घि संज्ञा होने से आङो नाऽस्त्रियाम् प्रवृत्त होता है ।
वारि + न् + आ = वारिणा,
वारि + भ्याम् = वारिभ्याम्, वारिभिः आदि ।

चतुर्थी वारि + ङे आने पर (१७१ की प्रवृत्ति होती है)
वारि — न् + ए = वारिणे, वारिभ्याम्, वारिभ्यः ।

पञ्चमी वारि + ङसि = वारिणः, वारिभ्याम् वारिभ्यः ।

षष्ठी वारि + ङस् = वारि + न् + अस् (१७१ से) वारिणः
इसी प्रकार वारिणोः, वारीणाम्, वारिणि, सभी पूर्व सूत्रों से बन जाते हैं ।

१७२. **अस्थि दधि सक्थ्यक्ष्णामनङ् उदात्तः** अस्थि, दधि, सक्थि और अक्षि शब्दों के स्थान में अनङ् आदेश हो यदि उनसे टा आदि अजादि विभक्ति परे हो । दधि शब्द के प्रथमा, सम्बोधन और द्वितीया में तो वारि के समान रूप बनते हैं । टा से आरम्भ करके आगे अजादि विभक्तियों के रूप 'अनङ्' होकर बनेंगे । अनङ् का अन् शेष रहता है जैसे सखि में होता है । यह दधि के इ के स्थान में होगा क्योंकि ङित् है ।

१७३. **अल्लोपोऽनः** अन् के 'अ' का लोप हो यदि यह अन् किसी अङ्ग का हिस्सा हो और इससे परे यकारादि या अजादि विभक्ति हो । यहाँ 'दधि' का हिस्सा है अन् और उससे परे टा अजादि विभक्ति है अतः दध्+न्+आ = दध्ना रूप बनेगा ।

१७४. **विभाषा ङिश्योः** सर्वनाम स्थान वाले प्रत्ययों को छोड़कर अङ्ग से ङि और शि प्रत्यय परे रहने पर अन् के 'अ' का विकल्प से लोप हो ।
दधि + अन् + ङि आने पर इस सूत्र से
दध् + अन् = ङि तथा दध् + न् + ङि रूप बनेंगे ।
दधनि, दध्नि । दधि के शेष रूप वारि के तुल्य होंगे ।

१७५. **ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य** नपुंसकलिंग में अजन्त प्रातिपदिक का ह्रस्व हो जाय । श्रीपा (लक्ष्मी का पालक) श्रीप + अम् = श्रीपम्, श्रीपे, श्रीपाणि आदि ।

१७६. **एच इग् ह्रस्वादेशे** सूत्र संख्या १७५ से अजन्त का ह्रस्व होता है । यहाँ शंका होती है कि एच् आने पर ह्रस्व क्या होगा क्योंकि ए = अ+इ, ओ =

अ+उ, उसका समाधान यह है कि एच् का ह्रस्व इक् हो। अर्थात् ए ऐ के स्थान में इ तथा ओ औ के स्थान में उ, इसके अनुसार प्रद्यो शब्द के स्थान में प्रद्यु रह जाता है।

अभ्यास

१. इन बालिकाओं की पुस्तकें क्लिष्ट हैं।
आसां बालिकानां पुस्तकानि कठिनानि सन्ति।

२. उन छात्रों के प्रश्न पत्र शुद्ध हैं।
तेषां छात्राणां प्रश्नपत्राणि शुद्धानि सन्ति।

३. ये पुस्तकें सभी छात्रों के लिए हैं।
इमानि पुस्तकानि सर्वेभ्यः छात्रेभ्यः सन्ति।

४. अध्यापक सभी छात्रों को कपड़े देता है।
अध्यापकः सर्वेभ्यः छात्रेभ्यः वस्त्राणि यच्छति।

५. पर्वत पर बसे ये नगर सुन्दर लगते हैं।
पर्वत स्थितानि इमानि नगराणि शोभनानि प्रतिभान्ति।

६. सभी फूल मनोहर होते हैं।
सर्वाणि पुष्पाणि मनोहराणि भवन्ति।

७. मृग के बच्चे मैदान में खेलते हैं।
मृगस्य शावकाः क्षेत्रे क्रीडन्ति।

८. ये लोग व्यायाम का अभ्यास कर रहे हैं।
इमे जनाः व्यायामस्य अभ्यासं कुर्वन्ति।

९. सेवक घर से जल ला रहे हैं।
अनुचराः गृहात् जलम् आनयन्ति।

१०. आज देश का शासन उत्तम है।
अद्य देशस्य शासनम् उत्तमम् अस्ति।

अध्याय ७

युष्मद् — तुम, अस्मद् — मैं,

अस्मद् और युष्मद् के रूपों में अनेक सूत्र समान हैं अतः इनका एक साथ विश्लेषण किया जा रहा है।

१७७. **ङे प्रथमयोरम्** अस्मद् और युष्मद् से परे ङे तथा प्रथमा और द्वितीया के स्थान में अम् आदेश हो।

अस्मद् + सु, युष्मद् + सु आने पर इस सूत्र से
अस्मद् + अम् और युष्मद् + अम् हुए।

१७८. **त्वाऽहौ सौ** युष्मद् और अस्मद् के म पर्यन्त भाग के स्थान में क्रम से त्व तथा अह हो जाय। इस सूत्र से अह+अद्+अम्, त्व+अद्+अम् स्थिति बनी। इसमें अतो गुणे से अहद्+अम्, त्वद्+अम् बना,

१७९. **शेषे लोपः** आत्व और यत्व की निमित्त विभक्ति से भिन्न विभक्ति परे रहते अहद् तथा त्वद् की टि का लोप हो। यहाँ अद् का लोप होने पर त्वम् और अहम् रूप बनते हैं। आत्व की विभक्तियाँ औ (द्वितीया) और आदेश रहित हलादि हैं तथा यत्व की निमित्त विभक्ति आदेश रहित अजादि हैं।

१८०. **युवाऽऽवौ द्विवचने** कोई भी विभक्ति परे रहने पर द्विवचन में युष्मद् के युष्म् और अस्मद् के अस्म् भाग के स्थान में युव और आव हो जाय। इससे सभी द्विवचनों में ये आदेश हो जायेंगे।

अतः युव+अद्+औ, आव+अद्+औ, होने पर 'अतो गुणे' से युवद्+औ, और आवद्+औ तथा "ङे प्रथमयोरम्" से युवद्+अम् और आवद्+अम् बनते हैं।

१८१. **प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्** औङ् परे रहते युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान में आकार अन्तादेश हो। इसके अनुसार युवा+अम् और आवा+अम् स्थिति आने पर सवर्ण दीर्घ होकर युवाम् और आवाम् रूप सिद्ध होते हैं।

युष्मद् + जस्, अस्मद् + जस् आने पर

१८२. **यूय-वयौ जसि** जस् परे रहते युष्मद् और अस्मद् के म् पर्यन्त भाग के स्थान में यूय और वय आदेश हों। इसके साथ ही ङे प्रथमयोः से अम् होने पर यूय+अद्+अम्, वय+अद्+अम् स्थिति बनती है। यूयद्+अम्, वयद्+अम् (अतो गुणे से) "शेषे लोपः" से टि का लोप होने पर यूयम् और वयम् बनते हैं।

१८३. **त्वमावेकवचने** एकवचन बताने के लिए द्वितीया विभक्ति में युष्मद् और अस्मद् के म पर्यन्त भाग के स्थान में त्व और म आदेश हो।

युष्मद्+अम्, अस्मद्+अम् आने पर, त्व+अद्+अम्, म+अद्+अम् तथा अतो गुणे से त्वद्+अम्, मद्+अम् स्थिति हुई।

१८४. **द्वितीयायां च** युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान में आकार अन्तादेश हो यदि द्वितीया विभक्ति परे हो।

अतः त्व + आ + अम्, म + आ + अम्
त्वा+अम्, मा+अम् = त्वाम्, माम्।

युष्मद्+शस्, अस्मद्+शस् आने पर

१८५. **शसो न** युष्मद् और अस्मद् से परे शस् के स्थान में न् आदेश हो।

युष्मद्+न्+स्,अस्मद्+न्+स् यह न् अम् का वाधक है। यह न् शस् के केवल अ के स्थान में होता है, अतः युष्म्+न्+स्, अस्म+न्+स्, सूत्र १८४ के अनुसार युष्मा+न्+स्, अस्मा+न्+स् आने पर **संयोगान्तस्य** से स् का लोप हो जाता है और युष्मान् तथा अस्मान् रूप बनते हैं।

तृतीया युष्मद्+ टा, अस्मद्+टा आने पर

१८६. **योऽचि** जिन अजादि विभक्तियों के परे रहते अन्य आदेश न हुआ हो उनके परे रहते युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान में यकार आदेश हो। इनमें युष्म् और अस्म् के स्थान में त्व और म होने पर त्व+अद्+आ, म+अद्+आ, अतः अतो गुणे से त्वद्+आ, मद् + आ आता है। इनके बीच य आदेश होने पर त्वया, मया बनते हैं।

१८७. **युष्मदस्मदोरनादेशे** युष्मद्, और अस्मद् अंग के स्थान में आकार आदेश हो यदि उससे परे कोई ऐसी विभक्ति हो जिसके स्थान में कोई आदेश न हुआ हो।

युष्मद्+भ्याम्, अस्मद्+भ्याम् आने पर "युवावौ" से युवद्+भ्याम् तथा आवद्+भ्याम् आया। तब द् के स्थान में आ होने पर युवाभ्याम् तथा आवाभ्याम् रूप सिद्ध हुए।

१८८. **तुभ्यमह्यौ** ङे परे रहते इनके म पर्यन्त भाग के स्थान में क्रम से तुभ्य और मह्य आदेश हों।

युष्मद्+ङे तथा अस्मद्+ङे आने पर ङे प्रथमयोः से युष्मद्+अम् तथा अस्मद्+अम् बनते हैं। इस सूत्र से तुभ्य+अद्+अम् तथा मह्य+अद्+अम् होते हैं।

अतो गुणे से तथा टि के लोप होने पर तुभ्यम् और मह्यम् रूप बनते हैं।

१८९. **भ्यसोऽभ्यम्** युष्मद् और अस्मद् से परे भ्यस् के स्थान में अभ्यम् आदेश हो।

अतः चतुर्थी बहुवचन में युष्मभ्यम् तथा अस्मयभ्म् रूप बनते हैं।

पञ्चमी युष्मद् + ङसि, अस्मद् + ङसि आने पर

१९०. **एकवचनस्य च** युष्मद् और अस्मद् से परे पञ्चमी के एकवचन में ङसि के स्थान में अत् आदेश हो।

यहां पहले **त्वमावेकवचने** से (१८३) म पर्यन्त भाग के स्थान में त्व और म होता है।

त्वद् + ङसि, मद् + ङसि आने पर इस सूत्र से

त्वद् + अत् मद् + अत् स्थिति बन जाती है। शेषे लोपः से टि गिरने पर त्वत् और मत् रूप बनते हैं।

१९१. **पञ्चम्या अत्** युष्मद् तथा अस्मद् दोनों से पञ्चमी के भ्यस् के स्थान में अत् आदेश हो।

युष्मद् + भ्यस्, अस्मद् + भ्यस् आने पर

युष्मद् + अत्, अस्मद् + अत् स्थिति बनती है।

यहाँ भी शेषे लोपः से अद् का लोप होने पर युष्म् + अत्, अस्म् +अत्=, युष्मत्, अस्मत्। रूप बनते हैं।

षष्ठी युष्मद्+ङस्, अस्मद्+ङस्

१९२. **तव ममौ ङसि** ङस् परे होने पर इन दोनों के मपर्यन्त भाग के स्थान में क्रम से तव और मम आदेश हो। युस्मद् + ङस्, अस्मद् + ङस् आने पर इस सूत्र के अनुसार

तव + अद् + ङस्, मम + अद् + ङस् हुआ।

अतो गुणे से तवद् + अस्, ममद् +अस् बने।

१९३. **युष्मदस्मद्भ्यां ङसो अश्** युष्मद् और अस्मद् शब्दों से परे ङस् के स्थान में अश् आदेश हो। इससे तवद् + अश्, ममद्+अश् बनते हैं। इसमें श् इत् संज्ञक है, तवद् + अ, ममद् + अ, शेषे लोपः से तव और मम रूप बने।

षष्ठी के द्विवचन में युष्मद् + ओस् तथा अस्मद् + ओस् आने पर पहले **युवावौ** से (दे० १८०) युव तथा आव आता है। युव + अद् + ओस् और

आव + अद् + ओस् आने पर अतो गुणे से युवद् + ओस् और आवद् + ओस् बनते हैं। इस स्थिति में १८६ से य अन्तादेश होकर युवय् + ओस्, आवय् + ओस् आता है। अतः युवयोः और आवयोः रूप बनते हैं।

बहुवचन में युष्मद् + आम् और अस्मद् + आम् आने पर सर्वनाम होने से सुट् का आगम होता है। तब युस्मद् + साम् और अस्मद् + साम् स्थिति होने पर

१९४. **साम आकम्** युष्मद् और अस्मद् से परे साम् के स्थान में आकम् आदेश हो जाय।

युष्मद् + आकम्, अस्मद् + आकम्।

यहाँ एक शंका होती है कि युष्मद् और अस्मद् हलन्त शब्द हैं। इनसे परे आम् के स्थान में सुट् का विधान नहीं है सुट् तो अवर्ण से परे ही होता है। (देखो सर्वनाम्नः सुट्।) तब यदि साम् न कहकर आम् ही कह देते तो क्या हानि थी ? यदि आम् कहते तो शेषे लोपः से अन्त्य दकार का लोप हो जाता और ये शब्द अकारान्त बन जाते, तो यहाँ 'सुट् की प्रवृत्ति पुनः होने लगती, अतः पुनः सुट् के आने को रोकने के लिए सुट् सहित आम् का विधान किया गया। इस प्रकार युष्मद् + आकम् व अस्मद् + आकम् से द् का लोप और आकार होकर युष्माकम् तथा अस्माकम् रूप बनते हैं।

सप्तमी बहुवचन में युष्मद् + सुप्, अस्मद् + सुप् आने पर द् का लोप और अन्तिम अ को आ होने पर युष्मासु अस्मासु रूप बनते हैं।

१९५. **युष्मदस्मदोः षष्ठी चतुर्थी द्वितीया स्थयोर्वांनावौ** द्वितीया, षष्ठी और चतुर्थी में युष्मद् के स्थान में वाम् और अस्मद् के स्थान में नौ आदेश हो। इसके अनुसार इन विभक्तियों में इनके दो-दो रूप बनते हैं। इस सूत्र में चूंकि वचन की चर्चा नहीं है अतः इसकी प्रवृत्ति तीनों वचनों में सम्भव थी, पर अगला सूत्र इसको सीमित कर देता है।

१९६. **बहुवचनस्य वस्नसौ** षष्ठी आदि के बहुवचन में युष्मद् और अस्मद् के दूसरे रूप वस् का वः और नस् का नः हो जाता है।

१९७. **तेमयावेक वचनस्य** षष्ठी के एक वचन में क्रम से ते और मे रूप बनें।

१९८. **त्वामौ द्वितीयायाः** द्वितीया एक वचन में क्रम से त्वा और मा रूप बने। इस प्रकार इन दोनों शब्दों के पूरे रूप निम्नलिखित हुए—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः	माम् मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यं ते	युवाभ्याम् वाम्	युष्मभ्यम् वः	मह्यम् मे	आवाभ्याम् नौ	अस्मभ्यं, नः
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	तव ते	युवयोः, वाम्	युष्माकं वः	मम मे	आवयोः नौ	अस्माकं नः
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु	मयि	आवयोः	अस्मासु

टिप्पणी—१. युष्मद् और अस्मद् के दूसरे रूपों का वाक्य के प्रारम्भ में प्रयोग नहीं किया जाता। वे वाक्य के बीच कहीं भी आ सकते है। यथा अयं मे पुत्रः शुद्ध वाक्य है। मम अयं पुत्रः शुद्ध वाक्य है। मे अयं नहीं।

२. मध्यम पुरुष के साथ धातु में वर्तमान काल में सिप् थस् थ जोड़े जाते हैं तथा उत्तम पुरुष में मिप्, वस्, मस्।

इस प्रकार भू के रूप भवसि, भवथः, भवथ तथा भवामि, भवावः, भवामः होते हैं (विशेष प्रक्रिया धातु प्रकरण में देखो)

अभ्यास

१. आज मैं तुम्हारे गांव जाता हूँ। — अहमद्य तव ग्रामं गच्छामि।

२. ये लड़के अपना पाठ याद करते हैं। — इमे बालकाः स्वकीयान् पाठान् कंठस्थी कुर्वन्ति।

३. वे बालिकाएं तुम्हारी बहनें हैं। — ताः बालिकाः तव भगिन्यः सन्ति।

४. दशरथ की पत्नियों में कौसल्या बड़ी है। — दशरथस्य पत्नीषु कौसल्या अग्रजा अस्ति।

५.	तुम मेरे साथ विद्यालय में पढ़ते हो। पर तुम्हारा ज्ञान अभी अल्प है।	त्वं मया सह विद्यालये पठसि किन्तु तव ज्ञानं स्वल्पम् एव
६.	वे पक्षी मेरे नहीं हैं तुम्हारे ही हैं।	ते खगाः मे न सन्ति ते तु तवैव।
७.	तुम्हारे साथ मैं दौड़ता हूँ, देखता हूँ कौन आगे जाता है ?	त्वया सह अहं धावामि पश्यामि कः अग्रे गच्छति ?
८.	तुम यह पुस्तक किसे देते हो ?	त्वमिदं पुस्तकं कस्मै प्रयच्छसि ?
९.	मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।	अहं त्वां नमामि। त्वां नमाम्यहम्। त्वामहं नमामि।
१०.	वह इस गाय को मुझे देता है।	स इमां धेनुं मह्यम् यच्छति।
११.	अच्छे अध्यापक सभी को उपदेश देते हैं।	उत्तमाः अध्यापकाः सर्वान् उपदिशन्ति।

अध्याय ८

विशेष्य विशेषण

संस्कृत में जिस विभक्ति, लिंग और वचन में विशेष्य होता है उसी में विशेषण रखा जाता है। जैसे कृष्णः अश्वः, विमला छाया, कठोरैः वचनैः, रमणीयात् स्थलात्, अस्मिन् दिने आदि। जो प्रत्यय संज्ञा शब्दों में जोड़े जाते हैं वे ही विशेषणों में भी। अतः इनका विवेचन कहीं भी व्याकरण की पुस्तकों में अलग से नहीं रहता। कुछ शब्दों का विशेष महत्त्व है अतः उनकी चर्चा यहाँ की जा रही है।

महत्+सु विद्वत्+सु आने पर

१९९. **सान्त महतः संयोगस्य** सकारान्त संयोग और महत् शब्द के नान्त उपधा के स्थान में दीर्घ हो जाय। महत् शब्द वस्तुतः उगित् है क्योंकि इससे ऋ का लोप हुआ माना जाता है। यह वर्तमाने "प्रषन् महत् वृहत् जगत् शतृवच्च" से शतृ प्रत्यय युक्त के समान माना गया है। इससे नान्त में दीर्घ का विधान इसलिए किया गया है कि शतृ युक्त होने से इसमें अगले सूत्र से न् का आगम होता है।

२००. **उगिदचां सर्वनाम स्थाने** धातुभिन्न उगित् (उक्+इत् जिससे उ ऋ लृ इत् हो) से तथा न लोपी (जिसका न् लोप हुआ हो) अञ्च् धातु के स्थान में **सर्वनाम स्थान परे रहते नुम्** का आगम हो। यहाँ विद्वस् सकारान्त है तथा महत् उगित्, अतः इनसे न् का आगम होता है। तब विद्वन् त् + स्, महन् त् .स् स्थिति हुई। इसमें १६८ से विद्वान् त् स्, महान् त् स् बने। इनसे स् का हलङ्याब्भ्यो से तथा त् का संयोगान्त लोप होने पर महान् और विद्वान् रूप बनते हैं।

महत् + औ आने पर, पहले नुम्

महन् त् + औ, तब उपधा का दीर्घ, महान् त् औ आने पर महान्तौ रूप बनता है। यहाँ 'औ' अन्त में होने के कारण न् और त् का लोप नहीं होता।

महत् + जस् में भी जस् का अस् अजादि है अतः महान्तः रूप बनता है। इस प्रकार सर्वनाम स्थान भर में महान्तम्, महान्तौ रूप बनते हैं। चूंकि नुम् का आगम केवल सर्वनाम स्थान में ही होता है अतः शस् से सामान्य प्रक्रिया से रूप बन जाते हैं।

महत् + शस्, महत् + अस् = महतः,

महत् + टा, महता, महत् + भ्याम् = महद्भ्याम् आदि

महान् — महान्तौ — महान्तः
महान्तम्— महान्तौ — महतः
महता — महद्भ्याम् — महद्भिः
महते — महद्भ्याम् — महद्भ्यः
महतः — महद्भ्याम् — महद्भ्यः
महतः — महतोः — महताम्
महति — महतोः — महत्सु,

२०१. **अत्वसन्तस्य चाऽऽधातोः** सम्बोधन को छोड़कर सु परे रहते अतु अन्त वाले की तथा धातु भिन्न अस् अन्त वाले की उपधा के स्थान में दीर्घ हो। मतुप्, वतुप् तथा डवतु प्रत्यय वाले शब्दों में अतु अन्त में रह जाता है, जैसे धी + मतुप् = धीमत्, श्रीमत्, भा + डवतु = भवत् आदि धातु भिन्न अस् अन्त वाले

शब्दों में विद्वस् आता है। अतः इस सूत्र से धीमत् + सु, भवत् + सु आने पर सबसे पहले नुम् आता है, फिर स् और त् का लोप होने पर धीमान्, भवान् रूप बन जाते हैं। आगे महत् के समान ही इनके रूप बनते हैं-किन्तु इनका दीर्घ केवल सु में ही होता है इसीलिए इस सूत्र की परिकल्पना की गयी है।

भवान् — भवन्तौ — भवन्तः
भवन्तम् — भवन्तौ — भवतः
भवता — भवद्भ्याम्— भवद्भ्यः
भवते — भवद्भ्याम्— भवद्भ्यः
भवतः — भवद्भ्याम्— भवद्भ्यः
भवतः — भवतोः — भवताम्
भवति — भवतोः — भवत्सु

इनके स्त्रीलिंग रूप नदी की भाँति और नपुंसकलिंग के रूप जगत् की भाँति होते हैं। केवल जस् और शस् में महत् का दीर्घ होकर महान्ति रूप बनता है।

कुछ अन्य उपयोगी विशेषण शब्द इस प्रकार हैं—

	पुंल्लिग (राम की भाँति)	स्त्रीलिंग (नदी की भाँति)	नपुंसकलिंग (फल की भाँति)
जैसा	यादृशः,	यादृशी,	यादृशम्
आप जैसा	भवादृशः,	भवादृशी,	भवादृशम्
वैसा	तादृशः,	तादृशी,	तादृशम्
मेरे जैसा	मादृशः,	मादृशी	मादृशम्,
ऐसा	ईदृशः,	ईदृशी,	ईदृशम्
कैसा	कीदृशः,	कीदृशी,	कीदृशम्

इनका प्रयोग—	कीदृशः जनः,	कीदृशी माता,	कीदृशं रत्नम्
	मनोहरः मार्गः,	मनोहरा लता,	मनोहरम् पुष्पम्,
	कीदृशेन जनेन,	कीदृश्या मात्रा,	कीदृशेन रत्नेन
	तादृशे समये	तादृश्यां वेलायाम्,	तादृशं महत्त्वम्।

चतुरः बालकः, चतुरा वालिका, शीतलः पवनः, शीतला छाया ।

कुछ अन्य विशेषण—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
अभिराम	— सुन्दर	ललित	— सुन्दर जिसमें रूप सौन्दर्य हो
मनोहर	— मन को हरने वाला	कलित	— सुन्दर सर्वांग सुन्दर
रमणीय	— रमण के योग्य	शीतल	— ठंडा
कमनीय	— सुन्दर, कामना योग्य	कठिन	— क्लिष्ट, कठोर
दीन	— अकिंचन	कठोर	— कड़ा
कृपण	— कंजूस	मृदुल	— कोमल
उदार	— त्याग की भावना लिये	प्रसन्न	— हर्षित
शोभन	— सुन्दर	नवीन	— नूतन, नया,
मधुर	— मीठा,	प्राचीन	— पुराना
विपुल	— बड़ा, बहुत	अनुपम	— अद्वितीय, जिसकी उपमा न हो
विमल	— स्वच्छ	अखिल	— सम्पूर्ण } खिल=
विशद	— लम्बा चौड़ा	निखिल	— सम्पूर्ण } टुकड़ा
विस्तृत	— फैला हुआ	पूर्ण	— पूरा
प्रसृत	— निकाला गया।	समस्त	— सारा
रचित	— बनाया गया	स्वल्प	— थोड़ा,
स्वच्छन्द	— विना अंकुश	सकल	— सम्पूर्ण (कला=अंश)
स्वतन्त्र	— जो अधीन नहीं	लघु	— छोटा
पावन	— शुद्ध,	दीर्घ	— बड़ा
पूज्य	— पूजनीय	पवित्र	— पूत
सबल	— शक्ति सम्पन्न	रम्य	— सुन्दर
		दुर्बल	— निर्बल, कमजोर

अभ्यास

१. यह खेत शीतल जल से सींचा गया है। इदं क्षेत्रं शीतलेन जलेन सिक्तम् ।

२. वे कार्य कठिन परिश्रम से ही सम्भव हैं ।
तानि कार्याणि कठिनेन परिश्रमेण एव साध्यानि ।

३. मैं इस थके हुए भिक्षुक को भोजन देता हूँ ।
अहमस्मै श्रान्ताय भिक्षुकाय भोजनं प्रयच्छामि ।
४. पूज्य गंगा के पवित्र तट पर अनेक भव्य नगर हैं ।
पूज्यायाः गंगायाः पावने तटे अनेकानि भव्यानि रमणीयानि नगराणि सन्ति ।
५. मन्द बुद्धि बालकों की शिक्षा कम होती है ।
मन्दबुद्धीनां बालकानां शिक्षा स्वल्पा एव भवति ।
६. गंगा के तटपर वहाँ एक छोटा सा गाँव है ।
गंगायास्तटे तत्रैकः लघु ग्रामोऽस्ति ।
७. वहाँ के लोग बड़े सरल और परिश्रमी हैं ।
तत्रत्याः जनाः अतीव सरलाः श्रमशीलाश्च सन्ति ।
८. उनके घर साफ सुथरे हैं । तेषां गृहाणि स्वच्छानि सन्ति ।
९. तोते हरे होते हैं, पर उनकी चोंच लाल होती है ।
शुकाः हरिताः भवन्ति, किन्तु तेषां चञ्चुः रक्तवर्णा भवति ।
१०. वे तोते मीठे स्वर से बोलते हैं ।
ते शुकाः मधुरेण स्वरेण वदन्ति ।
११. आज मेरे दो अनुज पढ़ने के लिए प्रयाग जा रहे हैं ।
अद्य ममानुजौ पठनाय / अध्ययनाय प्रयागं गच्छन्ति ।
१२. कश्मीर के हरे भरे उद्यानों में बहुत से फल बड़ी मात्रा में होते हैं ।
कश्मीरस्य रम्येषु हरितेषु उद्यानेषु विविधानि फलानि प्राचुर्येण भवन्ति ।
१३. इस समय संसार में बड़े-बड़े यन्त्रों का उत्पादन हो रहा है ।
इदानीं संसारे विशालानां यन्त्राणामुत्पादनं भवति ।
१४. ये लोग कैसे गन्दे मकान में रहते हैं ।
इमे जनाः कीदृशे मलिने भवने निवसन्ति ।
१५. कष्ट में पड़े मनुष्यों के लिए राजकीय साहाय्य होता है ।
कष्टापन्नेभ्यः मानवेभ्यः राजकीयं साहाय्यं भवति ।
१६. महात्माओं के लिए सभी का दुःख एक सा होता है ।
साधुभ्यः समेषां दुःखं समं भवति ।
१७. मैं आपके लिए सुन्दर स्वास्थ्य की कामना करता हूँ ।
अहं भवद्भ्यः शोभनं स्वास्थ्यं कामये (वाञ्छामि) ।
१८. ईश्वर सभी की विपत्तियों से रक्षा करता है ।
ईश्वरः सर्वान् विपद्भ्यः रक्षति ।

अध्याय ९

गणना विचार

संस्कृत में चार तक की संख्या के रूप तो अलग-अलग लिंगों में अलग-अलग होते हैं, पर पाँच से सभी लिंगों में समान होते हैं। यथा—

पञ्च जनाः, पञ्च लताः, पञ्च कुसुमानि,

पञ्चभिः पुरुषैः, पञ्चभिः लताभिः, पञ्चभिः कुसुमैः।

एक से चार तक शब्दों के रूप

एक शब्द के संस्कृत में कई अर्थ होते हैं।

यथा— एको ऽल्पार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।
साधारणे समानेऽपि संख्यायां च प्रयुज्यते॥

अर्थात् एक का प्रयोग अल्प, प्रधान, प्रथम, केवल, सामान्य, समान और संख्या में होता है। बहुवचन में इसका अर्थ कुछ लोग या कोई होता है— यथा—

एके जनाः, एकानि पुस्तकानि पर जब एक का अर्थ संख्या वाचक होता है तो यह एक वचन ही रहता है। इसके रूप पीछे दिये गये प्रत्ययों से ही बन जाते हैं। यह सर्वः की तरह पुंल्लिंग, सर्वा की तरह स्त्रीलिंग और सर्वम् की तरह नपुंसक लिंग में होता है।

	पुंल्लिग	स्त्रीलिंग	नपुंसक लिंग
प्रथमा	एकः	एका	एकम्
द्वितीया	एकम्	एकाम्	एकम्
तृतीया	एकेन	एकया	शेष पुंवत्
चतुर्थी	एकस्मै	एकस्यै	

पञ्चमी	एकस्मात्	एकस्याः	—
षष्ठी	एकस्य	एकस्याः	—
सप्तमी	एकस्मिन्	एकस्याम्	

यदि किम् के रूप में पहले सर्वत्र ए जोड़ दें तो भी एक के रूप बन जायेंगे। द्वि के रूप केवल द्विवचन में होते हैं—

पुँल्लिग—

द्वौ द्वौ, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वाभ्याम्, द्वयोः द्वयोः।

स्त्रीलिंग व नपुंसकलिंग	द्वे	द्वे	"	"	"	"

इसमें मूल शब्द द्वि है जो सर्वनाम के अन्तर्गत त्यदादि में गिना गया है। अतः "त्यदादीनामः" से द्वि के स्थान में "द्व" हो जाता है। पुंल्लिग में द्व में सर्व की भाँति द्विवचन के प्रत्यय लग जाते हैं। नपुंसकलिंग में "नपुंसकाच्च" से औ के स्थान में शी आता है और स्त्रीलिङ्ग में "औङ् आपः" से शी आता है अतः दोनों लिङ्गों में द्वि के एक ही रूप बन जाते हैं। त्रि के रूप तीनों लिंगों में अलग-अलग होते हैं। ये केवल बहुवचन में ही चलते हैं।

पुँल्लिग १. त्रि + जस् आने पर जसि च से गुण होता है।
त्रे + अस् = त्रयः रूप बनता है।

२. त्रि + शस् आने पर पूर्व सवर्ण दीर्घ होकर त्रीस् बनता है। तदनन्तर तस्माच्छसो नः पुंसि से स् के स्थान में न् होकर त्रीन् रूप बनता है।

३. त्रि + भिस् = त्रिभिः,
४. त्रि + भ्यस् = त्रिभ्यः,
५. त्रि + भ्यस् = त्रिभ्यः = होता है।
६. त्रि + आम् आने पर

२०२. **त्रेस्त्रयः** आम् परे रहते त्रि के स्थान में त्रय आदेश हो।

त्रय + आम्, अदन्त होने से नुट् का आगम, नामि से त्रयानाम् और अट्कुप्वाङ् से त्रयाणाम् बनता है।

७. त्रि + सुप् = त्रिषु (आदेशप्रत्यययोः से)

स्त्रीलिंग त्रि + जस् आने पर

२०३. **त्रिचतुरः स्त्रियां तिसृ चतसृ,** त्रि और चतुर् शब्दों के स्थान में स्त्रीलिंग में क्रम से तिसृ और चतसृ हो जायं।

तिसृ + जस् आने पर

२०४. **अचिर् ऋतः** तिसृ और चतसृ के ऋ के स्थान में र् हो यदि अच् परे हो।

तिसृ + अस् में इसकी प्रवृत्ति होती है। तिस्र् + अस्। यहाँ एक शंका उठती है कि तिसृ की 'ऋ' का र् तो इकोयणचि से ही हो जाता, इस सूत्र की क्या आवश्यकता थी ? इसका समाधान यह है कि ऋ के र् होने से पहले 'ऋतोङि' से यहाँ गुण प्राप्त था और शस् में प्रथमयोः पूर्व सवर्णः से दीर्घ प्राप्त था। अतः इनको रोकने के लिए इस सूत्र की कल्पना की गयी। तब तिस्र् + अस् = तिस्रः बना, इसी प्रकार से शस् से तिस्र् + अस् = तिस्रः बनता है। भिस्, और भ्यस् में तिसृभिः, तिसृभ्यः रूप बनते हैं

तिसृ+आम् आने पर

२०५. **न तिसृचतसृ** तिसृ और चतसृ शब्दों के स्थान में आम् परे रहते दीर्घ न हो।

अतः तिसृ + न् + आम् (नुट् आने पर)

तिसृणाम्, अट्कुप्वाङ् से

इसी प्रकार तिसृ + सुप् = तिसृषु पूर्ववत्।

नपुंसक लिंग त्रि + जस् आने पर— पहले **"जश् शसोः शिः"** से शि आता है। त्रि + इ। फिर **"नपुंसकस्य झलचः"** से नुम् का आगम होता है। त्रि + न् + इ नुम् आने पर नान्त की उपधा का दीर्घ होता है। त्रीनि, (अट्कुप्वाङ् से) त्रीणि बनता है। इस तरह त्रीणि ही शस् में बनता है।

तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी में त्रिभिः, त्रिभ्यः तिभ्यः पूर्व सूत्रों से रूप होते हैं।

षष्ठी में त्रि + आम् आने पर (पुंल्लिग के समान)

त्रयाणाम् तथा सप्तमी में त्रिषु रूप बनते हैं।

चतुर् + जस् आने पर

२०६. **चतुरनडुहोराम् उदात्तः** सर्वनाम स्थान परे चतुर् और अनडुह शब्दों के स्थान में आम् का आगम हो। आम् मित् है अतः अन्त्य अच् के बाद आता है।

चतु + आ + र् + अस् आने पर चत्वारः बनता है।

द्वितीया में चतुर् + शस् आने पर आम् नहीं होता।
अतः चतुर् + अस् = चतुरः रह जाता है।
आगे चतुर्भिः, चतुर्भ्यः, चतुर्भ्यः सामान्य हैं।
षष्ठी में चतुर् + आम् आने पर।

२०७. **षट् चतुर्भ्यः** षट् संज्ञक और चतुर् शब्दों से परे आम् होने पर नुट् का आगम हो।

चतुर् + न् + आम् = चतुर् + नाम् = चतुर्णाम् चतुर्ण्णाम् (पूर्ववत्)

सप्तमी—चतुर् + सुप् आने पर सुप् का स् खर् है। इसके पहले चतुर् का र् है। इसे खरवसानयोः से विसर्ग प्राप्त होता है। पर इसे अगले सूत्र से रोक दिया जाता है।

२०८. **रोः सुपि** उसी र् के स्थान में विसर्ग हो जो रु का हो। यहाँ र् रु का नहीं है। अतः विसर्ग नहीं होता। तब चतुर्षु रूप बनता है। यहाँ भी चतुर् के र् से परे ष् को द्वित्व प्राप्त था पर इसे अगला सूत्र रोक देता है।

२०९. **शरोऽचि** अच् परे रहते शर् का द्वित्व न हो। चूंकि ष के आगे अच् है अतः द्वित्व नहीं हुआ। स्त्रीलिंग में पूर्व सूत्रों से चतस्रः, चतस्रः, चतसृभिः, चतसृभ्यः, चतसृभ्यः, चतसृणाम्, चतसृषु रूप बनते हैं। नपुंसकलिंग में चतुर् + इ, चतु + आ + इ, चत्वारि, जस् में, चत्वारि ही शस् में शेष पुंल्लिग के समान चतुर्भिः, चतुर्भ्यः, चतुर्भ्यः, चतुर्णाम् , चतुर्षु होंगे।

कति = कितने, यह किम् से "किमः संख्या परिमाणे डति च" सूत्र के द्वारा बनता है। चूंकि इसमें लगने वाला प्रत्यय डति है जो डित् है अतः किम् की टि इम् का लोप हो जाता है। इस प्रकार क्+अति=कति बनता है। कति के रूप भी संख्या वाची शब्दों के समान चलते हैं। ये बहुवचन ही रहते हैं।

कति + जस्, कति + शस् आने पर,

२१०. **षड्भ्यो लुक्** षट् संज्ञक शब्दों से जस् और शस् का लोप हो। कति शब्द "ष्णान्ता षट्" से षट् संज्ञक है, अतः जस् और शस् में कति ही रह जाता है। ष्णान्ता में षान्त और नान्त षट् संज्ञा वाले बनते हैं। इस रीति से पञ्चन् से आरम्भ करके सभी नान्त शब्द षट् संज्ञक होते हैं और जस् व शस् में उनके रूप भी मूल रूप से ही रहते हैं।

तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, आदि में कोई विशेष कार्य नहीं होता। अतः पञ्चन् सप्तन् अष्टन् के रूप निम्न प्रकार होते हैं — षट् का मूल शब्द षष् है, अतः वह भी षट् संज्ञक होता है और उसके रूप भी सामान्य रूप से ही बन जाते हैं।

पञ्च	षट्	सप्त	अष्टौ, अष्ट
पञ्च	षट्	सप्त	अष्टौ, अष्ट
पञ्चभिः	षड्भिः	सप्तभिः	अष्टाभिः, अष्टभिः
पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः	अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः
पञ्चभ्यः	षड्भ्यः	सप्तभ्यः	अष्टाभ्यः अष्टभ्यः
पञ्चानाम्	षण्णाम्	सप्तानां	अष्टानाम्
पञ्चसु	षट्सु	सप्तसु	अष्टासु, अष्टसु

२११. **अष्टन् आ विभक्तौ** अष्टन् अङ्ग के स्थान में हलादि विभक्ति परे रहते आकार हो। इससे अष्टाभिः, अष्टाभ्यः, अष्टानाम् तथा अष्टासु रूप बनते हैं।

२१२. **अष्टाभ्यः औश्** आकार किये जाने पर अष्टन् से जस् और शस् परे रहते औश् हो जाय। यहाँ एक शंका उठती है कि आत्व का विधान तो हलादि परे बताया गया है फिर जस्, शस् में कैसे मिलेगा।

इसका समाधान यह है कि सूत्रकार ने इस सूत्र में अष्टाभ्यः कहा है, वह अष्टभ्यः कह कर ही काम चला सकता था और अष्टभ्यः कहने में एक मात्रा की कमी भी हो जाती लेकिन अष्टाभ्यः का कहना उसे अभिप्रेत है और यह सिद्ध करता है कि जस् और शस् में भी आत्व होता है। यह विकल्प से होता है अतः इन विभक्तियों में दो रूप दिखाये गये हैं। अष्टन् + आ + औ आने पर पहले अष्टन् के न् के स्थान में आ होने पर अष्टा बनता है तब औ आने पर अष्टौ सिद्ध होता है।

आगे नवन्, दशन्, एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन् आदि के रूप पञ्चन् के समान तीनों लिंगों में चलते हैं।

टिप्पणी १. ऊनविंशति से लेकर जितने स्त्रीलिंग संख्यावाची शब्द हैं उन सबके रूप केवल एक वचन में ही होते हैं। उनका प्रयोग संख्यावाचक विशेषण की तरह नहीं बल्कि संज्ञा की तरह किया जाता है।

यथा— विंशतिः लतानाम्, मुनीनां दश साहस्रम्,
विंशति जनाः, विंशति जनान् आदि ।

२. नित्य स्त्रीलिंग संख्या वाचक ऊनविंशति, विंशति, एक विंशति विंशति में अन्त होने वाले शब्दों के रूप 'रुचि' शब्द के समान चलते हैं ।

३. नित्य स्त्रीलिंग संख्यावाचक त्रिंशत् (३०), चत्वारिंशत् (४०) पञ्चाशत् (५०) आदि शत् में अन्त होने वाले शब्दों के रूप सरित् के समान चलते हैं ।

४. नित्य स्त्रीलिंग षष्टि (६०), सप्तति (७०), अशीति (८०), नवति (९०) आदि इकारान्त शब्दों के रूप विंशति की भाँति ही चलते हैं ।

५. शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, अर्बुद, पद्म, महापद्म शब्द सदा नपुंसक लिंग में होते हैं । अतः इनके रूप फल के समान चलते हैं ।

६. बड़ी संख्याएँ अधिक या उत्तर शब्द जोड़कर बनायी जाती हैं ।

यथा— १३५ = पञ्चत्रिंशदुत्तरशतम् ।
२४६ षट्चत्वारिंशदुत्तर द्विशतम् ।
१९७६ में, षट् सप्तत्युत्तरैकोनविंशति शततमे आदि ।

	(२०)	(३०)	(४०)	(५०)
प्रथमा	विंशतिः	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्	पञ्चाशत्
द्वितीया	विंशतिम्	त्रिंशतम्	चत्वारिंशतम्	पञ्चाशतम्
तृतीया	विंशत्या	त्रिंशता	चत्वारिंशता	पञ्चाशता
चतुर्थी	विंशत्यै	त्रिंशते	चत्वारिंशते	पञ्चाशते
पञ्चमी	विंशत्याः	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः	पञ्चाशतः
षष्ठी	विंशत्याः	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः	पञ्चाशतः
सप्तमी	विंशत्याम्	त्रिंशति	चत्वारिंशति	पञ्चाशति

अभ्यास

१. इस वर्ष संस्कृत समिति का द्वितीय अधिवेशन हो रहा है ।
अस्मिन् वर्षे संस्कृत समितेः द्वितीयमधिवेशनं भवति ।

२. अगले सत्र में छात्रों का पाठ्यक्रम दूसरा होगा ।
आगामिनि सत्रे छात्राणां अन्यः पाठ्यक्रमः भविष्यति ।

३. इस विद्यालय में ५०० छात्र पढ़ते हैं जिनमें प्रत्येक कक्षा में लगभग ५० छात्र हैं ।

अस्मिन् विद्यालये पञ्चशतं छात्राः पठन्ति येषु प्रत्येकस्यां कक्षायां प्रायः पञ्चाशत् छात्राः सन्ति ।

४. शशिभूषण महाविद्यालय में प्रायः १००० छात्राएँ पढ़ती हैं ।
शशिभूषणे महाविद्यालये प्रायः सहस्रं छात्राः पठन्ति ।

५. उत्तर प्रदेश की विधान सभा में ४३० सदस्य होते हैं तथा विधान परिषद में २५० ।
उत्तरप्रदेशीय विधान सभायां त्रिंशदुत्तर चतुःशतं सदस्याः भवन्ति तथा विधान-परिषदि पञ्चाशदुत्तर द्विशतम् ।

६. फुटबाल खेल की प्रत्येक टीम में ११ खिलाड़ी होते हैं ।
पाद कन्दुकस्य प्रत्येकस्मिन् दले एकादश क्रीडकाः सन्ति ।

७. चार महिलाएँ इस नगर में समाज सेवा करतीं हैं ।
चतस्रः महिलाः अस्मिन् नगरे समाज सेवां कुर्वन्ति ।

८. पाँच बच्चे आश्रम में तप कर रहे हैं ।
पञ्च शिशवः आश्रमे तपः आचरन्ति ।

अध्याय १०

कुछ विशेष शब्द

प्रथमा विश्वपा+सु = विश्वपाः, (विश्व को पालने वाला)
आकारान्त स्त्रीलिंग से सु का लोप होता है पर यह पुंल्लिग है अतः यहां सु का लोप नहीं हुआ ।

विश्वपा + औ आने पर

२१३. **दीर्घात् जसि च** दीर्घ से जस् और इच् परे होने पर पूर्व सवर्ण दीर्घ न हो । यहाँ दीर्घत्व ङी और आप् वाला नहीं है जो स्त्रीलिंग में होता है । अतः वृद्धि होकर विश्वपौ रूप बनता है ।

विश्वपा + जस् = विश्वपाः (अकः सवर्णे से)

द्वितीया विश्वपा + अम् = अमि पूर्वः से विश्वपाम्
विश्वपा + औट् = विश्वपौ (प्रथमा की भाँति)

विश्वपा + शस् = आने पर विश्वपा + अस् ,

२१४. **यचि भम्** सर्वनाम स्थान प्रत्ययों को छोड़कर कप् प्रत्यय तक अजादि या यकारादि प्रत्यय परे होने पर पूर्व की "भ" संज्ञा हो। इसके अनुसार यहाँ विश्वपा की भ् संज्ञा हो जाती है।

२१५. **आतो धातोः** यदि किसी भ संज्ञक के अन्त में आकारान्त धातु हो तो उसके अन्त का लोप हो।

विश्वपा + अस् = विश्वप् — अस् = विश्वपः।

इसके अनुसार सभी अजादि विभक्तियों में आ का लोप होकर ही रूप बनेंगे। विश्वपा, विश्वपे, विश्वपः आदि। हलादि में विश्वपाभिः विश्वपाभ्यः आदि पूर्ववत्।

पितृ + सु आने पर

२१६. **ऋतो ङि सर्वनाम स्थानयोः** ऋकारान्त अङ्ग से परे सर्वनाम स्थान या ङि परे हो तो उस अङ्ग के स्थान में गुण हो। अतः गुण प्राप्त होने पर—

२१७. **ऋदुशनस् पुरुदंसोऽनेहसां च** ऋकारान्त, उशनस् (शुक्राचार्य), पुरुदंसस् (बिल्ली) और अनेहस् (समय) शब्दों के स्थान में सम्बोधन को छोड़कर सु परे रहते अनङ् आदेश हो। अनङ् से अन् शेष रहता है। चूंकि यह ङित है अतः अन्त के स्थान में होता है।

पित् + अन् + सु = पितन् + सु

२१८. **अप्-तृन्-तृच्-स्वसृ-नप्तृ-नेष्टृ-त्वष्टृ क्षतृ-होतृ-पोतृ-प्रशास्तृणाम्** अप् (जल) तृन् प्रत्यय वाले, तृच् प्रत्ययान्त, स्वसृ (बहन) नप्तृ (पुत्री का पुत्र) नेष्टृ (दान देने वाला), त्वष्टृ (एक असुर) क्षतृ (सारथी) होतृ (हवन करने वाला) और प्रशास्तृ (शासक) शब्दों की उपधा के स्थान में दीर्घ हो यदि उनके परे सम्बोधन को छोड़कर सर्वनाम स्थान के प्रत्यय हों। अतः पितन् + स् से पितान् स् बना। इनमें हलङ्याब्भ्यो से स् गिर जाता है, और 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न् का लोप होने पर पिता रूप बनता है।

पितृ + औ आने पर गुण होकर पितरौ बनता है क्योंकि इसकी गणना तृच् प्रत्ययान्त में नहीं है। दातृ, भर्तृ, कर्तृ, आदि का तृच् प्रत्ययान्तों में होने से भर्तारौ, दातारौ, कर्त्तारौ ही होता है।

२१९. **ऋत् उत्** ऋकारान्त अङ्ग से ङसि और ङस् का अकार परे रहते पूर्व पर के स्थान में उत् आदेश हो।

पितृ + ङसि = पितृ + अस् = पितुर्स् = पितुर्स् । (यहां उरण् रपरः से उत् रपर होकर आया है ।)

२२० **रात् सस्य** रेफ से परे संयोगान्त सकार का ही लोप हो अन्य वर्ण का नहीं । अतः स् का लोप होने पर र् का रुत्व विसर्ग हो गया और पितुः रूप वना ।

२२१. गो + सु आने पर

गोतोणित् ओकार से यदि सर्वनामस्थान का प्रत्यय आवे तो वह णित् के समान हो ।

अतः गो + सु होने पर गौः रूप वनता है ।

गौ + औ, गावौ, गौ + अस् = गावः,

द्वितीया— गो + अम् आने पर

२२२. **औतोऽम् शसोः** ओकार से परे अम् और शस् का अच् परे रहने पर आकार आदेश हो ।

गा + अम् = गाम् (यहाँ औ को रोककर आ करना अभिप्रेत था)

गा + शस् = गा + अस् = गाः

तृतीया—गो + आ = गवा, गोभ्याम् गोभिः ।

चतुर्थी गो + ङे = गवे, गोभ्याम्, गोभ्यः,

पञ्चमी गो + ङसि = गो + अस् = गोः (पूर्व रूप होकर)

षष्ठी गोः, गवोः, गवाम् (पूर्ववत्)

सप्तमी गवि, गवोः, गोषु, (पूर्ववत्)

हे गौः — हे गावौ — हे गावः

२२३. **न षट् स्वस्रादिभ्यः** षट् संज्ञक तथा स्वसृ आदि शब्दों से ङीप और टाप् प्रत्यय नहीं होते । षट् संज्ञक में षष् (छः) और पञ्चन् आदि शब्द आते हैं । ये "ष्णान्ता षट्" से षट् संज्ञक होते हैं । नान्त होने के आधार पर इनमें स्त्रीलिंग के लिए ङीप् प्रत्यय "ऋन्नेभ्यो ङीप्" से प्राप्त होता है । यह सूत्र उसी को रोकने के लिए वनाया गया है । इसीलिए षट् आदि के रूप स्त्रीलिंग में भी वैसे ही रहते हैं जैसे पुंल्लिग में ।

स्वसृ आदि से निम्नलिखित शब्दों का बोध होता है— तिसृ (तीन) चतसृ (चार) दुहितृ (लड़की) मातृ (मां) इसी आधार पर स्वसा–स्वसारौ–स्वसारः रूप बनते हैं। मातृ के रूप इस प्रकार होते हैं—

प्रथमा	— माता	— मातरौ	— मातरः
द्वितीया	मातरम्	— मातरौ	— मातॄः
तृतीया	मात्रा	— मातृभ्याम्	— मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	— मातृभ्याम्	— मातृभ्यः
पञ्चमी	मातुः	— मातृभ्याम्	— मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	— मात्रोः	— मातॄणाम्
सप्तमी	मातरि	— मात्रोः	— मातृषु

राजन् + सु आने पर

२२४. **न ङि सम्बुद्ध्योः** ङि और सम्बुद्धि परे रहते न् का लोप न हो। राजन् में नान्त की उपधा के स्थान में दीर्घ होने पर राजान् + स् बनता है। हलङ्याब्भ्यो से स् का तथा "न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य" से न का लोप होने पर राजा शब्द बनता है। राजन् + औ आने पर तथा उपधा दीर्घ होने पर राजानौ बनता है इसी

तरह राजन् + जस् = राजानः।

द्वितीया— राजन् + अम् = राजानम् — राजानौ राजन् + शस् आने पर 'अल्लोपोऽनः" से अन् के अ का लोप हो जाता है। राज् + न् + अस् आने पर "जञोः ज्ञः" से राज्ञः बनता है।

तृतीया—राजन् + टा = राज् + न् + आ = राज्ञा–
इसी प्रकार राज्ञे, राज्ञः, राज्ञाम् आदि।

२२५. **"न लोपः सुप्स्वर-संज्ञा तुग्विधिषुकृति** सुप् विधि, स्वरविधि, संज्ञा विधि, और कृतप्रत्यय परे रहते तुग्विधि के विषय में ही नकार का लोप असिद्ध होता है।

संस्कृत में एक अटल सिद्धान्त है **"सिद्धे सति आरम्भमाणो विधिः नियमाय कल्पते"** अर्थात् यदि किसी सिद्ध कार्य के लिए पुनः विधान हो तो वह नियमन के लिए होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह सूत्र नियमन करता है कि यदि नकार का लोप असिद्ध हो तो सुप्, स्वर संज्ञा और तुक् विधि में ही हो अन्यत्र नहीं। इसी आधार पर समास में राज्ञः+अश्वः था, विभक्ति हटने पर राजन् + अश्वः आता है

और न् लोप होने पर राजाश्वः बनता है। यहाँ न् का लोप इसीलिए हुआ कि ऊपर गिनायी गयी किसी विधि में यह नहीं है। सुप् विधि से सुप् और स्थानीय दोनों विधियों का ग्रहण होता है। इसी आधार पर राजन् + भ्याम् आने पर सुपि च से दीर्घ नहीं होता अतः राजभ्याम् बनता है। इसी तरह राजन् + भिस् में अतो भिस् ऐस् तथा राजभ्यः और राजसु में बहुवचने झल्येत् नहीं लगते। राजन् के पूरे रूप इस प्रकार होते हैं—

राजा —	राजानौ —	राजानः	राज्ञः —	राजभ्याम् —	राजभ्यः
राजानम् —	राजानौ —	राज्ञः	राज्ञः —	राज्ञोः —	राज्ञाम्
राज्ञा —	राजभ्याम् —	राजभिः	राजनि —	राज्ञोः —	राजसु
राज्ञे —	राजभ्याम् —	राजभ्यः	राज्ञि —		

२२६. **इन् हन् पूषार्यम्णां शौ** इन्नन्त (दण्डिन्, शालिन्, वाग्मिन्) हन्, पूषन् और अर्यमन् शब्दों की उपधा के स्थान में शि परे रहते दीर्घ हो। अतः सु परे रहते दीर्घ नहीं प्राप्त था उसके लिए—

२२७. **सौ** इन् आदि की उपधा के स्थान में सु परे रहते दीर्घ हो—

वृत्रहन् + सु, वाग्मिन् + सु, दण्डिन् + सु आने पर इस सूत्र से वृत्रहा + न्स्, वाग्मी + न्स्, दण्डी न् + स् आता है। इनमें से स् का हलङ् याब्भ्यो से और न् का न लोपः प्राति० से लोप होने पर वृत्रहा, वाग्मी और दण्डी रूप बने। इसी प्रकार यशस्विन् से—यशस्वी, प्रभावशालिन् से प्रभावशाली रूप बनते हैं। आगे यशस्विनौ—यशस्विनः आदि पूर्ववत्।

२२८. **इतोऽत् सर्वनाम स्थाने** पथिन् आदि के इकार के स्थान पर सर्वनाम स्थान परे रहने पर आकार हो। पथिन् + सु = पथ् + आ + सु,

२२९. **थोन्थः** पथिन् और मथिन् के थ के स्थान में सर्वमाम स्थान परे होने पर न्थ आदेश हो।

अतः पन्थाः, पन्थानौ — पन्थानः
पन्थानम् पन्थानौ —

२३०. **भस्य टेर्लोपः** भ संज्ञक पथिन् आदि की टि का लोप हो। पथिन् में टि इन् है। अतः पथिन् से पथ् बचता है। तब पथ्+अस्=पथः शस् में रूप बनता है। आगे अन्य अजादि विभिक्तियों में भी भ संज्ञा होने से पथा, पथे, पथः, पथि आदि रूप होंगे। पथिभ्याम्, पथिभ्यः, पथिषु पूर्ववत्।

वणिज् + सु आने पर

२३१. **चोः कुः** पदान्त में तथा झल् परे रहते चवर्ग के स्थान में कवर्ग हो। पहले इससे वणिग् बाद में वणिक् रूप होता है।

राज् + सु आने पर

२३२. **व्रश्च—भ्रस्ज—सृज्—मृज्—यज्—राज्—भ्राजस्छशां षः।**
यह परिवर्तन भी झल् परे रहते तथा पदान्त में होगा। पदान्त में तथा झल् परे रहते। व्रश्च (काटना) भ्रस्ज (भूनना) सृज् (पैदा करना) मृज (शुद्ध करना) यज् (यज्ञ करना) राज् तथा भ्राज् (चमकना) इन सात धातुओं के स्थान में तथा छ् और श के स्थान में ष् हो जाय।

राज् + सु = राष् + सु राड् + सु, राट् आदि—इसी प्रकार परिव्राट्, सम्राट् आदि।

२३३. **पादः पद्** पाद शब्दान्त "भ" संज्ञक अङ्ग के अवयव पाद के स्थान पर पद् आदेश हो। यह अजादि विभक्ति परे रहने पर होता है क्योंकि उन्हीं में भ संज्ञा होती है। पदा, पदे, पदः आदि—

२३४. **नाऽभ्यस्ताच्छतुः** अभ्यस्त से परे शतृ के स्थान में नुम् का आगम न हो। यह स्थिति जुहोत्यादि गण की धातुओं में विशेष रूप से आती है क्योंकि वहाँ धातु का द्वित्व हो जाता है। तभी उसे अभ्यस्त संज्ञा होती है। दद+शतृ = ददत्—ददतौ—ददतः यह। नुम् उगिदचां से यहाँ प्राप्त हुआ था।

२३५. **वा नपुंसकस्य** अभ्यस्त शब्द वाले शतृ प्रत्ययान्त नपुंसक लिंग शब्द के स्थान में उसके परे सर्वनाम स्थान होने पर नुम् विकल्प से हो।
यथा—ददत्, ददन्ति, ददन्ति में शि की इ है जो जस् के शि होने पर आती है।

२३६. **आच्छीनद्योर्नुम्** अवर्णान्त अङ्ग से परे शतृ प्रत्ययान्त अङ्ग को विकल्प से नुम् हो यदि उसके पश्चात् शी हो या नदी की ई।

यथा तुदती, तुदन्ती।

अभ्यास

अहमस्य नगरस्योत्तरे भागे निवसामि। अस्य नाम लक्ष्मणपुरम्। लक्ष्मणपुरमेकं रमणीयं नगरम्, इदं गोमत्याः पावने तटे स्थितम् अस्ति। मम गृहस्य समीप एवैकं

मम मित्रं निवसति। तत्रैव तस्य द्वौ अनुजौ निवसतः। मम गृहे पूज्या माता, पूज्यः पिता, द्वे भगिन्यौ च सन्ति। मम गृहं बहु विशालं नास्ति, अतः येन केनापि रूपेण वयम् अस्मिन् निवसामः, किन्तु यदाहं कस्मादपि अन्यस्मात् नगरात् स्वकीयं गेहमागच्छामि, अहममन्दमानन्दमनुभवामि। अस्माकं गेहे त्रयः शुकाः सन्ति, तेष्वेकः पीतः द्वौ च हरितौ। एतेषां शुकानां मुखानि लोहितानि। इमे त्रयोऽपि मधुरं वदन्ति। ते अस्माकं वचनानि सम्यगनुकुर्वन्ति।

अस्माकं गृहे द्वे धेनू स्तः। तयोरेका श्यामा, अपरा श्वेता, श्यामायाः ललाटे एकं श्वेतं तिलकमस्ति। सा अतीव मधुरं दुग्धं यच्छति। श्यामायाः दुग्धेन शरीरमधिकं पुष्टं भवति। अस्माकं गेहस्य सम्मुखमेका रमणीया पादपोपेता वाटिकास्ति। एतस्यां वाटिकायां विविधानि मनोहराणि पुष्पाणि विकसन्ति। अत्रैव एक सुरम्यः कूपः। अस्मिन् कूपे शीतलं, मधुरं, निर्मलं च जलं भवति। अस्य जलेन वयं सर्वान् पादपान् सिञ्चामः, । अत्रैव तरूणां शीतलायां छायायाम् वयमुपविशामः।

१. इस गद्यांश का शीर्षक लिखो।
२. इसी प्रकार अपनी संस्कृत में कोई अन्य वर्णन लिखो।
३. काले लिखे पदों का सन्धि विच्छेद सूत्र सहित बताओ।
४. वाटिकायाम्, मनोहराणि, कुसुमैः, अन्यस्मात् शब्दों की साधनिका बताओ।
५. घि संज्ञा तथा नदी संज्ञा की परिभाषा बताओ।
६. चुटू, तस्माच्छसो नः पुंसि और ङेर्यः सूत्रों की व्याख्या करो।

अभ्यास २

निम्न लिखित श्लोकों का अर्थ हिन्दी में लिखो—

१. अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

२. जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च॥

३. काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

४. यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

५. उद्यमः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः ।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकः ॥

६. सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥

७. अलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम् ।
अधनस्य कुतो मित्रं अमित्रस्य कुतः सुखम् ॥

८. पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम् ।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद् धनम् ॥

९. अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥

१०. उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥

इन श्लोकों को कण्ठस्थ करो ।

अभ्यास ३

निम्न लिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिये ।

१. वह योग्य बालक है जो विद्यालय में सदा उपस्थित रहता है ।

२. बलवान और निर्बल की लड़ाई में निर्बल की हानि होती है ।

३. सच्चा मित्र वही है जो अपने मित्र के दुःख से दुःखी होता है ।

४. जो नियमशील होते हैं वे संसार में उन्नति करते हैं ।

५. सत्य बोलने वालों की सदा जीत होती है झूठ बोलने वालों की हार ।

६. राम लक्ष्मण और सीता के साथ वन जाते हैं ।

७. आज के छात्र कठिन परिश्रम नहीं करना चाहते हैं ।

८. इससे केवल छात्रों की नहीं देश की हानि है ।

९. इस सरोवर के जल से हम खेत सींचते हैं ।

१० राजा पिता की भांति प्रजा का पालन करते हैं ।

११. तपस्वियों का कार्य क्षमा से सिद्ध होता है ।

१२. जब मृत्यु निश्चित है तो तुम रणभूमि से क्यों भागते हो।

१३. हम सभी भारतवासी हैं, सभी में एक रक्त है, सभी अपने राष्ट्र के भक्त हैं।

१४. तुम यहां इस समय क्या कार्य करते हो ?

१५. मैं सदा ईश्वर का भजन करता हूँ।

अभ्यास ४

निम्नलिखित श्लोकों का हिन्दी में अनुवाद करो।

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमा:।
चन्द्र चन्दनयोर्मध्ये शीतला साधु संगति: ।। १ ।।

यस्मिन् देशे न सम्मान: न प्रीति: न च वान्धवा:।
न च विद्यागम: कश्चित् तं देशे परिवर्जयेत् ।। २ ।।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन:।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ।। ३ ।।

प्रिय वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति मानवा:।
तस्मात् तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ।। ४ ।।

येषां न विद्या न तपो न दानम्,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्म:।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता:
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ।। ५ ।।

पिबन्ति नद्य: स्वयमेव नाम्भ:।
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षा:।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहा:,
परोपकाराय सतां विभूतय: ।। ६ ।।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।
विभाति काय: करुणापराणां, परोपकारैर्न तु चन्दनेन ।। ७ ।।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा:, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्,
धर्म: स नो यत्र न सत्यमस्ति, सत्यं न तत् यच्छलमभ्युपैति ।। ८ ।।

न कश्चित् कस्यचिन् मित्रं, न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः ।
व्यवहारेण जायन्ते, मित्राणि रिपवस्तथा ॥ ९ ॥
नहि सत्यात् परो धर्मः त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
पापं मिथ्यासमं नास्ति तस्मात् सत्यं सदा वद ॥ १० ॥

अभ्यास ५

१. निम्नलिखित शब्दों का अपने संस्कृत वाक्यों में प्रयोग करो—
रमणीयः, दयनीया, पुष्पावकीर्णम्, पादपोपेता, विशालः, हरिताः, सस्यसम्पन्ना, श्यामलाधरा, अध्यापकः, प्रवक्ता, राजनीतिकुशलः, रणनीतिपटुः, प्रियदर्शी, मनोहरः, धर्मज्ञः, कृतज्ञः, महारथः ।

२. निम्नलिखित शब्दों के निर्देशानुसार रूप बनाओ—

शब्द	—	विभक्ति	—	वचन	—	लिंग
वाटिका	—	सप्तमी	—	एकवचन	—	स्त्री०
समस्या	—	षष्ठी	—	बहुवचन	—	स्त्री०
मार्गः	—	प्रथमा	—	बहुवचन	—	पुं०
उपाधिः	—	द्वितीया	—	बहुवचन	=	पुं०
विधिः	—	प्रथमा	—	बहुवचन	—	पुं०

३. निम्नलिखित श्लोकों से "पृथ्वी" के पर्याय चुनो ।
भूर्भूमिरचलानन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा ।
धरा धरित्री धरणिः, क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः ॥
सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा ।
गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही ॥
विपुला, गह्वरी धात्री गौरिला कुम्भिनी क्षमा ।
भूतधात्री रत्नगर्भा जगती सागराम्बरा । अमर कोष २-१-३

४. उपर्युक्त श्लोकों को कण्ठस्थ करिये ।

५. निम्नलिखित सूत्रों में अन्तर बताइये ।
अदेङ् गुणः, आद्गुणः, वृद्धिरादैच्, वृद्धिरेचि

६. निम्नलिखित शब्दों को लिङ्गानुसार अलग-अलग करिये ।
शरीरम्, कायः, तनुः, भार्या, स्त्री, कलत्रम्, निधिः, विधिः, रीतिः, नीतिः, उपाधिः, आत्मा, अग्निः, अरिः, रिपुः, गौः, सुरः ।

अध्याय ११

तिङन्त (परस्मैपदी)

पिछले अध्यायों में शब्द रूपों को व्यवहार में लाने के लिए धातुओं का वर्तमान काल का स्वरूप ग्रहण किया गया है। इनके अन्य स्वरूपों का प्रयोग नहीं आने दिया गया। बिना बनाये रूपों के प्रयोग का अर्थ रटना मात्र होता। अतः इस अध्याय में धातुओं के विविध रूपों को बनाकर स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है।

सभी भाषाओं में धातुओं के कुछ वर्ग होते हैं। संस्कृत में भी ऐसा ही है। इनका विभाजन कर्त्ता, कर्म तथा भाव के आधार पर किया जाता है। स्वरूप की दृष्टि से इनके तीन भेद होते हैं।

(i) परस्मैपदी — जो गच्छति, गच्छतः, गच्छन्ति की भाँति बनते हैं।

(ii) आत्मनेपदी — जो सेवते, सेवेते सेवन्ते की भांति चलते हैं।

(iii) उभयपदी — जो ऊपर दी गयी दोनों विधियों से चलते हैं।—यथा

करोति — कुरुतः — कुर्वन्ति कुरुते — कुर्वाते — कुर्वते

धातुओं को गण के अनुसार भी बाँटा गया है। गण दस होते हैं—

नाम	विकरण	धातु संख्या	सामान्य कार्य
१. भ्वादि	शप्	१०१०	लट् आदि में गुण।
२. अदादि	—	७२	एक वचन में गुण।
३. जुहोत्यादि	श्लु	२४	धातु दो बार कही जाती है।
४. दिवादि	श्यन्	१४१	गुण नहीं होता।
५. स्वादि	श्नु	३४	गुण नहीं होता।
६. तुदादि	शः	१५७	गुण नहीं होता।
७. रुधादि	श्नम्	२५	गुण नहीं होता।
८. तनादि	उः	१०	विकल्प से गुण होता है।
९. क्र्यादि	श्ना	६१	गुण नहीं होता।
१०. चुरादि	णिच्	४१०	अन्तिम इ, उ, ऋ के स्थान में ऐ, औ, आर होता है।

इन धातुओं में भ्वादि, अदादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि के रूप बड़ी सरलता से बनाये जा सकते हैं। इन गणों की धातुओं को मिलाकर (१०१० + ७२ + १४१ + १५७ + ४१०) = १७९० धातुओं का ज्ञान हो जाता है। इनके अतिरिक्त एक धातु कृ (तनादि) एक ग्रह (क्रयादि) जान लेने से मनुष्य का सारा शाब्दिक व्यवहार सम्भव है। अन्य धातुएँ गौण हैं, कुछ क्लिष्ट भी। अतः उन्हें अधिक ज्ञान होने पर ही पढ़ा जाय।

१. **भ्वादिगणी** भू धातु के रूप यद्यपि संक्षेप में पहले दिखाये जा चुके हैं, पर इस जगह इनका पूर्ण विवरण दिया जा रहा है। प्रत्येक धातु के रूप उसके वचन, पुरुष, काल तथा क्रिया की दशा के अनुसार अलग अलग होते हैं। इस विचार से भी इनके दस खण्ड होते हैं जिन्हें लकार कहते हैं। कुछ लकार तो काल के वाचक हैं पर कुछ क्रिया की दशा बतलाते हैं। ये इस प्रकार हैं--

१. लट् वर्तमान — भवति भवतः आदि

२. लिट् भूतकाल, परोक्षभूत — बभूव, बभूवतुः आदि
(बहुत प्राचीन काल की घटना के लिए आता है)

३. लुट् भविष्य — भविता — भवितारौ आदि
(आज का भविष्य नहीं)

४. लृट् भविष्य — सामान्य, भविष्यति, भविष्यतः आदि।

५ लेट् आशंका प्रकट करने के (केवल वैदिक ग्रंथों में) लिए अथवा शर्त लगाने के लिए

६. लोट् आज्ञा आदि के लिए अंग्रेजी का इम्पैरेटिव मूड
भवतु — भवताम्-आदि।

७. लङ् भूतकाल — (आज का नहीं) अभवत्, अभवताम् आदि।

८. लिङ् विधि, अशीर्वाद, (चाहिए अर्थ बताने के लिए) भवेत्, भवेताम् आदि

९. लुङ् सामान्य भूत — अभूत्, अभूताम् आदि।

१०. लृङ् हेतु हेतु मद्भाव, (यदि ऐसा हो तो वैसा होगा)
अभविष्यत्, अभविष्यताम् आदि—

११. आशीर्लिङ् (यह लिङ् का ही एक स्वरुप है कामना प्रकट करने के लिए)
भूयात् भूयास्ताम् आदि।

लङ् का अर्थ करते समय कहा गया है जो आज का न हो, पर यह मर्यादा लगभग समाप्त हो गयी है। भाषा का सरलता की ओर चलना ही उसका कारण है। इसी तरह लुट् के प्रयोग में भी अनद्यतन भविष्य कहा गया है पर आज उसमें भी ढिलाई आ रही है। आज अधिकांश ६ लकारों का ही प्रयोग होता है। अतः इन्हीं ६ लकारों के रुप यहां बनाये जा रहे हैं। ये ६ लकार लट्, लङ्, लृट्, लोट्, लिङ् और लृङ् हैं।

२३७. **लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः** लकार सकर्मक धातुओं से कर्त्ता तथा कर्म, अकर्मक धातुओं से कर्त्ता और भाव में होते हैं। इस सूत्र को स्पष्ट करने के लिए कर्त्ता, कर्म, भाव, सकर्मक और अकर्मक शब्दों का समझना बहुत आवश्यक है। ये सभी शब्द धातु के अर्थ को बांधते हैं। किसी भी धातु के दो अर्थ होते हैं— फल और व्यापार। जिस उद्देश्य को लक्ष्य कर कोई क्रिया की जाती है वह उसका फल होता है। यथा—लिखति में कुछ लिखना (पत्रादि) पचति में पकाना (खाना आदि) उसका फल है। इस फल की सिद्धि के लिए जो क्रिया की जाती हैं उसे व्यापार (action) कहते हैं। जैसे लिखने में कलम और स्याही की सहायता से कागज पर कुछ बनाना, पचति में चूल्हे पर बटलोई रखने से लेकर पकाने तक का कार्य व्यापार है। इसी प्रकार गच्छति में कहीं पहुंचना फल है और उस हेतु चलना व्यापार है। इन दोनों में फल कर्म में और व्यापार कर्त्ता में रहता है। इसीलिए फल के आश्रय को कर्म और व्यापार के आश्रय को कर्त्ता कहा जाता है। इस दृष्टि से हम इन शब्दों की व्याख्या निम्नलिखित रीति से कर सकते हैं—

१. **कर्त्ता** धातु के व्यापार में स्वतन्त्र तथा उस व्यापार का आश्रय होता है। किसी भी कार्य का करने वाला कर्त्ता होता है।

२. **कर्म** धातु के द्वारा कहे गये फल के आश्रय को कर्म कहते हैं।

३. **भाव** धातु के द्वारा किये गये व्यापार को कहते हैं।

४. **सकर्मक** जब फल और व्यापार के आश्रय अलग २ हों तो सकर्मक होगी। यथा लेखक और पत्र।

५. **अकर्मक** जब फल और व्यापार एक ही आश्रय में रहते हैं—जैसे वह सोता है में जो भी फल या व्यापार है वह सोने वाले में हैं।

इस विवेचन के अनुसार क्रिया के तीन वाच्य होते हैं—

१. **कर्तृवाच्य** जब धातु का पुरुष और वचन कर्त्ता के अनुसार होता है तो उसे

कर्तृ वाच्य की क्रिया कहते हैं। **रामः पठति** में पठति रामः के अनुसार प्रथम पु० एक वचन है।

२. **कर्म वाच्य** जब धातु का वचन आदि कर्म के अनुसार हो तो उसे कर्मवाच्य कहते हैं—यथा "मया पुस्तकं पठयते" में पठयते पुस्तक के अनुसार है। पुस्तक के स्थान पर पुस्तकानि करने से पठयन्ते हो जायगा।

३. **भाववाच्य** जब लकार का प्रयोग व्यापार या भाव पर आश्रित हो—यथा–भूयते शीयते आदि।

आत्मनेपद और परस्मैपद से यह कभी न समझना चाहिए कि आत्मनेपद प्रत्यय कर्मवाच्य के द्योतक हैं। वस्तुतः धातुओं का आत्मनेपदी स्वरूप अलग होता है और वह धातु की अपनी प्रकृति पर निर्भर करता है। इसका निराकरण धातुपाठ से से सदा ठीक रहता है।

२३८ **अनुदात्तङित आत्मनेपदम्** जिस धातु का अनुदात्त अच् इत् हो अथवा जो ङित् हो उससे आत्मनेपद प्रत्यय आते हैं। यथा–एध के ध में अ अनुदात्त माना जाता है। अतः इससे आत्मनेपद प्रत्यय आते हैं। अनुदात्त अच् का आज कोई चिह्न नहीं है, इसका ज्ञान धातु पाठ से ही सम्भव है। शीङ् धातु ङित् है उससे भी आत्मनेपद प्रत्यय आते हैं।

२३९. **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रिया फले** जिस धातु का स्वरित अच् इत् हो तथा जो ञित् हो उनसे आत्मनेपद प्रत्यय हों यदि क्रिया का फल कर्त्ता को मिले। यथा— यज् में ज का अ स्वरित माना जाता है अतः उससे कर्त्ता को फल प्राप्त होने की स्थिति में आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं। इसी प्रकार श्रिञ् भी आत्मनेपदी है चूंकि ञित् है। जब इन धातुओं का फल कर्त्ता को नहीं मिलेगा तो ये धातुएं परस्मैपदी हो जाती हैं। इससे सिद्ध होता है कि इस प्रकार की धातुएं उभयपदी रहती हैं। क्रिया का फल कर्त्ता को प्राप्त होता है या नहीं इसका निर्णय भी जानना आवश्यक है। उदाहरण के लिए डुकृञ् धातु ञित् है। इसके द्वारा यदि कहना हो "मैं संध्या करता हूँ" तो स्पष्ट है कि संध्या का फल कर्त्ता को मिलेगा अतः इससे आत्मनेपद प्रत्यय होंगे। "अहं संध्यां करिष्ये"। इसी प्रकार यदि मैं अपने लिए यज्ञ करता हूं तो कहेंगे- "अहं यज्ञं करिष्ये" पर यज्ञ दूसरे के लिए भी कराया जा सकता है। जब कोई यजमान के लिए यज्ञ करेगा तो कहेगा 'यज्ञमहं करिष्यामि" इसमें भी दक्षिणा आदि की प्राप्ति पुरोहित को होगी पर वह फल यज्ञ का नहीं, वह गौण है। यदि कोई पुत्र

प्राप्ति का यज्ञ है तो वह यजमान को ही मिलेगा पुरोहित को नहीं।

२४०. **शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्** ऊपर बतायी गयी दशाओं को छोड़कर अन्य सभी स्थितियों में कर्तृवाच्य में परस्मैपद प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।

जिन धातुओं से परस्मैपद प्रत्यय आते हैं वे परस्मैपदी कहलाती हैं। अधिकांश धातुएँ परस्मैपदी हैं आत्मनेपदी कम हैं। ये सभी धातुएँ दस गणों में बँटी हैं जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है। चूँकि भाषा पहले होती है व्याकरण बाद को बनता है अतः धातुओं का जो रूप प्रयोग में रहा होगा उसी को बाँधने के लिए पाणिनि को दस हिस्से करने पड़े। हर गण का नाम भी उस गण की प्रतिनिधि धातु के नाम पर रख दिया गया।

इन गणों का ज्ञान उनके साथ जुड़ने वाले शब्दांशों से हो जाता है। इन शब्दांशों को विकरण कहते हैं। चूंकि धातुओं के गण और प्रत्येक गण में उनकी संख्या पहले से सुनिश्चित हैं, अतः इनकी प्रमुख धातुएं यहाँ दी जा रही हैं। उनके रूप बनाने की पूरी प्रक्रिया भी दिखायी जा रही है। यह कार्य अन्य पुस्तकों में गण के क्रम से रहता है और एक गण की सभी धातुओं के रुप सभी लकारों में बताये जाते हैं। पर ये सब सिद्धान्त की बातें हैं अतः उनमें यहाँ नहीं उलझाया गया। यहाँ तो ६ लकारों में प्रमुख धातुओं के रुप बनाकर यह दिखाने का प्रयास किया जा रहा है कि इन धातुओं से हमारा सारा व्यवहार सम्भव है। इनके अतिरिक्त जिसे जिज्ञासा हो वह शेष का ज्ञान बाद में कर सकता है।

२४१. इनके रूप बनाने के लिए निम्न लिखित प्रत्यय लगाये जाते हैं।

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
	प्रथम पु०	मध्यम पु०	उत्तम पु०	प्रथम पु०	मध्यम पु०	उत्तम पु०
एकवचन	तिप्	सिप्	मिप्	त	थास्	इड्
द्विवचन	तस्	थस्	वस्	आताम्	आथाम्	वहि
बहुवचन	झि	थ	मस्	झ	ध्वम्	महिङ्

ये ही प्रत्यय हर लकार में जोड़े जाते हैं। इनको एक सूत्र में पाणिनि ने कह दिया है— तिप्तस्झि—मिप्थस्थ—मिप्वस्मस्—ताऽऽतांझ—थासाथांध्वम्, इड्वहि-महिङ्।

सबसे पहले भू का ग्रहण किया जा रहा है क्योंकि यही भ्वादिगण की पहली धातु है।

भू + तिप् आने पर

२४२. **तिङ्शित्सार्वधातुकम्** जिस प्रत्यय का श् इत् हो तथा तिप् से महिङ् तक के प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा हो।

२४३. **आर्धधातुकं शेषः** तिङ् और शित् को छोड़कर धातुओं में लगने वाले अन्य प्रत्यय "आर्धधातुक" कहे जाते हैं।

२४४. **कर्तरि शप्** कर्ता अर्थ में सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते धातु से शप् हो।

भू + शप् + तिप् = भू + अ + तिप् (शप् से श् और प् गिर जाता है केवल "अ" शेष रहता है।

२४५. **सार्वधातुकार्धधातुकयोः** सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय परे रहने पर इगन्त अङ्ग (जिसके अन्त में इक् हो) के स्थान में गुण हो।

भू + अ + तिप् में भू इगन्त है और तिप् सार्वधातुक प्रत्यय है। अतः भो + अ + ति = भवति इसी प्रकार भू + अ + तस् = भो + अ + तस् = भवतः। बहुवचन में झि आने पर भू + झि = भू + अ + झि भो + अ + झि = भव् + अ + झि = भव + झि

२४६. **झोऽन्तः** प्रत्यय के अङ्ग रूप झ के स्थान पर अन्त् आदेश हो— भव + अन्त् + इ, भव + अन्ति। = भवन्ति (अतो गुणे से) सिप्—थस्—थ इसी आधार पर जुड़ जायेंगे। भवसि—भवथः—भवथ रूप बनेंगे। आगे उ० पु० में भव + मिप् आने पर—

२४७. **अतो दीर्घो यञि** धातु के अकारान्त अङ्ग से परे यञ् आदि वाला प्रत्यय आने पर अङ्ग को दीर्घ कर दिया जाय। यहाँ भव अकारान्त है और मिप् वस् -- मस् सभी यञादि हैं अतः सब में भवामि—भवावः भवामः रूप बनेंगे।

इसी आधार पर पठ्, वद्, चर्, खाद्, क्रीड्, पत्, हस्, व्रज, गद्, अर्ह्, अर्च्, लप् श्रय, तप्, नम्, भज्, गर्ज्, वह् पच्, खन्, ज्वल्, दृश् (पश्य) पा (पिब) स्था (तिष्ठ), गम् (गच्छ) रक्ष्, फल्, त्यज्, क्रन्द्, नी, आदि के रूप बनते हैं।

२४८. **पुगन्तलघूपधस्य** पुगन्त (जिसके अन्त में पुक् हो) और लघु उपधा वाले अङ्ग के इक् के स्थान में गुण हो यदि उससे परे सार्वधातुक या आर्धधातुक प्रत्यय हो।

षिध्=जाना, शुच्—शोक करना, चित्—समझना, इन सभी धातुओं की उपधा लघु है। अतः उपर्युक्त सूत्र से सभी में इक् के स्थान में गुण हो जायगा।

षेध्, शोच्, चेत्, अतः रूप होंगे सेधति, शोचति, चेतति आदि। शेष सभी कार्य भू की भाँति होते हैं।

२४९. **णो नः** धातु के आदि णकार के स्थान में नकार हो जाय। णद्—शब्द करना, नद्+अ+तिप् आदि होकर नदति नदतः नदन्ति आदि रूप बनते हैं।

२५०. **आदिर्ञिटुडवः** उपदेश में धातु के आदि में आने वाले ञि, टु और डु इत् संज्ञक हों— यथा —टुनदि में टु, डुकृञ् में डु।

२५१. **इदितो नुम् धातोः** जिस धातु के ह्रस्व इकार की इत् संज्ञा हुई हो उसे नुम् का आगम हो। नुम् चूँकि मित् है अतः आदि अच् के ठीक परे बैठता है। इससे केवल न् शेष रहता है। यथा—टुनदि एक धातु है। टु तथा इ के लोप होने पर नद् बचता है। इस सूत्र से नन्द् होकर नन्दतः नन्दन्ति आदि रूप बनते हैं।

२५२. वा भ्राश्—भ्लाश्—भ्रमु—क्रमु—क्लमु—त्रसि—त्रुटि लषः इन धातुओं से शप् तथा श्यन् प्रत्यय हों सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते।

भ्राश्	— चमकना,	भ्लाश्	— चमकना,
भ्रम्	— घूमना,	क्रम्	— चलना,
क्लम्	— खिन्न होना,	त्रस्	— डरना,
लष्	—इच्छा करना,	त्रुट्	— टूटना,

इनसे दो विकरण लगने का अभिप्राय है कि इनके दो रूप बनेंगे।

२५३. **क्रमः परस्मैपदेषु** क्रम् धातु के अच् का दीर्घ हो यदि उससे परे परस्मैपद का शित् प्रत्यय हो—

क्रम् + शप् + तिप् = क्राम् +अ+ति = क्रामति,

क्रम् + श्यन् + तिप् = क्राम्य + ति = क्राम्यति,

२५४. **पा घ्रा-ध्मा-स्था-म्ना-दाण्-दृशि-अर्ति-सर्ति-शद-सदां-पिब-जिघ्र-धम-तिष्ठ-मन-यच्छ-पश्य-ऋच्छ-धौ-शीय-सीदाः** पा आदि धातुओं का पिब आदि आदेश हो यदि उससे परे शकारादि प्रत्यय हो। इस प्रकार इनके रूप निम्नलिखित रीति से होंगे—

पा — पीना	—	पिबति	दाण्	— देना	— यच्छति
घ्रा — सूंघना	—	जिघ्रति	दृश्	— देखना	— पश्यति
ध्मा— फूंकना	—	धमति	अर्ति	— जाना	— ऋच्छति

स्था— बैठना — तिष्ठति सृ — दौड़ना — सरति
म्ना— अभ्यास करना— मनति शद् — नष्ट होना— शीयति
सद् — नष्ट होना — सीदति ।

प्र जुड़ने से सद् का अर्थ प्रसन्न होना हो जाता है--प्रसीदति ।

२५५. **श्रुवः शृच** श्रु के स्थान में शृ आदेश हो और श्नु प्रत्यय भी । वैसे श्नु प्रत्यय स्वादिगण में होता है, पर इसकी प्रकृति कुछ लकारों में वैसी होती है अतः पाणिनि को शप् के स्थान में श्नु का विधान करना पड़ा । अतः

शृ + श्नु + तिप् =
शृनु + ति = शृणोति (गुण होकर).

२५६. **सार्वधातुकमपित्** अपित् सार्वधातुक ङित् के समान होता है अतः तस् प्रत्यय परे रहते जब श्नु ङित् के समान हो जाता है तो धातु को गुण नहीं होता है—शृणुतः—

२५७ **हुश्नुवोः सार्वधातुके** हु धातु तथा श्नु प्रत्यय वाले ऐसे अङ्ग के जिसके पहले संयुक्त वर्ण न हो–स्थान में यण् आदेश हो यदि उससे परे अजादि सार्वधातुक प्रत्यय परे हो । यह उवङ् का अपवाद है । जहाँ संयोग पूर्व में होता है वहाँ उवङ् हो जाता है— यथा— आप्नुवन्ति, शृ + श्नु + अन्ति में चूंकि अन्ति अपित् है अतः ङित् के समान है अतः नु के स्थान में गुण नहीं होता । अचि श्नु धातु भ्रुवां य्वोरियङुवङौ से † यहाँ श्नु के उकार के स्थान में उवङ् आदेश प्राप्त होता है क्योंकि यहाँ अनेकाच् अङ्ग शृणु है । इसका उवङ् न हो इसलिए इस सूत्र की कल्पना की गयी । अतः शृण्वन्ति रूप बना ।

२५८. **इषुगमि यमां छः** इषु (इच्छा करना) गम् (जाना) और यम् (नियमन करना), धातुओं को छकार आदेश हो शित् प्रत्यय परे रहते । चूंकि शित् प्रत्यय केवल सार्वधातुक लकारों में आता है अतः उन्हीं में छ होता है । इससे गम् + अ + ति में म् के स्थान में छ होगा । तब छे च से तुक् का आगम होगा । अतः गच्छति, गच्छतः, गच्छन्ति आदि रूप बनते हैं । इसी प्रकार यच्छति, यच्छतः, यच्छन्ति तथा इच्छति. इच्छतः, इच्छन्ति रूप बनते हैं ।

---

† श्नु प्रत्यय जिसके अन्त में हो, या इवर्णान्त और उवर्णान्त धातु रूप हो अथवा भ्रू हो---इनके क्रम से इयङ् और उवङ् आदेश हों यदि उनसे परे अजादि प्रत्यय हो । इससे इ के स्थान में इयङ् और उ के स्थान में उवङ् हो जाता है तथा इयङ् से इय् और उवङ् से उव् शेष रह जाता है । यथा-सुधी + औ में सुधियौ बनता है ।

इसी आधार पर निम्नलिखित धातुओं का अभ्यास किया जा सकता है ।

१ वद् — कहना — वदति
२ चर् — चलना — चरति
३ खाद् — खाना — खादति
४ पठ् — पढ़ना — पठति
५ क्रीड् — खेलना - क्रीडति
६ पत् -- गिरना — पतति
७ हस् — हँसना — हसति
८ व्रज — जाना — व्रजति
९ टुनदि —प्रसन्न होना — नन्दति
१० स्मृ —स्मरण करना— स्मरति
११ हृ — हरना — हरति
१२ सृ — सरना — सरति
१३ अर्ह — योग्य होना — अर्हति
१४ वाञ्छ्— चाहना — वाञ्छति
१५ फल् — फलना — फलति
१६ गद् —स्पष्ट बोलना— गदति
१७ लप् — बात करना —लपति (सं)
१८ रक्ष् — रक्षा करना — रक्षति
१९ अर्च — पूजा करना — अर्चति
२० श्रृञ् — आश्रय लेना —श्रयति(आ)
२१ अर्ज —जीविका पैदाकरना—अर्जति
२२ तप् — तपना — तपति
२३ गै — गाना — गायति
२४ नम् — नमना — नमति
२५ भज् —सेवा में रहना भजति
२६ स्था — बैठना — तिष्ठति
२७ पा — पीना — पिबति
२८ गम् — जाना — गच्छति
२९ कृष् — खींचना —कर्षति(आ)
३० त्यज्— छोड़ना — त्यजति ।

३१ नी — लेजाना — नयति
३२ शुच् — शोक करना—शोचति
३३ नद् — शब्द करना— नदति
३४ वृष् — बरसना — वर्षति
३५ कांक्ष — चाहना —कांक्षति
३६ क्रन्द — रोना — क्रन्दति
३७ वह — ले जाना — वहति
३८ गर्ज — गरजना — गर्जति
३९ पच् — पकाना — पचति
४० दृश् — देखना — पश्यति
४१ चित — ज्ञान होना— चेतति
४२ चर्व — चबाना — चर्वति
४३ चुम्ब् — चूमना — चुम्बति
४४ जप् — जपना — जपति
४५ तृ — तरना — तरति
४६ दाण् — देना — यच्छति
४७ खन् — खोदना — खनति
४८ गुञ्ज — गूँजना — गुञ्जति
४९ ज्वल् — जलना — ज्वलति
५० ध्यै —ध्यान करना- ध्यायति
५१ निन्द —निन्दा करना— निन्दति
५२ मथ् — मथना — मथति
५३ मूर्च्छ —मूर्च्छित होना— मूर्च्छति
५४ अट् —चलना — अटति
घूमना —परि
५५ अत् —लगातार चलना- अतति
५६ अव् —रक्षा करना — अवति
५७ कूज् — कूजना — कूजति
५८ क्रण — शब्द करना — क्रणति
५९ क्षर् — बहना — क्षरति
६० गूह — छिपना — गूहति

६१	शप्	— शाप देना —	शपति
६२	चल्	— चलना —	चलति (प्र)
६३	शंस्	—प्रशंसा करना—	प्रशंसति
६४	जल्प	— बातें करना —	जल्पति
६५	तर्ज	— रोकना —	तर्जति
६६	दंश	— काटना —	दंशति
६७	द्रव	— टपकना —	द्रवति
६८	भण्	— कहना —	भणति
६९	भ्रम्	— घूमना —	भ्रमति
		भटकना —	
७०	यज्	— यज्ञ करना —	यजति
७१	वि+रम्-	रुकना —	विरमति
७२	रुह्	— उगना —	रोहति
७३	,,	— चढ़ना —	आरोहति
७४	,,	— उतरना —	अवरोहति
७५	लस्	— शोभा देना —	लसति (वि)
७६	लष्	— चाहना —	लषति (अभि)
७७	लिग	— लगना —	लिगति (आ)
७८	वप्	— बोना —	वपति
७९	वस्	— रहना —	वसति
८०	वेब्	— बुनना —	वयति
८१	जि	— जीतना —	जयति
८२	दह्	— जलना —	दहति
८३	चदि	— चमकना —	चन्दति
८४	वञ्च्	— ठगना —	वञ्चति
८५	खजि	—बुरी तरह चलना—	खञ्जति
८६	नट्	— मना करना —	नटति
८७	मडि	— सजाना —	मण्डति
८८	पील	— रोकना —	पीलति
८९	शील्	—समाधि लगाना—	शीलति
९०	कील्	— बाँधना —	कीलति
९१	कूल्	— —	कूलति
९२	शूल्	— पीडा देना —	शूलति
९३	तूल	—बाहर निकालना—	तूलति
९४	मूल्	—प्रतिष्ठा बनाना —	मूलति
९५	वेल्	— चलना —	वेलति
९६	विचलृ	— टेढा चलना —	विचलति
९७	गर्व	—अहंकार करना—	गर्वति
९८	कटे	— बरसना —	कटति
९९	क्षि	— नष्ट होना —	क्षयति
१००	गुप्	— रक्षा करना —	गोपायति

केवल इन धातुओं के एक लकार के आधार पर कम से कम ९०० वाक्य बनाये जा सकते हैं। प्रत्येक धातु से कम से कम ९ वाक्य बनते हैं। इसी में सुबन्तों का विभेद करने पर हजारों वाक्य बनाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त इन धातुओं में उपसर्ग लगाकर इनकी संख्या कई हजार और बढ़ सकती है। अतः संस्कृत की वैज्ञानिकता थोड़े से प्रयास से समझ लेने पर हमें एक सरल मार्ग पर खड़ा कर देती है। धातुओं में उपसर्ग जोड़ने से अर्थ में बहुधा परिवर्तन हो जाता है। कुछ धातुओं को उपसर्ग के साथ नीचे दिखाया जा रहा हैं।

(१) भू = होना

भू + अनु = अनुभवति = अनुभव करता है।

उद् + भू = उद्भवति = पैदा होता है, निकलता है।

अभि + भू = अभिभवति = दबाव डालता है।
परि + भू = परिभवति = निरादर करता है।
तिरो + भू = तिरोभवति = छिपता है। (तिरो उपसग नहीं है)
प्र + भू = प्रभवति = निकलता है, अधिक शक्तिशाली सिद्ध होता है।
सम् + भू = सम्भवति = सम्भव है।

(२) गम् + जाना
अनु + गम् = अनुगच्छति = पीछे चलता है।
आ + गम् = आगच्छति = आता है।
प्रति + आ + गम् = प्रत्यागच्छति = लौटता है।
अव + गम् = अवगच्छति = समझता है।
निर् + गम् = निर्गच्छति = निकलता है।
अधि + गम् = अधिगच्छति = प्राप्त करता है।

(३) वद् = बोलना
अनु + वद् = अनुवदति = अनुवाद करता है।
उप + वदति = उपवदति = प्रार्थना करता है।
सम् + वद् = संवदति = बात करता है।
प्रति + वद् = प्रतिवदति = उत्तर देता है।

(४) स्था = बैठना
उत् + तिष्ठति = उत्तिष्ठति = उठता है, खड़ा होता है।
प्र + तिष्ठति = प्रतिष्ठते = प्रस्थान करता है।
प्र लगने से आत्मनेपदी हो गया।
सम् + तिष्ठति = संतिष्ठते = मरता है।
अव + तिष्ठति =
अधि + तिष्ठति = अधितिष्ठति = रहना।
उप + तिष्ठति = उपतिष्ठति =

(५) नी = ले जाना
अनु + नयति = अनुनयति = विनय करता है।
परि + नयति = परिणयति = विवाह करता है।
अप + नयति = अपनयति = हटाता है।

आ + नयति = आनयति = लाता है।
उप + नयति = उपनयति = पास लाता है, यज्ञोपवीत करता है।
निर् + नयति = निर्णयति = निर्णय करता है।

(६) हृ = हरति (हरना)

अनु + हरति = अनुहरति = नकल करता है, वैसा ही लगता है।
अप + हरति = अपहरति = छीनता है।
परि + हरति = परिहरति = छोड़ता है।
आ + हरति = आहरति = ले आता है।
वि + आ + हरति = व्याहरति = बोलता है।
प्र + हरति = प्रहरति = प्रहार करता है।
वि + हरति = विहरति = विहार करता है।
उत् + आ + हरति = उदाहरति = उदाहरण देता है।
सम् + आ + हरति = समाहरति = एकत्र करता है, समाप्त करता है।
उत् + हरति = उद्धरति = उद्धार करता है।

(७) पत् + गिरना

नि + पतति = निपतति = गिरता है।
उत् + पतति = उत्पतति = उड़ता है।
प्र + नि + पतति = प्रणपतति = प्रणाम करता है।
प्र + पतति = प्रपतति = जोर से गिरता है,
(इसी से प्रपात = झरना)
आ + पतति = आपतति = आ जाता है, आ पड़ता है।

(८) चर् = चरति = चलना। घूमना।

वि + चरति = विचरति = विचरण करता है।
उप + चरति = उपचरति = उपचार करता है।
उत् + चरति = उच्चरति = उच्चारण करता है।
वि + अभि + चरति = व्यभिचरति = अनाचार करता है।
अनु + चरति = अनुचरति = अनुसरण करता है।
आ + चरति = आचरति = आचरण करता है।
परि + चरति = परिचरति = सेवा करता है।

(९) लप् — कहना

वि + लपति = विलपति = रोता है।
प्र + लपति = प्रलपति = प्रलाप करता है।
आ + लपति = आलपति = संलाप करता है।
सम् + लपति = संलपति = बात करता है।

(१०) तॄ तरना

उत् + तरति = उत्तरति = उत्तर देता है।
सम् + तरति = संतरति = तैरता है।
वि + तरति = वितरति = बाँटता है।
अव + तरति = अवतरति = अवतार लेता है, उतरता है।

इसी प्रकार उपहसति (उपहास करना) अनुसरति (पीछे चलना) अपसरति (पीछे हटना) उपसरति (समीप जाना) अनुरक्षति (रक्षा करना) परिरक्षति (सब ओर से बचाना) संरक्षति (संरक्षण करना) आरक्षति (सुरक्षित करना) आश्रयति (आसरा लेना) निराश्रयति (आसरा छोड़ना) निवसति (बसना, रहना) प्रवसति (वन जाना), अभिलषति (इच्छा करना), आलिंगति (लिपटना) आदि हजारों शब्द अनायास मिल जाते हैं। संस्कृत की यही एक ऐसी विशेषता है जो उसे अन्य भाषाओं से श्रेष्ठ बनाती है।

अभ्यास

निम्नलिखित वाक्यों का अनुवाद करो—

१. मैं समझता हूँ कि तुम निर्धन हो। अहमवगच्छामि यत् त्वं निर्धनोऽसि।
२. मोहन मीठे स्वर से पढ़ता है। मोहनः मधुरेण स्वरेण पठति।
३. होनहार होकर रहती है। भवितव्यानि भवन्ति एव।
४. सभी के जीवन में उत्थान और पतन होते हैं। सर्वेषां जीवने उत्थानोत्पतनानि भवन्ति।
५. वह तिल का ताड़ बनाता है। स तिले तालं पश्यति।
६. दुष्ट आदमी दूसरे के दोषों को देखता है अपने नहीं।
दुर्जनः परेषां दोषान् पश्यति न तु स्वीयान्।

७. मैं तुमसे हँसी नहीं कर रहा हूं ठीक ही कह रहा हूं।
नाहं त्वां परिहसामि परमार्थतः वदामि ।

८. मनुष्य का भाग्य कभी ऊपर कभी नीचे चक्र की भाँति चलता है।
मानवस्य भाग्यं नीचैः उपरि च गच्छति चक्रनेमिक्रमेण ।

९. भाग्य से धन आता है, धन से धर्म तथा धर्म से सुख होता है।
सौभाग्यात् धनमायाति, धनात् धर्मः तथा धर्मात् सुखं भवति ।

१०. जो विद्या पढ़ता है वह प्रसन्नता का अनुभव करता है।
यः विद्यां पठति स हर्षमनुभवति ।

११. अभ्यास से सभी पण्डित हो जाते हैं।
अभ्यासेन सर्वे पण्डिताः भवन्ति ।

१२. ये पशु बाँसुरी की धुन सुन रहे हैं।
इमे पशवः वेणोः ध्वनिं (गीतं) शृण्वन्ति ।

१३. छोटे लोग बड़ों के आचरण का अनुसरण करते हैं।
लघीयांसः जनाः महतामाचरणमनुसरन्ति ।
(यद्यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः । गीता)

१४. सूर्य प्रातः पूर्व में निकलता है और सायं पश्चिम में डूबता है।
सूर्यः प्रातः पूर्वस्यां दिशि उद्गच्छति । उदयति । सायं पश्चिमायां अस्तं गच्छति ।

१५. ये लड़कियां नित्य विद्यालय के मैदान में खेलती हैं।
इमाः वालिकाः नित्यं विद्यालयस्य क्षेत्रे क्रीडन्ति ।

१६. जो लोग इस गाँव में रहते हैं, उत्तम व्यवहार करते हैं।
ये जनाः अस्मिन् ग्रामे निवसन्ति ते साधु व्यवहरन्ति ।

१७. विदेशी भारत में सदा पर्यटन के लिए आते हैं।
वैदेशिकाः भारते सदैव पर्यटनायागच्छन्ति ।

१८. मैं रात को कभी नहीं घूमता, तुम कहाँ चले जाते हो !
अहं तु रात्रौ न कदापि पर्यटामि, त्वं कुत्र गच्छसि !

१९. तुम सब उस वालक पर क्यों हसते हो !
यूयं कथं तं वालकं परिहसथ !

२०. में तुमसे यहाँ से चलने के लिए विनय करता हूँ।
अहमस्मात् स्थानात् गमनाय/प्रस्थानाय त्वामनुनयामि।

२१. हमारे सैनिक सदा देश की निष्ठा से रक्षा करते हैं।
अस्माकं सैनिकाः सदा निष्ठया देशं रक्षन्ति।

२. **अदादि गण** इस गण की पहली धातु अद् है जिसके आधार पर इसका नाम अदादि गण पड़ा। इस गण की धातुओं में निम्नलिखित प्रमुख हैं—

भा	—	चमकना	अद्	—	खाना खाना
वा	—	वायु का वहना	इण्	—	जाना
ला	—	लाना	स्वप्	—	सोना
पा	—	रक्षा करना	दुह	—	दुहना
ख्या	—	प्रसिद्ध होना	शास्	—	शासन करना
स्ना	—	स्नान करना	रुद्	--	रोना
दाप्	—	काटना	हन्	—	मारना
या	—	जाना	अस्	—	होना
श्वस्	—	श्वास लेना	ब्रूञ्	—	बोलना
जागृ	—	जगना	स्तु	—	स्तुति करना
द्विष्	—	द्वेष करना	विद्	==	जानना

इस गण की विशेषता यह है कि इसमें कोई विकरण नहीं लगता। इसके लिए सूत्र है—**अदि प्रभृतिभ्यः शपः** अर्थात् अदादि से शप् का लुक् हो। अतः आकारान्त धातुओं के रूप बड़ी सरलता से वन जाते हैं—यथा—वा + तिप् = वाति। इसी प्रकार वा + तस् = वातः, वा + झि = वान्ति आदि। याति — यातः — यान्ति, भाति — भातः — भान्ति, पाति स्नाति इत्यादि।

अन्य धातुओं में कुछ विशेष सूत्र लगते हैं।

२५६. **अनुदात्तोपदेश, वनति तनोत्यादीनाम् अनुनासिक लोपो झलि क्ङिति**

उपदेश में जो अनुदात्त हों, जिनके अन्त में अनुनासिक वर्ण हो (हन्, गम्, यम्, रम्, नम्, मन्,) तथा वन और तन आदि (तनु—क्षणु, षणु, क्षिणु, ऋणु घृणु, वनु, मनु और भ्वादिगण के वनति) के अनुनासिक का लोप यदि उससे परे झलादि कित् ङित् प्रत्यय हो।

हन् + तिप् = हन्ति,

हन् + तस् आने पर अनुनासिक न् का लोप हो जाता है
तब ह + तस् = हतः रूप बनता है।
हन् + झि = हन् + अन्ति आने पर—

२६०. **गम् हन् जन् खन् घसां लोपः क्ङिति-अनङि** (क्ङित्यनङि)
इन धातुओं की उपधा का लोप हो यदि उनसे परे अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हों पर अङ् परे रहने पर न हो। यहाँ हन् की उपधा (ह में अ) के अकार का लोप हो जाता है क्योंकि उससे परे अन्ति अपित् होने से ङिद्वत् है। अतः ह + न् + अन्ति आने पर

२६१. **हो हन्तेर् ञ्णिन्नेषु** ञित्, णित् प्रत्यय तथा नकार परे रहते हन् धातु के ह् का कुत्व हो। ह् के स्थान में कुत्व घ् होगा क्योंकि ये स्थान से कण्ठ्य हैं और इनके प्रयत्न संवार, नाद, घोष तथा महाप्राण हैं।

घ् + न् + अन्ति = घ्नन्ति। यह सब क्यों करना पड़ा! इसका कारण है कि लोक व्यवहार में एक वचन में जब हन्ति बनता है तो बहुवचन में घ्नन्ति रहा होगा। उसी को पाणिनि ने घुमा फिरा कर ठीक किया। वैयाकरण भाषा का निर्माण नहीं करता, बल्कि उसकी रक्षा करता है। आगे हंसि, हथः हथ, हन्वि, हन्वः हन्मः रूप पूर्व सूत्रों से बन जाते हैं।

लट् में—विद् धातु के रूप दो तरह से चलते हैं—

२६२. **विदो लटो वा** परस्मैपद विद् से लट् लकार में विकल्प से णल् आदि आवें। णल् आदि प्रत्यय इस प्रकार हैं—

णल् — थल् — णल्
अतुस् — अथुस् — व
उस् — अ — म

वस्तुतः ये प्रत्यय लिट् लकार में तिप् तस् झि आदि के स्थान में आते हैं पर चूँकि विद् के लट् में दो रूप बनते हैं अतः एक के बनाने में तिप्–तस्–झि लगते हैं दूसरे में णल् आदि।

विद् + णल् = विद् + अ = वेद (गुण होने पर)
विद् + अतुस् = विदतुः, विद् + उस् = विदुः,
विद् + थल् = वेत्थ, इसी प्रकार विदथुः विद, वेद, विद्व, विद्म।

जब तिप् आदि लगेंगे तो वेत्ति, वित्तः, विदन्ति, वेत्सि, वित्थः, वित्थ, वेद्मि, विद्वः, विद्मः रूप बनते हैं।

इण् — जाना इ + तिप् — एति (गुण होकर)

इ + तस् = इतः (गुण नहीं होता, अपितु ङिद्वत् होता है)

इ + झि = इ + अन्ति आने पर अचिश्नुधातुभ्रुवां प्राप्त होता है पर उसे अगला सूत्र रोक देता है।

२६३. **इणो यण्** इण् धातु के इ के स्थान में यण् आदेश हो जाय यदि उससे परे अजादि प्रत्यय आवे। अतः यन्ति रूप बनता है। आगे एषि, इथः, इथ, एमि, इवः, इमः पूर्ववत् बनते हैं।

अस् = होना (अंग्रेजी के इज, आर का वाचक)

अस् + तिप् = अस्ति = है।

२६४. **श्नसोरल्लोपः** सार्वधातुक कित् प्रत्यय परे होने पर श्ना का (क्रयादि में मिलेगा) तथा अस् धातु के 'अ' का लोप हो। स्तः, सन्ति, असि, स्थः, स्थ, अस्मि, स्वः, स्मः।

अस् के लट् के सभी रूप इस प्रकार हैं—

अस्ति	असि	अस्मि
स्तः	स्थः	स्वः
सन्ति	स्थ	स्मः

ब्रूञ् = बोलना

२६५. **ब्रुवः पञ्चानाम् आदित आहो ब्रुवः** यह सूत्र दो कार्य करता है। लट् में ब्रू के पाँच रूपों में तिप् आदि के स्थान पर णल् आदि करता है। अतः रूप इस प्रकार बनते हैं—

आह् + णल् = आह् + अ = आह,

आह् + अतुस् = आह् अतुस् = आहतुः

आह् + उस् = आहुः, आगे आह् + थल् आने पर—

२६६. **आहस्थः** आह् के स्थान में थ् आदेश हो यदि उससे परे झलादि प्रत्यय हो—यहाँ थल् झलादि है। ह् के स्थान में थ् होने पर चर्त्व हो जाता है— और आ + थ् + थ से आत्थ रूप बनता है। आह् + अथुस् = आहथुः।

इस धातु के केवल ५ रूपों में यह परिवर्तन केवल इसलिए किया गया कि लोक व्यवहार में ऐसा ही बोला जाता था। इनके अतिरिक्त तिप् आदि भी लट् लकार में आते हैं।

ब्रू + तिप् आने पर

२६७. ब्रुव ईट् ब्रू से परे हलादि प्रत्यय आने पर ईट् का आगम हो। ब्रू + ई + ति = ब्रवीति। ब्रू + तस् = ब्रूतः, ब्रू + अन्ति, अचि श्नु धातु भ्रुवां से उवङ् होने पर ब्रू + उव् + अन्ति = ब्रुवन्ति रूप बनता हैं। इसी प्रकार ब्रवीसि, ब्रूथः, ब्रूथ, ब्रवीमि, ब्रूवः ब्रूमः।

रुद् = रोना

२६८. रुदादिभ्यः सार्वधातुके रुद्, स्वप्, श्वस्, अन् और जक्ष से वलादि सार्वधातुक परे होने पर इट् का आगम हो।

रुद् + तिप् = रुद् + इ + तिप् = रोद् + इ + ति = रोदिति इसी प्रकार स्वपिति, श्वसिति विश्वसिति आगे रुदितः रुदन्ति, रोदिषि, रुदिथः, रुदिथ, रोदिमि, रुदिवः, रुदिमः।

टिप्पणी जागृ धातु का ऋकार अनुनासिक नहीं है, अतः वह इत् नहीं होता अतः जागृ + तिप् आने पर जागृ के ऋ का गुण होकर जागर्ति बनता है। जागृ+तस् में अपित् होने से गुण नहीं होता, जागृतः बनता है, जागृ + अन्ति आने पर अन्ति न होकर अति रह जाता है। यण् होकर जाग्रति बनता है। (देखो सूत्र २७०)

२६९. जक्षित्यादयः षट् जक्ष तथा छः अन्य धातुओं की अभ्यस्त संज्ञा हो अन्य छः धातुओं में जागृ, दरिद्रा, शास्, चकास्, दीधी और वेवी हैं। दीधी और वेवी का प्रयोग वेद में होता है। इन छः के अभ्यस्त संज्ञा होने से इनमें नाभ्यस्ताच्छतु से नुम् नहीं होता।

२७०. अदभ्यस्तात् अभ्यस्त संज्ञक धातुओं से परे प्रत्यय के आदि झ के स्थान में अत् आदेश हो। यह अन्त आदेश का बाधक है। इसी के अनुसार जक्षति, जुह्वति और जाग्रति रूप बनते हैं।

टिप्पणी— इस गण में एक धातु ऐसी है जिसके लिए विशेष नियम बनाने पड़े। वह है दुह्। इसमें तीन अक्षर हैं ये तीनों अलग-अलग अनुशासन में बंध जाते हैं। वस्तुतः बात यह है कि व्यवहार में दुहने को दोग्धि कहते हैं, उसे कैसे नियमों में बाँधा जाय यही एक समस्या है। अतः इस एक शब्द के लिए तीन सूत्र बनाने पड़े।

दुह् + तिप् = दोह् + तिप् (गुण होकर)

२७१. **दादेधातोर्घः** उपदेश में दकारादि धातु के ह के स्थान में घकार आदेश हो यदि उससे परे झलादि प्रत्यय हो या वह पद के अन्त में हो। यहाँ तिप् का ति झलादि है अतः दोघ् + ति स्थिति हुई।

२७२. **झषस्तथोर्धोऽधः** झष् से परे तकार और थकार के स्थान में धकार हो पर जुहोत्यादि की धा धातु के अवयव झष् से पर के स्थान में न हो। इसके अनुसार ति के स्थान में धि आता है— दोघ् + धि झलां जश् झशि से घ के जश्त्व होने पर दोग्धि सिद्ध हुआ।

दुह् + तस् = दुग्धः, दुह् + अन्ति = दुहन्ति।
दुह् + सि आने पर दोघ् + सि

२७३. **एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः** झषन्त एक अच् वाले बश् के स्थान में भष् आदेश हो यदि उससे परे स या ध्व हो। यहाँ दोघ् झषन्त है तथा एकाच् भी है। इस सूत्र के अनुसार इसके द् के स्थान में भष् ध होगा। धोघ् + सि, अब झलां जश् झशि से घ के स्थान में ग् होता है। तब चर्त्व होकर धोक्षि बनता है। दुग्धः, दुग्ध, दोह्मि, दुह्वः, दुह्मः।

स्तु = स्तुति करना

२७४. **उतो वृद्धि र्लुकि हलि** पित् हलादि सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर अदादि गण में उ के स्थान में वृद्धि हो पर अभ्यस्त संज्ञक धातु के उकार के स्थान में न हो। अतः स्तु + तिप् से स्तौति, इसी प्रकार यौति आदि।

अभ्यास

१. ये लड़के मेरे उद्यान से आम के फल खाते हैं।
इमे बालकाः ममोद्यानात् आम्र फलानि अदन्ति।

२. जो प्रातः नदी में स्नान करते हैं वे सुखी और स्वस्थ रहते हैं।
ये प्रातः नद्यां स्नान्ति ते स्वस्थाः सुखिनश्च भवन्ति।

३. जिस समय प्राणी जगते हैं वह मुनियों की रात होती है।
यस्यां वेलायां भूतानि जाग्रति सा मुनीनां निशा भवति।

४. जिस ईश्वर की देवता भी स्तुति करते हैं वही बड़ा है।
यं ईश्वरं देवा अपि स्तुवन्ति स एव श्रेष्ठः।

५. जो असत्य वोलते हैं तथा बुरा आचरण करते हैं वे मनुष्य नहीं।
ये असत्यं ब्रुवन्ति, दुराचरणं कुर्वन्ति ते न मानवाः।

६. हम यदि दुर्जन पर विश्वास करते हैं तो वाद को रोते हैं।
चेद् वयं दुर्जने विश्वस्मः अनन्तरं रुदिमः।

७. जो संयमी जगता है सोता नहीं वही भला आदमी है।
यः संयमी जार्गात न तु स्वपिति स एव सज्जनः।

८. यहाँ स्वच्छ वायु वहती है, सूर्य चमकता है, यही देवलोक है।
अत्र स्वच्छः पवनः वाति, सूर्यः भाति, अयमेव देवलोकः।

९. मोहन प्रातः अपनी गाय दुहता है।
मोहनः प्रातः स्वकीयां गां दोग्धि। अथवा
मोहनः प्रातः स्वकीयायाः गोः दोहनं करोति।

१०. जो द्वेष करते हैं वे अपने को मारते हैं।
ये द्विषन्ति ते स्वीयान् घ्नन्ति।

(३) **जुहोत्यादि** धातुओं का तीसरा वर्ग जुहोत्यादि है। इसकी २४ धातुओं में से केवल ६ धातुओं का उपयोग प्रायः अधिक होता है—हु, भी, हा, दा, धा, और भृ। इनके रूप वनाने के लिए केवल दस सूत्र आवश्यक हैं।

२७५. **जुहोत्यादिभ्यः श्लुः** जुहोत्यादि धातुओं से परे शप् का श्लु हो।

२७६. **श्लौ** श्लु परे रहते धातु को द्वित्व हो। इसके अनुसार हु + हु + ति स्थिति वनी।

२७७. **कुहोश्चुः** अभ्यास के कवर्ग और हकार के स्थान में चवर्ग आदेश हो जाय। (द्वित्व होने पर पहले की अभ्यास संज्ञा होती है) इससे पहले ह् के स्थान में कवर्ग झ होता है, तदनन्तर झ के स्थान में अभ्यासे चर्च से ज् होता है। अतः जुहोति रूप बन जाता है।

हु + तस् आने पर हु + हु + तः = जुहुतः रह जाता है क्योंकि अपित् होने से गुण् नहीं होता।

वहुवचन में हु + हु + झि स्थिति आने पर सूत्र २७० से झ के स्थान में अन्त न होकर अत् होता है। अतः हु + हु + अति = जु हु + अति = जुह्वति। इसी आधार पर भी + भी + ति = गुण और अभ्यास कार्य होने पर बिभेति बनता है।

भी + तस्, भी + भी + तस्, आने पर

२७८. **भियोऽन्यतरस्याम्** (६-४-११५) भी धातु से कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते विकल्प से ह्रस्व इकार अन्तादेश हो। तस् अपित् होने से ङिद्वत् है। अतः विभितः बिभीतः दो रूप बने क्योंकि विकल्प से इकार होता है। वहुवचन में भी + भी + झि आने पर झि के स्थान में अति होकर बि + भी + अति = बिभ्यति रूप बनता है। आगे विभेषि, विभीथः, विभिथः, बिभिथ, तथा बिभेमि, विभीवः, बिभिवः, बिभिमः, विभीमः रूप बनते हैं।

(३) ओहाक् = छोड़ना।

इससे केवल हा शेष रहता है। हा + हा + तिप् आने पर ह् के स्थान में ज् होता है और जहाति रूप सिद्ध हो जाता है।

२७९. **जहातेश्च** (६-४-११६) यह सूत्र २७८ के ठीक बाद का है। इसका अभिप्राय है कि हा के स्थान में भी भी की भाँति विकल्प से इकार अन्तादेश हो जाय। अतः इकार होने पर जहितः अन्यथा जहीतः रूप बनता है।

२८० **ई हल्यघोः** श्ना प्रत्यय और अभ्यस्त संज्ञक धातु के आकार के स्थान में ईकार हो यदि उससे परे ङित, कित् हलादि प्रत्यय हो। यहाँ हा अभ्यस्त संज्ञक धातु है और तस् ङित् के समान है, अतः हा के स्थान में ही हो जायेगा। इस प्रकार जहीतः रूप बनता है।

२८१. **श्नाऽभ्यस्तयोरातः** श्ना और अभ्यस्त धातु के आकार का कित् ङित् सार्वधातुक परे रहते लोप हो जाय। हा + हा + झि = हा + हा + अत् = जहा + अत्। इस सूत्र से हा के आकार का लोप होने पर जहति। इसका मूल कारण सम्भवतया यह है कि एक वचन में जहाति बनता है तो वहुवचन में कुछ और होना चाहिए अतः जहति लोक व्यवहार में रहा होगा। आगे भी इसी प्रकार जहासि, जहीथः, जहिथः, जहीथ, जहिथ, जहामि, जहीवः, जहिवः, जहीमः, जहिमः रूप होते हैं।

(४) डुभृञ् = पोषण करना

इसके अन्त में ञ् है अतः यह उभयपदी है। भृ + भृ + तिप्, बिभृ + ति, बिभर्ति (गुण होकर रूप बनता है।) तस् में गुण निषेध होने पर बिभृतः तथा झि में बिभ्रति (यण् होकर) रूप बनते हैं। इसी प्रकार बिभर्षि, बिभृथः, बिभृथ, बिभर्मि, बिभृवः बिभृमः रूप बनते हैं।

(५) डुदाञ् = देना।

दा + दा + तिप्, अभ्यास के अच् का ह्रस्व होने पर ददाति रूप बनता है।

तस् में दूसरे दा के आ का लोप होने पर द + द् + तः = दत्तः (चर्त्व से) झि में अभ्यास का ह्रस्व और झि को अत् होने पर ददति, इसी प्रकार ददासि, दत्थः, दत्थ, ददामि, दद्वः दद्मः ।

(६) डुधाञ् = धारण करना ।

दा के ही समान दधाति का रूप भी बनता है ।

धा + धा + तस् आने पर ।

२८२. **दधस्तथोश्च** जिसका द्वित्व किया हो ऐसे धा के (झषन्त धा) स्थान पर तकार, थकार, सकार तथा ध्व परे होने पर भष् हो । यहाँ द्वित्व कहने से लाभ यह है कि यह केवल सार्वधातुक लकारों में ही होगा जहाँ द्वित्व होता है । झषन्त कहने का भाव है जहाँ श्नाऽभ्यस्तयोः से आ का लोप होने पर केवल ध बचता है । तब द् के ध होने पर और ध् के चर् होने पर धत्तः बनता है । आगे दधति, दधासि, धत्थः, धत्थ, दधामि, दध्वः, दध्मः रूप बनेंगे ।

(४) **दिवादिगण** इस गण में रूप बनाना बहुत सरल होता है । इसमें लट्, लोट्, और लिङ् में शप् के स्थान पर श्यन् विकरण लगता है । श्यन् से केवल य रह जाता है । चूंकि यह अपित् है अतः धातु का गुण नहीं होता । इस गण की धातुओं के रूप धातु में य जोड़कर भ्वादि की भाँति तिप् आदि जोड़ने से बन जाते हैं ।

कुप् + य + तिप् = कुप्यति, नृत् + य + तिप् = नृत्यति । इसी प्रकार नश्यति, तुष्यति, तृप्यति, त्रस्यति, द्रुह्यति, पुष्यति, मुह्यति, विध्यति, सिध्यति, स्निह्यति, हृष्यति, क्लिश्यति, शुष्यति, क्रुध्यति ।

२८३. **हलि च** जिस् धातु के अन्त में र् या व् हो उसकी उपधा दीर्घ हो जाय हलादि प्रत्यय परे रहते ।

दिव् + य + तिप्, दीव्यति (जुआ खेलना है) रेफ का उदाहरण पृ धातु में मिलता है जो जुहोत्यादिगण की है । उसमें पिपूर्तः बनता है ।

२८४. **ओतः श्यनि** श्यन् परे होने पर धातु के ओकार का लोप हो । यथा— शो, छो, दो में ओ के लोप होने पर श्यति, छयति, द्यति रूप बनते हैं ।

शो = पतला करना, छो—काटना, दो— खण्ड खण्ड करना ।

२८५. **ग्रहि ज्या--वयि-व्यधि-वष्टि -विचति-वृश्चति-पृच्छति--भृज्जतीनां ङिति च ।** कित् ङित् प्रत्यय परे रहने पर इन धातुओं का सम्प्रसारण हो ।

ग्रह् — ग्रहण करना, क्रयादि व्यच् — ठगना — तुदादि
ज्या — बढ़ना , क्रयादि व्रश्च् — काटना — तुदादि
वेञ् — बुनना , भ्वादि प्रच्छ — पूछना — तुदादि
व्यध् — वेधना , दिवादि भ्रश्ज् — भूनना — तुदादि
वश् — इच्छा करना,

यण् का उल्टा संप्रसारण कहलाता है— यथा—

यण्	सम्प्रसारण
ऋ — का र् —	का ऋ
इ — का य —	का इ
लृ — का ल —	का लृ
उ — का व —	का उ

यहाँ व्यध् दिवादि है। इसके सम्प्रसारण में य् का इ होने पर विध् बनता है।
विध् + य + तिप् = विध्यति।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करो—

१. अल्प ज्ञान वाले जल्दी कुपित होते हैं।
अल्पज्ञाः अचिरं कुप्यन्ति।

२. जो क्रोध करते हैं वे शीघ्र ही नष्ट होते हैं।
ये कुप्यन्ति तेऽचिरं विनश्यन्ति।

३. महात्मा लोग सदा थोड़े से ही प्रसन्न होते हैं।
साधवः सदा अल्पेनैव तुष्यन्ति/प्रसीदन्ति।

४. निर्धन कम से कम धन से अपना पोषण करते हैं।
निर्धनाः न्यूनतमेन धनेन स्वीयान् पुष्यन्ति।

५. जो अपने मित्र को आपत्ति के समय छोड़ता है, वह मर्यादा नहीं रखता।
यः आपत्ति काले स्वकीयं मित्रं जहाति स परम्परां न बिभर्ति।

६. सैनिक अपने देश की रक्षा के लिए हर्ष से प्राण देते हैं।
सैनिकाः स्वदेश रक्षायै हर्षेण स्वीयान् प्राणान् ददति।

७. जो थोड़े से भय से डरते हैं वे जीवन में कुछ नहीं करते।
ये अल्पेन भयेन बिभ्यति ते जीवने किमपि न कुर्वन्ति।

८. शिकारी अपने बाणों की नोंक से मृगों को वेधते हैं।
आखेटकाः स्वकीयानां शराणामग्रभागेन (कोट्या) मृगान् विध्यन्ति।
९. ग्रीष्म में तालावों, नदियों और कुओं का जल प्रायः सूख जाता है।
ग्रीष्म काले सरोवराणां, नदीनां, कूपानाञ्च जलं प्रायः शुष्यति।
१०. जो वच्चों से स्नेह करते हैं बच्चे उनका आदर करते हैं।
ये जनाः शिशुषु स्निह्यन्ति शिशवः तेषां सम्मानं कुर्वन्ति।

(५) **स्वादिगण** इस गण में भी धातुएं वहुत कम हैं। इनमें कुल पांच प्रमुख हैं, सुञ्, चिञ्, शक्लृ, आप्लृ तथा वृञ्। इनके रूप वनाने के लिये 'श्नु' विकरण लगाया जाता है। यह निम्नलिखित सूत्र से आता है।

२८६. **स्वादिभ्यः श्नुः** स्वादिगणी धातुओं से श्नु प्रत्यय हो। 'श्नू' से नु शेष रह जाता है। नु के परे रहने पर लट्, लोट् (म० पु० एक वचन छोड़कर) और लङ् के एक वचन में गुण होता है।

सु + नु + तिप् = सुनोति (गुण होकर)
आगे सुनुतः, सुन्वन्ति, (देखो सूत्र २५७)

सुनोषि, सुनुथः, सुनुथ, सुनोमि, सुन्वः, सुनुवः, सुन्मः, सुनुमः। इसी प्रकार शक्नोति, शक्नुतः, शक्नुवन्ति, शक्नोषि, शक्नुथः, शक्नुथ, शक्नोमि, शक्नुवः, शक्नुमः।

आप्नोति	आप्नोषि	आप्नोमि	चिनोति	चिनोषि	चिनोमि
आप्नुतः	आप्नुथः	आप्नुवः	चिनुतः	चिनुथः	चिन्वः
आप्नुवन्ति	आप्नुथ	आप्नुमः	चिन्वन्ति	चिनुथ	चिन्मः

वृणोति, वृणुनः, वृण्वन्ति, वृणोषि, वृणुथः, वृणुथ, वृणोमि, वृण्वः, वृणुवः, वृण्मः, वृणुमः।

(६) **तुदादि गण** इस गण की पहली धातु तुद् है। इसी पर इस गण का नाम तुदादि पड़ा है। इस गण की धातुओं में श (अ) विकरण लगता है। यद्यपि भ्वादि में भी "अ" लगता है पर वह "अ" शप् से बचता है जो पित् होता है। पित् होने से धातु का गुण होता है। इसमें श पित् नहीं है, अतः धातु का गुण नहीं होता। बल्कि यह कहा जाय तो अनुचित नहीं कि इस गण में वे ही धातुएं रखी गयीं हैं जिनका गुण नहीं होता, इसीलिए इनमें शप् के स्थान में श विकरण रखा गया है। इसकी प्रमुख धातुएं इस प्रकार हैं—

तुद्	दुःख देना	तुदति	दिश्	उपदेश देना	दिशति
कृष्	खींचना	कृषति	व्यच्	चलना	विचति
स्पृश्	छूना	स्पृशति	उज्झ	छोड़ना	उज्झति
तृष्	प्यासा होना	तृषति	लुभ्	लोभित होना	लुभति
क्षुर्	काटना	क्षुरति	गुफ्	घिरना	गुम्फति
मिल्	मिलना	मिलति	लिख्	लिखना	लिखति
इष्	चाहना	इच्छति	कॄ	फैलाना	किरति
प्रच्छ	पूछना	पृच्छति	विद्	प्राप्त करना	विन्दति
क्षिप्	फेंकना	क्षिपति	मज्ज्	डूबना	मज्जति
मुच्	छोड़ना	मुञ्चति	सृज्	बनाना	सृजति
विश्	प्रवेश करना	विशति	स्फुर्	खिलना फड़कना	स्फुरति
नुद्	प्रेरित करना	नुदति			

२८७. **तुदादिभ्यः शः** तुदादि से श आवे ।

२८८. **शे मुचादीनाम्** मुच् आदि से श प्रत्यय परे रहते नुम् का आगम हो। मुच् आदि में लिप्, विद्, लुप्, सिच्, कृत्, खिद् तथा पिश् आते हैं। इन सभी धातुओं में नुम् का आगम होता है। इसके अनुसार इनके रूप मुञ्चति, सिञ्चति, विन्दति, लुम्पति, कृन्तति, खिन्दति (मारता है) खिन्न करता है, जो खिद् दिवादि गणी है उसका अर्थ स्वयं दुःखी होना है (खिद्यति), पिंशति ।

२८९, **किरतौ लवने** "उप" उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से सुट् का आगम हो ।

उप + कॄ + अ + ति = उप + किरति, उपस्किरति ।

२९०. **ऋत इद्धातोः** दीर्घ ॠकारान्त धातु के स्थान में इत् (इ) आदेश हो। कॄ से इ आने पर किर + अ + ति = किरति रूप बनता है ।

२९१. **हिंसायाम् प्रतेश्च** हिंसा अर्थ में उप तथा प्रति उपसर्ग पूर्वक भी कॄ से सुट् का आगम होता है। प्रतिस्किरति ।

२९२. **अचि विभाषा** अजादि प्रत्यय परे रहते गॄ धातु के स्थान में विकल्प से ल आदेश हो जाय। गिरति, गिलति ।

(७) रुधादि गण

इस गण में केवल ६ धातु प्रमुख हैं — रुधिर्, भिदिर्, युजिर्, छिदिर्, विचिर् तथा भुज ।

२९३. **रुधादिभ्यः श्नम्** रुधादि से श्नम् विकरण हो। श्नम् से केवल न शेष रहता है। रुध् + न + तिप् आने पर, "न" वस्तुतः रु के बाद आता है

क्योंकि श्नम् मित् है और मित् वाला अंश अन्तिम अच् के बाद आता है, अतः रु + न + ध् + ति यहाँ झषस्तथोर्धोऽधः से त् का ध् और धातु के धकार के स्थान में जश् हो जाता है। रुणद्धि।

तस् में रु + न + ध् + तस् आने पर पहले "श्नसोरल्लोपः" से न के अ का लोप हो जाता है। इससे रु + न् + ध् + तस् स्थिति बनती है। तस् के त् का "झषस्तथोर्धोऽधः" से † ध होने पर रु + न् + ध् + धस् आता है। अब झरो झरि सवर्णे से पहले ध् का विकल्प से लोप होता है। तब रुन्धः रूप बनता है। जब लोप न होगा तो रुन्द्धः रूप बनेगा।

रुध् + झि, रु + न + ध् + झि, रु + न + ध् + अन्ति = रुन्धन्तिः। इसी प्रकार मध्यम पुरुष में रुणत्सि, रुन्धः, रुन्ध, उत्तम पुरुष में रुणध्मि, रुन्ध्वः, रुन्ध्मः। भुज् + श्नम् + तिप्, भु + न + ज् + ति, ज के कुत्व और चर्त्व होने पर भुनक्ति रूप बनता है। आगे भुंक्तः भुञ्जन्ति, भुनक्षि, भुङ्थः, भुङ्थ, भुनज्मि, भुञ्ज्वः, भुञ्ज्मः रूप बनते हैं।

इसी प्रकार युनक्ति, युङ्क्तः, युञ्जन्ति, यह धातु प्र उपसर्ग के साथ विशेष रूप से आती हैं, यथा—

प्रयुनक्ति = प्रयोग करता है। प्रयुक्तः, प्रयुञ्जन्ति, विचिर् (अलग होना)

विनक्ति,	विनक्षि	विनच्मि
विंक्तः	विंक्थः	विंच्वः
विञ्चन्ति	विंक्थ	विंच्मः

भञ्ज (तोड़ना)

भनक्ति	भनक्षि	भनज्मि
भंक्तः	भंक्थः	भंज्वः
भञ्जन्ति	भंक्थ	भंज्मः

(८) **तनादि** इस गण में भी बहुत कम धातुएं हैं पर एक धातु ऐसी है जो नित्य काम की है। वह है डुकृञ्। इसके रूप बनाना कठिन नहीं है पर ये रूप बहुत संयत नहीं है। इस गण की पहली धातु तनु है, इसका अर्थ फैलाना है। इसी पर इस गण का नाम पड़ा है।

---

† झषस्तथोर्धोऽधः झष् से परे यदि त् या थ् हो तो उनके स्थान में जुहोत्यादि के ध् को छोड़कर ध् हो जाय। झष् में वर्ग का चौथा वर्ण आता है।

२९४. **तनादि कृञ्भ्यः उः** तनादि तथा कृञ् से उ हो। यहाँ शंका उठती है कि कृञ् इस गण में वैसे ही आती है तो सूत्र में क्यों पढ़ी गयी। इसका कारण है कि कृञ् में वे सब कार्य नहीं होते जो तनादि में होते हैं। यथा-तनादि के सिच् का लुक् होता है, पर वह कृञ् से नहीं होता। कृञ् से "उ" हो इसलिए सूत्र में पढ़ दिया गया। तनु + उ + ति = तन् + उ + ति (न का उ इत् है) सार्वधातुक प्रत्यय परे होने से तनोति रूप बना। चूंकि तस् में गुण न होगा अतः तनुतः, झि में तन् + उ + अन्ति, तन्वन्ति (गुण तथा अयादि होकर) तनोषि, तनुथः, तनुथ, तनोमि, तनुवः, तनुमः। इसी प्रकार कृ + उ + ति = करोति।

२९५. **अत् उत् सार्वधातुके** सार्वधातुक कित, ङित् प्रत्यय परे रहते उ प्रत्ययान्त कृञ् धातु के अकार के स्थान में उकार हो—कृ + उ + तस्, करुतः, इस सूत्र से कुरुतः।

२९६. **न भ कुर्छुराम्** भ संज्ञक तथा कुर और छुर की उपधा का दीर्घ न हो। बहुवचन में कृ + उ + अन्ति आने पर कर् + उ + अन्ति, २९६ से कुरु + अन्ति, यहाँ हलि च से पहले उ को दीर्घ प्राप्त होता है, पर सूत्र २९७ उसे रोक देता है, तब यण् होकर कुर्वन्ति रूप सिद्ध होता है।

कृ + उ + सि, कर् + उ + सि = करोषि, इसी प्रकार कुरुथः, कुरुथ, करोमि पूर्व सूत्रों से बन जाते हैं।

२९७. **नित्यं करोतेः** वकार तथा मकार परे रहते कृञ् धातु से परे उ का नित्य लोप हो। कुर्वः, कुर्मः,

२९८. **सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे** भूषण अर्थ में सम् पूर्वक कृञ् धातु के स्थान में सुट् का आगम हो।

सम् + करोति = संस्करोति, संस्कार करता है।

परि + करोति = परिष्करोति, ठीक करता है। परिष्कार करता है।

२९९. **समवाये च** समूह अर्थ में भी सम् और परिपूर्वक कृ धातु से सुट् का आगम होता है।

इसी प्रकार क्षिणोति, क्षिणुतः क्षिण्वन्ति आदि।

(९) **क्रयादिगण** इस गण की पहली धातु क्री है। इसी पर इस गण का नाम क्रयादि है। इस गण में ८ धातुएं प्रमुख हैं-क्रीणाति, बध्नाति, गृह्णाति, जानाति, अश्नाति, प्रीणाति, मुष्णाति तथा पुनाति।

३००. **क्रयादिभ्यः श्ना** क्रयादि धातुओं से श्ना विकरण आता है। इससे ना शेष रहता है।

क्री + श्ना + ति = क्रीनाति = क्रीणाति,

क्री + ना + तस् आने पर ई हल्यघो (२८० सूत्र) ना के स्थान में ई हो जाता है, अतः क्रीणीतः रूप वनता है। वहुवचन में क्री + ना + अन्ति आने पर (श्नाभ्यस्तयोरातः) से ना के आ का लोप होने पर क्रीणन्ति बनता है।
इसी प्रकार क्रीणासि, क्रीणीथः, क्रीणीथ, क्रीणामि, क्रीणीवः क्रीणीमः आदि रूप बनते हैं। अन्य धातुओं के सिद्ध रूप यहां व्यवहार की सरलता के लिए दिये जाते हैं।

वध्नाति —	वध्नीतः —	वध्नन्ति	अश्नाति —	अश्नीतः —	अश्नन्ति
वध्नासि —	वध्नीथः —	वध्नीथ	अश्नासि —	अश्नीथः —	अश्नीथ
वध्नामि —	वध्नीवः —	वध्नीमः	अश्नामि —	अश्नीवः —	अश्नीमः
प्रीणाति —	प्रीणीतः —	प्रीणन्ति	मुष्णाति —	मुष्णीतः —	मुष्णन्ति
प्रीणासि —	प्रीणीथः —	प्रीणीथ	मुष्णासि —	मुष्णीथः —	मुष्णीथ
प्रीणामि —	प्रीणीवः —	प्रीणीमः	मुष्णामि —	मुष्णीवः —	मुष्णीमः

ग्रह धातु में र् का सम्प्रसारण ऋ होता है। (देखो सूत्र २८५) अतः ग्रह् + ना + ति = गृह्णाति, इसी तरह गृह्णीतः गृह्णन्ति, गृह्णासि, गृह्णीथः, गृह्णीथ, गृह्णामि, गृह्णीवः, गृह्णीमः।

३०१. **प्वादीनां ह्रस्वः** पू आदि २४ धातुओं के स्थान में ह्रस्व हो यदि उनके परे शित् प्रत्यय हो। इनमें पूञ्, लूञ्, धूञ् प्रमुख हैं— इनके रूप इस प्रकार चलते हैं—

पुनाति —	पुनीतः —	पुनन्ति	धुनाति —	धुनीतः —	धुनन्ति
पुनासि —	पुनीथः —	पुनीथ	धुनासि —	धुनीथः —	धुनीथ
पुनामि —	पुनीवः —	पुनीमः	धुनामि —	धुनीवः —	धुनीमः

लुनाति —	लुनीतः —	लुनन्ति
लुनासि —	लुनीथः —	लुनीथ
लुनामि —	लुनीवः —	लुनीमः

१० **चुरादिगण** यह गण भी बहुत उपयोगी है। भ्वादिगण की भाँति इसमें भी बहुत सी धातुएं हैं। इस गण की पहली धातु चुर् है अतः गण का नाम चुरादि गण

पड़ा। जैसा पहले कहा जा चुका है कि भ्वादि, दिवादि तुदादि तथा चुरादि मिलकर हमारा तमाम शाब्दिक व्यवहार चला सकती है। इन सभी के रूप लगभग एक ही रीति से चलते हैं और बड़ी सरलता से बनाये जा सकते हैं।

इसकी निम्नलिखित धातुएँ प्रमुख हैं—

चुर् —	चुराना —	चोरयति
गण —	गिनना —	गणयति
वृधु —	बढ़ाना —	वर्धयति
चर् —	चलाना —	चारयति
भू —	विचारना —	भावयति
सम्+पद्—	करना —	सम्पादयति
अंक —	चिह्न करना—	अंकयति
मृग —	खोजना —	मार्गयति
पूर —	भरना —	पूरयति
मृज् —	स्वच्छ करना—	मार्जयति
अर्प —	देना —	अर्पयति

सूच —	वताना —	सूचयति
खण्ड —	तोड़ना —	खण्डयति
गर्ह —	निन्दा करना —	गर्हयति
गवेष् —	खोजना —	गवेषयति
घुष् —	घोषित करना—	घोषयति
चित्र —	चित्रित करना —	चित्रयति
भूष —	सजाना —	भूषयति
चिन्त —	विचारना —	चिन्तयति
चूर्ण —	तोड़ना चूर चूर करना—	चूर्णयति
छद् —	ढकना —	छादयति
पाल —	पालना —	पालयति

आन्दोल् —	आन्दोलित करना —	आन्दोलयति
कथ् —	कहना —	कथयति
ईर् —	प्रेरित करना—	ईरयति
कीर्त —	गुण बताना —	कीर्तयति

क्षाल —	धोना —	क्षालयति
रच् —	बनाना —	रचयति
युज् —	जोड़ना —	योजयति
मण्ड —	मढ़ना — / सजाना —	मण्डयति

रूप	— बनाना —	रूपयति	वाद	— बजाना —	वादयति
लक्ष	— संकेत करना —	लक्षयति	वच्	— पढ़ना —	वाचयति
लुच्	— देखना —	लोचयति	वार्	— रोकना —	वारयति
लंघ	— लाँघना —	लंघयति	वर्ण	— वर्णन करना —	वर्णयति

इस गण की धातुओं में णिच् विकरण लगता है। सार्वधातुक लकारों में शप् भी आता है। णिच् से केवल इ शेष रहती है। यह इ प्रेरणार्थक धातुओं की भाँति लगती है परन्तु वह स्वार्थ की बोधक होती है।

३०२. **चुरादिभ्यो णिच्** चुरादि से णिच् हो।

चुर् + इ आने पर "पुगन्तलघूपधस्य" से गुण हो जाता है। चोर् + इ = चोरि। तब यह सनाद्यन्ता–धातवः से धातु संज्ञक हो जाता है।

तब चोरि + शप् + तिप् आता है।

चोरे+अ+ति (सार्वधातुकार्धधातुकयोः से गुण होकर) = चोरयति। इसी प्रकार– कथ्+इ = कथि, यहाँ एक शंका होती है कि णिजन्त होने से कथ् के उपधा की वृद्धि क्यों न हो गयी, जब कि अतोलोपः से "थ" के "अ" का लोप हो जाता है। इसका समाधान अगला सूत्र करता है।

३०३. **अचः परस्मिन् पूर्वविधौ** पर को निमित्त मानकर जो अजादेश होता है वह स्थानी के समान होता है, यदि कहीं स्थानीभूत अच् से पूर्व का कार्य करना हो। इसी के अनुसार कथ, गण, आदि अकारान्त धातुओं के "अकार लोप" के स्थानिवद् भाव होने से अत उपधाया से अकार की वृद्धि नहीं हुई। इसके अनन्तर कथि को भी सनाद्यन्ता से धातु संज्ञा मान- कर शप् आदि होते हैं।

---

† सन् — क्यच् — काम्यच् — क्यङ् — क्यष्, क्विप्, णिच् यङ्, यक्, आय, ईय, णिङ् सनादि प्रत्यय कहे जाते हैं।

कथि + अ + तिप् = कथे + अ + ति = कथयति ।
इसी प्रकार अन्य धातुओं के रूप बन जाते है ।

गणयति — गणयसि — गणयामि	कथयति — कथयसि — कथयामि
गणयतः — गणयथः — गणयावः	कथयतः — कथयथः — कथयावः
गणयन्ति — गणयथ — गणयामः	कथयन्ति — कथयथ — कथयामः
विचारयति—विचारयसि —विचारयामि	भूषयति — भूषयसि — भूषयामि
विचारयतः—विचारयथः — विचारयावः	भूषयतः — भूषयथः — भूषयावः
विचारयन्ति—विचारयथ — विचारयामः	भूषयन्ति — भूषयथ — भूषयामः

अभ्यास

१. तुम इस बात को कहते अवश्य हो पर ऐसा कैसे हो सकता है ।
त्वमिमां वार्तां खलु कथयसि किन्तु कथमिदं सम्भाव्यते ?

२. भुखे को कुछ भी अच्छा नहीं लगता ।
बुभुक्षिताय न किमपि रोचते ।

३. ईश्वर संसार में सभी जगह विद्यमान है ।
ईश्वरः जगति सर्वत्र उपस्थितः ।

४. दरिद्रता से सैकड़ों कष्ट उत्पन्न होते हैं ।
दारिद्रयात् प्रभवन्ति कष्टान्यनेकानि ।

५. मुझे अपने पिता की अस्वस्थता व्याकुल कर रही है ।
स्वपितुः अस्वस्थता मां व्यथयति, आकुलयति, आकुली करोति ।

६. मेरा शरीर आगे जा रहा है पर मन पीछे चलता है ।
शरीरं मदीयं अग्रे धावति किन्तु मनः पृष्ठतः गच्छति, नानुधावति ।

७. आज सभी लोग जननायक राम का अनुसरण करते हैं ।
सम्प्रति सर्वे जनाः लोक नायकं राममनुसरन्ति ।

८. चन्द्रमा प्रातः अपनी थोड़ी सी किरणों सहित नीचे गिर रहा है ।
प्रातः काले चन्द्रः स्वकीयैः संक्षिप्त किरणैः सह अस्त शिखरं प्रविशति ।

९. श्रेष्ठ आदमी अपनी आपत्ति से शीघ्र उठ जाता है ।
श्रेष्ठः जनः स्वापदः अचिरं समुन्नतिं गच्छति ।

१०. बादल आकाश में नीचे आते हैं और वर्षा करते हैं ।
मेघाः गगनात् अधः अवतरन्ति वर्षन्ति च ।

११. उन लोगों की सारी योजनाएँ सफल हो गयीं ।
तेषां जनानां सर्वाः योजनाः सफलीभूताः जाताः ।

१२. ये बालक विद्याविनीत, जितेन्द्रिय और नीतिज्ञ हैं ।
इमे बालकाः विद्याविनीताः जितेन्द्रियाः नीतिमन्तश्च सन्ति ।

१३ सभी लोग यश कीर्ति और सुख चाहते हैं पर अपना धर्मपालन करने में किसी की रुचि नहीं है ।
सर्वे जनाः यशः कीर्तिं सुखं च वाञ्छन्ति किन्तु स्वधर्मपालने न कस्यापि रुचिः ।

१४. अयोध्या में सभी सुखी और सम्पन्न हैं ।
अयोध्यायां सर्वे सुखिनः सम्पन्नाश्च सन्ति ।

१५. यहाँ की नगरी बड़े बड़े मार्गों में विभक्ति है ।
अत्रत्या नगरी सु विभक्त महापथा ।

१६. सुन्दरता किसे अच्छी नहीं लगती ।
सौन्दर्यं कस्मै न रोचते ?

१७. मनोरथों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं ।
मनोरथानामगतिर्न विद्यते ।

१८. जैसा जैसा श्रेष्ठ करते हैं वैसा ही संसार चलता है ।
यद् यद् आचरति श्रेष्ठः लोकस्तदनु वर्तते ।

१९. स्वेच्छाचारी निन्दा की चिन्ता नहीं करते ।
न कामवृत्तिः वचनीयमीक्षते ।

२०. तेजस्विओं की आयु नहीं देखी जाती ।
तेजसां हि न वयः समीक्षते ।

२१. धन कम होने पर भूख अधिक लगती है ।
धनक्षये वर्धते जाठराग्निः ।

२२. धीर लोग अपने निश्चय से नहीं हटते ।
न निश्चितार्थात् प्रचलन्ति / विरमन्ति धीराः ।

२३. हंसों का मन मान सरोवर के विना नहीं लगता ।
रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना ।

(२) (अ) निम्नलिखित गद्यांश का शीर्षक खोजो।

संसारे वहूनि वस्तूनि सन्ति परं तेषु विद्या सर्वश्रेष्ठं वस्तु भवति। वस्तुतः मानवः जन्मना न मानवः अपितु विद्ययैव स मानवः। विद्यया हीनः न लोके कीर्तिमाप्नोति। कः धर्मः कोऽधर्मः इति विद्या एव शिक्षयति। सर्वेषु धनेष्वपि विद्या एव प्रधानं धनं यतः इयं व्ययेन न क्षीणतामुपयाति। अन्यानि धनानि चौराः चोरयन्ति किन्तु न कोऽपि इमां अपहर्तुं समर्थः। विद्ययाभूषितः मानवः अलकरणैः विनाऽपि सदा शोभते। इयमभ्यासेन आयाति, शनैः शनैः वृद्धिं गच्छति इत्यपि सत्यम्।

(२ आ) कालेलिखे पदों में धातुओं का गण वताओ। उनके लट् लकार में अन्य रूप वताओ।

३ निम्नलिखित सूत्रों की व्याख्या करो—

कर्तरिशप्, झोन्तः, पुगन्त लघूपधस्य, सार्वधातकमृपित्, रुदादिभ्यः सार्वधातुके।

४ निम्नलिखित धातुओं के रूप लट् लकार में वनाओ—

या, इष्, विद्, कृ, हा, गण, कथ।

५ किसी विषय पर १० पंक्तियों में अपने विचार प्रकट करो।

६ निम्नलिखित श्लोकों का अर्थ अपनी मातृभाषा में लिखो

(i) विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

(ii) अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात्॥

(iii) नक्षत्रभूषणं चन्द्रः नारीणां भूषणं पतिः।
पृथिव्या भूषणं राजा विद्या सर्वस्य भूषणम्॥

(iv) न चौरहार्यं न राजहार्यं भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्ययेकृते वर्धत एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्॥

अध्याय १२

आत्मनेपदी

आत्मने पदी धातुओं में निम्नलिखित प्रत्यय लगाये जाते हैं।

त	थास्	इड्
आताम्	आथाम्	वहि
झ	ध्वम्	महिङ्

३०४. **टित् आत्मने पदानां टेरे** टित् लकारों में आने वाले प्रत्ययों की टि के स्थान में एकार आदेश हो। लट्, लिट्, लुट्, लोट्, लकार टित् होतें हैं।
(i) एध् + त आने पर शप् आता है। एध् + अ + त इसमें त की टि का एकार करने से एधते रूप बनता है।

३०५. **आतोङितः** अकार से परे ङित प्रत्ययों के आकार के स्थान में इय् आदेश हो। एध् + अ + आताम् आने पर एध् अ + इय् + ताम् = एधेय्-ताम् स्थिति बनती है। लोपो व्योर्वलि से य् का लोप होने पर तथा ताम् के टि का एकार होने पर एधेते रूप बनता है।

झ में एध् + अ + झ = एध् + अ + अन्त, एध् + अन्त = अतो गुणे से पर रूप होकर एधन्त तथा टि का एकार होने पर एधन्ते बनता है।

३०६. **थासः से** टित् लकारों से परे थास् के स्थान में से आदेश हो। एध् + अ + से, = एधसे। एध् + अ + आथाम् आने पर एध् + इय् + थाम्, एधे + थाम् =(य् लोप होने पर) एधेथे (टि का ए), मध्य पु० बहुवचन में एध् + अ + ध्वम् आने पर एध + ध्वम् तथा टि का ए होकर एधध्वे। उत्तम पुरुष में एध् + अ + इ आने पहले इ के स्थान पर ए (टि का) तथा अ का पर रूप होने पर (अतो गुणे) एधे बनता है।

एध् + अ + वहि में एकार होने पर एध + वहे होता है तथा अतो दीर्घो यञि से एधावहे बनता है। एधामहे भी इसी प्रकार बनता है।

इसी आधार पर अन्य आत्मनेपदी धातुओं के रूप चलते हैं — यथा—

सेवते	सेवसे	सेवे	शोभते	—	शोभसे	—	शोभे
सेवेते	सेवेथे	सेवावहे	शोभेते	—	शोभेथे	—	शोभावहे
सेवन्ते	सेवध्वे	सेवामहे	शोभन्ते	—	शोभध्वे	—	शोभामहे

अन्य धातुएँ

रुच्	— अच्छा लगना —	रोचते		जृम्भ	— जम्हाई लेना —	जृम्भते
सह	— सहना —	सहते		त्रप	— लज्जित होना —	त्रपते
ईह	— चाहना —	ईहते		शिक्ष्	— पढ़ना —	शिक्षते
कम्प	— काँपना —	कम्पते			(यह धातु जब परस्मैपद होती है तो इसके रूप चुरादिगण में शिक्षयति आदि बनते है, उसका अर्थ पढ़ाना होता है।)	
गाह	— गहराई से देखना —	गाहते		त्वर्	— शीघ्रता करना —	त्वरते
भास्	— चमकना —	भासते		दीक्ष्	— सिखाना —	दीक्षते
यत्	— यत्न करना —	यतते		बाध्	— रोकना —	बाधते
घट्	— घटना —	घटते		व्यथ्	— दुःखी होना —	व्यथते
चेष्ट्	— चेष्टा करना —	चेष्टते		भ्राज्	— चमकना —	भ्राजते

याच्	— माँगना —	याचते	वेप्	— काँपना —	वेपते
राज्	— शोभा देना —	राजते	क्षम्	— समर्थ होना —	क्षमते
लभ्	— पाना —	लभते	भाष्	— बोलना —	भाषते
वन्द्	— वन्दना करना —	वन्दते	भिक्ष्	— माँगना —	भिक्षते
मुद्	— प्रसन्न होना —	मोदते	रम्	— रमण करना —	रमते

३०७. **कमु—चाहना** यह बड़ी उपयोगी धातु है। इसके रूप अपने ढंग से चलते हैं।

कमेर्णिङ् कम् धातु से णिङ् हो। यह णिङ् स्वार्थ में होता है। सामान्य रूप से कम्+ते कमते बनता पर लोक में कामयते का प्रयोग मिलता है अतः इससे णिङ्

करना पड़ा। णिङ् णित् है. इसमें से केवल इ शेष रह जाता है। कम्+इ=कमि अत् उपधायाः से वृद्धि होने पर कामि बनता है। कामि+अ+त आदि आने पर गुण होकर कामयते रूप बनता है। आगे कामयेते, कामयन्ते आदि उसी प्रकार बनते हैं।

३०८. **उपसर्गस्यायतौ** यदि उपसर्ग से परे अय् धातु हो तो उपसर्ग के र् के स्थान में ल् हो जाय। यथा– परा + अय् + त=पलायते (टि का ए होने पर) इसी प्रकार पलायेते, पलायन्ते आदि।

(२) **अदादिगण** शीङ् -- सोना

३०९. **शीङ् सार्वधातुके गुणः** शीङ् धातु से सार्वधातुक प्रत्यय परे रहने पर गुण हो। यहाँ एक शंका है कि शी इगन्त है, उसका गुण तो सार्वधातुक परे वैसे ही होना था, इस सूत्र की क्या आवश्यकता। इसका समाधान यह है कि शीङ् ङित् है। इसी आधार पर वह आत्मनेपदी है। आत्मनेपद के सभी प्रत्यय जो इसमें लगते हैं अपित् होने के कारण ङित् वद् होते हैं अतः कहीं भी गुण नहीं होता। पर व्यवहार में शेते कहते हैं अतः इस सूत्र से उसका निराकरण किया गया। शेते। आताम् में शी + आताम् = शे + आताम् = शयाताम् = शयाते (टि का एकार होने पर)

३१०. **आत्मने पदेष्वनतः** अकार भिन्न वर्ण से परे आत्मने पदी झ के स्थान में अत् हो। यह झोऽन्तः का अपवाद है।

३११. **शीङो रुट्** शीङ् से परे झ के आदेश "अत्" से पूर्व रुट् का आगम हो। शी + र् + अत् + अ, गुण होकर टि का ए होने पर शेरते।
आगे शेषे, शयाथे, शेध्वे, शये, शेवहे, शेमहे रूप पूर्व सूत्रों से बन जाते हैं।

इङ् — अध्ययने

इङ् और इक् (स्मरणे) धातु अधि उपसर्ग के विना नहीं आती। इङ् ङित् होने से आत्मने पदी है। अधि + इ + त, अधि + इ + अ + त, अधीते, अचिश्नु से इय् होकर अधीयाते, अधीयते। अधीषे, अधीयाथे, अधीध्वे।

(३) **जुहोत्यादि** इस गण में भृञ् (पालन करना), माङ् (नापना) ओहाङ् (जाना), डुधाञ् (धारण करना), तथा डुदाञ् (देना) प्रमुख हैं।

३१२. **भृञामित्** भृञ् माङ् और ओहाङ् के श्लु के विषय में अभ्यास को इकार अन्तादेश हो। मा+मा+त आने पर इस सूत्र से मि+मा+त होता है। ई हल्यघोः से दूसरे मा के आकार का ईकार होकर मिमीते रूप बनता है।

आताम् में मा के आकार का श्नाभ्यस्तयोरातः से लोप होकर मिमाते रूप सिद्ध होता है। झ में आकार का लोप होने पर अत् मिलता है। तव मिमते रूप बनता है। इसी प्रकार जिहीते, जिहाते, जिहते आदि। फिर मिमीषे, मिमाथे, मिमीध्वे, मिमे, मिमीवहे, मिमीमहे, भृ से बिभृते, बिभ्राते, बिभ्रते, बिभृषे, बिभ्राथे, बिभृध्वे, बिभ्रे, बिभृवहे, बिभ्रमहे आदि

इसी प्रकार दत्ते, ददाते, ददते, दत्से. ददाथे, दद्ध्वे, ददे, दद्वहे, दद्महे। धत्ते दधाते—दधते, धत्से, दधाथे, धद्ध्वे, दधे, दध्वहे. दध्महे आदि।

(४) **दिवादि** इस गण में आत्मनेपद में भी कुछ उपयोगी और सरल धातुएँ हैं- यथा—षूङ् – पैदा करना, दूङ् दुःखी होना, डीङ्–उड़ना, माङ्– नापना मीञ्–हिंसा करना, पीङ् – पीना,जनि – पैदा होना, दीप् – चकमना पद् – चलना, विद्–स्थित होना, बुध–समझना, युध्–लड़ना, सृज्–बनाना, मन–मानना, युज्–लगाना,

इनके रूप बनाते समय दिवादिभ्यः श्यन् से य जोड़ दिया जाता है। शेष कार्य सामान्य हैं।

३१३. **ज्ञाजनोर्जा** जनि और ज्ञा के स्थान में शित् प्रत्यय परे रहते जा आदेश हो जाय। जा + य + ते = जायते। आगे जायेते, जायन्ते, जायसे–जायेथे – जायध्वे, जाये, जायावहे जायामहे आदि।

इसी प्रकार सूयते, दूयते, मायते, पीयते, दीप्यते, पद्यते, बुध्यते, युध्यते, सज्यते, मन्यते, युज्यते, डीयते आदि रूप बनते है।

(५) **स्वादिगण** इस गण में केवल ५ धातु प्रमुख हैं- सूञ्, (अभिषवे), चिञ् (चयने) धूञ् (काँपना), अशू (व्याप्त होना)। स्तृञ् इनके रूप पूर्व सूत्रों से ही बन जाते हैं। (बिछाना)

सुनुते —	सुनुषे —	सुन्वे	चिनुते —	चिनुषे —	चिन्वे
सुन्वाते —	सुन्वाथे —	सुनुवहे	चिन्वाते —	चिन्वाथे —	चिनुवहे, चिन्वहे
सुन्वते —	सुनुध्वे —	सुनुमहे	चिन्वते —	चिनुध्वे —	चिनुमहे, चिन्महे
धूनुते —	धूनुषे —	धून्वे	अश्नुते —	अश्नुषे —	अश्न्वे
धून्वाते —	धून्वाथे —	धूनुवहे	अश्न्वाते —	अश्न्वाथे —	अश्न्वहे
धून्वते —	धूनुध्वे —	धूनुमहे	अश्न्वते —	अश्नुध्वे —	अश्नवहे

स्तृणुते — स्तृणुषे — स्तृण्वे

स्तृण्वाते — स्तृण्वाथे — स्तृणुवहे, ण्वहे,

स्तृण्वते — स्तृणुध्वे — स्तृणुमहे, ण्महे,

(६) **तुदादिगण** इस गण में दस धातु आत्मने पद में प्रमुख हैं।

नुद् —	प्रेरणा देना —	नुदते	सिच् —	सींचना	— सिञ्चते
कृष् —	खींचना —	कृषते	लिप् —	लीपना	— लिम्पते
मिल् —	मिलना —	मिलते	जुष् —	प्रेम करना —	जुषते
मुचलृ —	छोड़ना —	मुञ्चते	विजी —	दुःखी होना —	(उद्)विजते
विदलृ —	पाना —	विन्दते	मृङ् —	मरना —	म्रियते

म्रियते —	म्रियसे —	म्रिये	मुञ्चते —	मुञ्चसे —	मुञ्चे
म्रियेते —	म्रियेथे —	म्रियावहे	मुञ्चेते —	मुञ्चेथे —	मुञ्चावहे
म्रियन्ते —	म्रियध्वे —	म्रियामहे	मुञ्चन्ते —	मुञ्चध्वे —	मुञ्चामहे

(७) **रूधादिगण** रुधादिगण में कोई भी आत्मने पदी उल्लेखनीय नहीं है

(८) **तनादिगण** इस गण में तनु, षणु, कृञ् और मनु प्रमुख है। इनके रूप भी पूर्व सूत्रों से ही बन जाते हैं। कुछ यहाँ दिये जाते हैं

कुरुते — कुरुषे — कुर्वे
कुर्वाते — कुर्वाथे — कुर्वहे
कुर्वते — कुरुध्वे — कुर्महे
इसी प्रकार मनुते — मनुषे — मन्वे
मन्वाते — मन्वाथे — मन्वहे
मन्वते — मनुध्वे — मन्महे

(९) **क्रयादिगण** इस गण की भी दस धातुएँ आत्मनेपद में प्रमुख हैं। इनके रूप भी पूर्व सूत्रों से ही बन जाते हैं।

क्रीञ्	खरीदना	क्रीणीते	युञ्	बांधना	युनीते
प्रीञ्	प्रसन्न करना	प्रीणीते	पुञ्	पवित्र करना	पुनीते
श्रीञ्	पकाना	श्रीणीते	लुञ्	काटना	लुनीते
मीञ्	मारना	मीनीते	ज्ञा	जानना	जानीते
सिञ्	बांधना	सिनीते	ग्रह	ग्रहण करना	गृह्णीते

क्रीणीते में क्री+श्ना+त आने पर ईहल्यघोः से ना के आ के स्थान में ई हो जाती है। तब टि का ए करके रूप बनता है। आताम् में क्री+श्ना+आताम् आने पर श्नाभ्यस्तयोरातः से श्ना के आकार का लोप हो जाता है। तब क्री+न् +आताम् में टि का ए करने पर क्रीणाते रूप बनता है।

झ में क्री+श्ना+अत आने पर श्ना के आकार का लोप तथा अत् की टि का ए होकर क्रीणते रूप बनता है। इसी प्रकार क्रीणीषे– क्रीणाथे – क्रीणीध्वे, क्रीणे– क्रीणीवहे–क्रीणीमहे आदि। अन्य धातुओं के रूप—

प्रीणीते	प्रीणीषे	प्रीणे	पुनीते	पुनीषे	पुने
प्रीणाते	प्रीणाथे	प्रीणीवहे	पुनाते	पुनाथे	पुनीवहे
प्रीणते	प्रीणीध्वे	प्रीणीमहे	पुनते	पुनीध्वे	पुनीमहे
वृणीते	वृणीषे	वृणे	गृह्णीते	गृह्णीषे	गृह्णे
वृणाते	वृणाथे	वृणीवहे	गृह्णाते	गृह्णाथे	गृह्णीवहे
वृणते	वृणीध्वे	वृणीमहे	गृह्णते	गृह्णीध्वे	गृह्णीमहे

१० **चुरादिगण** इस गण में अनेक धातुएँ उभयपदी होती हैं। पर लट् लकार के आत्मने पद के रूप बनाने के लिए कोई नया सूत्र नहीं है।

इस गण में निम्नलिखित धातु प्रमुख हैं।

चुर् — चुराना — चोरयते,	वि	+	जि	= विजयते
चिन्त — विचारना — चिन्तयते	परा	+	जि	= पराजयते
कथ् — कहना — कथयते	(सामान्य जि भ्वादिगणी परस्मैपदी है)			

भक्ष्	— खाना —	भक्षयते	आप्	— पहुँचाना —	आपयते
अघ	— पाप करना —	अघयते	ईर्	— प्रेरित करना —	ईरयते
क्षल्	— धोना —	क्षालयते	गण्	— गिनना —	गणयते
गर्ह	— निन्दा करना —	गर्हयते	त्रुट	— तोड़ना —	त्रोटयते
चित्	— सोचना —	चेतयते,	दण्ड	— दण्ड देना —	दण्डयते
धृ	— धारण करना —	धारयते	पीड्	— पीड़ा पहुँचाना —	पीडयते
भर्त्स	— डाँटना —	भर्त्सयते	भूष्	— सजाना —	भूषयते
मण्ड	— सजाना —	मण्डयते	मृग	— खोजना —	मृगयते
मृष	— क्षमा करना —	मर्षयते	मृज्	— स्वच्छ करना —	मार्जयते
युज्	— लगाना —	योजयते	रच्	— रचना —	रचयते
रस्	— स्वाद लेना —	रसयते,	लंघ्	— लाँघना —	लंघयते,

चुरादि गण की धातुएँ उभयपदी होती हैं। पर इसके परस्मैपद के रूपों से ही बहुत सा कार्य चल जाता है।

चोरयते — चोरयसे — चोरये	चिन्तयते — चिन्तयसे — चिन्तये
चोरयेते — चोरयेथे — चोरयावहे	चिन्तयेते — चिन्तयेथे — चिन्तयावहे
चोरयन्ते — चोरयध्वे — चोरयामहे	चिन्तयन्ते — चिन्तयध्वे — चिन्तयामहे

अभ्यास

(१) निम्नलिखित अंश का अर्थ हिन्दी में लिखो–

(अ) वयमीश्वरं प्रणमामः। भक्ताः देवं पुष्पैः पूजयन्ति। देवः लोकान् रक्षति। ईश्वरः मनुजान्, खगान्, पर्वतान्, वृक्षान् सृजति। लोकाः परमेश्वरस्य प्रसादेन जीवन्ति, भक्तानां रक्षणाय देवः लोके अवतरति। ईश्वरः सर्वत्र विराजते, तस्यैव भासा सर्वमिद जगत् भाति।

(आ) करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तं।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं वालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥

(इ) एको हि दोषो गुणसन्निपाते।
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥

(ई) कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

(उ) साक्षरा विपरीता श्चेद् राक्षसा एव केवलम्।
सरसो विपरीतश्चेत् सरसत्वं न मुञ्चति ॥

(ऊ) विकार हेतौ सति विक्रियन्ते।
येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥

(ए) धवलयति समग्रं चन्द्रमा जीवलोकं,
किमिति निजकलङ्कं नात्मसंस्थं प्रमार्ष्टि।
भवति विदितमेतत् प्रायशः सज्जनानाम्
परहित निरतानामादरो नात्मकार्ये ॥

(ऐ) गुणायन्ते दोषाः सुजनवदने दुर्जनमुखे।
गुणा दोषायन्ते तदिदमपि नो विस्मयपदम् ॥
महामेघः क्षारं पिबति कुरुते वारि मधुरम्।
फणी क्षीरं पीत्वा वमति गरलं दुःसहतरम् ॥

(ओ) संसारकटुवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे।
सुभाषित रसास्वादः संगतिः सुजने जने ॥

(औ) प्रकृत्या सुरम्यं विशालं प्रकामं,
सरित्तारहारैः ललामं निकामम्।
हिमाद्रिर्ललाटे पदे चैव सिन्धुः
प्रियं भारतं सर्वथा दर्शनीयम् ॥

(च) धनानां निधानं धरायां प्रधानम् ।
इदं भारतं देवलोकेन तुल्यं
यशो यस्य शुभ्रं विदेशेषु गीतं
प्रियं भारतं तत् सदा पूजनीयम् ।।

२. यशो यस्य, अमृतोपमे, विपरीतश्चेद् में सूत्र सहित सन्धि बताओ।

३. भा, या, इण्, अस् किस गण की धातु हैं। इनके लट् लकार के रूप लिखो।

४. तुदादि गण और दिवादि गण के रूपों में क्या अन्तर होता है और क्यों।

५. जायते, और शेते की मूल धातु क्या हैं, ये रूप कैसे बने !

६. निम्न लिखित श्लोकों से पर्याय छांटो—

शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः ।
ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः ।।

भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशोमृडः ।
मृत्युञ्जयः कृत्तिवासाः पिनाकी प्रमथाधिपः ।।

उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठः शितिकण्ठः कपालभृत् ।
वामदेवो महादेवो विरूपाक्षस्त्रिलोचनः ।।

कृशानुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहितः ।
हरः स्मरहरो भर्गस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ।।

गङ्गाधरोऽन्धकरिपुः क्रतुध्वंसी वृषध्वजः ।
व्योमकेशो भवो भीमः स्थाणु रुद्र उमापतिः ।।

७. निम्न लिखित शब्दों के आधार पर वसन्त का वर्णन करो—

प्रकामं, रमणीयता, कुसुमाकरः, सुरभिशीतलः, पादप पंक्तयः, सुषमा, वनानि, उपवनानि, विभूषिता, वसुमती, वसुन्धरा, वासन्तीव, आभाति, कमनीयम्, मनोहरं, निखिलम्, नवीना शोभा चेतः, जनः, कोकिलः, कूजितम्, सहकारशाखा, पुष्पिताः लताः, मधुलोलुपाः, भ्रमराः हृदयम्, आह्लादकरः, कोमलकिसलयाः मञ्जुलमञ्जरयः, विमलं-जलम्, विहरन्ति ।

अध्याय १३

लङ् लकार (भूतकाल)

आज के कार्य को छोड़कर अन्य सभी बीती हुई बातों के लिए लङ् लकार का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत में भूतकाल के अन्य स्वरूपों को बताने वाले दूसरे लकार भी हैं— जैसे लिट्- जो बहुत प्राचीन काल की घटना के लिए आता है। यह घटना परोक्ष की होती है।

लुङ्— जो सामान्य भूत बतलाता है।

लृङ्— जो हेतुमद भूत बतलाता है।

पर सबसे सरल लङ् ही होता है। आज इसी का प्रयोग अधिक किया जा रहा है।

३१४. **लुङ् लङ् लृङ्क्ष्वड्–उदात्तः** लुङ्, लङ् और लृङ् परे रहने पर धातु से पहले अट् का आगम हो। अट् से केवल "अ" शेष रहता है। अतः अ+भू+तिप् आने पर।

३१५. **इतश्च** ङित् लकारों में तिप् की इ का लोप हो। अ + भू + अ + त् = अभवत् (गुण होकर)

३१६. **तस्–थस्–थ–मिपां तांतंनामः** ङित् लकारों के चार तस्-थस्-थ और मिप्
(ताम्–तम्–त–अम्)
प्रत्ययों के स्थान में क्रम से ताम्–तम्–त और अम् हों। अर्थात् तस् के स्थान में ताम्, थस् के स्थान में तम्, थ के स्थान में त और मिप् के स्थान में अम् हो। इसके अनुसार तस् में अ+भू+अ+ताम् आने पर अभवताम् रूप सिद्ध होता है।

झि में अ+भव्+अ+अन्त् आने पर अभवन् त् स्थिति बनती है। इससे संयोगान्तस्य लोपः से त् का लोप हो जाता है और अभवन् रूप सिद्ध होता है।

मध्यम पुरुष एकवचन में अ + भू + अ+सि आता है, इससे सि की इ के लोप होने पर अभवस् स्थिति होती है। स् का रुत्व विसर्ग होकर अभवः रूप बनता है। द्विवचन में थस् के स्थान पर तम् होने से अभवतम्, और बहुवचन में थ के स्थान पर त होकर अभवत रूप बनता है। ध्यान रहे प्रथम पुरुष एकवचन में त् हलन्त रहता है और इसमें त अकार सहित होता है। मिप् में अम् होकर अभवम् रूप बनता है।

३१७. **नित्यं ङितः** ङित् लकारों के उत्तम पुरुष के स् का नित्य लोप हो। अ + भू + अ + वस् आने पर अभव + वस् स्थिति बनती है। यत्रादि सार्व

धातुक प्रत्यय परे होने पर "अतो दीर्घो यञि" से अभवाव, तथा मस् में अभवाम रूप बनते हैं। इस प्रकार केवल चार सूत्रों से भ्वादि गण हलादि धातुओं के लङ् लकार के रूप बन जाते हैं। इन रूपों को एक साथ इस प्रकार दिखाया जाता है—

अवसत् — अवसः — अवसम्	अवदत् — अवदः — अवदम्
अवसताम्— अवसतम् — अवसाव	अवदताम् — अवदतम् — अवदाव
अवसन् — अवसत — अवसाम	अवदन् — अवदत — अवदाम
अपश्यत् — अपश्यः — अपश्यम्	अरक्षत् — अरक्षः — अरक्षम्
अपश्यताम्— अपश्यतम् — अपश्याव	अरक्षताम् — अरक्षतम् — अरक्षाव
अपश्यन् — अपश्यत — अपश्याम	अरक्षन् — अरक्षत — अरक्षाम

इसी प्रकार अन्य धातुओं के रूपों का अभ्यास अपेक्षित है।

टिप्पणी यदि किसी धातु के साथ उपसर्ग लगा हो तो पहले उपसर्ग हटा कर लङ् का रूप बनाना चाहिए— उसके पश्चात् उपसर्ग जोड़ना चाहिए। यथा—

निवसति, निपतति, विचारयति में नि तथा वि उपसर्ग हैं। अतः पहले इनके रूप अवसत्, अपतत् और अचारयत् बनाना होगा। उसके अनन्तर नि + अवसत् = न्यवसत्, नि + अपतत् = न्यपतत्, वि + अचारयत् = व्यचारयत् बनेंगे। इसी प्रकार अन्य रूप बनाये जा सकते हैं—

न्यवारयत् — रोका, प्राविशत् — प्रवेश किया,
उपागच्छत् — पहुँचा, प्राणमत् — प्रणाम किया,
अन्वभवत् — अनुभव किया, समभवत् — संभव हुआ।

३१८. **आडजादीनाम्** लुङ्, लङ् और लृङ् परे रहते अजादि अङ्ग को आट् का आगम हो।

अत्– (चलना). अर्च (पूजना), इष् (चाहना) अद् (खाना) अर्ह (योग्य होना), अर्ज (कमाना), अट् (घूमना), अय् (भागना) ईक्ष (देखना) आस् (बैठना) इ (जाना) अश् (खाना), ईर (प्रेरित करना) ।अजादियों में प्रमुख हैं। अतः इन सभी में "अ" के स्थान में "आ" होगा। आ+अत्+अ+तिप् = आतत् यहाँ "आटश्च" से आट् के आकार तथा अत् के

अकार की वृद्धि हुई। देखो सूत्र संख्या १६२। इसी आधार पर आतताम् आतन् आदि रूप बनते हैं।

आ+अर्च+अ+तिप् = आर्चत्, आर्चताम् — आर्चन्।

आ+अर्ह+अ+तिप् = आर्हत्, आर्हताम् — आर्हन्।

आ+अश्+ना+तिप् = आश्नात्, आश्नीताम् — आश्नन्।

आ+अर्ज+अ+तिप् = आर्जत्, आजताम् — आर्जन्।

आ+इच्छ+अ+तिप् = ऐच्छत्, यहाँ सामान्य रीति से आ+इ से गुण प्राप्त था, पर आटश्च से वृद्धि होती है। आगे ऐच्छताम् — ऐच्छन्

आ+इ+तिप् = ऐत् (अदादि गण होने से शप् नहीं हुआ।)

आ+अद्+त् = आदत् — आत्ताम् — आदन्।

आत्मनेपद अजादि—

आ+एध+त = ऐधत — ऐधेताम् — ऐधन्त

ऐधेथाः— ऐधेथाम् — ऐधध्वम्

ऐधे — ऐधावहि — ऐधामहि

आत्मनेपद हलादि—

असेवत — असेवेताम् — असेवन्त,	अवर्तत — अवर्तेताम् — अवर्तन्त
असेवथाः — असेवेथाम् — असेवध्वम्,	अवर्तथाः — अवर्तेथाम् — अवर्तध्वम्
असेवे — असेवामहि — असेवामहि,	अवर्ते — अवर्तावहि — अवर्तामहि
अशोभत — अशोभेताम् — अशोभन्त,	अलभत — अलभेताम् — अलभन्त
अशोभथाः— अशोभेथाम् —अशोभध्वम्,	अलभथाः— अलभेताम् — अलभध्वम्
अशोभे — अशोभावहि —अशोभामहि	अलभे — अलभावहि — अलभामहि

(२) अदादिगण (३१८ अ) अदः सर्वेषाम् सभी के मत में अद् धातु से परे अपृक्त सार्वधातुक के आने पर आट् का आगम हो। अतः आ + अद् + अ + त् = आदत्, आगे आत्ताम्—आदन् आदः — आत्तम् — आत्त

आदम् — आद्व — आद्म

आस् — बैठना — उप + आस् = उपासना करना।

आ + आस् + त = आस्त = बैठा।

आगे आसाताम्, आसत,

आस्थाः, आसाथाम् — आध्वम्,

आसि, आस्वहि — आस्महि,

आध्वम् में आस् + ध्वम् आने पर—

३१९. धि च धकार परे रहते स् का लोप हो। अतः आध्वम् रूप बनता है।

अधि + इङ् = अध्ययन करना। अधि + आ + इ + त = अध्यैत

आगे अध्यैताम् — अध्यैयत—

अध्यैथाः, अध्यैयाथाम् — अध्यैध्वम्

अध्यैयि, अध्यैवहि — अध्यैमहि

इसी प्रकार— इण् — गतौ

ऐत — ऐताम् — आयन्

ऐः — ऐतम् — ऐत

आयम् — ऐव — ऐमं

३२०. लङः शाकटायनस्यैव आदन्त से लङ् के झि के स्थान पर विकल्प से जुस् हो। यथा— या धातु आदन्त है। † अ + या + झि, अ + या + उस् आने पर उस्यपदान्तात् से या के आ का पररूप हो जाता है। अयुः रूप बनता है, जब उस् न होगा तो अ + या + अन्त होगा। इससे त् का लोप होने पर अयान् रूप बनेगा।

३२१. अस्तिसिचोऽपृक्ते सिच् प्रत्यय से तथा अस् धातु से परे अपृक्त हल् से ईट् का आगम हो।

यहाँ अस् से लङ् लकार बनाना है। आ + अस् + त् आने पर स् से परे त् अपृक्त मिलता है, तो बीच में ई आ जाता है। इस प्रकार आसीत् रूप बनता है।

आगे आस्ताम् — आसन्,

आसीः — आस्तम् — आस्त,

आसम् — आस्व — आस्म रूप बनते हैं।

---

† उसि + अपदान्तात् अपदान्त अकार से उस् परे हो तो पूर्व पर दोनों के स्थान में पर रूप एकादेश हो।

३२२. **सिज्-अभ्यस्त-विदिभ्यश्च** सिच् प्रत्यय, अभ्यस्त संज्ञक जागृ इत्यादि और विद् धातु से परे ङित् लकार के झि के स्थान में जुस् आदेश हो जाय।

दा धातु जुहोत्यादिगणी है, इस का द्वित्व हो जाता है। तब इसमें अभ्यस्त धातु मिलती है। अतः इस गण की धातुओं के लङ् का रूप बनाने के लिए झि के स्थान में जुस् करना पड़ता है।

अ + दा + दा + झि, अ + दा + दा + जुस्,

अददुः। (इसमें "ह्रस्वः" से दा के स्थान में द होता है)

इसके पूरे रूप इस प्रकार हैं—

अददात् — अदत्ताम् — अददुः

अददाः — अदत्तम् — अदत्त

अददाम् — अदद्व — अदद्म

आगे सभी धातुओं के रूप इसी आधार पर बन जाते हैं।

अकरोत् — अकुरुताम् — अकुर्वन्

अकरोः — अकुरुतम् — अकुरुत

अकरवम् — अकुर्व — अकुर्म

अभ्यास

१. संस्कृत में अनुवाद करो—

(i) मोहन प्रातः काल उठा, उसने माता पिता को प्रणाम किया, लेख लिखा, व्याकरण कण्ठ किया, खाना खाया और विद्यालय गया।

मोहनः प्रातः काले उदतिष्ठत्, स पितरौ अनमत्, पाठमपठत् लेखमलिखत्, व्याकरणमध्यैत, भोजनमाश्नात् विद्यालयं चागच्छत्।

२ वे लड़के उपवन गये, उन्होंने फूल सूंघे, फल देखे, तोड़े और खाये।

ते बालकाः उपवनम् अगच्छन्, पुष्पाणि अजिघ्रन्,

फलानि व्यलोकयन्, तानि अत्रोटयन् अखादन् च।

३. राजा दिलीप ने छाया की भाँति गाय का अनुगमन किया।

नृपतिर्दिलीपः छायेव गामन्वगच्छत्।

४. मैं आज बहुत दूर से आपके पास व्याकरण पढ़ने आया हूँ।

अद्याहं सुदुरात् भवतामन्तिकं व्याकरणस्याध्ययनाय आगच्छम्।

५. विमला अपने घर से आज लौट आयी।
विमला निजगृहात् अद्य प्रत्यावर्तत।

६. राम सीता के साथ १४ वर्ष वन में रहे।
रामः सीतया सह चतुर्दश वर्षाणि वने न्यवसत्।

७. मैंने बहुत से लड़कों के साथ सायं गेंद खेली।
अहं सायं अनेकैः बालकैः सह कन्दुकेन अक्रीडम्।

८. अब रोने से क्या, दूध फैल गया।
अलं रुदितेन पयः अधः न्यपतत्।

९. अध्यापक ने बालकों को बेंत से पीटा।
अध्यापकः बालकान् वेतसा अताडयत्।

१०. नेत्र से हीन लोगों ने देश के लिए क्या किया।
नेत्राभ्यां हीनाः जनाः देशाय किमकुर्वन् ?

११. उसने पाँच वर्ष में आयुर्वेद पढ़ा।
स पञ्चभिः वर्षैः आयुर्वेदमपठत्।

१२. मैंने सम्बन्धियों के साथ कभी भी कलह नहीं किया।
अहं ज्ञातिभिः सार्धं न कदापि कलहमकरवम्।

१३. आपको यह वस्त्र कितने में मिला ?
कियता मूल्येन भवन्तः वस्त्रमिदमवाप्नुवन्।

१४. पुलिस वालों ने चोर को बहुत देर खोजा पर पा न सकी।
आरक्षकाः बहुकालं तस्करमन्वैषयन् किन्तु ते तं ग्रहीतुं नाशक्नुवन्।

१५. इस समय वृक्षों से सभी पुराने पत्ते गिर गये।
इदानीं वृक्षेभ्यः सर्वाणि जीर्ण पत्राणि अपतन्।

१६. मैं ने उस जगह बड़े दुःख से रात्रि वितायी।
तत्राहमति क्लेशेन रात्रिमवाहयम् (अयापयम्)।

१७. युद्ध स्थल में एक ओर से बाबर की सेना आयी और दूसरी ओर से राणा संग्रामसिंह की।
युद्ध स्थले एकस्मात् पक्षात् बाबरस्य बाहिनी आगच्छत्,
अपरस्मात् पक्षात् राणासंग्राम सिंहस्य।

१८. वसुदेव के पुत्र कृष्ण नाम से विख्यात हुए।
वसुदेवस्यात्मजः कृष्ण नाम्ना प्रसिद्धोऽभवत्।

१९. पार्वती ने हृदय से अपने रूप की निन्दा की।
पार्वती हृदयेन स्वरूपं अनिन्दत्।
(निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती—कालिदास)

२०. उसी समय सीता ने भी बल्कल बाँधा।
तदानीं सीता अपि वल्कलमबध्नात्।

(२) निम्नलिखित श्लोकों से कृष्ण के पर्याय चुनो।
विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः।
दामोदरो हृषीकेशः केशवो माधवः स्वभूः॥
दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षो गोविन्दो गरुडध्वजः।
पीतम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी विष्वक्सेनो जनार्दनः॥
उपेन्द्र इन्द्रावरजश्चक्रपाणिश्चतुर्भुजः।
पद्मनाभो मधुरिपुर्वासुदेवस्त्रिविक्रमः॥
देवकीनन्दनः शौरिः श्रीपतिः पुरुषोत्तमः।
वनमाली बलिध्वंसी कंसाराति रधोक्षजः॥
विश्वंभरः कैटभजिद् विधुः श्रीवत्सलाञ्छनः।
पुराणपुरुषो यज्ञपुरुषो नरकान्तकः॥
जलशायी विश्वरूपो मुकुन्दो मुरमर्दनः।
वसुदेवोऽस्य जनकः स एवानकदुन्दुभिः॥

(३) अनयत्, अपश्यत्, अददात्, अकरोत् के रूपों की साधनिका बताओ।

(४) निम्नलिखित श्लोकों का अर्थ लिखो—

पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम्
स सत्यवचनात् राजा धर्मपाशेनसंयतः विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम्।
स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन्,
पितुर्वचन निर्देशात् कैकेय्याः प्रियकारणात्॥
तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह।
स्नेहाद् विनयसम्पन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः॥
भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन्।
रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राण समाहिता॥
जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता।
सर्वलक्षणा सम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः॥

सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा ॥

(५) प्रश्न ४ में कालेलिखे पदों में सूत्र सहित सन्धि बताओ।

(६) निम्नलिखित शब्दों का अपने संस्कृत वाक्यों में प्रयोग करो—
पितुः, सर्वलक्षणसम्पन्नः, अनुगच्छति, भ्रातरः,
सावित्र्याः, निर्देशात्, समस्या, विघ्यः, पंक्तयः।

(७) निम्नलिखित अंश का शीर्षक खोजो।

कस्यापि कार्यस्य कृते उद्योगस्य महती आवश्यकता वर्तते। किमपि लघु वा महत् कार्यं कस्यापि इच्छामात्रेण न भवति। यदा कोऽपि कार्यस्य सिद्धये प्रयत्नं विदधाति तदैव स तस्मिन् सफल मनोरथः भवति। ये जनाः सततं उद्योगशीलाः भवन्ति, ये सदैव निष्ठया कार्यं कुर्वन्ति, ये मनसा वाचा तस्मिन् निरताः तिष्ठन्ति ते अवश्यमेव सफलतां प्राप्नुवन्ति। अस्मिन् जगतीतले यत् किंचित् भौतिकं सुखं साधनं आयातं तत् सर्वं उद्योगवलेनैव ॥

अध्याय १४

लोट् लकार (आज्ञावाचक)

लोट् का प्रयोग आज्ञा और आशिष् के लिए किया जाता है। जैसा कहा गया है आशिषि लिङ् लोटौ।

३२३. **लोट् च** विधि आदि अर्थ में लोट् लकार भी हो। इसके रूप बनाना बहुत सरल है। दस बारह सूत्रों से सभी रूप बन जाते हैं।

भू + अ + तिप् आने पर—

३२४. **एरुः** लोट् के इकार के स्थान पर उकार हो जाय।

भू + अ + ति = भवति = भवतु।

३२५. **तुह्योस्तातङ् आशिष्यन्यतरस्याम्** आशिष् अर्थ बताने के लिए लोट् के तु और हि के स्थान में विकल्प से तातङ् आदेश हो। भवतु में तु के स्थान में तात् आने पर एक रूप भवतात् होता है।

३२६. **लोटो लङ्वत्** लोट् लङ् के समान हो। इस आधार पर लङ् में जो आदेश होते हैं वे लोट् में भी हों। अर्थात् तस् थस् थ और मिप् के स्थान में ताम्

तम्, त और अम् हों तथा उत्तमपुरुष में स् का लोप हो।

अतः भव + तस् = भवताम् (तस् का ताम् होकर)

भव + सिप् आने पर

३२७. **सेर्ह्यपिच्च.** लोट् में सि के स्थान पर हि आदेश हो। साथ ही वह अपित् हो। ध्यान रहे अपित् होने से ङिद्वत् हो जाता है और गुण होना रोक देता है।

भव + सि से भव + हि होने पर।

३२८. **अतो हेः** अदन्त अङ्ग से परे हि का लुक् हो। अतः भव रूप रह गया। आगे भवतम् भवत रूप वनते हैं।

३२९ **मेर्निः** लोट् के मि के स्थान में नि हो जाय।

भव + मि, भव + नि आने पर

३३०. **आड् उत्तमस्य पिच्च** लोट् के उत्तम पुरुष में आट् का आगम हो। अतः भवानि रूप बनता है।

आगे नित्यं ङितः (देखो ३१८) से भवाव, भवाम रूप बनते हैं।

इसी आधार पर सभी भ्वादिगणी धातुओं के रूप बनते हैं। जहाँ मूल धातु का आदेश होता है वहाँ प्रत्यय आदेश में लगते हैं, मूल में नहीं— यथा— स्था — से तिष्ठ, पा — से पिब दृश् से पश्य आदेश हैं। अतः

तिष्ठतु, पिवतु, पश्यतु रूप वनते हैं।

३३१. **हन्तेर्जः** हि परे रहते हन् धातु के स्थान में ज आदेश हो। जहि,

३३२. **असिद्धवदत्राऽऽभावात्** यदि समान आश्रय कार्य (सूत्र ६-४-२२ से ६-४-१७५ तक यह माना जाता है) करना हो तो पहले का किया हुआ कार्य असिद्ध होता है। जब हन् के स्थान में ज होकर जहि वना तो अतो हेः से हि का यहाँ लोप प्राप्त हुआ क्योंकि ज अकारान्त है, पर लोक में जहि ही वोला जाता है अतः इस सूत्र से उस हि के लोप को असिद्ध कर दिया।

हन् के सभी रूप लोट् में इस प्रकार होते हैं—

हन्तु	जहि	हनानि
हताम्	हतम्	हनाव
घ्नन्तु	हत	हनाम

३३३. **अत उत् सार्वधातुके** उ प्रत्ययान्त कृञ् धातु के अकार के स्थान में उकार हो यदि उससे परे कित् या ङित् सार्वधातुक प्रत्यय हो। यहाँ तातङ् ङित् है और कृञ् धातु के परे उ भी आता है। अतः कृञ् के अकार के स्थान में उकार हो जाता है। इस प्रकार विदाङ्कुरुतात् रूप बनता है।

३३४. **घ्वसोरेद्धावभ्यास लोपश्च** घु संज्ञक और अस् धातु का एकार हो तथा अभ्यास का लोप भी हो यदि उनसे हि परे हो। दा + दा + हि आने पर प्रथम दा का लोप हुआ और दूसरे का इकार होकर देहि रूप बना। इसी प्रकार धेहि।

अस् + हि आने पर तथा श्नसोरल्लोपः से अस् के "अ" का लोप होने पर स् + हि स्थिति बनती है। यहाँ पहले स् अन्त्यवर्ण रह जाने से ए आता है, पर उसे असिद्ध मानकर हि के स्थान में धि करके एधि रूप बनता है।

३३५. **आ च हौ** हा धातु के आकार के स्थान में हि परे रहते आकार भी हो। यहाँ च कहने से अभिप्राय यह है कि जहाँ ई हल्यघोः से ईकार तथा जहातेश्च इकार प्राप्त था, पर आकार रखना आवश्यक था अतः आकार ही रहे ईकार या इकार न हो इसलिए यह सूत्र बनाना पड़ा। इस प्रकार जहाहि, जहिहि, जहीहि रूप बनते हैं। हा धातु के लोट् के सभी रूप इस प्रकार होते हैं—

जहातु, जहितात्	—	जहाहि, जहितात्	—	जहानि
जहिताम्	—	जहितम्	—	जहाव
जहतु	—	जहित, जहीत	—	जहाम

अध्याय १५

विधि लिङ्

३३६. **यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च** लिङ् के परस्मैपद प्रत्ययों से पूर्व यासुट् का आगम हो तथा वह उदात्त और ङित् माना जाय।

भव + तिप् आने पर भव + यास् + ति स्थिति होती है। यासुट् से केवल यास् शेष रहता है। टित् होने के कारण यह तिप् से पूर्व आता है। इसे ङित् इसलिए कहा गया है कि इसके आने पर गुण न हो। भव + यास् + त् स्थिति के होने पर—

३३७. **लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य** लिङ् के अनन्त्य (अन्त का न हीं) स् का लोप हो। भव + यास् + त्। यहाँ स् के लोप प्राप्त होने पर अगला सूत्र उसे रोक देता है।

३३८. **अतो येयः** अदन्त अङ्ग से परे सार्वधातुक अंश "यास्" के स्थान में इय् आदेश हो।

भव + इय् + त्

३३९. **लोपो व्योर्वलि** वलादि प्रत्यय परे रहते यकार वकार का लोप हो। यहाँ त् वलादि है अतः इय् के य् का लोप होने पर भवेत् रूप सिद्ध होता है।
द्विवचन में भवेताम् (तस् का ताम् होकर)।

३४०. **झेर्जुसः** लिङ् के झि के स्थान में जुस् आदेश हो।
भव + झि आने पर भव + यास् + जुस्,
भव + इय् + जुस्, भव + इय् + उस् (अनुबन्ध लोप होने पर)
भवेयुः, इसी प्रकार गच्छेयुः, पिबेयुः आदि।
आगे भवेः, भवेतम्, भवेत,
भवेयम्, भवेव, भवेम पूर्व सूत्रों से बन जाते हैं।

३४१. **लिङाशिषि** आशीर्वाद अर्थ बताने के लिए अलग रूप बनना है। इस के लिए लिङ् के प्रत्ययों को आर्धधातुक मान लिया जाता है। वैसे लिङ् सार्वधातुक लकार है।

३४२. **किदाशिषि** आशिष् अर्थ में लिङ् के यासुट् को कित् माना जाय। इस आधार पर आशीर्लिङ् में गुण न होगा।

भू + यास् + तिप् आया क्योंकि आर्धधातुक होने से शप् नहीं आया और कित् होने से गुण नहीं हुआ। तब "स्कोः संयोगाद्योरन्ते च" से संयोग में स्थित यास् के स् का लोप होने पर भूयात् रूप बनता है। ताम् आने पर स् का लोप नहीं होता क्योंकि पदान्त सयोग नहीं मिलता। इसके आगे रूप भूयास्ताम्, भूयासुः, भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म बनते हैं।

३४३. **हनो वध लिङि** लिङ् लकार के आर्धधातुक पक्ष में हन् के स्थान में वध आदेश हो जाय। इसके अनुसार हन् के रूप इस प्रकार होंगे—

विधिलिङ्			आशीलिङ्		
हन्यात्	हन्याः	हन्याम्	वध्यात्	वध्याः	वध्यासम्
हन्याताम्	हन्यातम्	हन्याव	वध्यास्ताम्	वध्यास्तम्	वध्यास्व
हन्युः	हन्यात	हन्याम	वध्यासुः	वध्यास्त	वध्यास्म

३४४. **ये च** कृञ् से यकारादि प्रत्यय परे रहते "उ" का लोप हो।

कृ के विधि लिङ् के रूप कुर्यात्।

कुर्यात् — कुर्याः — कुर्याम्
कुर्याताम् — कुर्यातम् — कुर्याव
कुर्युः — कुर्यात — कुर्याम

लृट् लकार (भविष्यत् काल)

३४५. **लृट् शेषे च** भविष्यत् काल के लिए लृट् लकार का प्रयोग हो। इसका प्रयोग सामान्य रूप से सभी भविष्यत् के व्यवहार के लिए किया जाता है। पर यदि ऐसा भविष्य हो जो आज का न हो तो लृट् का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आज की घटना के लिए लुट् का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

भू + स्य + तिप् आने पर सार्वधातुकार्धधातुकयोः से गुण होता है। भो + स्य + ति, आर्धधातुकस्येड् से इ आता है। भो + इ + स्य + ति इण् कुभ्याम् से स्य का ष्य होकर भविष्यति रूप बनता है।

आगे भविष्यतः भविष्यन्ति। भविष्यसि, भविष्यथः, भविष्यथ, भविष्यामि भविष्यावः, भविष्यामः आदि।

३४६ **ऋद्धनोः स्ये** ऋकारान्त से तथा हन् धातु से परे स्य होने पर इट् का आगम हो।

हनिष्यति, हनिष्यतः, हनिष्यन्ति। यहाँ शंका यह होती है कि इट् तो आर्धधातुकस्य से ही आ जाता है, इस सूत्र की क्या आवश्यकता थी? बात यह है कि आर्धधातुकस्य से इट् उन्हीं धातुओं में आता है जो सेट् (स + इट् = इट्वाली) होती हैं। हन् धातु अनिट् (विना इट् की) है अतः इस सूत्र की कल्पना की गयी।

३४७. **गमेरिट् परस्मै पदेषु** गम् धातु से परे सकारादि परस्मैपदी आर्धधातुक होने पर इट् का आगम हो। गम् धातु भी चूंकि अनिट् होती है इसलिए इससे परे भी इट् लाने के लिए अलग विधान किया गया है।

गमिष्यति, गमिष्यतः, गमिष्यन्ति। अन्य स्थलों में इससे इट् नहीं होता—जैसे गम् + क्त = गत

३४८. **अस्तेर्भूः** आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर अस् धातु के स्थान में भू आदेश हो। इस आधार पर अस् के रूप भी भविष्य में भू के समान ही चलते हैं। भविष्यति आदि।

अभ्यास

(अ) संस्कृत में अनुवाद करो।

१. समय पुरुषार्थ की अपेक्षा करता है।
समयः पुरुषार्थमपेक्षते।

२. अपने कर्त्तव्य की क्षण भर भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।
क्षणमपि नोपेक्षेत स्वकीयं कर्त्तव्यम्।

३. धन कम होने पर भूख बहुत लगती है।
धनक्षये वर्धते जाठराग्निः।

४. ये लड़के असत्य बोलने से घृणा करते हैं।
इमे बालकाः असत्यसभाषणात् जुगुप्सन्ते।

५. उसे लोकोपवाद से बहुत भय रहता है।
तस्य लोकोपवादात् महद् भयं वर्तते।

६. जब मैं अपने पुत्र की दुर्दशा देखता हूँ तो मन बहुत दुःखी हो जाता है।
यदाहं स्वात्मजस्य दुर्दशां विलोकयामि मदीयं मनः भृशं दूयते। भृशं दूयते मे मनः।

७. जितनी समस्याएं तुम्हारे प्रबन्ध से उत्पन्न हुई हैं वे सभी अभी वैसी ही विद्यमान हैं।
यावत्यः समस्याः भवतां शासनात् समुत्पन्नाः ताः सर्वाः तथैव विद्यन्ते।

८. जो प्राणी इस ससार में अपनी जीविका परिश्रम से नहीं पैदा करते वे जीवन भर क्लेश उठाते हैं।
अस्मिन् संसारे ये प्राणिनः स्वकीयां जीविकां श्रमेण नोपार्जयन्ति ते जीवनपर्यन्तं क्लिश्यन्ते।

९. जो मोह करता है वही क्रोध करता है।
यः मुह्यति स एव क्रुध्यति।

१०. काम से सम्मोह पैदा होता है ओर मोह से स्मृतिविभ्रम होता है।
कामात् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।

(आ) पुस्तकालय तथा छात्र जीवन पर लघु लेख लिखो।

छात्रजीवनम्

कियत् उल्लासपूर्णं सुखकरं च छात्रजीवनम् । इदं जीवनस्य प्रकाशकं मनोहरं च सुप्रभातं भवति । अस्मिन् समये शिशवः स्वच्छन्दं विहरन्ति, विहगवत् क्रीडन्ति, उच्छलन्ति । न कापि चिन्ता इदानीं तान् बाधते । अध्ययनशीलाः छात्राः ध्यानेन पठन्ति । छात्र जीवने बालाः नवनवानां निश्छलानां भावानां आश्रयाः भवन्ति । अतः अस्मिन् काले ये केऽपि संस्काराः अभिप्रेताः ते सहर्षं ग्राह्याः । सच्छात्रास्तु निःशंकं स्वकीयं नियोगं पालयन्ति ।

शैशवे बालानां अवयवाः सुकोमलाः भवन्ति । त एव कालान्तरे शक्तिसम्पन्नाः पुष्टाश्च जायन्ते । छात्रजीवने बुद्धिः निर्मला भवति विकासञ्चोपयाति । ये केऽपि संवेगाः, भावाः अस्यामवस्थायामायान्ति तेऽनन्तरं पल्लविताः पुष्पिताः, फलान्विताश्च भवन्ति । एवं छात्रजीवनमेव जीवनस्य आधारशिला भवति । अस्मिन् समये छात्राः ज्ञानार्जनं कुर्वन्ति, ब्रह्मचर्यञ्च पालयन्ति । गुणवन्तः, श्रमशीलाः कर्त्तव्यपरायणाः छात्राः निष्ठ्या कार्यं सम्पादयन्ति, सुष्ठु आचरन्ति ।

कष्टं यदाधुनिके युगे एतादृशाः अपि छात्राः अस्माकं समाजे विद्यन्ते ये परिश्रमं न कुर्वन्ति । ते परिश्रमं विनैव उपाधिं वाञ्छन्ति । छात्रजीवने ये छात्राः परिश्रमेण अधीयते, भाविनि काले ते उन्नतेषु पदेषु प्रतिष्ठिताः भवन्ति । ते सुखेन जीवनं यापयन्ति, अमन्दमानन्दमनुभवन्ति । छात्राः एव वस्तुतः राष्ट्रस्य भाविनः नागरिकाः । अद्यत्वे अस्माकं देशस्य दशा शोचनीया वर्तते । छात्रैः राष्ट्रहिताय चिन्तनं करणीयं, तथैव चाचरणीयम् । यापितः समयः न पुनरागच्छति । अतः तैः समयस्य सदुपयोगः विधातव्यः । उक्तम् अपि । सुखार्थी वा त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ।

पुस्तकालयः

पुस्तकालये सञ्चितः ज्ञानराशिः वर्तते । कस्मिन्नपि नगरे, ग्रामे वा सभ्यसमाजे पुस्तकालयः अवश्यं भवेत् । विशेषरूपेण विद्यालयेषु महाविद्यालयेषु विश्वविद्यालयेषु पुस्तकालयानां महती आवश्यकता भवति । वस्तुतः इमे पुस्तकालया एव ये कस्यापि समाजस्य ज्ञानं संरक्षन्ति । पुस्तकालयैः न केवलं छात्राः अध्यापकाः वा ज्ञानं प्राप्नुवन्ति अपितु साधारण जना अपि स्वकीयां बुद्धिं विमलां कुर्वन्ति । "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" सूक्तम् भगवता कृष्णेन गीतायाम् । यत्र शोभनाः सुसज्जिताः पुस्तकालयाः वर्तन्ते स समाजः सदोन्नतिपथं गच्छति च सुखी भवति । यानि कानि अपि पुस्तकानि बहुमूल्यानि सन्ति तानि न्यूनतमेन व्ययेन पुस्तकालयेभ्यः प्राप्तुं शक्यन्ते । प्राचीन काले मुद्रण व्यवस्था नासीत् अतः ज्ञान संरक्षणाय वाङ्मयस्य कण्ठस्थीकरणम्

एव साधनम् आसीत्, किन्तु आधुनिके युगे मुद्रणस्य सौविध्यं समागतम् अतः पुस्तकालयेषु अनेकानि विविधानि पुस्तकानि वार्तापत्राणि च विद्यन्ते। अद्यत्वे छात्राः अध्यापकाः सामान्य जनाश्च नित्यं पुस्तकालयं गच्छन्ति तत्र ज्ञानं लभन्ते।

कस्यापि देशस्य पुस्तकालयाः तस्य राष्ट्रस्य संस्कृतेः संरक्षणं कुर्वन्ति। ते स्वल्पेनैव मूल्येन ज्ञानवितरणं च कुर्वन्ति। राष्ट्रहिताय तेषां महती उपयोगिता वर्तते। अस्माकं वैज्ञानिकप्रगत्या दिशि दिशि शोधाः क्रियन्ते, प्रतिदिनं नवीनं ज्ञानं अस्माकं निधौ आयाति। यथा यथा ज्ञानरेखायाः विकासः भवति, यथा यथा तस्याः प्रसारः भवति, तथा तथा अस्माकं कृते पुस्तकालयानाम् आवश्यकता वृद्धिमुपयाति।

तत्र सन्ति विविधाः पुस्पकालयाः, लघुपुस्तकालयाः, विशालपुस्तकालयाः। सर्वत्र पुस्तकालयेषु पुस्तकालयविज्ञान–दृष्ट्या पुस्तकानि स्थाप्यन्ते। पाठकाः तत्र गत्वा स्वातन्त्र्येण स्वाध्यायं कुर्वन्ति। अस्माभिः पुस्तकालयानां संवर्धनं करणीयम्।

(इ) निम्नलिखित श्लोकों से पर्यायवाची शब्द छाँटो।

निशा, निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा।
विभावरी तमस्विन्यौ रजनी, यामिनी तमी॥
तमिस्रा तामसी रात्रि ज्यौंत्स्नी चन्द्रिकयान्विता। अमरकोषात्—कालवर्गः—४
मुत्प्रीतिः प्रमदो, हर्षः प्रमोदामोद सम्मदाः।
स्यादानन्दथुरानन्दः शर्मशात सुखानि च॥
श्वश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मंगलं शुभम्।
भावुकं, भविकं, भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियाम्॥

(३) निम्नलिखित शब्दों का संस्कृत में प्रयोग करो—

मनीषिणा, सुलभम्, आस्पदम्, अवसरः, प्रमोदः,
विधिना, अधीतः, अध्ययनम्, अध्ययनाय।

(ऊ) प्रश्न संख्या (३) में रेखांकिन शब्दों की साधनिका बताओ।

(ए) निम्नलिखित शब्दों के विपरीतार्थक—विलोम वताओ—

कठोरम्	—	कोमलम्	गुणवान्	—	निर्गुणः
सदयः	—	निर्दयः,	सुखम्	—	दुःखम्
क्लिष्टः	—	सरलः	संक्षेपः	—	विस्तारः
सार्थकः	—	निरर्थकः	लघुः	—	विशालः
सबलः	—	निर्बलः,	सत्यम्	—	असत्यम्

(ऐ) शप् और श्यन् किन गणों में जोड़े जाते हैं इनके जोड़ने का क्या अभिप्राय है ?

ओ) अस् के लङ् लकार के रूप लिखो।

अध्याय १६

कुछ आवश्यक प्रत्यय

क्त्वा (।)

कर या करके का भाव प्र#ट करने के लिए संस्कृत में "क्त्वा" का प्रयोग किया जाता है। यथा— जाकर गम् + क्त्वा = गत्वा प्रणाम करके, नम् + क्त्वा= नत्वा। क्त्वा प्रत्यय लगने पर धातु अव्यय की भांति माना ज ता है अतः इसके रूप नहीं चलते।

३४६. **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** जब एक हा समय दो क्रियाएं होनी हों और उनका कर्त्ता एक ही हो तो जो क्रिया पहले होती है उससे क्त्वा प्रत्यय किया जाता है। यथा— वह खाकर सो गया। इस वाक्य में खाने और सोने की दो क्रियाएँ हैं, दोनों का कर्त्ता एक है। यहाँ खाने की क्रिया पहले हो रही है अतः उससे क्त्वा प्रत्यय होगा।

स भुक्त्वा अस्वपत्—वह खाकर सो गया। क्त्वा से क् गिर जाता है केवलत्वा शेष रह जाता है।

इसी प्रकार निम्नलिखित धातुओं में क्त्वा जोड़ा जाता है—

हृ	+	क्त्वा	=	हृत्वा	—	हरण कर
ज्ञा	+	क्त्वा	=	ज्ञात्वा	—	जानकर।
आप्	+	क्त्वा	=	आप्त्वा	—	पाकर
जि	+	क्त्वा	=	जित्वा	—	जीतकर
चि	+	क्त्वा	=	चित्वा	—	चुनकर
क्षिप्	+	क्त्वा	=	क्षिप्त्वा	—	फेंक कर
कृञ्	+	क्त्वा	=	कृत्वा	—	करके
श्रु	+	क्त्वा	=	श्रुत्वा	—	सुनकर
भू	+	क्त्वा	=	भूत्वा	—	होकर

धातुएँ दो तरह की होतीं हैं।

(i) सेट्— जिसमें इट् जोड़ा जाता है। (स+इट्)

(ii) अनिट्— जिनमें इट् नहीं जोड़ा जाता। (अन्+इट्)

यह इट् आर्धधातुकस्येड् वलादेः सूत्र से आता है। चूंकि क्त्वा आर्धधातुक प्रत्यय है। अतः सेट् धातुओं में क्त्वा से पहले इट् आ जाता है। यथा—

पठ्	+	क्त्वा	=	पठित्वा	—	पढ़कर
रक्ष्	+	क्त्वा	=	रक्षित्वा	—	रक्षा करके
रूप्	+	क्त्वा	=	रूपित्वा	—	बनाकर
मिल	+	क्त्वा	=	मिलित्वा	—	मिलकर
ईक्ष्	+	क्त्वा	=	ईक्षित्वा	—	देखकर
खाद्	+	क्त्वा	=	खादित्वा	—	खाकर
लिख	+	क्त्वा	=	लिखित्वा	—	लिखकर
शी	+	क्त्वा	=	शयित्वा	—	सोकर

टिप्पणी—क्त्वा को कित् रखने का अभिप्राय यह है कि इसके जुड़ते समय गुण या वृद्धि न हो। यथा—

भूत्वा, क्रीत्वा, दृश — दृष्ट्वा, कृष = कृष्ट्वा आदि।

३५०. **घुमा स्था गा पा जहातिसां हलि** घु संज्ञक (दा, धा), मा—नापना, स्था—ठहरना, गा—गाना, पा—पीना, ओहाक्—त्यागना, षो—नाश करना, धातुओं के आकार के स्थान में ईकार हो यदि उनसे परे हलादि कित् ङित् आर्धधातुक परे हो। यथा दा—दद् + क्त्वा = दत्त्वा यहां दा का पहले "दो दद् घोः" से दद् हो जाता है। दो दद् घोः का अर्थ है कि घु संज्ञक धातु के स्थान में दद् आदेश हो जाय यदि उससे परे तादिकित् प्रत्यय परे हो।

पा + क्त्वा = पीत्वा — पीकर,

३५१. **द्यति स्यतिमा स्थामितिकिति** तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते द्यति, स्यति, मा और स्था धातुओं के स्थान में इकार अन्तादेश हो। यहाँ क्त्वा तकारादि है और कित् भी है। अतः द्यति से दित्वा, स्यति— से सित्वा, मा—से मित्वा और स्था से स्थित्वा रूप बनते हैं।

टिप्पणी—जिन धातुओं के अन्त में अनुनासिक वर्ण होता है उनका तथा वन और तनादि के अनुनासिक वर्ण का लोप होता है, (देखो सूत्र २५६) इसके अनुसार क्त्वा के साथ निम्न लिखित रूप बनते हैं।

गम्	+	क्त्वा	=	गत्वा	=	जाकर
यम्	+	क्त्वा	=	यत्वा	=	रोक कर

हन् + क्त्वा = हत्वा = मार कर

नम् + क्त्वा = नत्वा = प्रणाम कर

मन् + क्त्वा = मत्वा = मान कर

३५२. **न क्त्वा सेट्** इट् सहित क्त्वा को कित् न माना जाय। शी + क्त्वा आने पर वलादि से इट् का आगम होता है। तब शी + इ + क्त्वा स्थिति बनती है। सूत्र ३५३ के अनुसार यहाँ शी का गुण नहीं होना चाहिए था क्योंकि क्त्वा कित् है। पर लोक में शयित्वा बनता है। अतः इस धातु के लिए क्त्वा का कित् धर्म ही छीन लिया और गुण को रोकने का काम समाप्त हो गया। तभी शी+इ+क्त्वा से गुण होकर शयित्वा बनता है। कृ+क्त्वा में भी गुण नहीं होता क्योंकि यहाँ धातु सेट् नहीं है। अतः कृत्वा बनता है।

३५३. **रलो व्युपधाद् हलाऽऽदेः संश्च** जिन धातुओं की उपधा में इ या उ हो और जो हलादि हों या उनके अन्त में रल् हो तो सेट् क्त्वा विकल्प से कित् माना जाता है। यथा—लिख्. यहाँ इ उपधा में है, वह रलन्त भी है अतः क्त्वा विकल्प से कित् माना जाता है। इसलिए लिख् से लेखित्वा तथा लिखित्वा दो रूप बनते हैं। इसी प्रकार द्युत् में उपधा में उकार है और यह हलादि है। अतः इससे द्योतित्वा तथा द्युतित्वा दो रूप बनते हैं।

३५४. **उदित्वा वा** उदित् धातुओं से परे क्त्वा को विकल्प से इट् हो। शमु—शान्त होना, उदित् है। शम् + इ + क्त्वा = शमित्वा। जब इ न होगा तो शम् + क्त्वा आने पर अनुनासिकस्य क्विझलोः† से उपधा के अ का दीर्घ होने पर शाम् + क्त्वा आता है। अन्त में "नश्चापदान्तस्य झलि" से म् का अनुस्वार तथा पर सवर्ण होकर शान्त्वा रूप बनता है।

ग्रह + इ + क्त्वा = गृहीत्वा = पाकर — लेकर।

३५५. **दधातेर्हि** धा का हि आदेश हो जाय यदि तकारादि कित् परे हो। धा + क्त्वा = हित्वा।

३५६. **जहातेश्च क्त्वि** क्त्वा परे रहते ओहाक् धातु के स्थान में हि आदेश हो। हा + क्त्वा = हित्वा।

---

† अनुनासिक की उपधा का दीर्घ हो यदि उससे परे क्वि या झलादि कित् ङित प्रत्यय आवे।

३५७. **समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वोल्यप्** नञ् समास को छोड़कर अव्यय पूर्वपद समास में धातु से क्त्वा के स्थान में ल्यप् आदेश हो जाय।

आ + गम् + क्त्वा = आगम् + ल्यप् = आगम्य आगत्य, ल्यप् से ल् और प् गिर जाते हैं केवल य शेष रहता है। यहां नञ् समास को छोड़कर क्यों कहा गया इसलिए कि नञ् समास में क्त्वा का ल्यप् न हो—यथा अकृत्वा।

३५८. **आभीक्ष्ण्येणमुल् च** जब कहीं निरन्तरता बतानी हो तो क्त्वा के विषय में णमुल भी हो। यथा—स्मृत्वा स्मृत्वा, पीत्वा, पीत्वा। णमुल् से केवल अम् शेष रहता है, स्मारम्, स्मारम्, श्रावम्, श्रावम्।

३५९. **नित्य वीप्सयोः** निरन्तरता बताने के लिए पद को द्वित्व कर देते हैं।

क्त्वा तथा ल्यप् प्रत्ययान्त तालिका

अद्	— खाना	— जग्ध्वा —	
अधि+इ	— पढ़ना	— —	अधीत्य
अर्च	— पूजना	— अर्चित्वा —	समर्च्य
अस्	— होना	— भूत्वा —	सम्भूय —परिभूय, अनुभूय
आ+दृ	— सम्मान करना	— —	आदृत्य —
आप्	-- प्राप्त करना	— आप्त्वा —	प्राप्य — अन्वाप्य,
आस्	— बैठना	— —	उपास्य — (पूजा करके)
इ	— जाना	— इत्वा —	प्रेत्य
इष्	— चाहना	— इष्ट्वा —	समिष्य
ईक्ष	— देखना	— ईक्षित्वा —	समीक्ष्य, निरीक्ष्य,
डीङ्	— उड़ना —	— —	उड्डीय
कम्	— चमकना —	कमित्वा —	संकाम्य
कृञ्	— करना —	कृत्वा —	उपकृत्य, अपकृत्य स्वीकृत्य, अङ्गीकृत्य
कृष्	— जोतना —	कृष्ट्वा —	आकृष्य
कॄ	— बिखेरना —	कीर्त्वा —	प्रकीर्य
क्रन्द	— रोना —	क्रन्दित्वा —	आक्रन्द्य
क्रम	— चलना —	क्रमित्वा —	संक्रम्य
क्री	— खरीदना —	क्रीत्वा —	विक्रीय (बेचकर)

क्रीड्	— खेलना	— क्रीडित्वा	— प्रक्रीड्य
क्रुध्	—क्रोध करना	— क्रुध्वा	— संक्रुध्य
क्षम्	—क्षमा करना	— क्षमित्वा	— संक्षम्य
क्षिप्	— फेंकना	— क्षिप्त्वा	— प्रक्षिप्य, आक्षिप्य
क्षुभ्	— क्षोभ करना	— क्षुभित्वा	— प्रक्षुभ्य
खन्	— खोदना	— खनित्वा	— उत्खन्य
गण्	— गिनना	— गणयित्वा	— विगणय्य
गॄ	— निगलना	— गीर्त्वा	— उद्गीर्य
गै	— गाना	— गीत्वा	— प्रगाय
ग्रस्	— निगलना	— ग्रसित्वा	— संग्रस्य
ग्रह	— पकड़ना	— गृहीत्वा	— संगृह्य, परिगृह्य
घ्रा	— सूंघना	— घ्रात्वा	— आघ्राय
चर्	—आचरण करना	—चरित्वा	— परिचर्य (सेवाकर)
चि	— चुनना	— चित्वा	— संचित्य
चुर्	— चुराना	— चोरयित्वा	— प्रचोर्य
चिन्त	— विचारना	— चिन्तयित्वा	— संचित्य
छिद्	— छेदना	— छित्त्वा	— उच्छिद्य
जन्	— पैदा करना	— जनित्वा	— संजाय
जि	— जीतना	— जित्वा	— विजित्य
जीव्	— जीना	— जीवित्वा	— संजीव्य
ज्ञा	— जानना	— ज्ञात्वा	— विज्ञाय
ज्वल्	— जलना	— ज्वलित्वा	— प्रज्वल्य
तनु	— फैलाना	— तनित्वा	— वितत्य
तप्	— उष्णता देना	— तप्त्वा	— संतप्य
तुष्	— संतोष करना	— तुष्ट्वा	— संतुष्य
तॄ	— उतरना-तैरना	— तीर्त्वा	— उत्तीर्य
त्यज्	— छोड़ना	— त्यक्त्वा	— परित्यज्य
दंश्	— काटना	— दष्ट्वा	— संदश्य
दह्	— जलाना	— दग्ध्वा	— संदह्य
डुदाञ्	— देना	— दत्त्वा	— आदाय (लेकर)
			प्रदाय (देकर)

दिव् —	जुआ खेलना —	देवित्वा —	संदीव्य
दिश् —	बताना —	दिष्ट्वा —	उपदिश्य
दीप् —	चमकना —	दीपित्वा —	संदीप्य
दुह् —	दुहना —	दुग्ध्वा —	संदुह्य
दृश् —	देखना —	दृष्ट्वा —	संदृश्य
द्युत —	चमकना —	द्योतित्वा —	विद्युत्य
धा —	धारण करना—	हित्वा —	विधाय (करके)
			निधाय (रखकर)
			परिधाय (पहन कर)
धाव् —	दौड़ना —	धावित्वा —	प्रधाव्य
धृ —	धारण करना—	धृत्वा —	आधृत्य
ध्मा —	बजाना —	ध्मात्वा —	आध्माय
ध्यै —	ध्यान करना—	ध्यात्वा —	संध्याय
नम् —	झुकना —	नत्वा —	प्रणम्य
नश् —	नाश होना —	नष्ट्वा —	विनश्य, प्रणश्य
वृ —	खुलासा करना —	— —	विवृत्य
नी —	ले जाना —	नीत्वा —	आनीय
नुद् —	करोदना —	नुत्वा —	विनुद्य
नृत् —	नाचना —	नर्तित्वा —	अनुनृत्य
पच् —	पकाना —	पक्त्वा —	संपच्य
पठ् —	पढ़ना —	पठित्वा —	संपठ्य
पत् —	गिरना —	पतित्वा —	निपत्य
पद् —		पत्वा —	संपद्य
पलाय्—	भागना —	— —	पलाय्य

(यहाँ अय् धातु है, यह कभी बिना उपसर्ग के नहीं रहती)

पा —	पीना —	पीत्वा --	निपीय
पाल् —	पालन करना —	पालयित्वा —	संपाल्य, परिपाल्य, अनुपाल्य
पुष् —	पोषण करना —	पुष्ट्वा —	संपुष्य
पूज् —	पूजना —	पूजयित्वा —	संपूज्य
पृ —	पूरा करना —	पूर्त्वा —	आपूर्य
प्रच्छ—	पूछना —	पृष्ट्वा —	आपृच्छय, परिपृच्छ्य ।

बन्ध	— बांधना	— वद्ध्वा	— आवध्य
बुध्	— जानना	— बुद्ध्वा	— प्रबुध्य, अवबुध्य।
ब्रूञ्	— बोलना	— उक्त्वा	— प्रोच्य
भक्ष्	— खाना	— भक्षयित्वा	— संभक्ष्य
भज्	— बाँटना	— भक्त्वा	— विभज्य
भंज	— तोड़ना	— भंक्त्वा	— विभज्य
भाष्	— बोलना	— भाषित्वा	— संभाष्य
भिद्	— तोड़ना, भेदना	— भित्वा	— प्रभिद्य
भी	— डरना	— भीत्वा	— संभीय
भुज्	— भोगना	— भुक्त्वा	— उपभुज्य
भू	— होना	— भूत्वा	— संभूय (एकत्र होकर)
भृ	— धारण करना	— भृत्वा	— सभृत्य
भ्रंश	— टूटना	— भ्रष्ट्वा	— प्रभ्रश्य
भ्रम	— भटकना	— भ्रमित्वा भ्रान्त्वा	— संभ्रम्य
मथ्	— मथना	— मथित्वा	— विमथ्य, प्रमथ्य
मन्	— मानना	— मत्वा	— विमत्य (न मानकर)
मा	— नापना	— मित्वा	— प्रमाय
मिल्	— मिलना	— मिलित्वा	— संमिल्य
मुच्	— छोड़ना	— मुक्त्वा	— विमुच्य, अवमुच्य
मुह्	— मोहित होना	— मुग्ध्वा	— समुह्य
यज्	— यज्ञ करना	— इष्ट्वा	— समिज्य
यम्	— नियंत्रण करना	— यत्वा	— संयम्य
या	— जाना	— यात्वा	— प्रयाय
याच्	— माँगना	— याचित्वा	— अनुयाच्य
युज्	— लगाना	— युक्त्वा	— प्रयुज्य
युध्	— लड़ना	— युध्वा	— प्रयुध्य
रक्ष्	— रक्षा करना	— रक्षित्वा	— संरक्ष्य
रच्	— बनाना	— रचयित्वा	— विरचय्य

रभ्	—आरम्भ करना —	रब्ध्वा —	आरभ्य
रम्	— रमना —	रत्वा —	विरम्य
रुद्	— रोना —	रुदित्वा —	विरुद्य
रुध्	— रोकना —	रुद्ध्वा —	अवरुध्य
रुह्	— उगना —	रूढ्वा —	आरुह्य (चढ़कर) अवरुह्य (उतरकर)
लप्	— बात करना —	लपित्वा —	विलप्य
लभ्	— प्राप्त करना—	लब्ध्वा —	उपलभ्य
लम्ब	— फैलना —	लम्बित्वा —	प्रलम्ब्य, आलम्ब्य (अवलम्बन लेकर)
लष्	— चाहना —	लषित्वा —	अभिलष्य
लिख्	— लिखना —	लिखित्वा —	आलिख्य, विलिख्य
लिह्	— चाटना —	लीढ्वा —	आलिह्य
ली	— छिपना —	लीत्वा —	निलीय
लुभ्	— लोभित होना—	लुब्ध्वा —	प्रलुभ्य
वद्	— कहना —	उदित्वा —	अनूद्य
वप्	— बोना —	उप्त्वा —	समुप्य
वस्	— रहना —	उषित्वा —	उपोष्य
वह्	— ढोना —	ऊढ्वा —	प्रोह्य
विद् (२)	— जानना —	विदित्वा —	संविद्य
विद् (१०)	— कहना —	वेदयित्वा—	निवेद्य
विश्	— घुसना —	विष्ट्वा —	प्रविश्य
वृतु	— घेरना —	वर्तित्वा —	विपृण्य
वृध	— बढ़ना —	वर्धित्वा —	संवृध्य
वृष्	— बरसना —	वर्षित्वा —	प्रवृष्य
व्यध्	— वेधना —	विद्ध्वा —	आविध्य

शप् — शाप देना — शप्त्वा — अभिशप्य
शम् — शान्त करना — शान्त्वा — निशम्य (सुनकर)
शास् — शासन करना — शिष्ट्वा — अनुशिष्य
शुष् — सोखना — शुष्ट्वा — परिशुष्य
श्रि — आसरा लेना — श्रित्वा — आश्रित्य
श्रु — श्रुनना — श्रुत्वा — संश्रुत्य, विश्रुत्य
श्लिष् — आलिंगन करना — श्लिष्ट्वा — सश्लिष्य
श्वस् — श्वास लेना — श्वसित्वा — विश्वस्य (विश्वास करके)
सद् — बैठ जाना — सत्त्वा — निषद्य
सह — सहना — सोढ्वा — संसह्य
साघ् — सम्हालना — साद्ध्वा — प्रसाध्य
सिच् — सींचना — सिक्त्वा — अभिषिच्य
सिध् — जाना — सिद्ध्वा — निषिध्य (इनकार करके)
सिव् — सीना — सेवित्वा — ससीव्य,
सृज् — बनाना — सृष्ट्वा — विसृज्य
सेव — सेवा करना — सेवित्वा — 'संसेव्य, निषेव्य
स्तु — स्तुति करना — स्तुत्वा — प्रस्तुत्य (उपस्थित करना)
स्था — ठहरना — स्थित्वा — प्रस्थाय
स्ना — स्नान करना — स्नात्वा — प्रस्नाय
स्निह — स्नेह करना — स्निग्ध्वा — उपस्निह्य
स्पृश् — छूना — स्पृष्ट्वा — संस्पृश्य
स्मृ — स्मरण करना — स्मृत्वा — विस्मृत्य
स्वप् — सोना — सुप्त्वा — संसुप्य
हन् — मारना — हत्वा — निहत्य
हस् — हंसना — हसित्वा — विहस्य
हा — छोड़ना — हित्वा — विहाय
हु — हवन करना — हुत्वा — आहुत्य
हृ — हरण करना — हृत्वा — अपहृत्य
हृष् — खुश होना — हृषित्वा — प्रहृष्य
ह्वे — बुलाना — हूत्वा — आहूय

अभ्यास

(१) निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करो—

१. अपने वंश का विनाश देखकर सारे पशु सिंह के पास गये ।
स्ववंशस्य विनाशं विलोक्य सर्वे पशवः सिंहस्य समीपमगच्छन् ।

२. सबने मिलकर उससे प्रार्थना की ।
सर्वे मिलित्वा तस्मै न्यवेदयन् ।

३. खरगोश धीरे धीरे चलकर सिंह के समीप पहुँचा ।
शशकः मन्दं मन्दं गत्वा सिंहस्य समीपमगच्छत् ।

४. शशक की बात सुनकर सिंह ने कहा ।
शशकस्य वृत्तं श्रुत्वा सिंहः अकथयत् ।

५. तुम देर करके मेरे पास क्यों आये हो !
त्वं कथं चिरं विलम्ब्य मत्समीपमागतः !

६. सिंह अपनी ही छाया को दूसरा सिंह समझकर कुए में कूद पड़ा ।
सिंहः स्व प्रतिविम्बमेव अपरं सिंहं गत्वा कूपे अकूर्दत् ।

७. खरगोश यह देखकर हँसा और खुश होकर घर चला गया ।
शशकः इदं विलोक्याहसत् प्रसन्नो भूत्वा गृहमगच्छत् ।

८. राम ने प्रणाम कर गुरु जी से कहा ।
रामः गुरुं प्रणम्य तस्मै न्यवेदयत् ।

९. मैं बाजार में बहुत सी चीजें देखकर कुछ खरीदूँगा ।
अहमापणे बहूनि वस्तूनि निरीक्ष्य कतिपयानि क्रेष्यामि ।

१०. भारतवर्ष में रात को सभी लोग जल पीकर सोते हैं ।
भारतवर्षे रात्रौ सर्वेजनाः जलं पीत्वा स्वपन्ति ।

११. उस बहेलिये ने मुझे ऐसे देखा मानो वह मेरी आयु को पीकर रह गया ।
स आखेटकः मामनेन रूपेणापश्यत् मे आयुः निपीयातिष्ठत् ।

(२) निम्नलिखित शब्दों का संस्कृत में प्रयोग करो—

विज्ञाय, प्रोच्य, प्राप्य, निरुप्य, विलिख्य, संस्पृश्य, संयम्य, विहाय, निहत्य, संगृह्य, समीक्ष्य, विश्रुत्य, सम्भूय, आलिख्य, आदाय, संसेव्य, प्रबुध्य, प्रदाय, अपहृत्य, उपकृत्य ।

अध्याय १६

कुछ आवश्यक प्रत्यय (ii)

क्त = क्त

यह प्रत्यय उस समय धातु में लगाया जाता है जब कार्य समाप्त हो जाता है। यथा—मैंने पाठ पढ़ लिया—मया पाठः पठितः। इस वाक्य में पढ़ने की क्रिया समाप्त हो गयी। इसी प्रकार "उसने कार्य कर लिया"। तेन कार्यं कृतम् आदि होते हैं।

क्त जोड़ने में प्रायः वे ही सूत्र काम देते हैं जो क्त्वा में देते हैं। सेट् धातुओं में इट् आता है, अनिट् में नहीं। ऊपर दिये गये वाक्यों में "पठितः" में इट् आया है, कृतम् में नहीं। क्त के प्रयोग से संस्कृत का बहुत सा भार हल्का हो जाता है क्योंकि यह अनेक धातुओं के रूपों के स्थान पर काम आता है। इससे पाठकों को नया रूप बनाने की असुविधा से बचत होती है। इसका प्रयोग करते समय विभक्ति, लिंग और वचन का ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि इसका प्रयोग सुबन्त की भाँति सभी लिंगों में होता है—

यथा— पुंल्लिग	स्त्रीलिंग	नपुंसक लिंग
गतः	गता	गतम्
कृतः	कृता	कृतम्
श्रुतः	श्रुता	श्रुतम्

पुंल्लिग—

एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
गतः	गतौ	गताः
कृतः	कृतौ	कृताः
श्रुतः	श्रुतौ	श्रुताः

स्त्रीलिंग में लता के समान तथा नपुंसक लिंग में फल के समान इन शब्दों के रूप चलते हैं— । यथा

स्त्री ०	गता	गते	गताः
	कृता	कृते	कृताः
	श्रुता	श्रुते	श्रुताः

नपुं ० गतम् — गते — गतानि
कृतम् — कृते — कृतानि
श्रुतम् — श्रुते — श्रुतानि

इसके प्रयोग में सबसे बड़ी बात यह है कि इसका प्रयोग कर्मवाच्य की भाँति होता है। अर्थात् कार्य करने वाला तृतीया में तथा कार्य प्रथमा में रहता है। इसके रूप कर्म के अनुरूप रखे जाते हैं कर्त्ता के अनुसार नहीं। यथा—

मया इदं कार्यं कृतम्, तेन इदं कार्यं कृतम्, सर्वैः इदं कार्यं कृतम्, इन वाक्यों में काम करने वाला बदल गया पर कृतम् वैसा ही रहा क्योंकि कर्म में परिवर्तन नहीं आया। कार्य के रूप में परिवर्तन होने पर कृतम् में भी परिवर्तन होगा। यथा—

मया कार्यं कृतम्, मया कार्ये कृते, मया कार्याणि कृतानि।
मया पाठः पठितः, मया पाठौ पठितौ, मया पाठाः पठिताः ॥

विभक्ति के रूपों का अनुमान निम्नलिखित वाक्यों से मिलता है।

एभिः कृतैः कार्यैः सर्वं सिद्धं जातम्।
दिवंगताय पुरुषाय किं देयमित्यहं न जाने।
एतेषु सम्पन्नेषु कार्येषु स मुक्तः जातः ॥

दिवंगताय = दिवं + गम् + क्त + ङे,
मुक्तः = मुच् + क्त + सु ,
सम्पन्नेषु = सम् + पद् + क्त + सुप्।

इससे स्पष्ट है कि क्त की सहायता से हजारों वाक्य बड़ी सरलता से बनाये जा सकते हैं। अभ्यास के लिए प्रत्येक लिंग के अलग-अलग रूप दिखाये जा रहे हैं—

पुंल्लिग – राम की भाँति गतः – गतौ – गताः, हतः – हतौ – हताः
स्त्रीलिंग – लता की भाँति गता – गते – गताः, हता – हते – हताः
नपुंसकलिंग – फल की भाँति गतम् – गते – गतानि, हतं – हते –हतानि

३६० **क्त क्तवतू निष्ठा** क्त औ क्तवतु को निष्ठा कहते हैं।

३६१ **निष्ठा** भूतकाल का अर्थ बताना हो तो धातु से निष्ठा प्रत्यय हो। निष्ठा से क्त भाव और कर्म में आता है तथा क्तवतु कर्त्ता में।

अहं गतवान् — यहाँ क्तवतु का प्रयोग है।

मया विहितः — यहाँ क्त का प्रयोग है।

३६२. **रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः** र् और द् से परे निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार तथा द् के स्थान में भी न् हो। यथा—

छिद् + क्त = छिद् + न = छिन्न। इसी प्रकार भिन्न सम्पन्न, छन्न, शीर्णं, विदीर्णं होते हैं।

कुछ क्त प्रत्ययान्त शब्दों की तालिका

सेट्				अनिट्			
अर्चितः,	आलम्बितः,		ईक्षितः,	अधीतः,	भूतः,	आप्तः,	आरब्धः,
कथितः,	कम्पितः,		कुपितः,	आहूतः,	इष्टः,	कान्तः,	शान्तः,
कूर्दितः,	चरितः,	चलितः,	प्रचलितः	कृतः,	घ्रातः,	चितः,	जातः,
चिन्तितः,	चोरितः,	चेष्टितः,	जीवितः,	जितः,	ज्ञातः,	ततः,	तुष्टः,
ज्वलितः,	दण्डितः,	घोतितः,	हितः,	तृप्तः,	त्यक्तः,	त्रातः,	दष्टः,
धावितः,	निन्दितः,	पतितः,	पठितः,	दान्तः,	दत्तः,	द्यूनः,	दिष्टः,
पलायितः,	पालितः,	पूजितः,	प्रथितः,	धृतः,	ध्मातः,	ध्यातः,	ध्वस्तः,
प्रहितः,	प्रेरितः,	भक्षितः,	भाषितः,	नष्टः,	नतः,	नीतः,	नृत्तः,
भणितः,	मन्थितः,	मितः	मिलितः,	पीतः,	पुष्टः,	पूर्णः,	पृष्टः
मुदितः	मूर्च्छितः,		याचितः	बद्धः,	बुद्धः,	उक्तः,	भिन्नः,
रक्षितः,	रचितः,		रुचितः,	भक्तः,	भग्नः,	भीतः,	मुक्तः,
रुदितः,	लषितः,		लिखितः,	भूतः,	भ्रान्तः,	प्रमत्तः,	मतः,
उदितः,	वन्दितः,		विकसितः,	मुग्धः,	मृष्टः,	यतः,	यातः,
विदितः	वेदितः,		व्यथितः,	युक्तः,	युद्धः,	रतः,	रक्तः,
शंकितः,	सशंकितः,		शिष्टः,	रुद्धः,	लब्धः,	लीढः,	लुब्धः,
शिक्षितः,			शुचितः,	युक्तः,	उप्तः (वप् से)		उषितः,
शोभितः,	सेवितः,		श्रितः,	ऊढः,	वान्तः,	विष्टः	प्रविष्टः,
साधितः,	सितः,		स्थितः,	संनिविष्टः,	वृत्तः,	वृद्धः,	विद्धः,
स्थापितः,	हसितः,		हिंसितः,	शक्तः,	शप्तः,	शान्तः,	शीर्णः,
				शुष्कः,	श्रुतः,	श्लिष्टः,	सन्नः,
				सोढः,	सिक्तः,	सिद्धः,	स्यूतः,
				सृष्टः,	स्तुतः,	स्नातः,	स्निग्धः,
				स्पृष्टः,	सुप्तः,	स्विन्नः,	हतः,
				हीनः,	हुतः,	हृतः,	हृष्टः,
				हूतः,	ह्रीणः।		

टिप्पणी—१. संस्कृत में "जातः" शब्द का प्रयोग बहुत होता है। यह कुछ टेढ़े ढंग से बनता है। मूल धातु जनि है। इसका अर्थ पैदा होना है। इसका अनुबन्ध लोप होने पर जन् बचता है। इस स्थिति में—

३६३. **अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति** अनुनासिक उपधा का दीर्घ हो यदि उससे परे क्वि या झलादि कित् ङित् हो। इसके अनुसार जन् + क्त आने पर जान् + त होता है। इसके अनन्तर सूत्र २५९ से न् का लोप होने पर जातः बनता है।

टिप्पणी—२. इसी प्रकार "गृहीतः" शब्द का प्रयोग बहुत होता है। इसका मूल शब्द ग्रह् है। उसका कित् ङित् प्रत्यय परे रहने पर सम्प्रसारण हो जाता है। तब गृह + त स्थिति बनती है।

३६४. **ग्रहोऽलिटि दीर्घः** ग्रह धातु से किये गये इट् का दीर्घ हो पर लिट् प्रत्यय परे होने पर न हो।

गृह् + इ + त = गृहीतः। इसी में अनु लगाने से अनुगृहीत संगृहीत शब्द बनते हैं। अनुग्रह शब्द शुद्ध है पर अनुग्रहीत नहीं।

टिप्पणी—३. व्यक्तः में चोः कुः और खरि च की प्रवृत्ति है। दष्टः, विष्टः में व्रश्च भ्रस्ज सृज मृज से श् के स्थान में ष् हो जाता है। दग्धः, में दादेर्धातोर्घः से ह् के स्थान में घ तदनन्तर ग् होकर रूप बनता है। लीढः में होढः लगता है। ये सभी सूत्र सुबन्त में आ चुके हैं, इसलिए इनकी विस्तृत व्याख्या नहीं की गयी। इष्ट शब्द में यज् के य् का सम्प्रसारण इ होकर तथा व्रश्च भ्रस्ज सृज आदि से ज् के स्थान में ष् होकर रूप सिद्ध होता है।

३६५. **पचो वः** पच् धातु से क्त प्रत्यय परे रहने पर त के स्थान में व हो।
पच् + क्त, पच् + व, पक्वः।

३६६. **क्षायो मः** क्षै धातु से क्त के स्थान पर म हो क्षै + म = क्षामः।

३६७. **शुषः कः** शुष् धातु से त के स्थान पर क हो। शुष्कः।

अभ्यास

१ निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करो—

१. इन मीठे गिरे हुए फलों से मेरा काम चल जायगा।
एभिः पतितैः मधुरैश्च फलैः मम कार्यं सेत्स्यति।

२. सभी आये हुए लोगों का स्वागत करो।
समेषां समागतानां स्वागतं विधेहि ।

३. आपकी कल्याणकारी बातों का सभी ने स्वागत किया है।
भवतां कल्याणप्रदाः वार्ताः सर्वैः अभिनन्दिताः।

४. घर में आग लगने पर कुआ खोदना कहाँ तक ठीक है ?
प्रदीप्ते/प्रज्ज्वलिते तु भवने कूपखननं केन रुपेण समीचीनं वर्तते ।

५. ये वन्दी उस न्यायालय से जिस किसी तरह छूट पाये हैं ।
इमे वन्दिनः येन केन प्रकारेण तेन न्यायालयेन मुक्ताः ।

६. उसको भगवान के अधीन कर दिया यही अब ठीक है।
सा दैवाधीना कृता एतदेव इदानीं समुचितम् ।

७. जले हुए, खाये हुए और छोड़े हुए भोजन को नहीं खाना चाहिए।
दग्धं भुक्तं, त्यक्तञ्च भोजनं नैव अशितव्यम् ।

८. भूखे को भोजन, थके को शय्या और दुःखी को मीठे वचन अमृत हैं।
क्षुधिताय भोजनं, श्रान्ताय शय्या, पीडिताय च मधुराणि वचनानि अमृतमेव ।

९. शिक्षितलोग लिखित बात पर बहुत विश्वास करते हैं।
शिक्षिताः लिखितेषु तथ्येषु बहु विश्वसन्ति ।

१०. सशक्त लोगों से संसार भयभीत होता है।
सबलेभ्यः जनेभ्यः संसारः भयभीतः भवति ।

११. तुमने वहां जो कुछ भी किया है मुझे सब मालूम हो गया है।
त्वया तत्र यत् किंचित् विहितं मया सर्वं ज्ञातम् ।

१२. अब चिन्तित होने से क्या जो हो गया सो हो गया।
इदानीं चिन्तनेन किं यज्जातं तज्जातमेव ।

अध्याय १६ (iii)

तुमुन्

"के लिए" का भाव प्रकट करने के लिए (अँग्रेजी का इन फिनिटिव) संस्कृत की धातुओं में "तुमुन्" प्रत्यय जोड़ देते हैं।

३६८ **तुमुन् ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्** क्रिया अर्थक क्रिया पहले होने पर भविष्यत् अर्थ में धातु से तुमुन् और ण्वुल् हों। इनमें तुमुन् से तुम् शेष रहता है। कृन्मेजन्तः † से यह अव्यय के समान् हो जाता है। यथा— राम मित्र को देखने जाता है। रामः मित्रं द्रष्टुं याति।

३६९ **कालसमयवेलासुतुमुन्** काल, समय और वेला उपपद रहने पर भी तुमुन् होता है।

अयं कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

तुमुन् जोड़ने में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होते। इ और उ का गुण होता है तथा सेट् धातुओं से इट् का आगम होता है। यथा पठितुम्, अर्चितुम्, भवितुम्, शयितुम्।

यहाँ प्रमुख धातुओं से तुमुन् जोड़ कर रूप दिये जा रहे हैं।

अद्	+	तुमुन्	=	अत्तुम्	इ	+	तुमुन्	=	एतुम्
अधि	+ इ +	"	=	अध्येतुम्	ईक्ष्	+	'	=	ईक्षितुम्
अर्च्	+	"	=	अर्चितुम्	कथ	+	'	=	कथयितुम्
अस्	+	"	=	भवितुम्	कम्	+	'	=	कमितुम्
आप्	+	"	=	आप्तुम्	कम्प्	+	'	=	कम्पितुम्
आ	+ रभ् +	"	=	आरब्धुम्	कुप्	+	'	=	कोपितुम्
आ	+ रुह +	"	=	आरोढुम्	कूर्द	+	'	=	कूर्दितुम्
आ	+ लप् +	"	=	आलपितुम्	कृ	+	'	=	कर्तुम्
आस् +		"	=	आसितुम्	कृष्	+	'	=	कर्ष्टुम्
					क्रन्द	+	'	=	क्रन्दितुम्

† कृन्मेजन्तः— जो कृत प्रत्यय मकारान्त और एजन्त हों तो वे तदन्त अव्यय हों।

क्रम्	+	तुमुन्	=	क्रमितुम्
क्री	+	"	=	क्रेतुम्
क्रीड्	+	"	=	क्रीडितुम्
क्रुध्	+	"	=	क्रोद्धुम्
क्षम्	+	"	=	क्षमितुम्
क्षिप्	+	"	=	क्षेप्तुम्
खन्	+	"	=	खनितुम्
खाद	+	"	=	खादितुम्
गण्	+	"	=	गणयितुम्
गम्	+	"	=	गन्तुम्
गर्ज	+	"	=	गर्जितुम्
गै	+	"	=	गातुम्
ग्रस्	+	"	=	ग्रसितुम्
ग्रह्	+	"	=	ग्रहीतुम्
घ्रा	+	"	=	घ्रातुम्
चर्	+	"	=	चरितुम्
चल्	+	"	=	चलितुम्
चि	+	"	=	चेतुम्
चिन्त्	+	"	=	चिन्तयितुम्
चुर्	+	"	=	चोरयितुम्
चेष्ट	+	"	=	चेष्टितुम्
छिद्	+	"	=	छेत्तुम्
जन्	+	"	=	जनितुम्
जप्	+	"	=	जपितुम्
जि	+	"	=	जेतुम्
जीव	+	"	=	जीवितुम्
ज्ञा	+	"	=	ज्ञातुम्
ज्वल्	+	"	=	ज्वलितुम्
डी	+	"	=	डयितुम्
तप्	+	"	=	तप्तुम्
त्यज्	+	तुमुन्	=	त्यक्तुम्
त्रै	+	"	=	त्रातुम्
दश्	+	"	=	दष्टुम्
दह्	+	"	=	दग्धुम्
दा	+	"	—	दातुम्
दिश	+	"	=	देष्टुम्
दीक्ष्	+	"	=	दीक्षितुम्
दुह	+	"	=	दोग्धुम्
द्युत्	+	"	=	द्योतितुम्
द्रुह्	+	"	=	द्रोग्धुम्
धा	+	"	=	धातुम्
धाव्	+	"	=	धावितुम्
धृ	+	"	=	धर्तुम्
ध्यै	+	"	=	ध्यातुम्
ध्वंस्	+	"	=	ध्वंसितुम्
नम्	+	"	=	नन्तुम्
नश्	+	"	=	नशितुम्
नी	+	"	=	नेतुम्
नृत्	+	"	=	नर्तितुम्
पच्	+	"	=	पक्तुम्
पठ्	+	"	=	पठितुम्
पत्	+	"	=	पतितुम्
पद्	+	"	=	पत्तुम्
पलाय	+	"	=	पलायितुम्
पा	+	"	=	पातुम्
पाल्	+	"	=	पालयितुम्
पुष्	+	"	=	पोषितुम्
पूज्	+	"	=	पूजयितुम्
प्रच्छ	+	"	=	प्रष्टुम्
प्रेर्	+	"	=	प्रेरितुम्
बन्ध	+	"	=	बद्धुम्

तृप्	+	"	=	तर्पितुम्
तॄ	+	"	=	तरितुम्
ब्रू	+	तुमुन्	=	वक्तुम्
भक्ष्	+	भक्षितुम्	=	भक्षयितुम्
भाष्	+	"	=	भाषितुम्
भिद्	+	"	=	भेत्तुम्
भुज्	+	"	=	भोक्तुम्
भू	+	"	=	भवितुम्
भृ	+	"	=	भर्तुम्
भ्रम्	+	"	=	भ्रमितुम्
मन्	+	"	=	मन्तुम्
मा	+	"	=	मातुम्
मिल्	+	"	=	मेलितुम्
मुच्	+	"	=	मोक्तुम्
मुद्	+	"	=	मोदितुम्
यज्	+	"	=	यष्टुम्
यत्	+	"	=	यतितुम्
यम्	+	"	=	यन्तुम्
या	+	"	=	यातुम्
याच्	+	"	=	याचितुम्
युज्	+	"	=	योक्तुम्
युध्	+	"	=	योद्धुम्
रक्ष्	+	"	=	रक्षितुम्
रच्	+	"	=	रचयितुम्
रम्	+	"	-	रन्तुम्
राज्	+	"	=	राजितुम्
रुच्	+	"	=	रोचितुम्
रुद्	+	"	=	रोदितुम्
रुध्	+	"	=	रोद्धुम्
लभ्	+	"	=	लब्धुम्
लम्ब	+	"	=	लम्बितुम्
बाध्	+	"	=	बाधितुम्
बुध्	+	"	=	बोद्धुम्
वप्	+	तुमुन्	=	वपितुम्
वस्	+	"	=	वस्तुम्
वह्	+	"	=	वोढुम्
विद्	+	"	=	वेत्तुम्
विश्	+	"	=	वेष्टुम्
वृ	+	"	=	वारयितुम्
वृत्	+	"	=	वर्तितुम्
वृध्	+	"	=	वर्धितुम्
वृष्	+	"	=	वर्षितुम्
वे	+	"	=	वातुम्
शंक	+	"	=	शंकितुम्
शक्	+	"	=	शक्तुम्
शप्	+	"	=	शप्तुम्
शम्	+	"	=	शमितुम्
शिक्ष्	+	"	=	शिक्षितुम्
शुच्	+	"	=	शोचितुम्
शुभ्	+	"	=	शोभितुम्
श्रि	+	"	=	श्रयितुम्
श्रु	+	"	=	श्रोतुम्
श्लिष्	+	"	=	श्लेष्टुम्
सह	+	"	=	सोढुम्
सिच्	+	"	=	सेक्तुम्
सृ	+	"	=	सर्तुम्
सृज्	+	"	=	स्रष्टुम्
सेव	+	"	=	सेवितुम्
स्तु	+	"	=	स्तोतुम्
स्था	+	"	=	स्थातुम्
स्ना	+	"	=	स्नातुम्
स्पर्ध	+	"	=	स्पर्धितुम्

लप् +	" =	लपितुम्		स्पृश् +	" =	स्प्रष्टुम्
				स्मृ +	" =	स्मर्तुम
लिख् +	" =	लेखितुम्		हन् +	" =	हन्तुम्
लिह् +	" =	लेढुम्		हस् +	" =	हसितुम्
				हा +	" =	हातुम्
लुभ +	" =	लोभितुम्		हिंस् +	" =	हिंसितुम्
वद् +	" =	वदितुम्		हु +	" =	होतुम्
				हृ +	" =	हर्तुम्
वन्द् +	" =	वन्दितम्		हृष् +	" =	हर्षितुम्

अभ्यास

१. निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करो—

१. ये फूल शिव के पूजन के लिए और फल खाने के लिए लाया हूँ।
इमानि पुष्पाणि शिवमर्चितुं फलानि चाशितुं आनीतानि मया।

२. यह समय कार्यारम्भ के लिए श्रेष्ठ है।
कार्यारम्भाय समयोऽयं सर्वश्रेष्ठः। (कार्यमारब्धुम्)

३. आज यहाँ लोगों की गणना के लिए कौन आया है ?
अद्येह जनान् गणयितुं कः समागतः ?

४. जीतने के लिए मन, देने के लिए दान और करने के लिए उपकार उत्तम कहा गया है।
जेतुं मनः, दातुं दानम्, कर्तुञ्चोपकारः उत्तमः निर्दिष्टः।

५. ये लड़के अपनी गाएं दुहने में समर्थ हैं।
इमे बालकाः स्वीयाः गाः दोग्धुं समर्थाः।

६. मेरे पास ग्रहण करने के लिए कुछ भी नहीं है।
मत्सकाशे ग्रहीतुं नास्ति किञ्चित्।

७. वे लड़कियाँ अपना गीत गाना चाहती हैं।
ताः बालिकाः स्वीयं गीतं गातुं वाञ्छन्ति।

८ आज के शासक प्रजा का पालन नहीं करना चाहते।
अद्यतनाः शासकाः प्रजां पालयितुं नैव वाञ्छन्ति।

९. उसने कुछ कहने की चेष्टा की पर कह नहीं सका ।
स किंचित् वक्तुं अयतत किन्तु भाषितुं नापारयत् ।

१०. मैं किसी को निन्दित नहीं करना चाहता ।
नाहं वाञ्छामि कमपि निन्दितुम् ।

अध्याय १६

कुछ आवश्यक प्रत्यय (IV)

शतृ/शानच्

जाते हुए, खाते हुए आदि की तरह का भाव प्रकट करने के लिए शतृ और शानच् का प्रयोग किया जाता है । शतृ परस्मैपदी धातुओं से तथा शानच् आत्मनेपदी धातुओं से आता है । इसके लिए सूत्र है—

३७०. **लटः शतृ शानचावप्रथमासमानाधिकरणे** प्रथमा से भिन्न समानाधिकरण होने पर लट् के स्थान में शतृ और शानच् का प्रयोग हो । समानाधिकरण का तात्पर्य है जब दो कार्य एक ही व्यक्ति के द्वारा एक ही विभक्ति में हों । यथा—

रामः ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति । यहाँ जाने और स्पर्श करने का कार्य एक ही व्यक्ति द्वारा सम्पन्न हो रहा है । शतृ से केवल अत् शेष रहता है ।†

गम्+शत्=गम्+अ+अत् अतोगुणे से पररूप होता है=गच्छ+अत्=गच्छत् शानच् से आन रह जाता है । यथा शुभ्+शानच्=शोभ+अ+आन=शोभमानः । इसमें मकार अगले सूत्र से आता है ।

३७१. **आने मुक्** अदन्त अङ्ग से "आन" के पूर्व म का आगम हो । यथा— पच्+आन, पच्+अ+आन=पच+म+आन=पचमान । इसी प्रकार सेवमानः, शोभमानः । इन शब्दों के सुबन्तों की भाँति रुप भी चलते हैं । पुंल्लिंग में हलन्त पुं० के समान, स्त्रीलिंग में ई जोड़कर नदी के समान और नपुंसक लिंग में जगत् के समान

---

† शतृ और शानच् प्रत्यय आनेपर भ्वादि गणों के विकरण शप् आदि भी बीच में आ जाते हैं ।

होते हैं। शानच् प्रत्यय वाले शब्दों के पुंल्लिग में राम के समान, स्त्रीलिंग में आ जोड़कर लता के समान और नपुंसक लिंग में फल के समान होते हैं।

३७२. **विदे:शतुर्वसुः** विद् धातु से शतृ के स्थान में विकल्प से वसु आदेश हो।
विद्+शतृ=विद्+अत् = विद्+अन् = विदन् (जब वसु न होगा)
विद्+वस् = विद्वस् = विद्वान् (जब वसु होगा) विद्वस् से पहले शतृ प्रत्ययान्त होने से नुम् आता है। विद्वन् होने पर अत्वसन्तस्य चाऽधातोः से विद्वन् से विद्वान् बनता है।

परस्मैपदी धातुओं से कुछ बने हुए रूप

अद्	—	अदन्	जप्	—	जपन्
अर्च	—	अर्चन्	जि	—	जयन्
अस्	—	सन्	जीव्	—	जीवन्
आप्	—	आप्नुवन्	ज्वल्	—	ज्वलन्
इ	—	यन्	तप्	—	तपन्
इष्	—	इच्छन्	तुद्	—	तुदन्
कुप्	—	कुप्यन्	तुष्	—	तुष्यन्
कृष्	—	कर्षन्	तॄ	—	तरन्
कॄ	—	किरन्	त्यज्	—	त्यजन्
क्रन्द	—	क्रन्दन्	दण्ड्	—	दण्डयन्
क्रम्	—	क्राम्यन्	दह	—	दहन्
क्रीड्	—	क्रीडन्	दिव्	—	दीव्यन्
क्रुध	—	क्रुध्यन्	दिश्	—	दिशन्
क्षम्	—	क्षाम्यन्	दुह्	—	दुहन्
क्षिप्	—	क्षिपन्	दृश्	—	पश्यन्
खन्	—	खनन्	धाव्	—	धावन्
खाद्	—	खादन्	धृ	—	धरन्
गण्	—	गणयन्	ध्यै	—	ध्यायन्
गम्	—	गच्छन्	नम्	—	नमन्

गर्ज	—	गर्जन्
गृ	—	गिरन्
गै	—	गायन्
घ्रा	—	जिघ्रन्
चर्	—	चरन्
चल्	—	चलन्
चि	—	चिन्वन्
छिद्	—	छिन्दन्
प्रेर्	—	प्रेरयन्
बन्ध	—	बध्नन्
भक्ष्	—	भक्षयन्
भज्	—	भजन्
भिद्	—	भिन्दन्
भृ	—	भरन्
भू	—	भवन्
भ्रम्	—	भ्रमन्
मिल्	—	मिलन्
रक्ष्	—	रक्षन्
रच्	—	रचयन्
रुद्	—	रुदन्
लष्	—	लषन्
लिख्	—	लिखन्
लिह्	—	लिहन्
वद्	—	वदन्
वस्	—	वसन्
वह	—	वहन्
विश्	—	विशन्
वृष्	—	वर्षन्
व्यध्	—	विध्यन्
शक्	—	शक्नुवन्
नश्	—	नश्यन्
निन्द्	—	निन्दन्
नृत्	—	नृत्यन्
पठ्	—	पठन्
पत्	—	पतन्
पा	—	पिबन्
पाल्	—	पालयन्
पूज्	—	पूजयन्
प्रच्छ	—	पृच्छन्
शप्	—	शपन्
श्रि	—	श्रयन्
शम्	—	शाम्यन्
शुष्	—	शुष्यन्
श्रु	—	शृण्वन्
सद्	—	सीदन्
सिच्	—	सिंचन्
सिव्	—	सीव्यन्
सृ	—	सरन्
सृज्	—	सृजन्
सृप्	—	सर्पन्
स्तु	—	स्तुवन्
स्था	—	तिष्ठन्
स्पृश्	—	स्पृशन्
स्मृ	—	स्मरन्
स्वप्	—	स्वपन्
हन्	—	हनन्
हस्	—	हसन्
हा	—	जहत्
हृ	—	हरन्
ह्वे	—	ह्वयन्

सीधा सा एक नियम यह है कि लट् के प्रथम पुरुष बहुवचन के रूप से ति निकाल दी जाय तो सदा शतृ प्रत्ययान्त रूप बन जायगा ।

आत्मनेपदी से बने हुए रूप

अधि + इ + आन	=	अधीयानः	वन्द	—	वन्दमानः
आरभ + आन	=	आरभमाणः	वि+राज्	—	विराजमानः
आ+लम्ब	—	आलम्बमानः	वृत्	—	वर्तमानः
आस्+	—	आसीनः	वृध्	—	वर्धमानः
ईक्ष	—	ईक्षमाणः	व्यथ्	—	व्यथमानः
कम्प	—	कम्पमानः	शंक्	—	शंकमानः
कूर्द	—	कूर्दमानः	भिक्ष्	—	भिक्षमाणः
गाह्	—	गाहमानः	शी	—	शयानः
ग्रस्	—	ग्रसमानः	शुच्	—	शोचमानः
चेष्ट	—	चेष्टमानः	श्लाघ	—	श्लाघमानः
जन्	—	जायमानः	संपद्य	—	संपद्यमानः
त्रै	—	त्रायमाणः	सह	—	सहमानः
त्वर्	—	त्वरमाणः	सेव	—	सेवमानः
दय्	—	दयमानः	स्मि	—	स्मयमानः
द्युत्	—	द्योतमानः	कथ्	—	कथयमानः
ध्वंस्	—	ध्वंसमानः	कृ	—	कुर्वाणः
पलाय्	—	पलायमानः	दा	—	ददानः
प्रथ	—	प्रथमानः	धा	—	दधानः,
बाध्	—	बाधमानः	नी	—	नयमानः
भास्	—	भासमानः	ब्रू	—	ब्रुवाणः
भिक्ष	—	भिक्षमाणः	भुज्	—	भुञ्जानः
मन्	—	मन्यमानः	यज्	—	यजमानः
मुद्	—	मोदमानः	कम्	—	कामयमानः
मृ	—	म्रियमाणः	शुभ	—	शोभमानः
यत्	—	यतमानः			

याच्	—	याचमानः	भ्राज	—	भ्राजमाणः
युध्	—	युध्यमानः	भाष्	—	भाषमाणः
रुच्	—	रोचमानः	वेप्	—	वेपमानः
लभ	—	लभमानः	इसी प्रकार विद्यमानः, दीप्यमानः,		

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करो।

१. पुत्र और मित्र को बढ़ता हुआ, यत्न करता हुआ तथा प्रसन्न होता हुआ देखना चाहिए।
पुत्रं मित्रञ्च वर्धमानं, यतमानं, प्रसीदन्तं पश्येत्।

२. सूर्योदय होने पर कान्ति सोने वाले को त्याग देती है।
सूर्योदये जाते (उदिते भानौ) कान्तिः शयानं त्यजति।

३. लक्ष्मी सदा आलसी को त्याग कर उद्यमी के पास चली जाती है।
लक्ष्मीः सदा अलसं त्यक्त्वा उद्योगिनम् उपैति।

४. जब बंगाल सो रहा था तो विदेशी प्रवेश कर गये।
यदा वंगदेशः प्रसुप्तः आसीत् वैदेशिकाः प्राविशन्।

५. वन की चीजों को विनीत बनाने के लिए ही दिलीप वन को गये।
वनवासिनः विनेतुमेव दिलीपः वनं गतः।

६. शंकालु पुरुष जीवन में कुछ भी नहीं कर सकता।
शंकमानः जनः जीवने न किंचिदपि कर्तुं शक्नोति।

७. प्राचीन काल में वटु भिक्षा माँगने एक स्थान से दूसरे स्थान जाते थे।
प्राचीन काले वटवः भिक्षमाणाः एकस्मात् स्थानात् द्वितीयम् अगच्छन्।

८. उन निरपराधियों को दण्ड देने वाला स्वयं रो पड़ा।
तान् निरपराधान् दण्डयन् दण्डप्रदः/दाण्डिकः स्वयमेव व्यलपत्।

९. काँपते हुए स्वर में दशरथ ने राम से जाने को कहा।
कम्पामानेन स्वरेण दशरथः रामं गन्तुमादिशत्।

१०. जाने वाले को कौन रोक सकता है।
गच्छन्तं कः अवरोद्धुं क्षमः।

निम्नलिखित पद्यांश का अर्थ लिखो।

१. वसति स्म पुरा कश्चित् पण्डितो वृद्धतां गतः।
स्वपुत्रानलसान् दृष्ट्वा सचिन्त हृदयोऽभवत्॥ १॥
अथैकस्मिन् दिने पुत्रान् समाहूय वदन् मिथः।

मन्येऽहं मृत्युकालो मे समीपं वर्तंतेऽधुना ॥ २ ॥
श्रूयतां सावधानं च यत्र मे वर्तते धनम् ।
निखातं यत्र कुत्रापि द्रव्यं क्षेत्रे सुरक्षितम् '। ३ ॥

विस्मृतं तु मया स्थानं स्मृति भ्रंशात् सुनिश्चितम् ।
एवमुक्त्वा वचः कष्टात् पञ्चत्वं पण्डितो गतः ॥ ४ ॥

धनलाभेच्छया पुत्रा अखनन् क्षेत्रमुत्सुकाः ।
न दृष्टं तैस्तु कुत्रापि द्रव्यं भूमिगतं तदा ॥ ५ ॥

धान्यं दशगुणं लब्धं यदा क्षेत्रस्य कर्षणात् ।
अवदंस्ते तदा पुत्रा ज्ञातो हि पितुराशयः ॥ ६ ॥

पराधिकारचर्चा न कर्त्तव्या

२. अस्ति वाराणस्यां कर्पूर पटो नाम रजकः । स दिवा सुचिरं प्रयत्य रात्रौ गाढं स्वपिति । एकदा स हेमन्तसमये अतिशीतेन हस्तचरणमाकृष्य गाढं प्रसुप्तः । तदनन्तरं द्रव्याणि चोरयितुं चोरस्तस्य गृहं प्रविष्टः ।

तस्य प्राङ्गणे गर्दभो वद्धस्तिष्ठति, कुक्कुरश्चोपविष्टः । अथ गर्दभः श्वानमाह । सखे ! नोचितः भवतस्तावदयं व्यापारः । तत् किमिति त्वमुच्चैः शब्दं कृत्वा स्वामिनं न जागरयसि । कुक्कुरो ब्रूते-भद्र ! मम नियोगस्य चर्चा त्वया न कर्त्तव्या । त्वमेव किं न जानासि यथा तस्याहं गृहरक्षां करोमि । अतोऽयं चिरान्निर्वृत्तो ममोपयोगं न जानाति ।

तेनाधुना ममाहारदानेऽपि मन्दादरः कृतः । यतो विना विधुरदर्शनं स्वामिनः उपजीविषु मन्दादरा भवन्ति । गर्दभो ब्रूते—शृणु रे बर्वर !

याचते कार्यकाले यः स किं भृत्यः स किं प्रभुः । कुक्कुरो ब्रूते—भृत्यान् संभावयेत् यस्तु कार्यकाले स किं प्रभुः ? ततो गर्दभः सकोपमाह-अरे दुष्टमते, अतिपापः खलु त्वम्, यद् विपत्तावपि स्वामिकार्ये उपेक्षां करोषि । भवतु । यथा स्वामी जागर्ति तथा मया कर्त्तव्यम् । इत्युक्त्वा स चीत्कार शब्दं कृतवान् । तेन स चौरो रजकस्य प्रबोधशंकया पलायितः । रजकस्तु निद्राभंगेन कुपितो गर्दभं लगुडेन निर्दयं ताडितवान् अतोऽहं ब्रवीमि ।

पराधिकार चर्चां यः कुर्यात् स्वामि हितेच्छया ।
स विषीदति चीत्कारात् ताडितो गर्दभो यथा ॥

इस कहानी में संस्कृत का स्वाभाविक और व्यावहारिक रूप झलकता है। आज जो संस्कृत लिखी जाती है उसमें यह स्वाभाविकता नहीं होती क्योंकि उसका वाक्य विन्यास आधुनिक विशेषकर पाश्चात्य भाषाओं से प्रभावित होता है। आज आवश्यकता है कि वर्तमान विषयों को प्राचीन और सरल भाषा का जामा पहनाया जाय।

अध्याय १६

कुछ आवश्यक प्रत्यय (V)

तव्यत् तव्यानीयरः

"चाहिए" का भाव प्रकट करने के लिए तव्यत्, तव्य और अनीयर् प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। इन प्रत्ययों के प्रयोग से हमारा बहुत सा शब्द-व्यवहार सरलता से चल जाता है। इनमें से तव्यत् और तव्य में बहुत थोड़ा अन्तर है। दोनों में से केवल तव्य शेष रहता है। तव्यत् में त् अधिक इसलिए रखा गया है कि वह तित् बन जाय और तित् बनने से "तित् स्वरितम्" के आधार पर स्वरित हो जाय। अनीयर् से र् गिर जाता है, केवल अनीय रह जाता है। इनके रूप बड़ी सरलता से बनते हैं। यथा—

एध् + तव्य = एधितव्यम् (आर्धधातुक से इट् आने पर)
एध् + अनीय = एधनीयम्

"तुमुन्" की भाँति इसमें भी गुण कार्य होता है। यथा—

चि + तव्य = चेतव्यम्।
चि +अनीयर्= चयनीयम्
शुच् + तव्य = शोचितव्यम्
शुच् +अनीयर्= शोचनीयम्
कृ + तव्य = कर्त्तव्यम् आदि

इनका प्रयोग करते समय कर्त्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा होती है। इनका लिंग और वचन कर्म के अनुरूप रहता है। यथा—

मया पाठः पठितव्यः ।
मया पुस्तकं पठितव्यम् ।
,, पुस्तके आनेतव्ये ।
,, इमाः लताः पातितव्याः ।

सुविधा के लिए इन प्रत्ययों से बने हुए शब्दों की तालिका यहाँ दी जाती है। तुमुन् के स्थान पर तव्य लगाने से भी ये रूप बन सकेंगे।

अद्	—	अदितव्यम्	क्रुध्	—	क्रोधितव्यम्
अधि+इ	—	अध्येतव्यम्	क्षम्	—	क्षन्तव्यम्
अर्च	—	अर्चितव्यम्	क्षिप्	—	क्षेप्तव्यम्
अस्	—	भवितव्यम्	खन्	—	खनितव्यम्
आप्	—	आप्तव्यम्	खाद्	—	खादितव्यम्
आ+रभ्	—	आरब्धव्यम्	गण्	—	गणयितव्यम्
आ+रुह	—	आरोढव्यम्	गद्	—	गदितव्यम्
आ+लप्	—	आलपितव्यम्	गम्	—	गन्तव्यम्
आस्	—	आसितव्यम्	गर्ज	—	गर्जितव्यम्
आ+ह्वे	—	आह्वातव्यम्	गै	—	गातव्यम्
इ	—	एतव्यम्	ग्रस्	—	ग्रसितव्यम्
इष्	—	एषितव्यम्	ग्रह्	—	ग्रहीतव्यम्
ईक्ष्	—	ईक्षितव्यम्	घ्रा	—	घ्रातव्यम्
कथ्	—	कथयितव्यम्	चर्	—	चरितव्यम्
कम्	—	कमितव्यम्	चल्	—	चलितव्यम्
कम्प	—	कम्पितव्यम्	चि	—	चेतव्यम्
कुप्	—	कोपितव्यम्	चिन्त	—	चिन्तयितव्यम्
कूर्द	—	कूर्दितव्यम्	चुर्	—	चोरयितव्यम्
कृ	—	कर्त्तव्यम्	चेष्ट	—	चेष्टितव्यम्
क्लृ	—	कल्पितव्यम्	छिद्	—	छेत्तव्यम्
क्रन्द	—	क्रन्दितव्यम्	जन्	—	जनितव्यम्
क्रम्	—	क्रमितव्यम्	जप्	—	जपितव्यम्
क्री	—	क्रेतव्यम्	जि	—	जेतव्यम्
क्रीड्	—	क्रीडितव्यम्	जीव	—	जीवितव्यम्
			ज्ञा	—	ज्ञातव्यम्

ज्वल्	—	ज्वलितव्यम्	पुष्	—	पोषितव्यम्
डी	—	डयितव्यम्	पूज्	—	पूजितव्यम्
तप्	—	तप्तव्यम्	प्रच्छ	—	प्रष्टव्यम्
तृ	—	तरितव्यम्	प्रेर्	—	प्रेरयितव्यम्
त्यज्	—	त्यक्तव्यम्	बन्ध	—	बद्धव्यम्
त्रै	—	त्रातव्यम्	बाध्	—	बाधितव्यम्
दंश	—	दंष्टव्यम्	बुध्	—	बोधितव्यम्
दह्	—	दग्धव्यम्	ब्रू ञ्	—	वक्तव्यम्
दा	—	दातव्यम्	भक्ष्	—	भक्षयितव्यम्
दिश्	—	देष्टव्यम्	भाष्	—	भाषितव्यम्
दीक्ष	—	दीक्षितव्यम्	भेद्	—	भेत्तव्यम्
दुह्	—	दोग्धव्यम्	भुज्	—	भोक्तव्यम्
द्युत्	—	द्योतितव्यम्	भी	—	भेतव्यम्
द्रुह	—	द्रोग्धव्यम्	भू	—	भवितव्यम्
धा	—	धातव्यम्	भृ	—	भर्तव्यम्
धाव्	—	धावितव्यम्	भ्रम्	—	भ्रमितव्यम्
धृ	—	धर्तव्यम्	मन्	—	मन्तव्यम्
ध्यै	—	ध्यातव्यम्	मा	—	मातव्यम्
ध्वंस्	—	ध्वंसितव्यम्	मिल्	—	मेलितव्यम्
नम्	—	नन्तव्यम्	मुच्	—	मोक्तव्यम्
नश्	—	नशितव्यम्	मुद्	—	मोदितव्यम्
निन्द	—	निन्दितव्यम्	मृ	—	मर्तव्यम्
नी	—	नेतव्यम्	यज्	—	यष्टव्यम्
नृत्	—	नर्तितव्यम्	यत्	—	यतितव्यम्
पच्	—	पक्तव्यम्	यम्	—	यन्तव्यम्
पठ्	—	पठितव्यम्	या	—	यातव्यम्
पत्	—	पतितव्यम्	याच्	—	याचितव्यम्
पद्	—	पत्तव्यम्	युज्	—	योक्तव्यम्
पलाय्	—	पलायितव्यम्	युध्	—	योद्धव्यम्
पा	—	पातव्यम्	रक्ष	—	रक्षितव्यम्
पाल्	—	पालयितव्यम्	रम्	—	रन्तव्यम्

राज्	—	राजितव्यम्	शप्	—	शप्तव्यम्
रुच्	—	रोचितव्यम्	शम्	—	शमितव्यम्
रुद्	—	रोदितव्यम्	शिक्ष्	—	शिक्षितव्यम्
रुध्	—	रोद्धव्यम्	शी	—	शयितव्यम्
लभ्	—	लब्धव्यम्	शुभ्	—	शोभितव्यम्
लम्ब	—	लम्बितव्यम्	श्रि	—	श्रयितव्यम्
लप्	—	लपितव्यम्	श्रु	—	श्रोतव्यम्
लिख्	—	लेखितव्यम्	श्लिष्	—	श्लेष्टव्यम्
लिह्	—	लेढव्यम्	सह्	—	सोढव्यम्
लुभ्	—	लोभितव्यम्	सिच्	—	सेक्तव्यम्
वच्	—	वक्तव्यम्	सृज्	—	स्रष्टव्यम्
वद्	—	वदितव्यम्	स्तु	—	स्तोतव्यम्
वन्द्	—	वन्दितव्यम्	स्था	—	स्थातव्यम्
वप्	—	वप्तव्यम्	स्ना	—	स्नातव्यम्
वस्	—	वस्तव्यम्	स्पृश्	—	स्प्रष्टव्यम्
वह्	—	वोढव्यम्	स्मृ	—	स्मर्तव्यम्
विद्	—	वेत्ताव्यम्	हन्	—	हन्तव्यम्
विश्	—	वेष्टव्यम्	हस्	—	हसितव्यम्
वृ	—	वारयितव्यम्	हा	—	हातव्यम्
वृत्	—	वर्तितव्यम्	हिंस्	—	हिंसितव्यम्
वृध्	—	वर्धितव्यम्	हु	—	होतव्यम्
वृष्	—	वर्षितव्यम्	हृ	—	हर्तव्यम्
शंक्	—	शंकितव्यम्	हृष्	—	हर्षितव्यम्
शक्	—	शक्तव्यम्			

अभ्यास

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करो ।

१. आपको यह कार्य आरम्भ करना चाहिए ।
भवद्भिः इदं कार्यं आरब्धव्यम् ।

२. आपको यह बात कल ही बतानी थी ।
भवद्भिः इदं तथ्यं ह्य एव निगदनीयमासीत् ।

३. ये सभी पुस्तकें पढ़ी जानी चाहिए ।
इमानि सर्वाणि पुस्तकानि पठितव्यानि ।

४. कल केवल २० पाठ पढ़े जाने हैं ।
श्वः केवलं विंशतिः पाठाः पठितव्याः ।

५. आज के युग में सभी को अपने अधिकार का भोग करना चाहिए ।
आधुनिके युगे सर्वैः स्वीयाः अधिकाराः भोक्तव्याः ।

६. इन बालिकाओं को अपने सुख के लिए सामान्य नियमों को अवश्य मानना चाहिये ।
आभिः बालकाभिः स्वीयाय सुखाय सामान्याः नियमाः अवश्यं मन्तव्याः ।

७. आपको विदेश जाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए ।
भवद्भिः विदेश गमनाय प्रयतितव्यम्

८. इन छात्रों को कलह न करना चाहिये बल्कि लिखना पढ़ना चाहिए ।
एभिः छात्रैः कलहो न कर्त्तव्यः प्रत्युत लेखितव्यम् पठितव्यम् च ।

९. इन लोगों को सभी की बातें सुननी चाहिए और यहीं ठहरना चाहिए ।
एभिः जनैः सर्वेषां वार्ताः श्रोतव्याः अत्रैव च स्थातव्यम् ।

१०. हमें देश की सेवा करनी चाहिए ।
अस्माभिः राष्ट्रसेवा करणीया ।

११. बड़ों की आज्ञा माननी चाहिए ।
गुरुणां आज्ञा पालनीया ।

२. (अ) दीपावलि महोत्सव पर एक संक्षिप्त निवन्ध लिखो ।

आनन्दप्रदः, परमप्रियः, आह्लादकरः दीपावल्याः महोत्सवः कस्य न प्रियः । भारतवर्षे महोत्सवोऽयं समृद्धेः प्रतीकम् इव विद्यते ! अस्य महोत्सवात् प्रागेव जनाः अस्य प्रतीक्षां कुर्वन्ति । ते विविधान् संकल्पान् विदधति । अस्य कृते ऋणं कृत्वाऽपि ते आनन्दाय सज्जीभवन्ति । अनेके दुःखिताः, समयेन प्रताडिताः जना अपि अस्मिन् समये क्षणं स्वीयानि कष्टानि विस्मरन्ति । कथं न एवम्, अयमन्धकारं दूरीकरोति स्वच्छतामानयति, सद्बुद्धि च प्रयच्छति । अयं कार्तिकमासस्य अमावस्यायां भवति किन्तु अस्यायोजनमाश्विन्मासात् एव प्रारभते । जनाः लेपनेन मार्जनेन च स्वगृहाणि स्वच्छानि कुर्वन्ति । उत्सवस्य दिवसे ते विविधानि व्यञ्जनानि रचयन्ति, खादन्ति, भोजयन्ति च । बालकानां बालिकानां कृतेऽयम् उत्सवः विशेषरूपेण सुखप्रदः ।

सायंकाले जनाः दीपान् प्रज्ज्वालयन्ति, भवनेषु, द्वारेषु, देवालयेषु च तान् स्थापयन्ति। ते विविधरूपेण भवनानि भूषयन्ति। अमावस्यायामपि रात्रौ सर्वत्र प्रकाशः जायते। नगरेषु ग्रामेषु सर्वत्र दीपावल्याः प्रकाशेन अलौकिकी शोभा प्रसरति। स्थाने स्थाने भवनेषु दीपावल्यः शोभन्ते। साम्प्रतं नगरेषु दीपावल्याः स्थानं विद्युतदीपैः गृहीतम्। विद्युत दीपानामलंकरणानि बहुरूपाणि भवन्ति।

अयं महोत्सवः चिरात् प्रचलितः अस्ति। एषा जनश्रुतिः यदस्मिन् दिने श्री रामचन्द्रः रावणं विजित्य अयोध्यां प्रत्यागच्छत्। अतः अयोध्यावासिनः तस्मिन् दिने अनुरागेण दीपावलीः प्राज्ज्वालयन्। अधुनाऽपि जनाः तद् दिनं स्मरन्ति। एतदतिरिक्तं कृषकाः इदानीं नवं धान्यं प्राप्नुवन्ति अतो हि ते प्रमुदिताः भवन्ति। ते नवेन धान्येन देवान् पूजयन्ति। केचन दुर्बुद्धयः अस्मिन् पर्वणि दीव्यन्ति। अनन्तरं ते दुःखिनः भवन्ति। उत्सवाः आनन्दाय आयान्ति न तु दुःखाय।

२. (आ) होलिकोत्सव पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखो।

आगारः आनन्दानां, आश्रयः प्रमोदानां, आधारः रंगारंगकार्यक्रमाणां, प्रदाता च सुखानां होलिकोत्सवः फाल्गुनमासस्य पूर्णिमायां भवति। अयमुत्सवः अनेकत्वे एकत्वं विदधाति। अयं परस्परान् भेदान् विस्मारयति, अयमेव एकस्मिन् दिने आबाल वृद्धान् जनान् सर्वान् प्रमुदितान् करोति। एका जनश्रुतिः अस्ति यत् पुरा हिरण्यकशिपुः नाम नृपः आसीत्। स पराक्रमशीलः दुर्दान्तः नृपः आसीत्। तेन स्वतपोबलेन भगवतः एकं वरं प्राप्तं यत् स केनापि सुरेणासुरेण वा रात्रौ दिने, गृहे बाह्य, शस्त्रास्त्रैर्वा न हन्तव्यः भवेत्। ततः परं तेन ईश्वरस्य विरोधः कृतः। तस्य एकः पुत्रः प्रह्लाद नामकः आसीत्। स ईशभक्तः आसीत्। यदा प्रह्लादः ईश्वरमभजत स पित्रा वारितः। शनैः शनैः तयोः विरोधः वृद्धिमुपगतः। हिरण्यकशिपुना बहुधा वर्जितः किन्तु तस्य पुत्रः भगवद् भजनं नात्यजत्। एकस्मिन् दिने प्रह्लादस्य पितृष्वसा होलिका तं दग्धुं स्वाङ्के निधाय वह्निं प्राविशत् किन्तु तत्र सा स्वयमेव भस्मीभूता न प्रह्लादः। तस्मात् दिनात् जनः असत्यस्य पराजयं सत्यस्य च जयम् उद्घोषयन्ति। प्रतिवर्षं ततः परं इमं उत्सवरूपेण ते मन्यन्ते। अस्मिन् दिने होलिकायाः दाहानन्तरं परस्परं मिलन्ति, कलहं विस्मृत्य जनः रिपुणापि सह पर्यटन्ति, गुलालादिकेन परस्परं रञ्जयन्ति।

इदं पर्व इदानीं सामूहिकरूपेण मान्यते, एकतायाः प्रतीकश्च गण्यते। इदं पर्व राष्ट्रपर्वतुल्यं जातम्। सर्वे जनाः पदजात्यादिभेदं विस्मृत्य अस्मिन् पर्वणि सम्मिलन्ति आनन्दञ्चानुभवन्ति। होलिकोत्सवेऽपि नूतनानि सस्यानि आयान्ति। शीतावसानः भवति। अतः जनाः स्वाभाविकरूपेण प्रसन्नाः जायन्ते। केषुचित् नगरेषु अयमुत्सवः अनेकानि

दिनानि प्रचलति । स्थाने स्थाने मनोरंजकाः कार्यक्रमाः प्रचलन्ति । अयं भारतस्य सांस्कृतिक परम्परां प्रदर्शयति । चिरं तिष्ठतु अयमुत्सवः ।

विश्वासो नैव कर्त्तव्यो यादृशे तादृशे जने ।

अस्ति भागीरथे तीरे गृध्रकूटनाम्नि शिखरिणि महान् वटवृक्षः । तस्य कोटरे गलितनखनयनः कोऽपि जरद्गवनामा गृध्रः प्रतिवसति स्म । अथ कृपया तज्जीवनाय तद्वृक्षवासिनः पक्षिणः स्वाहारात् किंचिदुद्धृत्य तस्मै प्रयच्छन्ति स्म । अथा कदाचित् दीर्घकर्णनामा मार्जारः पक्षिणां शावकान् भक्षयितुं तत्रागतः । तं दृष्ट्वा पक्षिशावकैः कोलाहलः कृतः । तच्छ्रुत्वा जरद्गवेनोक्तं कोऽयमागच्छति । दीर्घकर्णो गृध्रमवलोक्य सभयम् अवदत् "यद्भावि तद् भवतु" विश्वासं तावदुत्पादयामि । इति विचिन्त्य अभाषत—

दीर्घ कर्णः — आर्य ! त्वामभिवन्दे !

गृध्रः — कस्त्वम् ।

दीर्घकर्णः — मार्जारोऽहम्

गृध्रः — दूरम् अपसर, नो चेद् निषूदयामि ।

दीर्घकर्णः — श्रूयतां मम वचनम्, ततोऽहं यदि वध्यः तदा हन्तव्यः ।

यतः —

जाति मात्रेण न कश्चिद् हन्यते पूज्यते क्वचित् ।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत् ।।

गृध्रः — वद, किमर्थम् आगतोऽसि ।

दीर्घकर्णः — अहमत्र गंगातीरे नित्यस्नायी, ब्रह्मचारी, चान्द्रायणव्रतम् आचरामि । त्वं धर्मज्ञानरत इति सर्वे पक्षिणो ममाग्रे वदन्ति । अतो धर्मं श्रोतुमिहागतोऽहम् ।

गृध्रः — मार्जारो हि मांस रुचिः । पक्षिणां शावकाश्चात्र निवसन्ति । एवं सति कथं त्वयि विश्वासः कर्त्तव्यः ।

दीर्घकर्णः—"भूमिं स्पृशति, कर्णौ स्पृशति" मया धर्मशास्त्रं श्रुत्वा वैराग्येण दुष्करं चान्द्रायणव्रतम् अध्यवसितम् ।

अहिंसापरमो धर्म इति मे व्रतम् ।

एवमादिभिः वचनैः गृध्रमाश्वास्य स दीर्घकर्णो मार्जारः तत्र तरु कोटरे स्थितः ।

ततः केनचित् कालेन स पक्षिणां शावकान् आक्रम्य कोटरम् आनीय च प्रत्यहं खादति स्म । अथ येषामपत्यानि खादितानि तैः शोकार्तैः पक्षिभिः जिज्ञासा समारब्धा । तत् परिज्ञाय मर्जारः कोटरान् निःसृत्य वहिः पलायितः । तदा जरद्गवेन अस्माकं शावकाः खादिताः इति मत्वा पक्षिभिः गृध्रो व्यापादितः । अतः उक्तम्

अज्ञातकुल शीलस्य वासो देयो न कस्यचित् ।
मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृध्रो जरद्गवः ॥

१. उपर्युक्त गद्य खण्ड में कालेलिखे शब्दों की व्युत्पत्ति करो ।

२. इस कहानी को अपनी मातृभाषा में लिखो ।

३. इसमें प्रयुक्त सन्धियाँ बताओ ।

४. निम्नलिखित श्लोकों से गंगा और कमल के पर्याय चुनो ।

गंगा विष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा ।
भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्रोता भीष्मसूरपि ॥

कालिन्दी सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा ।
वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलं ॥

सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम् ।
पङ्केरुहं तामरसं सारसं सरसीरुहम् ॥

विंसप्रसून राजीव पुष्कराम्भोरुहाणि च ।
पुण्डरीकं सिताम्भोजमथरक्तसरोरुहे ॥

५. निम्नलिखित सूक्तियाँ कण्ठस्थ करो ।

(i) जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।

(ii) जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।

(iii) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।
(रत्न किसी को नहीं खोजता उसे ही खोजा जाता है ।)

(iv) यादृशं वपते बीजं तादृशं लभते फलम् ।

(v) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

(vi) कन्या वरयते रूपं माता वित्तं पिता श्रुतम् ।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः ॥

अध्याय १७

कर्मवाच्य तथा भाववाच्य

कर्मवाच्य सकर्मक धातुओं से होता है और भाववाच्य अकर्मक से किन्तु दोनों में आत्मनेपद के प्रत्यय लगाये जाते हैं। इन वाच्यों के रूप बनाने के लिए निम्नलिखित नियम आवश्यक हैं—

३७३. **भावकर्मणोः** भाव और कर्म अर्थ में लकारों से आत्मनेपद प्रत्यय हों। इसके अनुसार भाववाच्य और कर्मवाच्य में सभी धातु आत्मनेपदी हुए। जो धातु पहले ही से आत्मनेपदी हैं उनके आर्धधातुक रूपों में कर्तृवाच्य तथा भाववाच्य रूपों में प्रायः कोई अन्तर नहीं होता। परस्मैपदी धातुओं के आर्धधातुक आत्मनेपद के समान हो जाते हैं। पर सार्वधातुक लकारों में इन वाच्यों में अन्तर पड़ता है। यह अन्तर इस प्रकार है—

३७४. **सार्वधातुके यक्** भाववाच्य तथा कर्मवाच्य के सार्वधातुक लकार के रूप बनाने के लिए धातु से यक् प्रत्यय हो। यक् से केवल य शेष रहता है क् गिर जाता है। यथा— पठ्+य+ते=पठ्यते। द्विवचन में पठ्येते, बहुवचन में पठ्यन्ते।

इसी प्रकार दृश्यते, भूयते, नीयते, युध्यते, कथ्यते, गृह्यते, भिद्यते, खिद्यते आदि।

३७५. **ईद्यति** यकार परे रहते आकार के स्थान में ईकार हो जाय। यथा—

दा + य + ते = दीयते,

पा + य + ते = पीयते,

गा + य + ते = गीयते,

इसी प्रकार धीयते, हीयते, स्थीयते, मीयते आदि। ज्ञायते में ई नहीं होता क्योंकि इसमें ज्ञा मूल धातु नहीं है।

३७६. **तनोतेर्यकि** तनु धातु का आकार अन्तादेश हो विकल्प से यदि उससे परे यक् हो।

तन् + य + ते, ता + य + ते (आ होने पर)

तन् + य + ते, तन्यते (आ न होने पर)

लृट् में कर्तृवाच्य की तरह आत्मनेपद होता है।

करिष्यते, करिष्येते, करिष्यन्ते,
पठिष्यते, पठिष्येते, पठिष्यन्ते,
प्रक्ष्यते, प्रक्ष्येते प्रक्ष्यन्ते।

कुछ अन्य प्रमुख धातुओं के रूप पाँचों लकारों में सुविधा के लिए दिखाये जाते हैं—

पठ्—	लट्—	पठ्यते	पठ्येते	पठ्यन्ते
		पठ्यसे	पठ्येथे	पठ्यध्वे
		पठ्ये	पठ्यावहे	पठ्यामहे
	लोट्—	पठ्यताम्	पठ्येताम्	पठ्यन्ताम्
		पठ्यस्व	पठ्येथाम्	पठ्यध्वम्
		पठ्यै	पठ्यावहै	पठ्यामहै
	लृट्—	पठिष्यते	पठिष्येते	पठिष्यन्ते
		पठिष्यसे	पठिष्येथे	पठिष्यध्वे
		पठिष्ये	पठिष्यावहे	पठिष्यामहे
	लिङ्—	पठ्येत	पठ्येताम्	पठ्येरन्
		पठ्येथाः	पठ्येयाथाम्	पठ्येध्वम्
		पठ्येय	पठ्येवहि	पठ्येमहि
	लङ्—	अपठ्यत	अपठ्येताम्	अपठ्यन्त
		अपठ्यथाः	अपठ्येथाम्	अपठ्यध्वम्
		अपठ्येय	अपठ्यावहि	अपठ्यामहि
कृ—	लट्—	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते
		क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे
		क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे
	लोट्—	क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्
		क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्
		क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै
	लृट्—	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
		करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
		करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

	लिङ्	क्रियेत —	क्रियेयाताम् —	क्रियेरन्
		क्रियेथाः —	क्रियेयाथाम् —	क्रियेध्वम्
		क्रियेय —	क्रियेवहि —	क्रियेमहि
	लङ्—	अक्रियत —	अक्रियेताम् —	अक्रियन्त
		अक्रियथाः —	अक्रियेथाम् —	अक्रियध्वम्
		अक्रिये —	अक्रियावहि —	अक्रियामहि
भू—	लट्	भूयते —	भूयेते —	भूयन्ते
		भूयसे —	भूयेथे —	भूयध्वे
		भूये —	भूयावहे —	भूयामहे
	लङ्—	अभूयत —	अभूयेताम् —	अभूयन्त
		अभूयथाः —	अभूयेथाम् —	अभूयध्वम्
		अभूये —	अभूयावहि —	अभूयामहि
	लृट्—	भविष्यते —	भविष्येते —	भविष्यन्ते
		भविष्यसे —	भविष्येथे —	भविष्यध्वे
		भविष्ये —	भविष्यावहे —	भविष्यामहे
	लोट्—	भूयताम् —	भूयेताम् —	भयन्ताम्
		भूयस्व —	भूयेथाः —	भूयध्वम्
		भूयै —	भूयावहै —	भूयामहै
	लिङ्—	भूयेत —	भूयेयाताम् —	भूयेरन्
		भूयेथाः —	भूयेयाथाम् —	भूयेध्वम्
		भूयेय —	भूयेवहि —	भूयेमहि,

टिप्पणी—"भूयते" शब्द चूंकि भाव में आता है अतः अधिकतर केवल इसी का प्रयोग मिलता, इसके अन्य रूपों का नहीं। यह एक वचन ही रहता है।

यथा—मया भूयते, तेन भूयते; त्वया भूयते, इसमें "अनु" जोड़ने से यह सकर्मक रूप में भी आता है— यथा—

मया दुखम् अनुभूयते, सुखम् अनुभूयते। तेन अनेकानि कष्टानि अनुभूयन्ते।

दा—देना लट् लोट्

दीयते — दीयेते — दीयन्ते,	दीयताम् — दीयेताम् — दीयन्ताम्
दीयसे — दीयेथे — दीयध्वे,	दीयस्व — दीयेथाम् — दीयध्वम्
दीये — दीयावहे — दीयामहे,	दीयै — दीयावहै — दीयामहै

लङ्			लिङ्		
अदीयत —	अदीयेताम् —	अदीयन्त,	दीयेत —	दीयेयाताम् —	दीयेरन्
अदीयथाः—	अदीयेथाम् —	अदीयध्वम्,	दीयेथाः—	दीयेयाथाम् —	दीयेध्वम्
अदीये —	अदीयावहि —	अदीयामहि,	दीयेय —	दीयेवहि —	दीयेमहि

दायिष्यते—दायिष्येते—दायिष्यन्ते अथवा— { दास्यते — दास्येते — दास्यन्ते
दास्यसे — दास्येथे — दास्यध्वे
दास्ये — दास्यावहे — दास्यामहे

ज्ञा—

लट्			लिङ्		
ज्ञायते —	ज्ञायेते —	ज्ञायन्ते	ज्ञायताम् —	ज्ञायेताम् —	ज्ञायन्ताम्
ज्ञायसे —	ज्ञायेथे —	ज्ञायध्वे	ज्ञायस्व —	ज्ञायेथाम् —	ज्ञायध्वम्
ज्ञाये —	ज्ञायावहे —	ज्ञायामहे	ज्ञायै —	ज्ञायावहै —	ज्ञायामहै

लङ्			लिङ्		
अज्ञायत —	अज्ञायेताम् —	अज्ञायन्त	ज्ञायेत —	ज्ञायेयाथाम् —	ज्ञायेरन्
अज्ञायथाः—	अज्ञायेथाम् —	अज्ञायध्वम्	ज्ञायेथाः —	ज्ञायेयाथाम् —	ज्ञायेध्वम्
अज्ञाये —	अज्ञायावहि —	अज्ञायामहि	ज्ञायेय —	ज्ञायेवहि —	ज्ञायेमहि

लृट्— ज्ञायिष्यते ज्ञायिष्येते ज्ञायिष्यन्ते अथवा { ज्ञास्यते — ज्ञास्येते — ज्ञास्यन्ते
ज्ञास्यसे — ज्ञास्येथे — ज्ञास्यध्वे
ज्ञास्ये — ज्ञास्यावहे — ज्ञास्यामहे

इसी प्रकार विधीयते, (किया जाता है) व्यवह्रियते (व्यवहार में लाया जाता है) मन्यते (माना जाता है) बुध्यते (समझा जाता है) अनुमन्यते (अनुमान किया जाता है) आदि के रूप बनते हैं।

लट्	लोट्	विधिलिङ्	लङ्	लृट्
दृश्यते —	दृश्यताम् —	दृश्येत —	अदृश्यत —	द्रक्ष्यते
नीयते —	नीयताम् —	नीयेत —	अनीयत —	नेष्यते
लिख्यते —	लिख्यताम् —	लिख्येत —	अलिख्यत —	लेखिष्यते
इष्यते —	इष्यताम् —	इष्येत —	ऐष्यत —	एषिष्यते

पृच्छयते —	पृच्छयताम् —	पृच्छयेत —	अपृच्छयत —	प्रक्ष्यते
गृह्यते —	गृह्यताम् —	गृह्येत —	अगृह्यत —	ग्रहीष्यते
श्रूयते --	श्रूयताम् —	श्रूयेत —	अश्रूयत —	श्रोष्यते
शक्यते —	शक्यताम् —	शक्येत —	अशक्यत —	शक्यते
प्राप्यते —	प्राप्यताम् —	प्राप्येत —	प्राप्यत —	प्राप्स्यते
कथ्यते —	कथ्यताम् —	कथ्येत —	अकथ्यत —	कथयिष्यते
याच्यते —	याच्यताम् —	याच्येत —	अयाच्यत —	याचिष्यते

अभ्यास

१. संस्कृत में अनुवाद करो—

(अ) बेटे यह घड़ा रख दो और मेरा वल्कल मुझे दो।
न्यस्यतां कलशस्तात दीयतां वल्कलं मम।

(आ) आप वहाँ बैठिये, मैं अभी आपके ठहरने का प्रबन्ध करता हूँ।
तावद् आस्यतां तत्र अहमिदानीमेव भवतामावासाय सुयोगं करोमि/व्यवस्थां करोमि।

(इ) आप अपनी बात बताएँ तो जिससे मैं भी उस पर गौर कर सकूं।
कृपया स्वीयां वार्तां कथयन्तु येनाहमपि तस्यामवधानं दातुं प्रभवामि।

(ई) मैं अब जा रहा हूँ, आप जाने आप का काम जाने।
मया गम्यते इदानीं कर्तुमकर्तुं वा भवान् एव प्रमाणम्।

(उ) हम आकाशवाणी से नित्य रोचक कहानियाँ सुनते हैं।
आकाशवाणीतः नित्यं मनोहराः कथाः श्रूयन्तेऽस्माभिः।

(ऊ) आज की स्थिति पर सभी का विचार हो रहा है।
अद्यतनायां स्थितौ सर्वैः विचार्यते।

(ए) जैसा उन लोगों ने कहा था वैसा ही किया भी।
यथा तैः अभाष्यत तथैव अक्रियत।

(ऐ) यदि आप से हो सके तो मन्त्री जी से यह पूछ लें।
यदि भवद्भिः शक्येत मन्त्रिणं इदं पृच्छयताम्।

(ओ) मैं चाहता हूं कि आप वाराणसी जावें।
मया अभिलष्यते यत् भवान् वाराणसीं गच्छतु।

(औ) आपके उपदेश को सभी ग्रहण कर रहे हैं।
भवतामुपदेशः सर्वैः गृह्यते ।

(२) निम्नलिखित अंशों का अर्थ हिन्दी में लिखो ।
एतदासनमास्यताम्, सर्वैरनुज्ञायताम्, तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते,
श्रेयसि केन तृप्यते, इदानीं परिहीयते गमनवेला,
न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।

केन शक्यतेऽन्यथा कर्तुम् । इदं दैवहतकेन अकारि न तु तेन दुर्योधनेन, तेषां गुणाः अद्यापि कीर्त्यन्ते ।

३. प्रश्न दो में कालेलिखे पदों की व्युत्पत्ति करो ।

४. निम्नलिखित धातुओं के उनके सामने लिखे लकार और वचन के अनुसार कर्मवाच्य के रूप लिखो ।

(i)	आप्	—	लट्	उ० पु०	बहुवचन
(ii)	श्रु	—	लङ्	,,	एकवचन
(iii)	प्रच्छ	—	लोट्	,,	,,
(iv)	उप+विश्	—	,,	,,	,,
(v)	मन्	—	लट्	,,	,,
(vi)	अनु+सृ	—	लृट्	,,	,,
(vii)	दा	—	लृट्	उ० पु०	बहुवचन
(viii)	ग्रह्	—	,, —	,,	,,
(ix)	शक्	—	लिङ् —	,,	,,
(x)	अनु+भू	—	लट् —	,,	,,

५. निम्नलिखत श्लोकों को अमर कोष में खोजो ।
भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा ।
धरा धरित्री धरणिः क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः ॥
सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा ।
गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही ॥
गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनम् ।
निशान्तवस्त्य सदनं भवनागारमन्दिरम् ॥

६. निम्नलिखित श्लोकों का अर्थ लिखो--

हिमाद्रेः सम्भूता विहरसि तदङ्के हिममगे।
ततो भूमिं याता विचरसि सुहासा समतले ॥
पुनासि त्वं लोकान् प्रवहसि समुद्रं प्रति सदा।
अहो दिव्ये गंगे भवतु सुखदं नस्तव जलम् ॥

न जाने किं पुण्यं फलितमधुना नो भगवति।
प्रियो देशो जातः तव जलकणैर्नष्टकलुषः ॥
हरिद्वारं काशी तव तट महत्त्वं कथयतः।
प्रयागस्तीर्थानां पतिरतुलनीयस्तव तटे ॥

जनानां धात्री त्वं सुमधुर फलान्नानि ददती।
विशालां सिञ्चन्ती मधुमयजलैर्भारतभुवम् ॥
अये शुभ्रे गंगे विलसित तरंगे त्रिपथगे।
तवोत्सङ्गे धन्याः शिशव इव खेलन्ति मनुजाः ॥

अध्याय ८

विभक्त्यर्थ

विभक्त्यर्थं का तात्पर्य है कि किस विभक्ति का कहाँ प्रयोग किया जाय। संस्कृत में कारक केवल ६ माने जाते हैं। कारक का अर्थ है किसी क्रिया के करने में सहायक, इस दृष्टि से कारक का क्रिया से सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। सम्बन्ध और सम्बोधन इस कोटि में नहीं आते क्योंकि इनका सीधा सम्बन्ध क्रिया से नहीं रहता। यथा— प्रयागे हर्षः स्वकीयैः करैः अतुलं धनं ब्राह्मणेभ्यः याचकेभ्यः अददात्। इस वाक्य में क्रिया है "अददात्" उसका करने वाला हर्ष (कर्त्ता) है। यहाँ धनराशि दी गयी। अतः वह (धनं) कर्म है, ब्राह्मणों और याचकों को दी गयी, अतः ब्राह्मणेभ्यः तथा याचकेभ्यः संप्रदान कारक हैं, प्रयाग क्रिया का स्थान बतलाता है, आधार है, अतः "प्रयागे" अधिकरण है हाथों से दी गयी, "करैः" करण है। रामस्य पुस्तकं कूपे न्यपतत्। इस वाक्य में क्रिया न्यपतत् है, इसका कर्ता पुस्तक है, पुस्तक का क्रिया से सीधा सम्बन्ध है, पर रामस्य का नहीं। अतः रामस्य को कारक की कोटि में नहीं माना जाता। इसी प्रकार मोहन! त्वं कार्यमिदं कुरु में मोहन का सीधा

सम्बन्ध क्रिया से नहीं है। इसलिए सम्बोधन भी कारक नहीं माना जाता। प्रत्ययों की दृष्टि से भी जो प्रत्यय प्रथमा में लगते हैं वे ही सम्बोधन में अतः सम्बोधन की पृथक् स्थिति नहीं रहती। इस प्रसंग में यह अवश्य जानना है कि कारकों में द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी और अधिकरण प्रमुख हैं। चूंकि सम्बन्ध का विभक्तियों के योग से ही प्रयोग होता है अतः उसके प्रयोग स्थल भी यहाँ दिखाये गये हैं।

३७७. **प्रथमा**—प्रातिपदिकार्थ परिमाणवचनमात्रे प्रथमा।

यदि प्रातिपदिक लिङ्ग, परिमाण या वचन बताना हो, तो प्रथमा विभक्ति का प्रयोग करते हैं। किसी भी मूल शब्द को जो न धातु हो, न प्रत्यय, न प्रत्ययान्त हो पर अर्थवान् हो उसे प्रातिपदिक कहते हैं। (देखो सूत्र १०१) प्रातिपदिक में जब सु आदि लगते हैं तभी उनका प्रयोग किया जाता है। यथा— तटः, तटी, तटम्। इसके अतिरिक्त कर्त्ता अर्थ बताने के लिए भी प्रथमा का प्रयोग किया जाता है। यथा— "रामः पुस्तकं पठति" में रामः। इसी प्रकार निम्न श्लोकों में प्रथमा का प्रयोग है—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिवर्हणः।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः॥
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः।
आजानबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः॥

३७७. (अ) **सम्बोधने च**=प्रथमा विभक्ति का उपयोग सम्बोधन के लिए भी होता है।

यथा— हे राम, हे बालकाः, हे सीते।

द्वितीया ३७८. **कर्तुरीप्सिततमं कर्म**

पाणिनि के अनुसार किसी भी वाक्य में कर्त्ता जिसे सबसे अधिक चाहता है उसे कर्म कहते हैं। हिन्दी तथा अंग्रेजी में "जिस चीज़ या पुरुष पर क्रिया का फल पड़ता है उसे कर्म कहते हैं" पर इस परिभाषा में थोड़ी कमी आ जाती है। जैसे— राम पुस्तक पढ़ता है, में पढ़ने की क्रिया का फल तो पुस्तक पर पड़ा, पर "राम घर जाता है" में घर पर फल नहीं पड़ता। जब कि जाने की क्रिया घर पर समाप्त होती है। अतः संस्कृत में सामान्य नियम के आधार पर घर कर्म नहीं माना जाता। इसे द्वितीया में रखा जाता है पर उसके लिए विशेष नियम बनाने पड़ते हैं। अतः "कर्त्ता

जिस किसी क्रिया से सम्बन्धित पदार्थ को अपने व्यापार से प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक चाहता है उसे कर्म कहते हैं ।

३७९. **कर्मणिद्वितीया** कर्म में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया जाता है । यथा– "रामः पाठं पठति" में पाठं कर्म है । इसमें द्वितीया का अम् लगा है । इसी प्रकार 'स हरिं भजति" में हरि में भी द्वितीया है ।

३८०. **तथायुक्तं चानीप्सितम्** जो न चाहे जाते हुए भी चाही हुई चीज के समान हो वह भी कर्म होता है । जैसे "ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति" में मुख्य कार्य गाँव जाना है । उसी के साथ वह तृण भी स्पर्श करता है । अतः "तृणं" को भी कर्म की कोटि में गिन लिया गया । इसी आधार पर उसमें द्वितीया है ।

३८१. **अकथितं च** (१-४-५१) कुछ ऐसे कार्य होते हैं जो अपादान आदि कारकों से कहे जा सकते हैं पर जब वे अन्य धातुओं के कर्मों के साथ आते हैं तो अपादान आदि के द्वारा नहीं कहे जाते । ऐसी स्थिति में उन में भी द्वितीया होती है । अकथित का अभिप्राय है जो अन्य कारकों से नहीं कहे गये । जैसे— "स गाँ दोग्धि पयः" वह गाय से दूध दुहता है । इस वाक्य में "गाय से" का अनुवाद गोः भी सम्भव था, पर यहाँ गाय दूध के निमित्त रूप में है अतः उसकी भी कर्म संज्ञा हो गयी । इसका अर्थ यह हुआ कि दूध दुहने का गो से सम्बन्धित कार्य हुआ । ऐसी स्थिति नीचे दी गयी १६ धातुओं में अथवा उन्हीं का अर्थ देने वाली धातुओं में सम्भव है—

दुह्याच् पच् दण्ड्रुधिप्रच्छि चिब्रूशासु जिमथमुषाम् ।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥

१.	दुह्	—	दुहना	--	गां दोग्धि पयः ।
२.	याच्	—	माँगना	—	बलिं याचते वसुधाम् ।
३.	पच्	—	पकाना	—	तण्डुलान् ओदनं पचति ।
४.	दण्ड्	—	सजा देना	—	गर्गान् शतं दण्डयति ।
५.	रुधि	—	रोकना	—	व्रजम् अवरुणद्धि गाम् ।
६.	प्रच्छि	—	पूछना	—	माणवकं पन्थानं पृच्छति ।
७.	चि	—	चुनना	—	वृक्षम् चिनोति पुष्पाणि ।
८.	ब्रूञ्	—	कहना	—	रामं धर्मं ब्रवीति, शास्ति वा

९. शास् — शासन करना — स तं धर्मं शास्ति ।
१०. जि — जीतना — शतं जयति देवदत्तम्
११. मन्थ् — मथना — सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति ।
१२. मुष् — ठगना — देवदत्तं शतं मुष्णाति ।
१३. नी — ले जाना —
१४. हृ — हरण करना—
१५. कृष् — खींचना —
१६. वह् — ले जाना, ढोना— } ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वा वहति ।

(३८१ अ) **अकर्मकधातुभिर्योगेदेशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम् ।**

अकर्मक धातुओं के योग में देश, काल, भाव तथा गन्तव्य मार्ग भी कर्म माने जाते हैं । यथा—

१ स कुरून् स्वपिति । वह कुरु देश में सोता है ।
२ रामः मासम् आस्ते । राम महीने भर रहता है ।
३ नारदः गोदोहम् आस्ते । नारद गाय दुहने तक रहता है ।
४ श्यामः क्रोशम् आस्ते । श्याम कोस भर पर रहता है ।

३८२. **गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्त्ता सणौ ।**

निम्नलिखित धातुओं का कर्त्ता प्रेरणार्थक धातु में कर्म हो जाता है—

(i) गत्यर्थक धातुएँ यथा— गम्, इण्, या,
(ii) बोध देने वाली धातुएँ यथा— ज्ञा, विद् बुध्,
(iii) 'खाना' अर्थवाली धातुएँ ,,— भक्ष्, भुज्, अद्,
(iv) शब्द कर्मवाली धातुएँ ,,— पठ्, उच्चर,
(v) अकर्मक धातुएँ ,,— उत्तिष्ठ, आस्,

इनका प्रयोग एक ही स्थान पर श्लोक में है—

शत्रूनगमयत् स्वर्गं, वेदार्थं स्वानवेदयत्
आशयाच्चामृतं देवान्, वेदम् अध्यापयद् विधिम्
आसयत् सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः ॥

जिस हरि ने शत्रुओं को स्वर्ग भेजा, अपने आत्मीय जनों को वेदार्थ बताया,
देवताओं को अमृत खिलाया, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया,
पृथ्वी को जल में बिठाया वही मेरी गति हैं ।

इन वाक्यों की रचना को अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित रीति से लिखा जा सकता है—

सामान्य रूप	प्रेरणार्थक रूप
शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन् ।	शत्रून् स्वर्गम् अगमयत् ।
स्वे वेदार्थम् अविदुः ।	स्वान् वेदार्थम् अवेदयत् ।
देवाः अमृतम् आश्नन् ।	देवान् अमृतम् आशयत् ।
विधिः वेदम् अध्यैत ।	विधिं वेदमध्यापयत् ।
पृथ्वी सलिले आस्त ।	पृथ्वीं सलिले आसयत् ।

इसी प्रकार अन्य प्रयोग—

१ गति० सा०— मोहनः गृहं व्रजति, गच्छति, याति ।
प्रेरणा०— हरिः मोहनं गृहं गमयति, व्रजयति, यापयति ।

२ बुद्धि० सा०— छात्रः धर्मं बुध्यते, वेत्ति, जानाति ।
गुरुः छात्रं धर्मं बोधयति, वेदयति, ज्ञापयति ।

३ प्रत्यवसान—सा०— बालकः अन्नम् अश्नाति, भुंक्ते ।
प्रेरणा०— पिता बालकम् अन्नम् आशयति, भोजयति ।

४ शब्दकर्मक—सा०— छात्रः वेदमधीते, पठति ।
प्रेरणा०— गुरुः छात्रं वेदम् अध्यापयति, पाठयति ।

५ अकर्मक सा०— बालकः शेते, तिष्ठति, आस्ते, हसति ।
प्रेरणा०— पिता बालकं शाययति, स्थापयति, आसयति, हासयति ।

इससे स्पष्ट है कि ऊपर दी गयी धातुओं के योग में प्रयोज्य कर्त्ता कर्म होता है अन्यथा वह तृतीया में होता है । यथा— भृत्यः कार्यं करोति । रामः भृत्येन कार्यं कारयति । यहाँ अकर्मक धातुओं से तात्पर्य उन धातुओं से है जिनको देश काल इत्यादि से भिन्न कर्म नहीं मिलता, उन धातुओं से नहीं है जो कर्म न कहे जाने पर अकर्मक रूप में आती हैं । यथा— मासम् आस्ते सोमदत्तः, में सोमदत्त प्रेरणार्थक में कर्म हो जायगा । मासम् आसयति सोमदत्तम् । किन्तु रामः पचति का प्रेरणार्थक रामेण पाचयति ही होगा ।

३८२. (अ) **जल्पति प्रभृतीनाम् उपसंख्यानम्** जल्पति भाष् आदि के कर्त्ता भी प्रेरणार्थक रूप में कर्म माने जाते हैं । जैसे—

स पुत्रं धर्मं जल्पयति भाषयति ।

(आ) दृशेश्च दृश् के प्रेरणार्थक कर्त्ता को भी कर्म मानते हैं। यथा—
दर्शयति हरिं भक्तान्।

(इ) नीवह्योर्न नी और वह धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों के प्रयोग में कर्त्ता कर्म न होकर करण रहता है।
सा० भृत्यो भारं नयति वा वहति।
प्रे० भृत्येन भारं नाययति, वाहयति वा।

३८३. हृक्रोरन्यतरस्याम् (१-२-५३) हृ और कृ धातुओं के सामान्य रूपों के कर्त्ता प्रेरणार्थक में विकल्प से कर्म होता है। यथा—
भृत्यः कटं हरति, सेवक चटाई ले जाता है। स्वामी भृत्यं भृत्येन वा कटं हारयति।
अनुचरः कार्यं करोति। स्वामी अनुचरेण, अनुचरं वा कार्यं कारयति।

३८४. अधिशीङ्स्थासां कर्म (१-४-४६) शी, स्था और आस् धातुओं के पूर्व यदि अधि उपसर्ग लगा हो तो उनका आधार कर्म होगा।

यथा—भूपतिः सिंहासनम् अध्यास्ते, हरिः वैकुण्ठम् अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा। योगी शिलामध्यास्ते। बालकः शय्यामधिशेते।

३८५. अभिनिविशश्च (१-४-४७) अभि और नि उपसर्ग जब एक साथ विश् धातु के पहले आवें तो उसके आधार की कर्म संज्ञा होती है।

जैसे— अभिनिविशते सन्मार्गम्।

३८६. उपान्वध्याङ्वसः (१-४-४८) यदि वस् धातु से पूर्व उप, अनु, अधि, आ में से कोई उपसर्ग आवे तो क्रिया का आधार कर्म होता है।

यथा—हरिः वैकुण्ठम् उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, तथा आवसति। केवल वस् हो तो सप्तमी ही होगी, यथा — हरिः वैकुण्ठे वसति।

३८६. (अ) वा० उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥

उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपरि, उपरि, अधो, अधो, अधि, अधि, आदि शब्दों का जिससे संयोग हो उसमें द्वितीया होती है।

यथा— उभयतः कृष्णं गोपाः, सर्वतः कृष्णं गोपाः,
धिक् त्वाम्, उपरि उपरि लोकं हरिः (हरि लोक के ठीक ऊपर है)
अधोऽधो लोकं पातालं। नृपं सर्वतो जनाः।

३८६. **(आ) वा० अभितः परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि।**

अभितः (चारो ओर) परितः (सब ओर), समया (समीप) निकषा (समीप) हा तथा प्रति शब्द जिनके सम्बन्ध में प्रयुक्त हों उनमें द्वितीया होती है। यथा—

(i) राजानम् अभितः परिजनाः सन्ति।

(ii) ग्रामं समया, ग्रामं निकषा उद्यानम् अस्ति।

(iii) तं प्रति इदं निवेदनीयम्।

(iv) नगरं परितः परिखा आसीत्।

३८७. **अन्तरान्तरेण युक्ते** (२, ३, ४) अन्तरा (बीच में) अथवा अन्तरेण (छोड़कर) शब्द जिसके साथ हों उसमें द्वितीया होती है।

यथा— त्वाम् माम् अन्तरा गुरुः। पुत्रम् अन्तरेण न सुखम् अस्ति। त्वामन्तरेण कोऽन्यः प्रतिकर्तुं समर्थः?

३८८. **कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे** (२-३-५) जब कोई वस्तु कुछ दूर या समय तक लगातार चलती रहे या कोई कार्य लगातार होता रहे तो समय तथा मार्गवाचक शब्द में द्वितीया होती है। यथा—

स मासम् अधीते। क्रोशं कुटिला नदी। सहस्रं वर्षाणि राक्षसः तपः आचरत् चत्वारि वर्षाणि वेदम् अधिजगे (चार वर्ष वेद पढ़ा)

३८९. **कर्मप्रवचनीय युक्ते द्वितीया** (२-३-८) कर्मप्रवचनीय में द्वितीया होती है। कर्म-प्रवचनीय की परिभाषा इस प्रकार है।

क्रियाया द्योतको नायं सम्बन्धस्य न वाचकः।
नापि क्रिया पदाक्षेपी सम्बन्धस्य तु भेदकः॥ (वाक्य पदीय)

कर्म प्रवचनीय न किसी क्रिया को बतलाते हैं, न सम्बन्ध को, न किसी अन्य क्रिया पद को ही लक्षित करते हैं फिर भी वे विभक्ति के विधायक बन जाते हैं। ये लगभग अंग्रेजी के (preposition) प्रीपोज़ीशन के समान कार्य करते हैं। इनके साथ प्रायः कर्म ही आता है। इस प्रकार के शब्द अनु उप, अभि, प्रति, अति आदि हैं। इनके आने से शब्दार्थ में परिवर्तन हो जाता है—

(i) **अनुर्लक्षणे** (१-४-८४) किसी विशेष वस्तु को लक्षित करने में "अनु" कर्म प्रवचनीय हो जाता है। यथा जपमनु प्रावर्षत्। अर्थात् जप के समाप्त होते ही वृष्टि हुई।

(ii) **तृतीयार्थे** (१-४-८५) जब "अनु" तृतीया का अर्थ दे तो कर्मप्रवचनीय हो नदीम् अन्ववसिता सेना (नद्या सह अवसिता)।

(iii) **हीने** (१-४-८६) जब अनु "हीन" अर्थ बताये तो यह कर्म प्रवचनीय हो। अनु हरिं सुराः। देवता हरि के बाद आते हैं।

(iv) **उपोऽधिके च** (१-४-८७) जब "उप" अधिक या हीन अर्थ का वाचक होता है तो कर्म प्रवचनीय माना जाता है—

उप हरिं सुराः। देवता हरि से हीन हैं।

(V) **लक्षणेत्थं भूताख्यान भागवीप्सासु प्रति पर्यनवः** (१-४-९०)

जब किसी की ओर संकेत करना हो, अथवा किसी का स्वरूप (वह इस प्रकार का है।) बताना हो अथवा कोई किसी के हिस्से में पड़ा है यह भाव प्रकट करना हो अथवा पुनरुक्ति दिखानी हो तब प्रति, परि और अनु कर्म प्रवचनीय कहे जाते हैं और इन के योग में आने वाले शब्दों में द्वितीया होती है।

१. संकेत— वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्—पेड़ पर बिजली चमक रही है।

२. स्वरूप बताना— विष्णुं प्रति, परि वा अनु— विष्णु के प्रति भक्त है।

३. हिस्सा— लक्ष्मीः हरिं प्रति, — लक्ष्मी विष्णु के हिस्से में पड़ीं।

४. पुनरुक्ति— वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति — प्रत्येक वृक्ष सींचता हैं।

(vi) **अभिरभागे** (१-४-९१) भाग को छोड़कर सभी ऊपर कहे गये अर्थों में अभि कर्म में प्रवचनीय होता है।

हरिम् अभिवर्तते, देवम् अभिषिञ्चति।

(vii) **अतिरतिक्रमणे** अतिक्रमण तथा पूजा अर्थ में अति कर्मप्रवचनीय होता है। अति देवान् कृष्णः।

(viii) सुः पूजायाम्—सु सिक्तम्। पूज्य अर्थ में सु कर्मप्रवचनीय होता है।

तृतीया ३९०. **साधकतमं करणम्** (१-४-४२) किसी कार्य की सिद्धि के लिए कर्त्ता जिसकी सबसे अधिक सहायता लेता है उसे करण कहते हैं। जैसे— राम बाण से हिरन मारता हैं। रामः बाणेन मृगं हन्ति। यहाँ मृग को मारने में बाण की सहायता ली जाती है। अतः बाण करण है।

३९१. **कर्तृकरणयोस्तृतीया** (२-३-१८) अनुक्तकर्ता (कर्मवाच्य और भाव वाच्य में कर्त्ता अनुक्त होता है।) तथा करण में तृतीया होती है। यथा—

(i) रामेण रावणः हतः। (कर्मवाच्य)

(ii) मया सुप्यते, त्वया जीव्यते (भाववाच्य)

(iii) रामेण वाणेन हतो वाली (करण बाण में तथा अनुक्त कर्त्ता राम में है)।

३६१. (अ) वा० **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** प्रकृत्यादि गण में पढ़े गये (स्वभावादि से सम्बन्धित) शब्दों के योग में तृतीया होती है—

यथा— (i) स जनः प्रकृत्या दयालुः।

(ii) मोहनः सरलतया कथां कथयति।

(iii) अयं शिशुः क्लेशेन स्थातुं शक्नोति।

(iv) अहं सुखेन जीवामि।

३६२. **सहयुक्तेऽप्रधाने** (२-३-१६) सह के योग में अप्रधान होते हुए भी जो कर्त्ता का सहयोग करता है उसमें तृतीया होती है। रामः लक्ष्मणेन सह वनं गच्छति। यहाँ लक्ष्मण राम का वन जाने में साथ दे रहे हैं। इसी प्रकार सह के प्रर्याय साकं, सार्धं तथा समं के योग में भी तृतीया आती है। जैसे—

रामः सीतया साकं समं सार्धं वा वनं गच्छति।

३६३. **येनाङ्ग विकारः** (२-३-२०) जिस विकृत अंग के द्वारा किसी में विकार हो उसमें तृतीया आती है। जैसे—

स पुरुषः अक्ष्णा काणः। वह आदमी आँख से काना है।

श्यामः पादेन खञ्जः। श्याम पैर से लंगड़ा है।

३६४. **इत्थंभूतलक्षणे** (२-३-२१) यदि कोई किसी विशेष चिह्न से दूसरों से अलग समझा जाय तो उस चिह्न में तृतीया होती है।

स जटाभिः तापसः। वह जटाओं से तपस्वी है।

३६५. **संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि** (२-३-२२) सम् पूर्वक "ज्ञा" धातु का कर्म विकल्प से करण माना जाता है।

पित्रा पितरं वा संजानीते। पिता के मेल में रहता है।

३६६. **हेतौ** (२-३-२३) जिस प्रयोजन या कारण से कोई कार्य किया जाय उसमें तृतीया होती हैं।

(i) पुण्येन दृष्टो हरिः। पुण्य से हरि मिले।

(ii) स अध्ययनेन तत्र वसति । वह अध्ययन के लिए वहाँ रहता है ।

(iii) परिश्रमेण धनम् आयाति, धनेन सुखं भवति । परिश्रम से धन आता है और धन से सुख होता है ।

(iv) विद्यया बुद्धिः विकसति । बुद्धि विद्या से बढ़ती है ।

३६७. **पृथग् विना नानाभिः तृतीयाऽन्यतरस्याम् ।** (२-३-३२)

पृथक्, विना तथा नाना शब्दों के योग में द्वितीया, तृतीया तथा पञ्चमी विभक्तियों में से कोई एक हो सकती है, यथा—

(i) उर्मिला चतुर्दश वर्षाणि लक्ष्मणं लक्ष्मणेन वा लक्ष्मणात् पृथक् गृहे अवसत् ।

(ii) त्वां, त्वया वा त्वत् विना अहं न जीविष्यामि ।

(iii) दशरथः रामं विना नाजीवत् ।

(iv) नाना भार्यां जीवनं व्यर्थ मेव । (नाना का जब विना अर्थ होता है तभी इसके योग में द्वितीया, तृतीया, या पञ्चमी आती है । इसके अन्य अर्थों में नहीं)

३६८. **अपवर्गे तृतीया** (२-३-६) अपवर्ग का अर्थ फल प्राप्ति (कार्यसिद्धि) होता है । मार्ग व समय आदि के साथ होने से ही इसका प्रयोग रहता है । यथा— मासेन सः कौमुदीम् अपठत् । इसका अभिप्राय है कि महीने भर में उसे कौमुदी आ गयी, यदि इस वाक्य का अर्थ होता कि पढ़ ली पर आयी नहीं तो मासम् ही रहता जो कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे में होता है । इसी प्रकार क्रोशेन तेन पत्रं पठितम् । क्रोश भर में उसने पत्र पढ़ लिया ।

३६६. **तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्** (२-३-७२) तुला और उपमा शब्दों को छोड़कर अन्य समानता अर्थ बताने वाले शब्दों के योग में तृतीया अथवा षष्ठी होती है, यथा— रामेण, रामस्य वा तुल्यः, सदृशः वा समः । तुला और उपमा शब्दों के योग में षष्ठी होती है । कृष्णस्य उपमा नास्ति । तस्य का तुला ।

४००. **दिवः कर्म च** (१-४-४३) दिव् धातु के साधकतम कारक की विकल्प से कर्म संज्ञा होती है । यथा— अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति । वह पाँसों से जुआ खेलता है ।

४०१. **ऊनवारण प्रयोजनार्थैश्च** ऊन (कम) वारण (रोकना) और प्रयोजन अर्थ वाले शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—धनेन हीनम्, एकेन, ऊनम्, गुणेन शून्यः, अलं निवादेन, कलहेन किम्, अनेन किम् आदि।

चतुर्थी ४०२. **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्** (१-४-३२) सम्यक् दीयते अस्मै इति सम्प्रदानम् अर्थात् कर्त्ता अपने दान से जिसे संतुष्ट करता है उसे सम्प्रदान कहते हैं। यथा— "याचकाय धनं यच्छति। में याचकाय सम्प्रदान है। दान का पूर्ण अर्थ है अपना स्वामित्व हटाकर दूसरे का कर दे (दानञ्च स्वस्वत्वनिवृत्ति पूर्वकं पर स्वत्वोत्पादनम्) जहाँ इस प्रकार का स्वत्व नहीं बदलता वहाँ देने के अर्थ में षष्ठी होती है यथा— रजकस्य वस्त्रं देहि। वस्त्रों पर रजक का स्वामित्व नहीं है।

४०३. **चतुर्थी सम्प्रदाने** (२-३-१३) सम्प्रदान में चतुर्थी होती है। इसी के आधार पर "याचकाय" में चतुर्थी हुई। और भी—

(i) अहं तेभ्यः धनं वितरामि। मैं उनको धन देता हूँ।
(ii) त्वं मह्यं पुस्तकं प्रयच्छ। तुम मुझे पुस्तक दो।
(iii) सोहनः अस्मै बालकाय फलं ददाति। सोहन इस बच्चे को फल देता है।

४०४. **क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणिस्थानिनः** (२-३-१४) जब तुमुन् प्रत्यय का अर्थ देने वाले शब्द परोक्ष में हों या क्रिया का उपपद हो तो उनके कर्म में चतुर्थी होती है। मोहनः फलेभ्यः आपणं याति। (फलानि आनेतुम्) स वनाय गां मुमोच।

४०५. **तुमर्थाच्च भाववचनात्** जिस धातु से तुमुन् प्रत्यय जोड़ने पर जो अर्थ निकलता है उसी को बताने के लिए उसी धातु से बनी भाववाचक संज्ञा के प्रयोग होने पर उसमें चतुर्थी होती है। यागाय याति (यज्ञं कर्तुं याति) स शयनाय इच्छति (शयितुम् इच्छति) दानाय धनम् अर्जयति। आदि

४०६. **नमः स्वस्ति स्वाहास्वधाऽलंवषड् योगाच्च** (२-३-१६)

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं तथा वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी होती है, यथा—

तस्मै गुरवे नमः गणेशाय नमः, अग्नये स्वाहा,
इन्द्राय वषट्, अल मल्लो मल्लाय, स्वस्ति भवते।

४०७. **रूच्यर्थानां प्रीयमाणः** (१-४-३३) रुच् धातु तथा रुच् के समान अर्थ वाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान होता है।

(i) रामाय भक्तिः रोचते। मह्यं फलानि रोचन्ते।

(ii) वालकेभ्यः मोदकाः रोचन्ते। सुजनेभ्यः चाटुवचनं न रोचते।

४०८. **धारेरुत्तमर्णः** (१-४-३५) धारि धातु का अर्थ कर्ज लेना है। (धृङ् अवस्थाने) जो कर्ज देता है उसे उत्तमर्णः कहते हैं। जो ऋण लेता है उसे अधमर्णः कहते हैं। कर्ज लेने के अर्थ में णिजन्त धृ धातु के योग में उत्तमर्ण की सम्प्रदान संज्ञा होती है।

गोविन्दः श्यामाय शतं धारयति। गोविन्द श्याम का १०० रु० ऋणी है। स मह्यं शतं धारयति। उसने मुझसे १०० रु० ऋण लिया।

४०९. **स्पृहेरीप्सितः** (१-४-३६) स्पृह् (चाहना) धातु के योग में चाही गयी वस्तु की संप्रदान संज्ञा होती है—

स धनाय स्पृहयति। अहं पुष्पेभ्यः स्पृहयामि।

४१०. **क्रुध द्रुहेर्ष्यार्थानां यं प्रति कोपः** (१-४-३७) क्रुध् द्रुह् ईर्ष्य तथा असूय धातुओं के योग में तथा इनके समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है वह सम्प्रदान होता है।

(i) स्वामी अनुचराय क्रुध्यति।
(ii) दुर्जनाः सर्वेभ्यः क्रुध्यन्ति।
(iii) खलाः सज्जनेभ्यः असूयन्ति।
(iv) स रामाय अकुप्यत्।

४११. **क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म** (१-४-३८) यदि क्रुध् और द्रुह् उपसर्ग के साथ आवें तो जिसके प्रति क्रोध या द्रोह होता है वह कर्म होता है सम्प्रदान नहीं। यथा—स क्रूरमभिक्रुध्यति। पिता पुत्रं संक्रुध्यति।

४१२. **प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता** (१-४-४०) प्रति और आ पूर्वक श्रु धातु का अर्थ प्रतिज्ञा करना होता है। जिससे प्रेरित होकर प्रतिज्ञा की जाती है उसमें चतुर्थी होती है—

प्रधानाचार्यः छात्रेभ्यः साहाय्यं प्रतिश्रृणोति / आश्रृणोति।

४१३. **परिक्रयणे सम्प्रदानम् अन्यतरस्याम्** (१-४-४४) निश्चित समय के लिए किसी को वेतन आदि पर रखना परिक्रयण कहा जाता है। इस परिक्रयण का जो वेतन आदि करण होता है उसकी विकल्प से सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा—शतेन / शताय वा परिक्रीतो अयं भृत्यः।

४१३. **(अ) तादर्थ्ये चतुर्थी** जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है उसमें चतुर्थी होती है यथा—

(i) मुक्तये हरिं भजति। (ii) काव्यं यशसे भवति।

(iii) घटाय इयं मृत्तिका नीता मया।

४१३. **(आ) क्लृपि संपद्यमाने** यदि कोई कार्य किसी अन्य परिणाम की प्राप्ति के लिए किया जाय तो उस परिणाम में चतुर्थी होती हैं, भक्तिः ज्ञानाय कल्पते। सम्पद्यते जायते वा। धर्मः स्वर्गाय भवति।

पञ्चमी

४१४. **ध्रुवमपायेऽपादानम्** (१-४-४४) अपाय का अर्थ अलग होना है। इसमें कोई जिससे अलग होता है वह ध्रुव कहा जाता है। ध्रुव को ही अपादान संज्ञा दे देते हैं। जैसे

श्याम घर से वाहर गया। इसमें घर अपादान है जहाँ से श्याम अलग होता है।
श्यामः गृहात् वहिः गतः।

४१५. **अपादाने पञ्चमी** (२-३-२८) अपादान में पञ्चमी होती है। यथा—
वृक्षात् पत्राणि पतन्ति में वृक्षात्।

४१५. **(अ) (वा०) जुगुप्साविराम प्रमादार्थानामुपसंख्यानम्**
जुगुप्सा (घृणा), विराम (अलग होना, समाप्त होना) प्रमाद (असावधान होना) के समानार्थक शब्दों के योग में पञ्चमी होती है।

(i) स पापात् जुगुप्सते। **धर्मात्** प्रमाद्यति।

(ii) न **निश्चितार्थात्** विरमन्ति धीराः।

धीर पुरुष अपने निश्चय से नहीं हटते।

(iii) स्वाधिकारात् प्रमत्तः जनः दुःखमनुभवति।

अपने कर्त्तव्य से च्युत व्यक्ति कष्ट भोगता है।

४१६. **भीत्रार्थानाम्भयहेतुः** (१-४-२५) जिससे भय हो अथवा जिससे रक्षा करनी हो उसे भी अपादान कहते हैं।

(i) **चौरात्** विभेति। (ii) अहं **सर्पात्** विभेमि।

(iii) **भीमात्** दुःशासनस्य रक्षा करणीया।

४१७. **पराजेरसोढः** (१-४-२६) परा पूर्वक जि धातु के योग में असह्य की अपादान संज्ञा होती है।

(i) रामात् रावणः पराजयते ।

(ii) अध्ययनात् छात्रः पराजयते ।

जब पराजय का अर्थ हराना हो तो द्वितीया ही होती है—स शत्रून् पराजयते । वह शत्रुओं को हराता है ।

४१८. **वारणार्थानाम् ईप्सितः** (१-४-२७) जिससे किसी को रोका जाय उसे अपादान माना जाता है । यथा—

(i) **यवेभ्यो** गां वारयति—जौ से गाय को रोकता है ।

(ii) मित्रं पापात् वारयति । मित्र को पाप से बचाता है ।

४१९. **अन्तर्धौ येनादर्शनम् इच्छति** (१-४-२८) जिससे कोई छिपता है उसे अपादान माना जाता है । यथा— **मातुः** निलीयते कृष्णः ।

४२०. **आख्यातोपयोगे** (१-४-२९) जिस व्यक्ति से नियमपूर्वक कुछ सीखा जाता है वह अपादान होता है ।

(i) **उपाध्यायात्** अधीते । (ii) रामः **अध्यापकात्** गणितं पठति । स आचार्यात् उपदेशं गृह्णाति ।

४२१. **जनिकर्तुःप्रकृतिः** (१-४-३०) जनि का अर्थ पैदा होना है । इसके कर्त्ता का आदि कारण अपादान माना जाता है ।

यथा— **क्रोधात्** भवति सम्मोहः **सम्मोहात्** स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो **बुद्धिनाशात्** प्रणश्यति ॥

जिससे कोई प्राणी जन्म लेता है उसमें सप्तमी होती है । **रेणुकायां** तनयो जातः ।

४२२. **भुवः प्रभवः** (१-४-३१) उत्पत्ति का स्थान अपादान संज्ञा कहा जाता है । हिमालयात् गङ्गा प्रभवति । **वल्मीकाग्रात्** धनुः प्रभवति ।

४२२. **(अ) वा० ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च** यदि किसी वाक्य में ल्यप् (आदाय, आगत्य आदि) अथवा क्त्वा (गत्वा, पीत्वा, श्रुत्वा आदि) प्रत्यय वाले शब्दों का लोप दिखाया जाय तो ल्यबन्त कर्म तथा उसके अधिकरण में पञ्चमी होती है ।

(i) प्रासादात् प्रेक्षते (प्रासादम् आरुह्य) ।

(ii) आसनात् प्रेक्षते (आसने उपविश्य) ।

(iii) श्वशुरात् लज्जयति (श्वशुरं वीक्ष्य) ।

४२२. (आ) **वा० यतश्चाध्वकाल निर्माण तत्र पञ्चमी** जिस स्थान या समय से किसी अन्य स्थान की दूरी दिखलायी जाती है, वह पञ्चमी विभक्ति में रखा जाता है।

मम गृहात् कर्णपुरं योजनत्रयमस्ति । मम गृहात् कर्णपुरं योजनत्रयेऽस्ति । भारद्वाजाश्रमात् गङ्गा यमुनयोः सङ्गमः क्रोशः क्रोशे वा अस्ति ।

४२२. (इ) **वा० कालात् सप्तमी च वक्तव्यः** समय की दूरी बताने वाला शब्द सप्तमी में रखा जाता है।

आश्विन मासस्य प्रथम दिवसात् विजयदशमी पञ्चविंशति दिवसेषु ।

४२३. **पञ्चमी विभक्ते**: (२-३-४२) जहाँ किसी की तुलना आदि के द्वारा कोई विभेद दिखाया जाय तो जिससे भेद होता है उसमें पञ्चमी होती है।

(i) मौनात् सत्यं विशिष्यते । (ii) धनात् विद्या गरीयसी ।
(iii) मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः (रघुवंश) ।
(iv) जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी । (रामा०)

४२४. **अन्यारादितरर्ते दिक् शब्दाञ्चूत्तरपदाज्जाहियुक्ते** (२-३-२) अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिशावाची शब्द (पूर्व, दक्षिण, उत्तर) तथा अञ्च् धातु से बने प्राक्, प्रत्यक्, उदक् आदि अथवा आहि प्रत्ययान्त के योग में पञ्चमी होती है। यथा—

(i) कृष्णात् भिन्नः बलरामः, कृष्णात् इतरो बलरामः ।
(ii) धर्मादन्यः न कोऽपि रक्षकः ।
(iii) ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ।
(iv) ग्रामात् पूर्वः उत्तरो वा शैलः ।
(v) तस्मात् नगरात् प्रत्यक् नदी प्रवहति ।

टिप्पणी–(i) अन्य शब्द से इतर, अपर, पर, भिन्न सभी का ग्रहण माना जाता है।

(ii) महाभाष्यकार ने अपादाने पञ्चमी की व्याख्या में कार्तिक्याः प्रभृति लिखा है। इससे स्पष्ट है कि प्रभृति तथा आरभ्य इत्यादि अन्य शब्दों के योग में भी पञ्चमी होती है।

तस्मात् परम् अनन्तरं वा । शैशवात् प्रभृति सोऽन्धः ।

४२५. **पञ्चम्यपाङ्परिभिः** (३-३-१०) अप और परि का रोकने के अर्थ में तथा आङ् का मर्यादा और अभिविधि अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। इन तीनों के योग में पञ्चमी होती है।

(i) अप परि वा हरेः संसारः।
भगवान् को छोड़कर संसार रहता है।

(ii) आमरणात् स्वकर्त्तव्यं पालयेत् जनः।
मृत्यु तक मनुष्य को कर्त्तव्य पालना चाहिए।

(iii) आकैलासात् राजहंसाः सहायाः भविष्यन्ति।
कैलास पर्यन्त राजहंस सहायक होंगे।

(iv) आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
विद्वानों को जब तक संतोष नहीं होता, मैं प्रयोग विज्ञान को सही नहीं मानता।

(v) सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्। (रघुवंश)

(vi) आमूलात् श्रोतुमिच्छामि।

४२६. **प्रतिनिधि प्रतिदाने च** (२-३-११) प्रतिनिधि तथा प्रतिदान (विनिमय) के अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने वाले प्रति के योग में पञ्चमी होती है। **तिलेभ्यः प्रति प्रयच्छति माषान्।** तिलों के बदले उड़द देता है। **युधिष्ठिरः अर्जुनात् प्रति।** युधिष्ठिर अर्जुन के प्रतिनिधि हैं।

४२७. **विभाषागुणेऽस्त्रियाम्** (२-३-२५) हेतु या कारण बताने वाले गुणवाचक स्त्रीलिंग भिन्न शब्द विकल्प से तृतीया या पञ्चमी में रखे जाते हैं—

स जाड्येन जाड्यात् वा बद्धः। वह अपनी अज्ञानता से पकड़ा गया।

४२७. (अ) **दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च** दूर, अन्तिक (निकट) अर्थ वाले शब्दों के योग में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी या सप्तमी होती है। ग्रामात् ग्रामस्य वा दूरं दूरेण, दूरात्, दूरे वा।

वनस्य वनात् वा अन्तिकं, अन्तिकेन, अन्तिकात्, अन्तिके वा तस्य भवनस्य निकटं, निकटेन, निकटात्, निकटे वा।

सप्तमी ४२८. **आधारोऽधिकरणम्** (१-४-४५) किसी भी क्रिया का आधार अधिकरण कहा जाता है। आधार तीन तरह का होता है—

४२८. **सप्तम्यधिकरणे** (२-३-३६) अधिकरण में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग करते हैं।

१. **औपश्लेषिक** जिसमें आधेय का भौतिक सम्पर्क हो।
जैसे—स आसने उपविशति। स का आसन से भौतिक सम्पर्क है। सिंहः वने वसति।

२. **वैषयिक आधार** जिसके साथ आधेय का बौद्धिक संश्लेष हो—तस्य कामना **मोक्षे** अस्ति। तस्य पठने रुचिः। यहाँ मोक्ष दूर है पर उसमें कामना आधारित है।

३. **अभिव्यापक आधार** जिसके साथ आधेय का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध हो—जैसे—तिलेषु तैलम्। यहाँ तिलों में तेल की शाश्वत स्थिति है।

४२८. **(अ) साधुरसाधुप्रयोगे च** साधु और असाधु के योग में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा—

(i) रामः **मातरि** साधुः। राम का व्यवहार माँ के प्रति अच्छा है।
(ii) आरक्षकः **चौरेषु** असाधुः। आरक्षक चोर के प्रति कठोर है।

४२८. **(आ)** जिस समय कोई कार्य होता है, उस समय वाचक शब्द में सप्तमी का प्रयोग होता है।

रविवासरे स गृहं गतः। आषाढस्य **प्रथम दिवसे** स मेघम् अपश्यत्।

४२८. **इ वा० निमित्तात् कर्मयोगे** जिस फल की प्राप्ति के लिए क्रिया की जाती है वह फल यदि कर्म से जुड़ा हो तो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—**चर्मणि** द्वीपिनं हन्ति। **दन्तयोर्हन्ति** कुञ्जरम्। **केशेषु** चमरीं, **सीम्नि** पुष्कलको हतः। अर्थात् चमड़े के लिए बाघ को मारता है, दाँतों के लिए हाथी को मारता है। बालों के लिए चमरी गाय को तथा कस्तूरी के लिए हिरन को मारता है।

४३०. **यतश्च निर्धारणम्, निर्धारणे षष्ठी सप्तमी च** (२-३-४१) जब किसी को उसकी कोई विशेषता दिखाकर उसके वर्ग से अलग दिखाया जाय तो वर्ग में सप्तमी होती है।

(i) कवीनां / कविषु कालिदासः श्रेष्ठः।
(ii) गोषु / गवां कृष्णा बहुक्षीरा।
(iii) छात्रेषु / छात्राणां श्यामः पटुः।

४३१. **सप्तमी पञ्चम्यौ कारकमध्ये** दो कारक वाले काल और स्थान के वाचक शब्द सप्तमी या पञ्चमी में रखे जाते हैं।

(i) अद्य चलत्चित्रं विलोक्य त्रि दिवसे / त्रिदिवसात् द्रक्ष्यसि।

(ii) अहं श्व: पुस्तकं विलिख्य पञ्चदिवसे / पञ्चदिवसात् वा लेखिष्यामि।

४३२. **प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च** (प्रसित=इच्छुक) प्रसित और उत्सुक शब्दों के योग में सप्तमी या तृतीया विभक्ति होती है।

(i) निद्रया। निद्रायां स प्रसित:। उत्सुक: वा अस्ति।

आदर, स्नेह, अनुराग तथा इनका अर्थ देने वाले शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। (i) **देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ता:** प्रकृतय:। (मुद्राराक्षस) स दण्ड-नीत्यां नात्यादृतोऽभूत् (दशकुमार चरित)

४३३. **यस्य च भावेन भावलक्षणम्** जब किसी कार्य की समाप्ति पर दूसरा कार्य होता है तो जो कार्य समाप्त हो जाता है उसमें सप्तमी विभक्ति होती है।

(i) सूर्ये अस्तं गते छात्रा: विद्यालयात् गृहमगच्छन्।

(ii) रामे वनं गते दशरथ: प्राणान् अत्यजत्।

(iii) सर्वेषु शयानेषु सा स्वपिति।

षष्ठी—पीछे बताया जा चुका है कि यह कारक नहीं है क्योंकि इसका क्रिया से सीधा सम्बन्ध नहीं होता। पर अन्य शब्दों से सम्बन्ध होने के नाते यह विभक्ति रहती है। अन्य विभक्तियों से कहे जाने के पश्चात् हमारे तमाम शब्द व्यवहार उनमें समा चुके। अत: पाणिनि ने कह दिया शेष में षष्ठी की जाय—

४३४. **षष्ठी शेषे** (२-३-५०) इसका अभिप्राय है कि अन्य शब्दों से सम्बन्ध वाली बात को अन्य विभक्तियों से नहीं कहा जा सकता, अत: उसे कहने के लिए षष्ठी का प्रयोग करते हैं। यथा—

राजा का पुत्र, मेरी पुस्तक, उसकी लाठी। बालक की माँ।
नृपस्य पुत्र:, मम पुस्तकम्, तस्य लगुडम्। बालकस्य माता
मिट्टी का घट, मृत्तिकाया: घट:।

४३५. **षष्ठी हेतु प्रयोगे** (२-३-२६) हेतु शब्द के प्रयोग में हेतु शब्द तथा कारण दोनों में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

(i) स अध्ययनस्य हेतो: प्रयागे वसति। यहाँ अध्ययन उसके प्रयाग में रहने का कारण है, अत: उसमें तथा हेतु दोनों में षष्ठी का प्रयोग किया गया।

४३६. **सर्वनाम्नस्तृतीया च** जब हेतु शब्द के साथ किसी सर्वनाम का प्रयोग किया जाता है तो उस सर्वनाम तथा हेतु शब्द का प्रयोग तृतीया पञ्चमी या षष्ठी में होता है।

यथा— (i) सा कस्य हेतोः तत्र वसति ?
(ii) सा कस्मात् हेतोः अत्र आयाति ?
(iii) सा केन हेतुना तत्र वसति।

इसी प्रकार— तेन हेतुना, येन हेतुना, तैः हेतुभिः
तस्मात् हेतोः, यस्मात् हेतोः, तस्य हेतोः
यस्य हेतोः सभी का प्रयोग सम्भव है।

४३६. **(अ) वा० निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्** कारण हेतु प्रयोजन आदि निमित्त शब्द का अर्थ देने वाले शब्दों के योग में सर्वनाम तथा निमित्तार्थक शब्द दोनों में प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं।

यथा— (i) किं निमित्तं स अत्रागतः ?
(ii) अस्मै प्रयोजनाय स अत्रागतः।
(iii) तेन प्रयोजनेन न किमपि सेत्स्यति।
(iv) कस्मात् हेतोः त्वं तत्र गतः ?

इस वार्तिक में प्रायः शब्द का तात्पर्य है कि यदि प्रयोजन के साथ सर्वनाम न होगा तो केवल प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों को छोड़कर सभी विभक्तियों का प्रयोग होगा।

४३७. **षष्ठ्यतसर्थ प्रत्ययेन** (२-३-३०) अतसुच् (तस्) प्रत्ययान्त शब्दों यथा— दक्षिणतः, उत्तरतः, तथा इस प्रत्यय का अर्थ देने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले यथा उपरि, अधः, अग्रे, आदौ, पुरः, आदि का जिस शब्द के साथ योग हो उसमें षष्ठी होती है।

यथा— (i) नगरस्य दक्षिणतः। (iii) वृक्षस्य अधः।
(ii) रथस्य उपरि, (iv) पतितानाम् अग्रे।
तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतोः (मेघदूतम्)

४३७. **(अ) दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्** (२-३-३४) दूर, अन्तिक (समीप) तथा इनके समान अर्थ वाले शब्दों के योग में षष्ठी और पञ्चमी होती है। (देखो ४२७) ग्रामस्य दूरम्। प्रयागात्। प्रयागस्य समीपम्।

४३८. **अधीगर्थदयेशां कर्मणि** अधि पूर्वक इ (स्मरण करना) दय् (दया करना), ईश् (समर्थ होना) तथा इनके समान अर्थ वाली धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है।

(i) स मातुः स्मरति । वह मा की याद करता है।
(ii) राघवाणां स्मरन् रावणः विव्यथे / अव्यथयत् ।
रघुवंशियों को स्मरण कर रावण दुःखी हुआ।
(iii) प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः ।
महाराज अपनी पुत्री के ऊपर समर्थ हैं।

४३९. **कर्तृकर्मणोः कृति** (२-३-६५) कृत प्रत्ययान्त शब्दों के योग में अनुक्त कर्त्ता और कर्म में षष्ठी होती है।

यथा— (i) इयं **कृतिः कालिदासस्य** अस्ति ।
(ii) **बालानां रोदनं** बलम् ।
(iii) शास्त्राणां परिचयः अपेक्षितः ।
(iv) अयमेव **वेदस्य पाठकः** ।

४४०. **उभयप्राप्तौ कर्मणि** (२-३-६६) जहाँ कर्त्ता और कर्म दोनों में कृदन्त के योग में षष्ठी प्राप्त होती है वहाँ केवल कर्म में ही षष्ठी विभक्ति होती है। आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन ।

४४१. **क्तस्य च वर्तमाने** (२-३-६७) जब क्त प्रत्ययान्त वर्तमान के अर्थ में आता है तो उसके योग में षष्ठी होती है। सामान्य रूप से क्त प्रत्ययान्त के योग में तृतीया आती है यथा—

१. स कविः राज्ञः पूजितः ।
२. विदितं च तप्यमानं तेन मे भुवनत्रयम् ।

४४२. **षष्ठी चानादरे** (२-३-३८) जब कोई कार्य किसी का अपमान, अनादर करके किया जाता है तो सप्तमी या षष्ठी होती है।
यथा— निवारयतोऽपि पितुः निवारयत्यपि पितरि सोऽध्ययनं पर्यत्यजत् ।

४४३. **कृत्यानां कर्तरि वा** (२-३-७१) कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों के योग में तृतीया अथवा षष्ठी होती है।

(i) मम पूज्यः आचार्यः तत्र अध्यापयति ।
(ii) न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः । (किरात)

४४४. **चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशल सुखार्थहितैः** (२-३-७३)

आशिष अर्थ होने पर आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ, हित तथा इनके समान अर्थवाचक शब्दों के योग में चतुर्थी या षष्ठी विभक्ति आती है।

पुत्रस्य पुत्राय वा आयुष्यं, हितं, चिरंजीवितं सुखं वा स्यात्।

४४५. **कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे** क्रिया की पुनरावृत्ति के अर्थ में सुच्, कृत्यसुच् आदि प्रत्ययों से वने क्रिया विशेषण अव्ययों के योग में समयवाचक शब्दों में षष्ठी होती है।

(i) द्विरह्नो भोजनम् (दिन में दो वार भोजन)

(ii) पञ्चकृत्वः अह्नः भुङ्क्ते। दिन में पाँच वार खाता है।

४४५. (अ) अनुकरण अथवा सादृश्य अर्थ में अनुपूर्वक कृ धातु के योग में षष्ठी विभक्ति होती है—

ततोऽनुकुर्यात् तस्याः स्मितस्य।

४४५. (ब) अनुरूप, योग्य, सदृश तथा इनके अर्थ वाले अन्य शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

(i) सखे पुण्डरीक, नैतदनुरूपं भवतः।

(ii) सदृशमेव एतत् निरभिमानस्य।

(सचमुच यह निरभिमान स्नेह के योग्य है)

(iii) किसी का अंश या अंग वताने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। जलस्य विन्दून्, रात्रेः पूर्वार्धम्, दिनस्योत्तरम्।

(iv) प्रिय, वल्लभ तथा इसी अर्थ में आने वाले दूसरे शब्दों के योग में षष्ठी होती है।

(i) कायः कस्य न वल्लभः।

(ii) कृष्णः कस्य न प्रियः।

(v) विशेष, अन्तर आदि शब्दों के योग में जिससे अन्तर दिखाया जाता है उसमें षष्ठी होती है।

(i) एतावानेव भवतां शतक्रतोरन्तरम्।

इतना आप और इन्द्र में अन्तर है।

(ii) भवतो मम च समुद्रपल्वलयोरिवान्तरम्।

(आप और मुझमें समुद्र तथा तालाव का अन्तर है)

अभ्यास

१ निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करो—

(अ) बच्चे चाँद देखना चाहते हैं।
शिशवः चन्द्रं द्रष्टुं वाञ्छन्ति।

(आ) इस गाँव के दोनों ओर पर्वत हैं।
इमं ग्रामम् उभयतः पर्वताः सन्ति।

(इ) परिश्रम के विना न विद्या आती है न सच्चा सुख।
परिश्रमं विना न विद्या आयाति (लब्धुं शक्यते) न च वास्तविकं सुखम्।

(ई) प्रभु दीनों की रक्षा करता है और भूखे को भोजन देता है।
ईश्वरः अकिंचनान् रक्षति, बुभुक्षाय भोजनं यच्छति।

(उ) अब विवाद करना उचित नहीं शान्ति से स्थिति को देखो।
साम्प्रतम् अलं विवादेन, शान्त्या स्थितेः अध्ययनं कुरु।

(ऊ) यह तो ईश्वर ने ऐसा किया है, शासन मुझे व्यर्थ दण्ड देता है।
दैवेनेदमनुष्ठितम् शासनं मां वृथैव दण्डयति।

(ए) गुणों से हीन मनुष्य समाज में यश नहीं पाता।
गुणैः हीनः जनः समाजे न आद्रियते।

(ऐ) गीता में भगवान ने स्पष्ट कहा है कि जो भी मुझे अनन्य भाव से स्मरण करता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।
गीतायां भगवता स्पष्टं प्रोक्तं यत् यः कोऽपि जनः अनन्यचेतसा मां स्मरति स पापैः प्रमुच्यते। पापेभ्यः मुक्तः भवति।

(ओ) वे सभी छात्र स्वभाव से बड़े चञ्चल हैं।
ते सर्वे छात्राः प्रकृत्या अति चञ्चलाः सन्ति।

(औ) दीनों को दान देना है यदि धर्म करना है।
दीनेभ्यो दानं दातव्यं चेत् धर्मः आकांक्ष्यते।

(क) शिष्य गुरु से अपनी कठिनाई कहे इससे बढ़कर और क्या चाहिए ?
शिष्यः स्वीयं काठिन्यं गुरवे निवेदयेत् किमितः परम् ?

(ख) मैं भगवान शंकर को प्रणाम करता हूँ।
नमो भगवते शूलपाणिने। भगवन्तं शंकरं बन्दे / चन्द्रमौलिं नमामि।

(ग) सज्जनों की शिक्षा गुण के लिए होती है।
सज्जनानां शिक्षा गुणाय सम्पद्यते।

(घ) राजा दशरथ ने राम को देने की प्रतिज्ञा की।
राजा दशरथः रामं दातुं प्रत्यश्रृणोत्।

(ङ) साधुओं की रक्षा के लिए तथा दुष्टों के विनाश के लिए मैं भूतल पर उतरता हूँ।
साधूनां रक्षायै, दुष्टानाञ्च विनाशायाहं भूतले अवतरामि।

(च) सज्जन सदा पाप से डरते हैं।
सज्जनाः पापात् बिभ्यति।

(छ) लोकनिन्दा के भय से राम ने अपनी प्रिय पत्नी को त्याग दिया था।
लोकापवादभयात् रामः स्वकीयां प्रियां पत्नीं अत्यजत्।

(ज) इस संसार में जीवित रहने से अधिक और कुछ प्रिय नहीं है।
इह संसारे जीवितादन्यत् न किमप्यभिमततरमस्ति।

(झ) धीर पुरुष अपने निश्चय से नहीं डिगते।
न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः।

(ञ) सभी छात्र यहाँ गुरु से पढ़ते हैं।
सर्वे छात्राः अत्र आचार्यात् पठन्ति।

(ट) जिसके पास धन होता है वही कुलीन होता है।
यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः।

(ठ) आप कृष्ण का घर किस लिए पूछ रहे हैं।
कस्य हेतोः भवान् कृष्णस्य गृहं पृच्छति।

(ड) बड़ों की आज्ञा सदा पालनीय होती है।
गुरुणामाज्ञा खलु परिपालनीया भवति।

(ढ) परिश्रम का फल मीठा होता है।
परिश्रमस्य फलं मधुरं भवति।

(ण) रविवार को विद्यालय का अवकाश होता है।
रविवासरे विद्यालये अवकाशः भवति।

(त) शरद ऋतु में मोर जंगल में प्रसन्नता से नाचते हैं।
शरदि ऋतौ मयूराः वने प्रसन्नतया नृत्यन्ति।

(थ) जैसे नदियों में गंगा पूज्य होती है उसी प्रकार कवियों में कालिदास।
यथा नदीषु गंगा पूज्या भवति तथैव कविषु कालिदासः श्रेष्ठः।

(द) चन्द्र के अस्त होते ही चोर मेरे घर में आगये।
अस्तं गते चन्द्रे चौराः ममगृहे प्राविशन्।

(ध) उसका किसी पर भी विश्वास नहीं है।
स न कस्मिन्नपि विश्वसिति।

(न) प्रकृति कभी बदलती नहीं है।
स्वभावो दुरतिक्रमः। प्रकृतिः न कदापि परिवर्तिता भवति।

(प) आज दीपावली का पावन पर्व है।
अद्य दीपावल्याः पावनं पर्व अस्ति।

(फ) सभी लोग आज बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।
सर्वे जनाः अद्य अमन्दमानन्दमनुभवन्ति।

अध्याय १६

लृट् लकार

आगे आने वाली घटना के लिए लृट् लकार का प्रयोग किया जाता है, जैसा पहले कहा जा चुका है। यथा— वह जायगा—स गमिष्यति। इसके रूप बनाना बहुत सरल है, इसीलिए इसका विशेष विवरण नहीं दिया गया। यह आर्धधातुक लकार कहलाता है। इसमें सार्वधातुक प्रत्यय नहीं लगते। पाणिनि ने **"आर्धधातुकं शेषः"** कह कर इसे सार्वधातुक से अलग कर दिया है। इसके प्रत्ययों के लिए उन्होंने कहा है—

लृट् शेषे च (३-१ १३) अर्थात् शेष में लृट् लकार हो। चूंकि अन्य लकारों की व्याख्या के पश्चात् उन्होंने इसका विवरण दिया है अतः शेष से इसका बोध होता है।

स्यतासी लृलुटोः (३-१-३३) लृट् में स्य तथा लुट् में तास् आवे। इसी के आधार पर लृट् में स्य का आगम होता है। जहाँ धातु सेट् होती है वहाँ इस 'स्य' के पहले इट् का भी आगम होता है। यथा— भव् + इ + स्य + ति, इस स्थिति में इ के परे होने से 'स्य' के स् के स्थान में ष् हो जाता है क्योंकि यह स् प्रत्यय का हिस्सा है और इण् के परे है। (देखो सूत्र १२२) तब भविष्यति बनता है। इसी प्रकार पठिष्यति, करिष्यति, श्रोष्यति आदि रूप बनते हैं। अकार या आकार के बाद

जो 'स्य' आता है वह ऐसा ही रहता है। जैसे— पास्यति, त्रस्यति, दास्यति, विधास्यति, यास्यति। दृश् का द्रक्ष्यति, पच् का पक्ष्यति और प्रच्छ से प्रक्ष्यति रूप वनता है। (देखो पृष्ठ १४७)

गम् धातु सेट् नहीं है पर लृट् में गमिष्यति वनता है— **गमेरिट् परस्मैपदेषु**— अर्थात् परस्मैपद गम् से इट् आवे। **षढोः कः सि** ष् और ढ् के स्थान में क् हो जाय यदि उससे परे स् हो। इसके आधार पर (जव यज् का यष् हो) यष् के षकार के स्थान पर क् हो जाता है और इस क् से परे स् के स्थान में ष् हो जाता है। तव क्+ष्=क्ष होकर यक्ष्यति रूप वनता है। आत्मवेपदी धातुओं में इसके टित् होने से **आत्मनेपदानां टेरे'** से टि के स्थान में 'ए' हो जाता है। यथा—

एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते। यह प्रत्यय मूल धातु में ही लगता है आदेश में नहीं। यथा— पा का पिव हो जाता है— पर— पास्यति वनता है— गम् का गच्छ् होता है पर गमिष्यति वनता है— जनि का जा होता है पर जनिष्यति वनता है। इस लकार के कुछ आवश्यक रूप इस प्रकार हैं—

(१) सेव — सेवा करना
सेविष्यते — सेविष्यसे —सेविष्ये
सेविष्येते —सेविष्येथे —सेविष्यावहे
सेविष्यन्ते — सेविष्यध्वे—सेविष्यामहे

(२) हृ —हरना
हरिष्यते—हरिष्यसे— हरिष्ये
हरिष्येते—हरिष्येथे—हरिष्यावहे
हरिष्यन्ते—हरिष्यध्वे-हरिष्यामहे

(३) जनि—पैदा होना
जनिष्यते — जनिष्यसे— जनिष्ये
जनिष्येते — जनिष्येथे—जनिष्यावहे
जनिष्यन्ते—जनिष्यध्वे—जनिष्यामहे

(४) कृ —करना
करिष्यते—करिष्यसे—करिष्ये
करिष्येते—करिष्येथे—करिष्यावहे
करिष्यन्ते—करिष्यध्वे—करिष्यामहे

(५) पच् (पकाना)
पक्ष्यते — पक्ष्यसे — पक्ष्ये
पक्ष्येते — पक्ष्येथे —पक्ष्यावहे
पक्ष्यन्ते — पक्ष्यध्वे —पक्ष्यामहे

(६) धा—धारण करना
धास्यति—धास्यसि—धास्यामि
धास्यतः—धास्यथः—धास्यावः
धास्यन्ति—धास्यथ—धास्यामः

अभ्यासः

१. निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करो—

१. मैं कल प्रयाग जाऊँगा, तुम्हें कब जाना है ?

अहं श्वः प्रयागं गमिष्यामि त्वया कदा गन्तव्यम् ?

२. हम सब मिलकर राष्ट्र की रक्षा करेंगे ।

वयं सर्वे मिलित्वा राष्ट्रं रक्षिष्यामः ।

३. इस निर्धन बालक को लेकर तुम क्या करोगे ?

इमं निर्धनं बालकमादाय त्वं किं करिष्यसि ।

४. वह नित्य पकायेगा और खायेगा और कर ही क्या सकता है ?

स नित्यं पक्ष्यति खादिष्यति च अन्यत् किं कर्तुं शक्नोति ?

५. कल प्रातः सूर्य उदय होगा कमल खिलेंगे ।

श्वः प्रातः भास्वानुदेष्यति, हसिष्यति पंकजालिः ।

६. ऐसा कार्य करके वे सब घोर नरक में गिरेंगे ।

एतादृशं कार्यं कृत्वा ते सर्वे नरके घोरे पतिष्यन्ति ।

७. एक मास के अनन्तर भारतीय इंगलैंड में क्रिकेट खेलगे ।

मासानन्तरं भारतीयाः आंग्लदेशे क्रिकेटं क्रीडिष्यन्ति ।

८. तुम्हें नहीं मालूम कौन कहाँ रहेगा ।

त्वया न ज्ञायते कः कुत्र स्थास्यति ।

९. मुझे खेद है कि आज शकुन्तला जायगी ।

कष्टं भो यदद्य शकुन्तला यास्यति ।

१०. वह मुझे मेरा सारा धन वापस दे देगा ।

स मह्यं मदीयं समस्तं धनं प्रत्यर्पयिष्यति ।

११. परसों वे सब वेदों की मधुर ध्वनि सुनेंगे ।

परश्वः ते सर्वे वेदानां मधुरं ध्वनिं श्रोष्यन्ति ।

२. द्वितीया के मुख्य-मुख्य प्रयोग स्थल बताओ ।

३. सह के योग में कौन सी विभक्ति आती है और किस सूत्र के आधार पर ?

४. संप्रदाने चतुर्थी का क्या अभिप्राय है ?

५. धोबी को कपड़े देने के अर्थ में चतुर्थी क्यों नहीं आती ।

६. निम्नलिखित धातुओं के लृट् लकार के रूप लिखो—

भा, या, अस्, कृ, सेव, शोभ, दृश्, लभ्, पा, दा ।

७. अधिपूर्वक शी के योग में कौन सी विभक्ति आती है ?

अध्याय २०

समास प्रकरणम्

दो वर्णों का मेल सन्धि होती है, दो पदों का मेल समास । समास के बल पर संस्कृत का लालित्य टिका है । इसीलिए समास का विवेचन भी यहाँ किया जा रहा है । इसका कुछ विस्तृत रूप यहाँ दिया जा रहा है जिससे यह बी०ए० अथवा एम०ए० के छात्रों के लिए भी उपयोगी हो सके । समास दो या, दो से अधिक पदों में भी होता है पर यह तभी सम्भव है जब उन पदों में मिलने की सामर्थ्य हो । सामर्थ्य का भाव इस प्रकार है ।—

भाषा में हर पद का एक सुनिश्चित और स्वतंत्र अर्थ होता है । जब यह अर्थ आकांक्षा आदि के कारण अन्य पदों से अन्वित होता है तो पदों में वाक्य का स्वरूप रहता है । यथा "देवदत्तः गृहं गच्छति" में प्रत्येक पद का अपना अर्थ अलग है किन्तु ये पद आकांक्षादि के वश एक दूसरे से सम्बद्ध हैं । इस प्रकार वाक्यार्थ मिलने की एक सामर्थ्य होती है जिसे व्यपेक्षा रूप सामर्थ्य (वि+अपेक्षा=विशेष आकांक्षा) कहते हैं । व्यपेक्षा में पदों का अपना अर्थ बदलता नहीं, पर सभी मिलकर एक बात कहते हैं । इसके विपरीत जब कोई पद दूसरे से मिलकर किसी नये अर्थ का बोध देता है तो भी पदों में एक सामर्थ्य होती है जिसे एकार्थी भावरूप सामर्थ्य कहते हैं । यह सामर्थ्य पदों में रहती है जैसा पाणिनि ने कहा है—

५४६. **समर्थः पदविधिः** (२-१-१) पद से सम्बन्ध रखने वाली विधि समर्थ पदों में ही होती है । उन्हीं में समास होता है ।

५४७. **सह सुपा** (२-१-४) सुबन्त का सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है । इस सूत्र में सुप् शब्द पूर्व सूत्र से आया है (२-१-२) । † यहाँ सुपा में तृतीया है जो सुप् प्रत्यय से बना है । एक सिद्धान्त है—

"प्रत्यय ग्रहणे तदन्त ग्रहणम्" अर्थात् प्रत्यय के कहने से तदन्त का भी ग्रहण होता है । इस आधार पर सुप् से सुबन्त का ग्रहण किया गया । समस्त पद दूसरे (एक नये) अर्थ का बोध कराता है । इसीलिए समास एक वृत्ति मानी जाती है जो परार्थ बोधक वृत्ति कही जाती है । वैसे वृत्तियाँ पाँच होती हैं । **"कृत्-तद्धित-समासैकशेष सनाद्यन्त धातुरूपाः पञ्च वृत्तयः"**

१. **कृत वृत्ति—**	धातु में कृत् प्रत्यय लगाकर नया रूप और अर्थ देता है ।
२. **तद्धित वृत्ति—**	प्रातिपदिक से तद्धित प्रत्यय लगाकर रूप बनाना तथा नया अर्थ देना ।
३. **समास वृत्ति—**	एक से अधिक पदों को मिलाकर समस्त शब्द बनाना और उससे नया अर्थ देना ।
४. **एकशेष वृत्ति—**	समान रूप अथवा कार्य वाले अनेक शब्दों से एक शब्द रह जाना तथा सभी का बोध देना ।
५. **सनाद्यन्त धातु वृत्ति—**	धातुओं से सन् आदि प्रत्यय लगाकर रूप बनाना तथा नया अर्थ देना ।

संस्कृत में प्रातिपदिक, विशेषण, क्रियाविशेषण तथा अव्ययों में सामर्थ्य होती है कि वे परस्पर मिल सकें तथा इस प्रकार मिले हुए पद किसी अन्य पद से भी मिल सकें । यथा—

---

† सुब् आमन्त्रिते पराङ्गवत् स्वरे ।

(i) राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः (समस्त पद)
(ii) समृद्धेः कथा = समृिद्धकथा " "
(iii) राजपुरुषस्य समृद्धिकथा = राजपुरुषसमृद्धिकथा (समस्त पद)

कभी-कभी समास करके किसी वाक्य को छोटा किया जा सकता है। यथा—कुमार सम्भवस्य रचयिता कालिदासः प्रसिद्धः कविः आसीत्।=कुमारसम्भवरचयिता कालिदासः प्रसिद्धकविः आसीत्।

इस प्रकार अनेक सुबन्त आपस में जुड़ जाते हैं। समस्त पद के पुनः पूर्वरूप में लाने को विग्रह कहते हैं। विग्रह से समस्त पद का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। विग्रह भी दो तरह का होता है—**लौकिक** तथा **अलौकिक**। जिस विग्रह का लोक में प्रयोग होता है उसे लौकिक विग्रह कहते हैं, यथा—राजपुरुषः का विग्रह राज्ञः पुरुषः। इस विग्रह में समास बनने से जिन विभक्तियों का लोप हुआ था वे पुनः आ गयीं। जिस विग्रह का लोक में प्रयोग नहीं होता उसे अलौकिक कहते हैं। यथा—

राजपुरुषः = राजन् + ङस् + पुरुष + सु।

केवल "इव" शब्द ऐसा है जिसके साथ समास होने पर भी विभक्तियों का लोप नहीं होता। यथा— शब्दश्च अर्थश्च=शब्दार्थौं, तौ इव इति शब्दार्थाविव। यहाँ इव के साथ समास होने से शब्दार्थौं की विभक्ति का लोप नहीं हुआ। इसी प्रकार वागर्थाविव, दिनक्षपा मध्यगतेव=दिनं च क्षपा च=दिनक्षपे। तयोर्मध्ये गता इव=दिनक्षपा मध्यगतेव सन्ध्या (कालिदास)। समास में शब्दों का पूर्वापर स्थान विग्रह के क्रम के अनुसार ही होता है। विशेष स्थिति में इस क्रम में परिवर्तन भी हो जाता है। यथा— पूर्वं भूतः इति = भूतपूर्वः। यहाँ पदों का क्रम बदल दिया गया। यह क्रम पाणिनि के (भूतपूर्वे चरट्) ५-३-५३ के आधार पर किया गया। समास चार प्रकार का होता है—**अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व और बहुव्रीहि**। तत्पुरुष के पुनः दो भेद हो जाते हैं—**कर्मधारय और द्विगु**। इनमें पदों की प्रधानता भी अलग-अलग होती है—जैसे अव्ययीभाव में पूर्व पद प्रधान होता है, तत्पुरुष में उत्तर पद प्रधान, द्वन्द्व में दोनों पद और बहुव्रीहि में अन्य पद प्रधान होता है।

१—अव्ययीभावः

१. अव्ययीभाव समास में दो पद होते हैं। इनमें पूर्व पद प्रायः अव्यय होता है। दूसरा पद कोई संज्ञा पद होता है। समास होने पर इसका व्यवहार नपुंसक लिंग एकवचन में होता है। अव्ययीभाव का तात्पर्य है जो अव्यय न हो वह

भी अव्यय वन जाय। इसके रूपों में परिवर्तन नहीं होता। इस समास का प्रमुख सूत्र इस प्रकार हैं—

५४८. **अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्धयर्थाभावऽत्ययासंप्रति-शब्द-प्रादुर्भाव-पश्चात्यथाऽऽनुपूर्व्य यौगपद्य सादृश्य सम्पत्ति साकल्यान्तवचनेषु।** (२-१-६) विभक्ति आदि १६ अर्थों में विद्यमान अव्यय का सुन्वत के साथ नित्य समास होता है। ये १६ अर्थ निम्नलिखित हैं—

१ विभक्ति, २ समीप, ३ समृद्धि ४ समृद्धि का नाश, ५ अभाव ६ नाश, ७ अनुचित, ८ शब्द की अभिव्यक्ति, ९ पश्चात्, १० यथा, ११ क्रम, १२ एक साथ होना, १३ समानता, १४ सम्पत्ति, १५ सम्पूर्णता, १६ अन्त।

५४९. **प्रथमा निर्दिष्टं समास उपसर्जनम्** (१-२-४३) समास शास्त्र में (समास करने वाले सूत्र में) जो पद प्रथमा विभक्ति में रखा गया है उसके द्वारा विग्रह वाक्य में निर्दिष्ट पद की उपसर्जन संज्ञा होती है। जैसे यहाँ दिये गये समास विधायक सूत्र में (सूत्र संख्या ५४८) अव्ययं शब्द प्रथमान्त है। इससे निर्दिष्ट अव्यय की उपसर्जन संज्ञा होगी। यथा— हरिं ङि अधि में अधि अव्यय है जो विभक्ति का अर्थ देने के लिए रखा गया है।

५५०. **उपसर्जनम् पूर्वम्** (२-२-३०) समास में उपसर्जन का प्रयोग पहले होता है। इस आधार पर अधि+हरि+ङि स्थिति बनती है।

५५१. **सुपो धातु प्रातिपदिकयोः** (२-४-७१) धातु तथा प्रातिपदिक के अवयव सुप् का लोप हो। यहाँ अधि+हरि+ङि में ङि सुप् का अवयव है। इसका लोप होने पर **"अधिहरि"** रूप वनता है।

५५२. **अव्ययीभावश्च** (२-४-१८) अव्ययीभाव समास नपुंसक लिंग होता है। इसका उदाहरण **"अधिगोपम्"** दिया जाता है। मूल में गोपा+ङि+अधि आये। इनमें अधि उपसर्जन संज्ञक होने से अधि + गोपा + ङि होता है। जब **"सुपोधातु प्रातिपदिकयोः"** से ङि का लोप हो जाता है तो अधिगोपा रह जाता है। अब अव्ययीभाव होने ये यह अव्यय तथा नपुंसक हुआ तो **"ह्रस्वो नपुंसके प्राति पदिकस्य"** से अधिगोप रह गया है और अम् आने पर प्रथमा एक वचन में अधिगोपम् सिद्ध हुआ। इसी प्रकार अधिनगरम्, अधिग्रामम् आदि।

५५३. **नाव्ययीभावाद् अतोऽम् त्वपञ्चम्याः** अदन्त अव्ययीभाव से परे सुप् का लोप नहीं होता। पञ्चमी विभक्ति छोड़कर उसके स्थान में अम् आदेश होता है। यथा— उप कृष्णम्, उप कृष्णात्।

५५४. **तृतीया सप्तम्यो र्बहुलम्** (२-४-८४) अकारान्त अव्ययीभाव से तृतीया और सप्तमी में वहुलता से अम् आदेश हो। वहुलता में विकल्प का भाव आता है। इन दोनों (५५३-५४) सूत्रों का फल यह है कि अकारान्त अव्ययीभाव समास से पञ्चमी में सदैव और तृतीया तथा सप्तमी में विकल्प से रूप वनते हैं। अन्य विभक्तियों में अम् आदेश होने पर विभक्ति सहित रूप नहीं रहते। यहाँ समीप अर्थ में 'उप' का प्रयोग किया गया है। कृष्णस्य समीपम्=कृष्णस्य उप+उपकृष्णम्। चूंकि तृतीया और सप्तमी में विकल्प से अम् आदेश होता है, जब अम् न होगा तो उपकृष्णेन और उपकृष्णे रूप वनते हैं, अन्यथा सर्वत्र उपकृष्णम् ही रहेगा। इसी प्रकार उपबन्धु, उपगुरु, उपनृपम् आदि रूप वनेंगे।

३. **समृद्धि**— मद्राणां समृद्धिः=सुमद्रम्, राष्ट्रस्य समृद्धिः सुराष्ट्रम्। नगरस्य समृद्धिः = सुनगरम्।

४. **व्यृद्धि**— ऋद्धि का अभाव वताने के लिए **"दुर्"** उपसर्ग का प्रयोग किया जाता है। यथा— यवनानां व्यृद्धिः=दुर्यवनम्, म्लेक्षाणां व्यृद्धिः=दुर्म्लेक्षम्, दानवानां व्यृद्धि=दुर्दानवम्।

५. **अभाव**— अभाव का अर्थ वताने के लिए **"निर्"** का प्रयोग किया जाता है। यथा—मक्षिकाणाम् अभावो = निर्मक्षिकम्। जनानाम् अभावः = निर्जनम्।

६. **अत्यय**— विनाश का अर्थ वताने के लिए **"अति"** का प्रयोग करते हैं। यथा—अति हिमम् (वर्फ का नाश) इसी प्रकार अतिजलम्, अति रोगम्।

७. **असम्प्रति**— **"अति"** का प्रयोग अनुचित अर्थ वताने के लिए भी किया जाता है। यथा निद्रा सम्प्रति न युज्यते=अतिनिद्रम्, कथनं सम्प्रति न युज्यते=अतिकथनम्, गमनं सम्प्रति न युज्यते = अतिगमनम्।

८. **शब्दप्रादुर्भाव**—किसी शब्द के प्रकाश अर्थ में **"इति"** का प्रयोग होता है। यथा—हरिशब्दस्य प्रकाशः=इतिहरि=तत्र तु साम्प्रतं इति हरि विद्यते। वहाँ इस समय हरि शब्द का प्रकाश है।

९. **पश्चात्**— पश्चात् अर्थ वताने के जिए **'अनु'** का प्रयोग किया जाता है। यथा—विष्णोः पश्चात् = अनुविष्णु, हरेः पश्चात् = अनुहरि इसी प्रकार अनुशिवम्।

१०. **यथा**— यथा शब्द के चार अर्थ हैं— (i) योग्यता, (ii) वीप्सा (बार बार प्रयोग), (iii) अतिक्रमण न होना, (iv) सादृश्य। इन चारो अर्थों में आने वाले अव्यय के साथ सुवन्त का समास होता है। यथा—

(i) रूपस्य योग्यम्=अनुरूपम् (योग्यता अर्थ)
(ii) अर्थम् अर्थ प्रति=प्रत्यर्थम् (वीप्सा अर्थ)
(iii) शक्तिम् अनतिक्रम्य=यथाशक्ति (शक्ति के परे न होना)
(iv) हरेः सादृश्यम्=सहरि (यहाँ वस्तुतः सह का प्रयोग होना था पर उसके स्थान में अगले सूत्र के अनुसार केवल "स" रह जाता है।

५५५ **अव्ययी भावे चाऽकाले** (६-३-८१) काल अर्थ को छोड़कर समास में सह के स्थान पर **"स"** रह जाय। सहरि।

११. **आनुपूर्व्य**— "क्रम के अनुसार" अर्थ में **"अनु"** का प्रयोग किया जाता है। यथा—ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण=अनुज्येष्ठम्, इसी प्रकार अनुपदम् (पद के क्रम से), अनुयोग्यम् (योग्यता के क्रम से) अनुक्रमम् (क्रम के अनुसार)।

१२. **यौगपद्य**— "एक साथ" अर्थ में 'सह' का प्रयोग होता है। शस्त्रेण सह= सशस्त्रम्, गोत्रेण सह=सगोत्रम्।

१३. **सादृश्य**— समानता अर्थ बताने के लिए भी **'सह'** का प्रयोग करते हैं जैसा प्रयोग १० में दिखाया गया है। यद्यपि सादृश्य अर्थ में समास यथा के अर्थ से ही हो जाता पर सूत्र में सादृश्य शब्द पुनः गौण अर्थ में भी समास करने के लिए रखा गया है— सदृशः सख्या ससखि।

१४. **सम्पत्ति**—असम्पत्ति अर्थ में भी 'स' का प्रयोग होता है।
क्षत्राणां सम्पत्तिः=सक्षत्रम्, इसी प्रकार सपुस्तकम्, सग्रन्थम्।

१५. **साकल्य**—सम्पूर्ण अर्थ में भी 'सह' का प्रयोग होता है। यथा— सह तृणेन्=सतृणम्। (तिनका भी न छूटे) इसी प्रकार सकणम्, सावयवम्।

१६. **अन्त**— तक के अर्थ में सह का प्रयोग होता है। यथा— सह+अग्नि= साग्नि। (अग्निपर्यन्त), अध्यायपर्यन्तं अधीते—साध्यायम्।

५५६. **एक विभक्ति चापूर्व निपाते** (१-२-४४) विग्रह में जिससे एक ही विभक्ति आती हो उसकी उपसर्जन संज्ञा हो किन्तु उसका पूर्व प्रयोग न हो। यहाँ सामान्य शंका हो सकती है कि उपसर्जन संज्ञा की ही इसलिए जाती है कि उसका पहले प्रयोग करना है। यहाँ उसका पूर्व प्रयोग रोक दिया तो उपसर्जन

संज्ञा की ही क्यों। इसका फल स्त्रीलिंग शब्द का ह्रस्व करना है। जैसा कि अगले सूत्र से होगा।

५५७. **गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य** (१-२-४८) उपसर्जन संज्ञक गो शब्द तथा स्त्रीलिंग शब्द यदि किसी समास का अंग बने तो तदन्त समस्त पद ह्रस्वान्त हो जाय। यथा— माला शब्द नित्य स्त्रीलिंग है। इसका अति के साथ समास होने पर अतिमालः बनता है।

५५८. **यथाऽसादृश्ये** (२-१-७) यथा शब्द का समास असादृश्य में ही होता है सादृश्य में नहीं। यथा हरिः तथा हरः। यथा यज्ञदत्तः तथा देवदत्तः। यह उदाहरण सादृश्य बता रहा है इसीलिए इसमें समास नहीं हुआ। इसका उदाहरण स्वामी दयानन्द की टीका में यथावृद्धम् दिया है।

ये ये वृद्धाः=यथावृद्धम्। यथाध्यापकम्, यथावृद्धं म् ब्राह्मणान् आमन्त्रयस्व

५५९. **यावदवधारणे** (२-१-८) निश्चित परिमाण में यावत् शब्द का अव्ययीभाव समास होता है। यावन्तः श्लोकाः तावन्तः अच्युत प्रणामाः=यावच्छ्लोकम्। जहाँ निश्चित नहीं है वहाँ नहीं होता—जैसे न मया ज्ञायते कियन्मया भुक्तम्। यावद् दत्तं तावद् भुक्तम्।

५६०. **सुप्रतिना मात्रार्थे** (२-१-९) मात्रा (कम या अधिक) का अर्थ बताने के लिए प्रति का सुवन्त के साथ समास होता है। प्रति का प्रयोग पहले न होकर बाद को होता है। यथा— शाकस्य लेशः=शाकं प्रति। जब इसका अर्थ मात्रा नहीं होता तो इसका समास नहीं होता। यथा— वृक्षं वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्। यहाँ प्रति का अर्थ ओर है। †

टिप्पणी

५६० † (अ) **अक्षशलाका संख्याः परिणा** (२-१-१०) अक्ष, शलाका और संख्या वाचक शब्दों का परि के साथ समास होता है। यह समास बहुधा जुए में हार के अर्थ में आता है। अक्षेण विपरीतं वृत्तम्=अक्षपरि। इसी प्रकार शलाका परि, एक परि।

५६०. (आ) **अपपरिबहिरञ्चवः पञ्चम्या** (२-१-११) अप, परि, बहि और अञ्च धातु से बने हुए शब्दों का (प्राच्, प्रत्यच्, तिर्यंच् आदि) पञ्चम्यन्त के साथ विकल्प से समास हो। यथा—

अपविष्णोः=अपविष्णु, परिविष्णोः=परिविष्णु।

वनात् बहिः–बहिर्वनम्, वनात् प्राक्–प्राग्वनम्, उद्यानात् प्रत्यक्–प्रत्यगुद्यानम्।

५६१. **आङ् मर्यादा ऽभिविध्योः** (२-१-१३) मर्यादा तथा अभिविधि अर्थों में आ का पञ्चम्यन्त के साथ विकल्प से समास होता है। मर्यादा का अर्थ है कि उक्त सीमा तक कोई कार्य हो और अभिविधि का भाव है कि उस वस्तु को सम्मिलित करके सीमा बने। यथा—

आ समुद्र क्षितीशानाम्—यहाँ "समुद्र को सम्मिलित कर" का अर्थ बताने के लिए ऐसा कहा गया है— आ समुद्रं ये क्षितीशाः तेषाम्। आमुक्तेः संसारः— यह प्रयोग मर्यादा अर्थ में है क्योंकि यहाँ संसार की स्थिति मुक्ति के पहले तक है।

५६१. (अ) **तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च** (२-१-१७) जिस समय गायें दुहाने के लिए खड़ी होती है (तिष्ठन्ति गावः यस्मिन् काले) इस अर्थ में अव्ययीभाव समास का रूप निपातन होता है—तिष्ठद्गु।

५६२. **अनुर्यत्समया** (२-१-१५), यस्य चायामः (२-१-१६) 'ओर' अर्थ में तथा वस्तु की लम्बाई बताने के अर्थ में अनु का सुवन्त के साथ समास होता है। यथा— अनुवनम् अशनिः गतः। वन की ओर बिजली गयी।

अनुगङ्गं वाराणसी। गंगा के किनारे किनारे वाराणसी है।

५६३. **पारे मध्ये षष्ठ्या वा** (२-१-१८) पार और मध्य शब्दों का षष्ठ्यन्त के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है। इनमें पार तथा मध्य का पूर्व प्रयोग होता है तथा ये एकारान्त हो जाते हैं। यथा मध्ये गंगात् (गंगा के बीच से) जब इनका यह समास नहीं होता तो षष्ठी तत्पुरुष हो जाता है— यथा— गंगापारात्, गंगामध्यात्।

५६४. **संख्या वंश्येन** (२-१-१९) वंश दो तरह से माना जाता है— विद्या तथा जन्म। संख्यावाचक शब्द का किसी सुवन्त के साथ विकल्प से समास होता है। यदि वह विद्या या जन्म से सम्बन्ध सूचित करता है। द्विमुनि, त्रिमुनि-व्याकरणम्।

५६५. **नदीभिश्च** (२-१-२०) संख्या वाचक शब्दों का नदी वाचक शब्दों के साथ समूह अर्थ में अव्ययीभाव समास होता है। यथा—

द्वियमुनम्, त्रिगङ्गम्, सप्तगङ्गम्।

५६६. **अव्ययीभावे शरत् प्रभृतिभ्यः** (५-४-१०७) अव्ययीभाव में शरद आदि शब्दों से टच् प्रत्यय हो। शरद् के समीप=उपशरदम्। वस्तुतः उपशरद् हलन्त था उसमें "अ" जोड़ना था तो टच् प्रत्यय कर दिया। टच् से केवल 'अ' शेष रहता है। अ जुड़ने पर ही उपशरद बनता है। उससे अव्ययीभाव में अम् होकर

उपशरदम् हो गया। शरद् आदि में मनस्, दिव्, दिश्, चेतस्, जरस्, चतुर्, त्यद्, तद्, यद् तथा कियत् प्रमुख हैं। इनसे टच् आने पर टि का लोप नहीं होता।

५६७. **अनश्च** (५-४-१०८) अन्नन्त अव्ययीभाव से भा समासान्त टच् प्रत्यय होता है।

५६८. **नस्तद्धिते** (६-४-१४४) तद्धित प्रत्यय परे रहते नान्त भ संज्ञक टि का लोप हो। राजा के समीप– राज्ञः समीपम्=उपराजम्। यहाँ समीप अर्थ में उप आया है। इसका अव्यय होने से पूर्व निपात हो जाता है तो राजन् ङस् उप से उपराजन् + ङस् बनता है। सुप् का लोप होने पर उपराजन् रहता है। तब टच् की प्रवृत्ति होती है। अतः उपराजन् + अ — टि का लोप होने पर उपराज तथा अम् होने पर उपराजम्—इसी प्रकार आत्मन् अधि=अध्यात्मम्।

५६९. **नपुंसकादन्यतरस्याम्** (५-४-१०९) यदि अन्नन्त अव्ययीभाव नपुंसक हो तो टच् विकल्प से होता है। यथा चर्मणः समीपम्= उपचर्मम्, (उप+चर्मन्+ङस्+अ) उपचर्मन्+अ।

५७०. **झयः** (५-४-१११) झयन्त अव्ययीभाव मे भी विकल्प से टच् हो। यथा समिधः समीपम् = उपसमिधम्, उपसमित्।

५७१. **नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः** (५-४-११०) नदी, पौर्णमासी, आग्रहायणी जिनके अन्त में हों, उन अव्ययीभाव समासों से विकल्प से टच् प्रत्यय हो। यथा— नद्याः समीपम्=उपनदम्, उपनदि। उपाग्रहायणम्, उपग्रहायणि, उपपौर्णमासि, उपपौर्णमासम्।

५७२. **गिरेश्च सेनकस्य** (५-४-११२) सेनक आचार्य के मत में गिरि शब्दान्त प्रातिपदिक से अव्ययी भाव समास में विकल्प से टच् होता है। यथा अन्तर्गिरम्। अन्तगिरि।

२—तत्पुरुष

तत्पुरुष उस समास को कहते हैं जिसमें पहला शब्द दूसरे की विशेषता बताये। चूँकि विशेष्य और विशेषण में विशेष्य प्रधान होता है अतः तत्पुरुष को उत्तर पद प्रधान (उत्तर पद प्रधानः तत्पुरुषः) माना जाता है। जैसे राज्ञः पुरुषः में राज्ञः पुरुष का एक प्रकार का विशेषण है। इसी प्रकार कृष्णः सर्पः में कृष्णः सर्प का विशेषण है। तत्पुरुष शब्द के दो अर्थ सम्भव हैं— तस्य पुरुषः=तत्पुरुषः, सः पुरुषः= तत्पुरुषः। इन अर्थों के अनुसार तत्पुरुष के दो भेद हो भेद हो जाते हैं प्रथम—जिसमें समास का पहला शब्द किसी दूसरी विभक्ति में हो। इसे व्यधिकरण कहते हैं।

दूसरा—जिसमें पहले और दूसरे पदों की विभक्ति एक ही हो। ऊपर दिये गये उदाहरणों में राजपुरुषः व्यधिकरण तत्पुरुष है और कृष्णसर्पः समानाधिकरण तत्पुरुष है। व्यधिकरण में चूँकि ६ विभक्तियाँ आ सकती है अतः इसके पुनः ६ भेद होते हैं—

(i) द्वितीया तत्पुरुषः (iv) पञ्चमी तत्पुरुषः।
(ii) तृतीया ,, (v) षष्ठी ,,
(iii) चतुर्थी ,, (vi) सप्तमी ,,

इस समास का पहला शब्द जिस विभक्ति में होता है उसी के नाम से उसे पुकारा जाता है। इस दृष्टि के राजपुरुषः में षष्ठी तत्पुरुष है।

४७३ † **द्वितीयाश्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** (२–१–२४) द्वितीयान्त पद का श्रित, अतीत (बीता हुआ), पतित, गत, अत्यस्त (फेंका गया) प्राप्त और आपन्न प्रातिपदिकों से बने हुए सुवन्तों के साथ विकल्प से समास होता है। इसे द्वितीया तत्पुरुष कहते हैं। यथा—

(i) कृष्णं श्रितः = कृष्णश्रितः (कृष्ण पर आश्रित)
(ii) दुःखम् अतीतः=दुःखातीतः (दुःख के पार गया)
(iii) प्रलयं गतः = प्रलयगतः (प्रलय को प्राप्त हुआ)
(iv) गृहं गत = गृहगतः (घर गया हुआ)
(v) कूपं पतितः = कूपपतितः (कुएं में गिरा हुआ)
(vi) तुहिनम् अत्यस्तः=तुहिनात्यस्तः (वर्फ से दुःखी)
(vii) जीवनं प्राप्तः = जीवन प्राप्तः (जीवन पाया हुआ)
(viii) संकटम् आपन्नः = (संकटापन्नः संकट में पड़ा हुआ)

टिप्पणी—सबसे बड़ी ध्यान देने की बात यह है कि इस प्रकार बना हुआ समस्त पद सुबन्त की भाँति व्यवहार में आता है। इससे भी सु आदि प्रत्यय विभक्ति के अनुसार आते हैं।

यथा—(i) अहं संकटापन्नाय मानवाय धनं प्रयच्छामि।
(ii) गृहगतेन तेन इदमाचरितं दुष्करम्।

---

† (४७३ अ) **वा० श्रितादिषु गमिगाम्यादीनामुपसंख्यानम्।** गमी आदि शब्दों के साथ भी द्वितीया तत्पुरुष होना चाहिए। यथा—ग्रामं गमी=ग्रामगमी। अन्नं बुभुक्षुः=अन्नबुभुक्षुः।

४७४ **कालाः** (२–१–२८) कालवाचक द्वितीयान्त शब्दों का क्त प्रत्ययान्तों के साथ द्वितीया समास होता है। यथा- मासं प्रमितः चन्द्रः=मासप्रमितः चन्द्रः।

४७५ **खट्वाक्षेपे** (२–१–२६) द्वितीयान्त खट्वा का 'क्त' प्रत्ययान्त के साथ समास होता है। यह निन्दा अर्थ में ही होता है। यथा—खट्वाम् आरूढः दुर्जनः= खट्वारूढ दुर्जनः। अच्छे अर्थ में खट्वाम् आरूढः ही रहेगा।

४७६ **अत्यन्त संयोगे द्वितीया** (२–१–२६) अत्यन्त संयोग से तात्पर्य है सदा साथ रहना। अत्यन्त संयोग वाले कालवाचक शब्दों के साथ भी सुवन्तों का द्वितीया तत्पुरुष समास होता है। यथा–मुहूर्तं सुखम् इति मुहूर्तसुखम्। क्षणं स्थायि= क्षणस्थायि।

यहाँ एक शंका होती है कि "कालाः" के द्वारा ही कालवाचक शब्दों का समास बताया जा चुका है तब "अत्यन्तसंयोगे" के द्वारा फिर कालवाचक शब्द क्यों कहा गया। इसका समाधान यह है कि कालाः के द्वारा कालवाचक शब्दों का समास केवल क्त प्रत्ययान्त शब्दों के साथ बताया गया है किन्तु 'अत्यन्त संयोगे' द्वारा किसी भी सुवन्त के साथ समास का विधान किया गया है।

४७७ **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** (२–१–३०) तृतीयान्त का तृतीयान्त के अर्थ के लिए किये गये गुणवाचक शब्द के साथ तथा अर्थ शब्द के साथ तृतीया तत्पुरुष होता है। यथा–शंकुलया खण्डः=शंकुलाखण्डः। यहाँ खण्ड शंकुला (सरौते) से किया गया है। इसी प्रकार धान्येन अर्थः=धान्यार्थः। यहाँ भी एक शंका होती है कि "शंकुलाखण्डः" समास तो कर्तृकरणेकृता बहुलम्" से ही हो जाता, इस तृतीया तत्कृतार्थेन सूत्र की क्या आवश्यकता थी। वस्तुतः तत्कृत कहता है कि यदि तृतीयान्त का गुणवचन से समास हो तो तृतीयान्तार्थ कृत से ही हो। इसका प्रमाण यह है कि "अक्ष्णाकाणः" कहने में समास नहीं होता क्योंकि आँख के द्वारा काण नहीं वल्कि रोगादि से आँख न होने से ऐसा हुआ। अतः इसमें समास नहीं हुआ।

टिप्पणी—

४७७ **अ स्वयं क्तेन** (२–१–२५) स्वयं शब्द का क्त प्रत्ययान्त के साथ तत्पुरुष समास हो। यथा स्वयं धौतौ पादौ=स्वयंधौतपादः।

४७७ **आ सामि** (२–१–२७) सामि शब्द का भी क्त प्रत्ययान्त के साथ तत्पुरुष समास होता है। सामि कृतम् (आधा किया गया) सामि पीतम्, सामि भुक्तम्।

४७७ **पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः** (२–१–३१) यदि तृतीयान्त शब्द के साथ पूर्व, सदृश, सम शब्दों से कोई हो, अथवा ऊन (कम), कलह (लड़ना), निपुण (चतुर), मिश्र (मिला हुआ), श्लक्ष्ण (चिकना) शब्दों से अथवा इनके समान अर्थ वाले शब्दों से कोई शब्द हो तो तृतीया तत्पुरुष होता है। यथा—

मासेन पूर्वः=मासपूर्वः, मात्रा सदृशः=मातृसदृशः,
पित्रा समः=पितृसमः धान्येन ऊनम्=धान्योनम्,
धान्येन विकलम्=धान्यविकलम्, वाचा कलहः=वाक्कलहः
असिना कलहः=असिकलहः, वाचा युद्धम्=वाग्युद्धम्,
वाणेन विद्धः=वाणविद्धः, आचारेण निपुणः=आचारनिपुणः,
शास्त्रेण निपुणः=शास्त्रनिपुणः, गुडेन मिश्रं=गुडमिश्रं,
गुडेन युक्तम्=गुडयुक्तम्, ज्ञानेन शून्यः=ज्ञानशून्यः
आचारेण श्लक्ष्णः=आचारश्लक्ष्णः, विद्यया हीनः=विद्याहीनः
वाचा निपुणः=वाग्निपुणः

४७८ **अ वा० अवरस्योपसंख्यानम्"** इनके साथ अवर शब्द को भी गिनना चाहिए था। यथा—मासेन अवरः=मासावरः (एक माह छोटा)

४७९ **कर्तृकरणेकृताबहुलम्** (२–१–३२) तृतीयान्त कर्ता या करण का कृदन्त के साथ तृतीया तत्पुरुष समास होता है। यथा—हरिणात्रातः=हरित्रातः। यहाँ हरिणा तृतीयान्त है और त्रातः कृदन्त है। इसी प्रकार नखैः भिन्नः=नखभिन्नः।

४८० **कृत्यैरधिकार्थवचने** (२–१–३३) स्तुति या निन्दा को अधिकार्थ वचन कहा जाता है। अतः कर्ता और करण कारक में तृतीयान्त का कृत्य प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ समस्त हो। यह तृतीया तत्पुरुष होता है। यथा—काकेन-पेया—काकपेया। (ऐसी नदी जहाँ कौआ ही जल पी सके)

४८१ **अन्नेनव्यञ्जनम्** (२–१–३४) संस्कार करने वाले द्रव्यवाचक तृतीयान्त शब्द का अन्नवाचक शब्द के साथ तृतीया तत्पुरुष समास होता है। यथा—दध्ना ओदनः=दध्योदनः।

४८२ **भक्ष्येण मिश्रीकरणम्** (२–१–३५) मिलाने वाले तृतीयान्त सुबन्त का भक्ष्यवाचक सुबन्त के साथ तृतीया तत्पुरुष हो। घृतेन मिश्रं शाकं=घृत-शाकम्। गुडेन मिश्राः धानाः=गुडधानाः।

४८३ **चतुर्थीतदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः** (२–१–३६) चतुर्थ्यन्त के अर्थ के लिए आने वाले शब्द का तथा अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षित पदों के साथ चतुर्थी तत्पुरुष समास होता है। यूपाय दारुः=यूपदारुः। यहाँ लकड़ी यूप (चतुर्थ्यन्त) के लिए है अतः समास हो गया। इसी प्रकार

ब्राह्मणाय हितम्=ब्राह्मणहितम्, भूतेभ्यो बलिः=भूतबलिः।
गवे हितम्=गोहितम्, गो सुखम्, हिताय अनुष्ठानम्=हितानुष्ठानम्
जनेभ्यः हितम्=जनहितम्, कल्याणाय पूजा=कल्याणपूजा,
धर्माय रक्षितम्=धर्म रक्षितम्, गवे रक्षितम्=गो रक्षितम्।
कुण्डलाय हिरण्यम्=कुण्डल हिरण्यम्।

४८४ **पञ्चमीभयेन** (२–१–३७) पञ्चम्यन्त का भयवाचक शब्द के साथ समास होता है। चौरात् भयम्=चोरभयम्, यह पञ्चमी तत्पुरुष है।

४८५ **अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः** (२–१–३८) अपेत, अपोढ, मुक्त, पतित और अपत्रस्त के साथ पञ्चम्यन्त का समास होता है।

सुखाद् अपेतः=सुखापेतः, दुःखाद् अपेतः=दुःखापेतः।
चक्रात् मुक्तः=चक्रमुक्तः, वृक्षात् पतितः=वृक्षपतितः।

इसी प्रकार स्वर्गपतितः, सिंहभीतः, तरङ्गापत्रस्तः, गृहनिर्गतः, अश्वपतितः, बन्धनमुक्तः।

४८६ **स्तोकान्तिक दूरार्थ कृच्छ्राणि क्तेन** (२-१-३९) स्तोक, अन्तिक, दूर, इनके वाचक अन्य शब्दों तथा कृच्छ्र शब्द के साथ पञ्चम्यन्त का समास होता है। इनके साथ विशेषता यह है कि इनकी विभक्ति का लोप नहीं होता। स्तोकात् मुक्तः=स्तोकान्मुक्तः। अन्तिकाद् आगतः=अन्तिकादागतः, इसी प्रकार कृच्छ्रादागतः, विदेशादागतः।

४८७ **पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः** (६-३-२) स्तोक आदि प्रातिपदिकों से यदि उत्तर पद हो तो पञ्चमी विभक्ति का लुक् न हो। जैसा सूत्र ४८६ में दिखाया गया है।

४८८ **षष्ठी** (२-२-८) षष्ठ्यन्त का सुबन्त के साथ समास षष्ठी तत्पुरुष होता है। यथा—राज्ञः पुरुषः=राजपुरुषः।

४८९ **याजकादिभिश्च** (२-२-९) षष्ठ्यन्त याजक आदि शब्दो का सुबन्तों के साथ समास हो। यथा—ब्राह्मणानां याजकः=ब्राह्मणयाजकः। इसी

प्रकार क्षत्रिय याजकः । याजकादि में पूजक, परिचारक, परिवेषक, स्नातक, अध्यापक, उत्पादक, होतृ, पोतृ, भर्तृ तथा रथगणक और पत्तिगणक आदि शब्द आते हैं ।

४६० **न निर्धारणे** (२-२-१०) किसी की दूसरों से श्रेष्ठता दिखाने के अर्थ को निर्धारण कहते हैं । निर्धारण में समास नहीं होता ।

नृणां द्विजः श्रेष्ठः, गवां कृष्णा बहुक्षीरा,
कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः, विदुषां जनकः श्रेष्ठः,

४६१ **पूरणगुण सुहितार्थ सदव्यय तव्य समानाधिकरणेन** (२-२-११) निम्नलिखित शब्दों के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं होता ।
(i) पूरणार्थक संख्या वाचक (ii) गुणवाचक (iii) तृप्ति के अर्थवाचक (iv) शतृ तथा शानच् प्रत्ययान्त (v) आदरार्थक क्त प्रत्ययान्त शब्द, (iv) अधिकरणवाचक क्त प्रत्ययान्त, (vii) कृदन्त (viii) तव्यान्त शब्द, यथा— सतां षष्ठः । काकस्य कार्ष्ण्यम् । फलानां सुहितः ।
द्विजस्य कुर्वन् । ब्राह्मणस्य कृत्वा ।

४६२ **क्तेन च पूजायाम्** (२-२-१२) सम्मानार्थवाचक क्त प्रत्ययान्त के साथ भी समास नहीं होता । यथा—राज्ञां मतो बुद्धो, पूजितो वा । यहाँ राजमतः आदि न होगा ।

४६३ **अधिकरणवाचिना** (२-२-१३) अधिकरण अर्थ में आया हुआ शब्द क्त प्रत्ययान्त के साथ भी समस्त नहीं होता ।

४६४ **कर्मणि च** (२-२-१४) कृत प्रत्ययान्त के योग में यदि कर्ता व कर्म दोनों में प्राप्त हो तो कर्म में षष्ठी (उभय प्राप्तौ कर्मणि से कर्म में ही षष्ठी) होती है । ऐसी षष्ठी के साथ समास नहीं होता । यथा—आश्चर्यो गवां दोहो अगोपेन । यहाँ अगोपः गाः दोग्धि यह मूल वाक्य था ।

इसका दुह् के साथ घञ् प्रत्यय होने पर कर्म वाच्य में गवां हो गया तथा कर्त्ता में षष्ठी न होकर तृतीया हो गयी । गवां दोहः का गोदोहः नहीं बना । अतः इसमें समास नहीं हुआ ।

४६५ **तृजकाभ्यां कर्तरि** (२–२–१५) कर्ता अर्थ में तृच् और ण्वुल के प्रयोग होने पर भी षष्ठयन्त का समास नहीं होता । यथा—अपां स्रष्टा । यहाँ सृज् से तृच् प्रत्यय होकर स्रष्टा बना है । इसके साथ अपां में षष्ठी है । अतः इसका समास नहीं हुआ ।

४९६ **कर्तरि च** (२–२–१६) कर्ता में षष्ठयन्त का अक के साथ समास नहीं होता। भवतः शायिका। यहाँ भवान् शेते के स्थान पर शी से कर्ता में ण्वुल् प्रत्यय होकर शायिका बना है। अतः भवतः के साथ समस्त नहीं हुआ।

४९७ **नित्यं क्रीडाजीविकयोः** (२–२–१७) क्रीडा तथा जीविका के अर्थ में वर्तमान अक के साथ षष्ठी का नित्य समास हो जाय। पुष्पाणां भंजिका=पुष्प भंजिका दन्तानां लेखकः=दन्तलेखकः।

४९८ **पूर्वपराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** (२-२-१) पूर्व (आगे का), अपर (पीछे का), अधर (नीचे का) और उत्तर (वाद का) अवयव वाचक शब्दों का अवयवी वाचक (जिसके वे अङ्ग हैं) शब्दों के साथ समास होता है। एक देश का अर्थ अवयव होता है। इसीलिए एकदेशिना का अर्थ अवयविना किया गया है। एक देशाधिकरणे का अर्थ है वह एकवचनान्त हो। अर्थात् जब अवयवी एक वचन होगा तो समास होगा। यथा—पूर्व+कायस्य= पूर्वकायः, अपरः कायस्य=अपरकायः, एक देश क्यों कहा—पूर्व नाभेः कायस्य। पूर्वः छात्राणाम् में समास न होगा।

४९९ **अर्धंनपुंसकम्** (२-२-२) बराबर आधे भाग का वाचक नित्यनपुंसक लिंग अर्ध शब्द का सुवन्त के साथ समास होता है। पिप्पल्याः अर्धम्=अर्धपिप्पली, यह भी षष्ठी समास का एक प्रकार से वाधक है क्योंकि यहाँ अर्ध का पूर्व निपात हो जाता है। अर्धम् को प्रथमान्त मानकर उसकी उपसर्जन संज्ञा हो जाती है। अतः वह षष्ठी का स्वरूप नहीं रहता।

५०० **द्वितीय तृतीय चतुर्थतुर्याण्यन्यतरस्याम्** (२-२-३) द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तुर्य शब्दों का अपने अवयवियों के साथ (अर्थात् जिसके वे अंश हैं) समास होता है। यथा—भिक्षायाः द्वितीयम्=द्वितीय भिक्षा किन्तु द्वितीयं भिक्षायाः भिक्षुकस्य। भिक्षुक के पुनः भीख मांगने में समास नहीं होगा। द्वितीय भिक्षा में पहला शब्द अर्थ का निर्णय करता है अतः इसे षष्ठी तत्पुरुष कहना ठीक नहीं। इसे केवल तत्पुरुष कहना चाहिए। पक्ष में षष्ठी समास होने पर भिक्षा द्वितीयं भी वनता है।

५०१ **प्राप्तापन्ने च द्वितीयया** (२-२-४) प्राप्त और आपन्न शब्दों का द्वितीयान्त के साथ समस्त होने पर पहले भी प्रयोग किया जा सकता है। यथा—प्राप्त-जीवनः, आपन्नकष्टः।

५०२ **कालाःपरिणामिना** (२-२-५) काल वाचक शब्द का घटनावाचक शब्द के साथ समास होता है। मासो जातस्य यस्य सः=मासजातः। इसी प्रकार संवत्सरमृतः आदि।

५०३ **सप्तमीशौण्डैः** (२-१-४०) **सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च** (२-१-४१) शौण्ड (चतुर), धूर्त, प्रवीण, पटु, सिद्ध, शुष्क, पक्व, पण्डित, कुशल, चपल, आदि शब्दों के साथ सप्तम्यन्त पद का समास होता है। यथा—

अक्षेषु शौण्डः=अक्षशौण्डः शास्त्रे प्रवीणः=शास्त्रप्रवीणः
रणे कुशलः=रणकुशलः सभायां पण्डितः=सभापण्डितः
आतपेशुष्कः=आतपशुष्कः द्यूते कितवः=द्यूतकितवः।

५०४ **ध्वांक्षेण क्षेपे** (२-१-४२) निन्दा अर्थ में ध्वांक्ष वाचक (कौआ) शब्दों के साथ सप्तम्यन्त का समास होता है। तीर्थवायस=तीर्थकाकः। इसके विपरीत "तीर्थे ध्वांक्षः तिष्ठति" में निन्दार्थ नहीं अतः समास नहीं हुआ।

५०५ **कृत्यैर्ऋणे** (२-१-४३) ऋण का बोध कराना हो तो कृत्य प्रत्ययान्त का सप्तम्यन्त सुवन्त के साथ समास होता है। मासे देयम् ऋणम्=मासदेयम्। पर ऋण अर्थ न होने पर समास नहीं होगा। यथा—मासे देया भिक्षा, प्रातः अध्येयो अनुवाकः।

५०६ **संज्ञायाम्** (२-१-४४) संज्ञा अर्थ में सप्तम्यन्त सुवन्त का अन्य सुवन्त के साथ समास होता है। यथा—
अरण्ये तिलकाः=अरण्यतिलकाः।

५०७ **क्तेनाहोरात्रावयवाः** (२-१-४५) दिन और रात्रि के अवयववाचक सप्तम्यन्त सुवन्त का "क्त" प्रत्ययान्त के साथ समास हो। यथा—
पूर्वाह्णे कृतम्=पूर्वाह्णकृतम्, अपराह्णे कृतम्=अपराह्णकृतम्।
यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि दिन और रात्रि के अंश के लिए ही समास कहा गया है—पूरे दिन या रात के लिए नहीं। यथा—
अहनि भुक्तम् में समास नहीं हुआ। इसी प्रकार—रात्रौ कृतम्।

५०८ **"तत्र"** (२-१-४६) तत्र सप्तम्यन्त सुबन्त का भी क्त प्रत्ययान्त के साथ समास होता है। यथा—तत्रपीतम्, तत्रभुक्तम् आदि।

५०९ **क्षेपे** (२-१-४७) निन्दा अर्थ में प्रयुक्त सप्तम्यन्त सुबन्त का क्त प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ समास होता है। यथा—

अवतप्ते नकुलस्थितम् यहाँ अवतप्ते सप्तम्यन्त पद का समास क्तान्त के साथ हुआ तथा सप्तमी का अलुक हुआ।

५१० **पात्रेसंमितादयश्च** (२-१-४८) निन्दा अर्थ में पात्रेसंमितादि शब्द निपातन किये गये हैं। इनमें अनेक सप्तमी तत्पुरुष के शब्द हैं—यथा—

कूपे मण्डूक इव=कूपमण्डूकः, गेहे शूर इव=गेहेशूरः। इसी प्रकार पात्रे कुशलः, गोष्ठे विजयी, गेहेनर्दी।

५११ **पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन** (२-१-४९) पूर्वकाल (पहले) एक, सर्व, जरत, पुराण, नव तथा केवल सुवन्तों का समानाकरण सुवन्त के साथ समास होता है। यथा—पूर्वं स्नातः=पूर्वस्नातः एका चासौ शाटी=एकशाटी। सर्वे च ते वेदाः=सर्ववेदाः।

जरच्चासौ वैद्यः=जरद्वैद्यः। पुराणम् अन्नम्=पुराणान्नम्।

नवम् अन्नम्=नवान्नम्, केवलम् अन्नम्=केवलान्नम्।

५१२ **दिक्संख्येसंज्ञायाम्** (२-१-५०) संज्ञा के रूप में दिक् और संख्यावाचक शब्द समानाधिकरण सुवन्त के साथ समस्त होते हैं। सप्त ऋषयः=सप्तर्षयः, पञ्चग्रामाः, पूर्वेषुकामशमी, अपरेषु कामशमी, संज्ञा क्यों कहा—जिससे असंज्ञा में न हो यथा पञ्च ब्राह्मणाः, उत्तराः वृक्षाः। यहाँ पञ्च और उत्तर संज्ञा के रूप में नहीं हैं।

५१३ **तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे** (२-१-५१) दिक् वाची तथा संख्या वाची शब्द तद्धित अर्थ में और उत्तरपद परे हो तो समाहार अर्थ में समानाधिकरण के साथ समस्त होते हैं। यथा—पूर्वस्यां शालायां भवः=पौर्वशालः, इसी प्रकार औत्तरशालः। पूर्वा शाला प्रिया यस्य स पूर्वशालप्रियः। इसी प्रकार अपरशालप्रियः। समाहार अर्थ में—पञ्चकपालानि समाहृतानि यस्मिन् तत्=पञ्चकपालम् (गृहम्) पञ्चकुमारि, अष्टाध्यायी।

वा० सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः—समास, तद्धित आदि वृत्ति होने पर सर्वनाम का पुंवदभाव हो जाता है। इसका उदाहरण सूत्र में दिया जा चुका है।

५१४ **गोरतद्धितलुकि** (५-४-९२) जिसके अन्त में गो शब्द हो पर तद्धित प्रत्यय का लोप न हुआ हो उससे टच् प्रत्यय हो। पञ्चगवधनः।

५१५ **नञ्** (२-२-६) नञ का समर्थ सुवन्त के साथ समास होता है। यह तत्पुरुष

माना जाता है। नञ् से केवल "अ" शेष रहता है। यह सदा निषेध अर्थ, में आता है। यथा—न ब्राह्मणः=अब्राह्मणः, न सत्यम्=असत्यम्।

५१६ **तस्मान्नुडचि** (६-३ ७७) जहाँ कहीं नञ् के न का लोप हुआ हो उससे परे यदि अजादि उत्तर पद हो तो नुट् का आगम हो। यथा—न अच्=अनच् न एकत्वम्=अनेकत्वम्, न उपस्थितः=अनुपस्थितः, न औपचारिकम्=अनौपचारिकम्।

५१७ **ईषदकृता** (२-२-७) ईषद् शब्द का समास गुणवाचक शब्द के साथ हो यदि वह कृदन्त न हो। यथा - ईषत् पिंगलः=ईषत्पिंगलः।

५१८ **कुगतिप्रादयः** (२-२-१८) "कु" शब्द तथा गति संज्ञक शब्द और प्र आदि का समर्थ सुबन्त के साथ नित्य समास हो। कुत्सितः पुरुषः=कुपुरुषः। प्रकृष्टः आचार्यः=प्राचार्यः।

५१९ **उर्यादिच्विडाचश्च** (१-४-६१) उरी आदि, च्विप्रत्ययान्त तथा डाच् प्रत्ययान्त क्रिया के योग में गति संज्ञक होते हैं। यथा—उररीकृत्य, उरीकृत्य, स्वीकृत्य, अङ्गीकृत्य। इनकी गति संज्ञा होने का फल क्त्वा के स्थान पर ल्यप् होना है।

५२० **आदरानादरयोः सदसती** (१-४-६३) आदर और अनादर में सत् और असत् की भी गति संज्ञा हो जाती है। सत्कृत्य, असत्कृत्य।

५२१ **भूषणेऽलम्** (१-४-६४) क्रिया के योग में "अलम्" की भी गति संज्ञा होती है यदि भूषण अर्थ हो। अलंकृत्य।

५२२ **पुरोऽव्ययम्** (१-४-६७) क्रिया के योग में पुरः की गति संज्ञा होती है। पुरस्कृत्य।

५२३ **तिरोऽन्तर्धौ** (१-४-७१) छिपने के अर्थ में "तिरस्" की गति संज्ञा होती है। तिरः भूत्वा इति तिरोभूय।

५२४ **साक्षात् प्रभृतीनि च** (१-४-७४) उपाजेऽन्वाजे (१-४-७३) कृत प्रत्यय परे होने पर ये विकल्प से गति संज्ञक होते हैं। इनका प्रयोग अगले सूत्र के साथ दिया जाता है।

५२५ **अनत्याधानउरसिमनसी** (१-४-७५) अत्याधान सामीप्य को कहते हैं। अतः सामीप्य को छोड़कर निम्नलिखित शब्दों का क्त्वा तथा ल्यप् प्रत्ययान्त के साथ समास होता है। उपाजे, अन्वाजे, साक्षात्, मिथ्या, अमा, प्रादुः,

आविः, नमस्, उरसि, मनसि, मध्ये और पदे इस गणना में विशेष हैं। उरसिकृत्य, उरसिकृत्वा, मध्येकृत्य, मध्ये कृत्वा, मनसिकृत्य, मनसिकृत्वा।

५२६ **जीविकोपनिषदावौपम्ये** (१-४-७६) जीविका और उपनिषद् शब्द उपमान बनकर कृदन्त के साथ समस्त हों तो तत्पुरुष समास होता है। यथा—
जीविका इव कृत्वा=जीविकाकृत्य, इसी प्रकार उपनिषद्कृत्य।

५२६ अ **वा० प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया** गत आदि अर्थ में प्रयुक्त प्रादि प्रथमान्त के साथ समस्त हों। यह समास तत्पुरुष होता है। प्रगतः आचार्यः= प्राचार्यः।

५२६ आ **वा० अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया** क्रान्त आदि अर्थ में रहने वाले अति आदि द्वितीयान्त के साथ समस्त हों। मालाम् अतिक्रान्तः अतिमालः।

५२६ इ **वा० अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया** क्रुष्ट (बुलाना) आदि अर्थ में अव आदि तृतीयान्त के साथ समस्त हों। अवक्रुष्टः कोकिलया=अवक्रुष्ट-कोकिलः।

५२६ ई **वा० पर्यादयोग्लानाद्यर्थेचतुर्थ्या** ग्लान आदि अर्थ में रहने वाले परि आदि का समास चतुर्थ्यन्त के साथ हो। परिग्लानः अध्ययनाय=पर्यध्ययनः।

५२६ उ **वा० निरादयः क्रान्ताद्यर्थेपञ्चम्याः** क्रान्त अर्थ में निर् आदि का पञ्चम्यन्त के साथ समास हो। निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः=निष्कौशाम्बिः।

५२७ **तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** (३-१-९२) कर्मणि इत्यादि में वाच्य रूप से स्थित कुम्भ आदि के वाचक पद की उपपद संज्ञा होती है।
कुम्भं करोति इति कुम्भकारः। यहाँ कुम्भ की उपपद संज्ञा होती है।

५२८ **उपपदमतिङ्** (२-२-१९) ऐसे उपपद सुबन्त का समर्थ के साथ नित्य समास होता है जो तिङन्त न हो। मा भवान् भूत्। यहाँ भूत तिङ् है इसीलिए मा के साथ समस्त नहीं हुआ। कुम्भकारः।

५२९ **क्त्वा च** (२-२-२२) तृतीया आदि शब्द (उपपद) क्त्वान्त के साथ विकल्प से समस्त हों। उच्चैःकृत्य, उच्चैः कृत्वा।

५३० **तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः** (५-४-८६) जिसके आदि में संख्यावाचक अथवा अव्यय हो और अङ्गुलि शब्द अन्त में हो उस समासान्त के अन्त में अच् प्रत्यय हो। यथा—द्विअङ्गुलिप्रमाणम् अस्य=द्वयङ्गुलम्।

५३१ **अहः सर्वैकदेश संख्यात पुण्याच्च रात्रेः** (५-४-८७) अहः, सर्व, एकदेश, संख्यात, और पुण्य शब्दों से और संख्या तथा अव्यय से परे रात्रि शब्द से अच् प्रत्यय द्वन्द्व में ही आता है। यथा—अहश्च रात्रिश्च=अहोरात्रः, सर्वारात्रिः=सर्वरात्रः। पूर्वरात्रिः=पूर्वरात्रः, इसी प्रकार पुण्यरात्रः, संख्यात-रात्रः। द्वयोः रात्र्योः समाहारो=द्विरात्रम्।

५३२ **राजाहः सखिभ्यष्टच्** (५-४-९१) द्वन्द्व समास में यदि अहन् पहले होगा तो रात्रि को अच् प्रत्यय होकर रात्रः वनता है जैसा कि सूत्र ५३१ ने बताया, इसी प्रकार तत्पुरुष में भी राजन् तथा अहन् के स्थान में क्रम से राजःतथा अहः, और सखि के स्थान में सखः बन जाता है क्योंकि इन शब्दों के समस्त पदों से भी टच् प्रत्यय हो जाता है। यथा—परम राजा इति=परमराजः, मद्राणां राजा=मद्रराजः, पर्वतानां राजा=पर्वतराजः, कृष्णस्य सखा=कृष्णसखः, उत्तमम्अहः=उत्तमाहः।

५३३ **अह्नष्टखोरेव** (६-४-१४५) ट और ख परे रहते अहन् की टि का लोप हो। यथा—उत्तमम् अहः=उत्तमाहः। इसमें पहले राजाहः सखिभ्यः से (५३२) टच् हुआ तो उत्तमाहम्+अ आया, तव प्रकृत सूत्र से टि का लोप होकर उत्तमाहः=रूप बनता है।

५३४ **अह्नोऽह्न एतेभ्यः** (५-४-८८) सर्वादि से परे अहन् शब्द के स्थान में अह्न आदेश हो समासान्त परे रहते। यथा—सर्व+अहन्=सर्वाह्णः, इसी प्रकार पूर्वाह्णः, अपराह्णः,

५३५ **अह्नोऽदन्तात्** (८-४-७) किसी रेफ से पहले यदि अदन्त पूर्व पद हो तो अह्न आदेश वाले न् का ण् हो। इसी आधार पर पूर्वाह्णः तथा सर्वाह्णः आदि रूप बनते हैं।

५३६ **न संख्यादेः समाहारे** (५-४-८९) समाहार अर्थ में संख्या आदि से परे अहन् के स्थान में अह्न न हो। द्वयोः अह्नोः समाहारः=द्व्यहः, इसी प्रकार त्र्यहः।

५३७ **आन्महतः समानाधिकरण जातीययोः** (६-३-४६) महत् शब्द के स्थान में महा आदेश हो जाय यदि वह कर्मधारय या बहुव्रीहि का प्रथम पद हो अथवा उससे परे जातीय प्रत्यय हो। महान् चासौ देवः=महादेवः, महान् बाहुः यस्य=महाबाहुः, महाजातीयः, इसकेविपरीत महताम्सेवा=महत् सेवा(यहां

चूंकि षष्ठी तत्पुरुष है अतः महा नहीं हुआ। "कर" शब्द परे रहते नित्य महा होता है। यथा महाकरः।

५३८ **द्वयष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः** (६-३-४७) अशीति शब्द को छोड़ कर द्वि और अष्टन् शब्दों का संख्या अर्थ में आत्व हो जाय यदि वह बहुव्रीहि समास में न हो। द्वौ च दश च=द्वादश, अष्टौ च दश च=अष्टादश,

५३९ **सभा राजा मनुष्यपूर्वा** (२-४-२३) तत्पुरुष समास के अन्त में सभा शब्द नपुंसक हो जाय यदि उससे राजा का कोई पर्याय वाचक शब्द हो, पर राजा शब्द स्वयं न हो। (राजा होने पर राजसभा ही बनता है) यथा—ईश्वर सभम्, इनसभम्।

५४० **त्रेस्त्रयः** (६-३-४८) "त्रि" शब्द के स्थान में त्रयस् आदेश हो यदि वह बहुव्रीहि में न हो या उससे परे अशीति न हो। यथा—त्रयश्च दश च=त्रयोदश।

५४१ **रात्राह्नाहाः पुंसि** (२-४-२९) रात्र, अह्न, और अहः अन्त वाले तत्पुरुष समस्त पद पुंल्लिग होते हैं। पर यदि कोई संख्या पहले होगी तो रात्र नपुंसक होगा। यथा—पूर्वा रात्रिः=पूर्वरात्रः, सप्तअहानि=सप्ताहः इसके विपरीत नवरात्रम्, गणरात्रम्, द्विरात्रम्, त्रिरात्रम्।

५४२ **अपथं नपुंसकम्** (२-४-३०) तत्पुरुष समास में "अपथ" शब्द का प्रयोग केवल नपुंसकलिंग में होता है। न पन्थाः इति अपथम्। यदि यही बहुव्रीहि होता तो पुंल्लिग बनता – यथा—न पंथाः यस्य स अपथः देशः।

५४३ **अर्धर्चाः पुंसि च** (२-४-३१) अर्धर्च शब्द पुंल्लिग तथा नपुंसक लिंग दोनों में समस्त हो। यथा—ऋचः अर्धम्=अर्धर्चः, अर्धर्चम्,

३—कर्मधारयः

५४४ **तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः** (२-१-४२) ऐसा तत्पुरुष जिसमें दोनों पद एक ही विभक्ति में हों कर्मधारय कहा जाता है। कर्मधारय का अर्थ है कि समास की क्रिया दोनों पदों से समान रूप से अन्वित हो। जैसे—"कृष्णसर्पः अपसर्पति" में अपसर्पति क्रिया का कर्त्ता सर्प है और जहाँ-जहाँ सर्प जाता है वहीं वहीं कृष्णत्व। कृष्णत्व सदा सर्प के साथ रहता है। इसी को समानाधिकरण कहते हैं। जो तत्पुरुष अलग अलग विभक्तियों के पदों से

बनता है उसे व्यधिकरण कहते हैं, जैसा पहले कहा जा चुका है। कर्मधारय में पहला पद या तो दूसरे का विशेषण होता है अथवा दोनों ऐसे विशेषण होते हैं जो तीसरे पद की विशेषता बताये।

५४५ **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** (२-१-५७) विशेषण का विशेष्य के साथ समास बहुलता से होता हैं। यथा नीलम् उत्पलम्=नीलं चासौ उत्पलम्, महान् चासौ देवः=महादेवः, शुभः चासौ उत्सवः=शुभोत्सवः। बहुल से तात्पर्य है कि कुछ विशेषणों का नित्य समास होता है यथा कृष्णसर्पः, इसमें "कृष्ण" सर्प की जाति का बोधक है अतः इसका विग्रह कृष्णः चासौ सर्पः नहीं होगा जैसा सामान्य विशेषणों में होता है। इसी प्रकार परमः चासौ राजा=परम राजः।

५४६ **उपमानानि सामान्यवचनैः** (२-१-५५) उपमान वाचक सुवन्त का समान गुणवाचक सुबन्त के साथ समास होता है। यथा— घन इव श्यामः= घनश्यामः। **जिससे किसी की समानता दिखायी जाती है उसे उपमान कहते हैं और जिसकी समता दिखायी जाती है उसे उपमेय कहते हैं।** सामान्य वचन का अर्थ साधारण धर्म है जिसके आधार पर उपमान से उपमेय की तुलना की जाती है। इसे उपमान पूर्वपद कर्मधारय कहते हैं क्योंकि इसमें उपमान पहले आता है।

५४७ **उपमितं व्याघ्रादिभिः** (२-१-५६) जब उपमेय और उपमान साथ साथ आते हैं तो यह उपमानोत्तर पद कर्मधारय होता है। यहाँ उपमान पहला शब्द न होकर दूसरा शब्द होता है। जैसे मुखं कमलं इव=मुखकमलम्। पुरुषः व्याघ्र इव=पुरुषव्याघ्रः। इसी प्रकार नरसिंहः। अधर पल्लवः।

५४८ **पूर्वापरप्रथमचरमजघन्यसमान मध्यमध्यम वीराश्च** (२-१-५८) पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम तथा वीर शब्दों का सुबन्तों के साथ कर्मधारय समास होता है। यथा—पूर्वश्चासौ पुरुषः=पूर्वपुरुषः। इसी प्रकार मध्यम पुरुषः, वीर पुरुषः।

५४९ **श्रेण्यादयः कृतादिभिः** (२-१-५९) श्रेणी आदि सुबन्तों का कृत आदि सुबन्तों के साथ समास हो जाय। श्रेणीकृताः। अश्रेणयः श्रेणयः कृताः।

५५० **क्तेन नञ् विशिष्टेनानञ्** (२-१-६०) नञ् पूर्वक क्तान्त का अनञ् क्तान्त से समास होता है। कृतं च तदकृतं च=कृताकृतम्। शाक पार्थिवादीनां

सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्। शाकपार्थिव आदि की सिद्धि के लिए उत्तर पद का लोप भी होता है। यथा—शाकप्रियः पार्थिवः=शाकपार्थिवः। देवप्रिय ब्राह्मणः=देवब्राह्मणः।

५५१ **वृन्दारकनागकुञ्जरैः पूज्यमानम्** (२-१-६२) वृन्दारक, नाग, और कुञ्जर शब्दों के साथ पूज्य वस्तु का पूर्व प्रयोग होता है। यथा—नृपवृन्दारकः तापसकुञ्जरः, पुरुषनागः।

५५२ **सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाःपूज्यमानैः** (२-१-६१) सत्, महत्, परम, उत्तम तथा उत्कृष्ट का पूज्यमान सुवन्तों के साथ समास हो। यथा—सत्पुरुषः, महान् चासौ पुरुषः=महापुरुषः। इसी प्रकार परम पुरुषः, उत्तम पुरुषः उत्कृष्टपुरुषः।

५५३ **कतरकतमौजातिपरिप्रश्ने** (२-१-६३) जातिवाचक प्रश्न होने पर कतर और कतम शब्दों का समानाधिकरण के साथ समास होता है तथा इनका पूर्व प्रयोग होता है। कतमः कलापः=कतमकलापः, कतरः कलापः=कतर-कलापः। यह पूर्व प्रयोग कतरःपुत्रः में सम्भव नहीं क्योंकि वह जाति बोधकनहींहै

५५४ **किंक्षेपे** (२-१-६४) **कुत्सितानिकुत्सनैः** (२-१-५३) **पापाणकेकुत्सितैः** (२-१-५४) निन्दनीय वस्तुओं अथवा व्यक्तियों का कर्मधारय में पूर्व प्रयोग होता है। इसी प्रकार पाप, आणक तथा किं का प्रयोग भी पहले होता है। यथा—वैयाकरणखसूचिः (ऐसा वैयाकरण जो भूलने पर आसमान ताकता है। आणकः चासौ कुलालः=आणककुलालः (मूर्ख कुम्हार)। पापः चासौ नापितः=पापनापितः। कुत्सितः राजा=किंराजा, कुत्सितःसखा=किंसखा।

५५५ **कृत्यतुल्याख्या अजात्या** (२-१-६८) कृत्य प्रत्ययान्त और तुल्य तथा तुल्य के समानार्थक सुवन्तों का जाति छोड़कर अन्य सुवन्तों के साथ कर्मधारय समास होता है। तुल्या आख्या=तुल्याख्या। सदृशः श्वेतः=सदृशश्वेतः। तुल्य महान्, अजाति कहने का भाव है कि जाति में न हो—रक्षणीयो मनुष्यः। भोज्य ओदनः।

५५६ **वर्णोवर्णेन** (२-१-६९) वर्णविशेषवाचक समानाधिकरण सुवन्त के साथ विशेष वर्णवाचक सुवन्त का समास हो। यथा—कृष्णः सारङ्गः=कृष्णसारङ्गः। इसी प्रकार लोहितसारङ्गः, लोहितसबलः।

५५७ **कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्** (५-४-१०५) कु और महत् से परे यदि ब्रह्मन् समस्त हो तो विकल्प से उससे टच् प्रत्यय हो जाय। कुत्सितः ब्रह्मा=कुब्रह्मा, कुब्रह्मः।

५५८ **पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्वष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः ।** (२-१-६५) पोटा, युवति, स्तोक, कतिपय, गृष्टि, धेनु, वशा, वेहद् वष्कयणी, प्रवक्तृ, श्रोत्रिय, अध्यापक तथा धूर्त सुबन्तों का जातिवाचक सुवन्तों के साथ तत्पुरुष समास होता है । अग्नि स्तोकः (थोड़ी अग्नि) कठाध्यापकः इभपोटा (हाथी का बच्चा), इभयुवतिः, कठप्रवक्ता कठ श्रोत्रियः गोवशा (वांझ गाय) ।†

(४) द्विगुः

५५९ **संख्यापूर्वोद्विगुः** (२-१-५६) यदि कर्मधारय समास में पहले संख्या हो तो उसे द्विगु कहते हैं ।

षण्णां मातृणां अपत्यं पुमान्=षाण्मातुरः ।

पञ्चगावः धनं यस्य=पञ्चगवधनः ।

५६० **द्विगुरेकवचनम्** (२-४-१) जब द्विगु समूह का द्योतक होता है तो वह एक वचन होता है । यथा—पञ्चपात्रम्, पञ्चगवम्, त्रिभुवनम् आदि ।

५६१ **स नपुंसकम्** (२-४-१७) समाहार अर्थ में द्विगु नपुंसक होता है ! त्रयाणां भुवनानां समाहारः=त्रिभुवनम् ।

टिप्पणी

५५५ † (अ) **पुंवतकर्मधारयजातीयदेशेषु** (६-३-४२) कर्मधारय में अथवा जातीय या देशीयर् प्रत्यय परे रहने पर ऊङ रहित स्त्रीलिङ्ग का पुंवद्भाव हो जाता है । यहाँ यद्यपि पुंवद्भाव अन्य सूत्र से प्राप्त था किन्तु पूरणी और प्रियादि में भी पुंवद्भाव करने के लिए सूत्र है । यथा महती नवमी इति महानवमी ।

५५५ (आ) **प्रशंसावचनैश्च** (२-१-६६) जातिवाचक सुबन्त प्रशंसावाचक सुबन्तों के साथ समस्त होते हैं । यथा—गोप्रकाण्डम्, अश्वप्रकाण्डम् ।

५५५ (उ) **युवाखलतिपलितवलिनजरतीभिः** (२-१-६७) खलति, पलित, वलिन और जरती सुबन्तों के साथ युवा का समास हो जाय । युवाखलतिः=युवखलतिः, इसी प्रकार युवजरती आदि ।

५५५ (ई) **मयूरव्यंसकादयः** (२-१-७२) मयूर व्यंसक आदि शब्दों का निपातन किया गया है । मयूरव्यंसकः छात्रव्यंसकः ।

(५) द्वन्द्व समास

५६२ **चार्थेद्वन्द्वः** (२-२-२९) च के अर्थ में स्थित अनेक सुबन्तों का जो समास होता है उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। च का प्रयोग चार अर्थों में किया जाता है—समुच्चय, अन्वाचय, इतरेतर योग और समाहार।

(i) **समुच्चय** जब अनेक पदार्थों का जो परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा न करते हों किसी अन्य पदार्थ से अन्वय होता है तो च का अर्थ समुच्चय होता है। **"ईश्वरं गुरुं च भजस्व"** इस वाक्य में ईश्वर और गुरु परस्पर निरपेक्ष हैं। वे एक दूसरे की अपेक्षा नहीं करते पर दोनों का भजस्व क्रिया से सम्बन्ध है। अतः यहाँ च का अर्थ समुच्चय हुआ।

(ii) **अन्वाचय** यदि समुच्चय अर्थ में आने वाले पदार्थों में किसी एक का अन्वय गौण रूप से हो तो च का अर्थ अन्वाचय होता है। **"भिक्षाम् अट गां चानय"**। वाक्य में मुख्य कार्य भिक्षा माँगना है तथा गौण कर्म गाय लाना है। भिक्षा के लिए घूमते हुए यदि गाय मिल जाय तो ले आना है। अतः यहाँ च का अर्थ अन्वाचय हुआ। समुच्चय और अन्वाचय अर्थों में पदों में परस्पर समस्त होने की सामर्थ्य नहीं होती। अतः समास नहीं होता। समास तभी सम्भव है जब दो पदार्थ एक दूसरे के सापेक्ष हों।

(iii) **इतरेतरयोग** जब दो या अधिक पद मिलकर किसी तीसरे से एक साथ अन्वित होते हैं तो च का अर्थ इतरेतर योग कहलाता है। यथा—**"धवखदिरौ छिन्धि"** यहाँ धव और खदिर दोनों परस्पर सापेक्ष हैं तथा एक ही क्रिया से अलग अलग अन्वित हैं। यहाँ च का अर्थ इतरेतर योग हुआ।

(iv) **समाहार** समाहार समूह को कहते हैं। इसमें किन्हीं पदों का समूह किसी तीसरे पद से अन्वित होता है, इतरेतर योग की भाँति अलग अलग नहीं, यहां च का अर्थ समाहार होता है। यथा—पाणिपादम्। च के अन्तिम दो अर्थो में ही समस्त होने की सामर्थ्य रहती हैं। द्वन्द्व समास में यह आवश्यक नहीं कि दो ही पद हों। वे दो से अधिक भी हो सकते हैं। इनमें प्रायः सभी पद प्रधान होते हैं। अतः द्वन्द्व समास में यह प्रश्न कम उठता है कि किसे पहले रखा जाय। पर कुछ विशेष परिस्थितियों में ऐसा होता है जिनके लिए अलग सूत्र हैं।

५६३ **राजदन्तादिषु परम्** (२-२-३१) राजदन्तादि समस्त पदों में पर का प्रयोग पहले हो। यथा — दन्तानां राजा=राजदन्तः। अर्जुनश्च विश्वक्सेनश्च= अर्जुनविश्वक्सेनौ वा० **धर्मादिष्वनियमः**—धर्म आदि में यह नियम नहीं लगता—यथा—धर्मश्च अर्थश्च=धर्मार्थौ, अर्थधर्मौ। जाया च पतिश्च= जायापती, दम्पती, जम्पती।

५६४ **द्वन्द्वे घि** (२-२-३२) द्वन्द्व समास में घि संज्ञक शब्दों का पूर्व प्रयोग हो। यथा—हरिश्च हरश्च=हरिहरौ।

५६५ **अजाद्यदन्तम्** (२-२-३३) ऐसे अजादि जो अदन्त हों उनका पहले प्रयोग होता है। ईशश्च कृष्णश्च=ईशकृष्णौ। आम्रश्च, निम्बश्च=आम्रनिम्बौ।

५६६ **अल्पाच्तरम्** (२-२-३४) द्वन्द्व समास में कम अच् वाले पद का पूर्व प्रयोग होता है। शिवश्च केशवश्च=शिवकेशवौ। गोविन्दश्च रामश्च= रामगोविन्दौ।

वा० लघ्वक्षरं पूर्वम्—लघु अक्षर वाले पद का द्वन्द्व में पहले प्रयोग होना चाहिए। कुशश्च काशश्च=कुशकाशम्, **वर्णानामानुपूर्व्येण**=वर्णों का क्रम से प्रयोग होना चाहिए=ब्राह्मणक्षत्रियौ। ब्राह्मण क्षत्रिय विटशूद्राः। **भ्रातुर्ज्यायसः**=बड़े भाई का पूर्व प्रयोग होना चाहिए। रामश्च लक्ष्मणश्च= राम लक्ष्मणौ। अर्जुनश्च युधिष्ठिरश्च=युधिष्ठिरार्जुनौ।

५६७ **द्वन्द्वश्चप्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्** (२-४-२) प्राणि, वाद्य और सेना के अंगों का समाहार द्वन्द्व समास होता है। यथा—पाणयोः पादयोः समाहारः= पाणिपादम्। मार्दङ्गिकश्च पाणविकश्च इत्यनयोः समाहारः=मार्दङ्गिक-पाणविकम्। रथिकश्च अश्वारोहश्च इत्यनयोः समाहारः=रथिकाश्वरोहम्।

५६८ **जातिरप्राणिनाम्** (२-४-६) प्राणी को छोड़कर अन्य जातिवाचक शब्दों का समाहार द्वन्द्व समास होता है।

धानाश्च शष्कुल्यश्च=धानशष्कुलि। प्राणिनाम्—विटशूद्राः।

५६९ **क्षुद्रजन्तवः** (२-४-८) क्षुद्र जन्तुओं का द्वन्द्व में समाहार हो। यथा—यूकाश्च लिक्षाश्च इत्यनयोः समाहारः=यूकालिक्षम्। मत्कुणश्च पिपीलिका च इत्यनयोः समाहारः=मत्कुणपिपीलकम्। नेवले तक जन्तु क्षुद्र जन्तु माने जाते हैं।

५७० **येषां च विरोधः शाश्वतिकः** (२-४-९) जिन प्राणियों का स्वाभाविक विरोध हो उनका समाहार द्वन्द्व समास होता है। यथा—अहिश्च नकुलश्च

इत्यनयोः समाहारः अहिनकुलम् । गौश्च व्याघ्रश्चः इत्यनयोः समाहारः= गोव्याघ्रम् ।

५७१ **शूद्राणामनिरवसितानाम्** (२-४-१०) अनिरवसित ऐसे शूद्र को कहते हैं जिनके खाने के पश्चात् माँजने पर भी पात्र शुद्ध नहीं माना जाता था। आज शूद्रता ही समाप्त हो गयी अतः इसके प्रयोग में वहुत बल नहीं रहा। अनिर्वसित शूद्रों का द्वन्द्व समास एकवचन हो। यथा— रजकतन्तुवायम्। यहाँ एक शंका यह होती है कि अनिर्वसित शूद्रों का ही क्यों कहा। चूँकि चण्डाल और मृतप अनिर्वसित नहीं है अतः उनका समास एक वचन नहीं होता। चण्डाल मृतपाः।†

५७२ **गवाश्वप्रभृतीनि च** (२-४ ११) कुछ शब्दों का द्वन्द्व समास होने पर निपातन होता है। निपातन का भाव है कि नियम से जैसा स्वरूप बनना चाहिए वैसा न बने वल्कि जो रूप बनना है उसे ही मान्यता दी जाय। यथा गावश्च अश्वाश्च=गवाश्वौ बनना चाहिए था पर उसका निपातन गवाश्वम् होता है। अतः यही रूप सदा बनता है। पुत्राश्चपौत्राश्च=पुत्रपौत्रम्। इसी प्रकार दासीदासम्, मांसशोणितम्, स्त्रीकुमारम्, दर्भशरम् आदि।

५७३ **विभाषावृक्षमृगतृणधान्य व्यंजन पशु शकुन्यश्च पूर्वपराधरोत्तराणाम्** (२-४-१२) वृक्ष, मृग, तृण, धान्य, व्यञ्जन, पशु, शकुनि, अश्व, वडव, पूर्व, अपर, अधर-उत्तर सुबन्तों का परस्पर द्वन्द्व समास विकल्प से एकवचन हो। यथा— लक्षन्यग्रोधम्, कुशकाशम, लक्षन्यग्रोधाः, कुशकाशाः, व्रीहियवम्, व्रीहियवाः, दधिघृतम्, दधिघृते, गोमहिषम्, गोमहिषाः, तित्तिर--कपिञ्जलम्, तित्तिरकपिञ्जलः, हंसचक्रवाकम्, हंसचक्रवाकाः, अश्ववडवम्, अश्ववडवौ, पूर्वापरम्, पूर्वापरे, अधरोत्तरम् अधरोत्तरे।

५७४ **विप्रतिषिद्धं चानधिकरणवाचि**(२-४-१३)विरुद्ध अर्थवाचक तथा अद्रव्यार्थक सुबन्तों का द्वन्द्व समास विकल्प से एकवचन हो। शीतोष्णम्, शीतोष्णौ, सुख-दुःखम्, सुखदुःखे, जीवितमरणम्, जीवितमरणे। यहाँ विरुद्ध अर्थ वाले इसलिए कहे गये हैं कि यह समान अर्थ वालों में न हो। यथा कामक्रोधौ, लोभ मोहौ।

---

† भाष्य में उल्लेख है "यैर्भुक्तं पात्रं क्षारोदकप्रक्षालनेन संस्कारेणापि न शुद्धयति ते निरवसिताः चण्डालादयः यैस्तु भुक्तं पात्रं संस्कारेण शुद्धयति ते अनिरवसिताः।

५७५ **दधिपयआदीनि** (२-४-१४) दधि, पय आदि शब्दों का द्वन्द्व समास एकवचन न हो। यथा—दधि सर्पिषी, ब्रह्मप्रजापती, शिववैश्रवणौ। †

५७६ **आनङ् ऋतो द्वन्द्वे** (६-३-२५) ऋकारान्त, विद्या और यौनि सम्बन्ध के वाचक पदों का द्वन्द्व समास होने पर अन्तिम से पूर्वपद के ऋकार के स्थान में आकार हो जाय। यथा—माता च पिता च=माता पितरौ, होता च पोता च उद्गाता च=होतृपोतोद्गातारः।

५७७ **देवताद्वन्द्वे च** (६-३-२६) देवता वाचक पदों के द्वन्द्व में वायु शब्द को छोड़कर किसी भी शब्द के आगे रहने पर पूर्व पद के अन्त में आकार अन्तादेश हो। मित्रश्च वरुणश्च=मित्रावरुणौ।

५७८ **दिवो द्यावा** (६-३-२९) द्वन्द्व समास में दिव् के स्थान में द्यावा आदेश हो जाय। द्यौश्च भूमिश्च=द्यावाभूमिः।

५७९ **दिवसश्च पृथिव्याम्** (६-३-३०) यदि पृथ्वी उत्तरपद हो तो द्वन्द्व समास में दिव् के स्थान में दिवस् आदेश हो। यथा—
द्यौश्च पृथिवी च=दिवस पृथिव्यौ, द्यावा पृथिव्यौ।

५८० **वृद्धो यूना** (१-२-६५) द्वन्द्व समास में युवा के साथ यदि गोत्र शब्द पूर्व में हो तो गोत्र ही शेष रह जाय। गार्ग्यश्च गार्ग्यायणश्च=गार्ग्यौ।

५८१ **स्त्रीपुंवच्च** (१-२-६६) युवा के साथ कही गयी वृद्धा स्त्री रहे और समास होने पर पुंवद्भाव हो जाय। गार्गी च गार्ग्यायणी च=गर्गाः।

५८२ **पुमान्स्त्रिया** (१-२-६७) स्त्रीलिंग और पुंल्लिग के प्रयोग होने पर पुंल्लिग शेष रहता है।

हंसी च हंसश्च=हंसौ, गोपी च गोपश्च=गोपौ।

नारी च नरश्च=नरौ,

---

५७५ अ † **अधिकरणैतावत्त्वे च** (२-४-१५) द्रव्य और संख्या के अर्थ में समाहार द्वन्द्व न हो। यहाँ अधिकरण का भाव है द्रव्य। अतः जहाँ किसी द्रव्य के परिमाण का ज्ञान हो वहाँ समाहार द्वन्द्व न हो। दशदन्ताश्च ओष्ठाश्च =दशदन्तोष्ठाः।

५८३ **भ्रातृपुत्रौ** (१-२-६८) स्वसा के साथ भ्रातृ का प्रयोग होने पर भ्रातृ शेष रहे तथा दुहितृ के साथ पुत्र के प्रयोग होने पर पुत्र शेष रहे।

भ्राता च स्वसा च=भ्रातरौ।

पुत्रश्च दुहिता च=पुत्रौ।

५८४ **पिता मात्रा** (१-२-७०) माता के साथ पिता के प्रयोग होने पर पिता पद विकल्प से शेष रहता है। माता च पिता च=पितरौ, मातापितरौ,

५८५ **श्वशुरःश्वश्रू वा** (१-२-७१) यदि श्वश्रू (सास) के साथ श्वशुर का प्रयोग हो तो विकल्प से श्वशुर शब्द शेष रह जाय।

श्वश्रूश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ, श्वश्रूश्वशरौ।

(६) बहुव्रीहिः

जब समास में आये हुए पद मिलकर किसी अन्य पद का बोध कराते हैं, या उसके विशेषण के रूप में कार्य करते हैं तो बहुव्रीहि समास होता है। बहुव्रीहि शब्द में यद्यपि बहु व्रीहि का विशेषण है पर ये दोनों मिलकर तीसरे के विशेषण बन जाते हैं। इसका अर्थ हैं जिसके पास बहुत चावल हों। पहले युग में यही सबसे बड़ा धन रहा होगा। यह भाषा की प्राचीनता सिद्ध करता है।

५८६ **अनेकमन्य पदार्थे** (२-२-२४) यह सूत्र "**शेषो बहुव्रीहिः**" के पश्चात् कहा गया है। इसका अर्थ है कि अन्य पद के अर्थ में वर्तमान अनेक प्रथमान्तों का समास होता है उसे बहुव्रीहिः कहते हैं। इससे यह ध्वनि निकलती है कि इस समास में सभी पदों में प्रथमा विभक्ति होनी चाहिए। पर कहीं कहीं इसका अपवाद भी होता है—जैसे "**कण्ठेकालः**"। एक ही पद कभी कभी विग्रह की दृष्टि से तत्पुरुष तथा बहुव्रीहि हो जाता है यथा—

(i) पीताम्बरम्=पीतम् अम्बरम्—कर्मधारय तत्पुरुष।

(ii) पीताम्बरम्=पीतम् अम्बरम् यस्य सः=श्री कृष्णः बहुव्रीहिः।

(iii) लोकनाथः=लोकस्य नाथः (राजा)=षष्ठीतत्पुरुष

(iv) लोकनाथः=लोकाः प्रजाः नाथाः पालकाः यस्य सः भिक्षुक आदि।

बहुव्रीहि समास के दोनों पदों में से किसी में भी प्रधानता नहीं रहती। दोनों ही मिलकर किसी अन्य का संकेत करते हैं।

यथा—दशकण्ठः=रावण।

यदि इसके दोनों पद प्रथमान्त न हों, बल्कि उनमें एक ही प्रथमान्त हो और दूसरा किसी अन्य विभक्ति में हो तो उसे व्यधिकरण बहुव्रीहि कहते हैं। यथा

(i) चन्द्रः शेखरे यस्यः—चन्द्रशेखरः।

(ii) चक्रं पाणौ यस्य सः—चक्रपाणिः।

५८६ अ **वार्तिक-प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः।**
प्रादिक से परे धातु से बनने वाले शब्द का अन्य प्रथमान्त के साथ समास होता है तथा उत्तरपद का विकल्प से लोप होता है।
प्रपतितानि पर्णानि यस्मात् सः—प्रपतितपर्णः वा प्रपर्णः।

५८६ (आ) **वा० नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः।** नञ् से परे अस्ति अर्थ के वाचक शब्द का प्रथमान्त के साथ बहुव्रीहि समास हो और उस अस्ति अर्थ वाले उत्तरपद का विकल्प से लोप हो।
अविद्यमान पुत्रः यस्य सः—अविद्यमान पुत्रः वा अपुत्रः।

५८६ (इ) **वा० अव्ययानां च** अव्ययवाचक शब्दों का भी प्रथमान्त के साथ बहुव्रीहि समास हो जाय। यथा—उच्चैः मुखं यस्य—उच्चैर्मुखः।

५८६ (ई) **वा० सप्तम्युपमानपूर्वपदस्योत्तरपदलोपश्च** सप्तम्यन्त अथवा उपमान पूर्वपद वाले अन्य प्रथमान्त के साथ समास हो जाय तथा उसके उत्तरपद का लोप हो—यथा—

(i) कण्ठे स्थः कालः यस्य—कण्ठेकालः।

(ii) देवस्य रूपं इव रूपं यस्य—देवरूपः।

५८७ **स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणेस्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (६-३-३४)** समानाधिकरण बहुव्रीहि में यदि पहला पद पुंल्लिग से बना हुआ स्त्रीलिंग हो और उसके बाद उत्तरपद रूप ऊकारान्त को छोड़कर अन्य ऐसा स्त्रीलिंग शब्द हो जिसमें पूरणी प्रियादि न हों तो प्रथम पद का स्त्रीलिंग रूप बदलकर पुंल्लिग रूप हो जाता है। यथा—

रूपवती भार्या यस्य—रूपवद्भार्यः।

यहाँ रूपवत् से रूपवती बना है। यहाँ भार्या शब्द दूसरा ऐसा स्त्रीलिंग पद है। इसके योग में रूपवती का पुंवद्भाव रूपवद् हो गया। भार्या से भार्यः उपसर्जन होने के कारण हो गया है।

५८८ **अपपूरणीप्रमाण्योः (५-४-११६)** यदि बहुव्रीहि समास में पूरणार्थ प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग शब्द या प्रमाणी शब्द हो तो समासान्त अप् प्रत्यय हो जाय।

कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणाम्=कल्याणीपञ्चमाः। यहाँ पञ्चमी पूरणार्थक है उससे अप् होकर पञ्चमाः बना है।

५८९ **नद्यृतश्च** (५-४-१५३) यदि नदी संज्ञक पद अथवा ह्रस्व ऋकारान्त पद के रूप में हों तो समासान्त कप् प्रत्यय जोड दिया जाता है है। यथा—
कल्याणी पञ्चमी यस्य सः=कल्याणपञ्चमीकः (पक्षः) ईश्वरः कर्ता यस्य सः=ईश्वर कर्तृकः। सुशीला माता यस्य सः=सुशीलमातृकः। रूपवती पत्नी यस्य सः=रूपवत् पत्नीकः। सुन्दरवधूः यस्य सः सुन्दरवधूक।

५९० **इनः स्त्रियाम्** (५-४-१५२) यदि समास के अन्त में इन् में अन्त होने वाले शब्द हों और यदि समस्त पद स्त्रीलिंग बनाना हो तो उसमें कप् प्रत्यय जोड़ दिया जाता है। कप् से क शेष रहता है।
बहवः दण्डिनः यस्यां सा बहुदण्डिका (नगरी पल्ली आदि।) पर यदि समस्त पुंल्लिग है तो विकल्प से जोड़ा जाता है। बहुदण्डिको ग्रामः, बहुदण्डीग्रामः।

५९१ **न कपि** (७-४-१४) कप् परे रहते अण् का ह्रस्व न हो। कल्याणपञ्चमीकः पक्षः, यह सूत्र "केऽणः" (७-४-१३) का बाधक है जो क परे रहते अण् का ह्रस्व करता है।

५९२ **तसिलादिष्वाकृत्वसुचः** (६-३-३५) तसिल्, त्र, तरप्, तमप्, चरट्, जातीय, कल्पप, देशीयर्, रूपप्, पाशप्, थाल्, तिल्, थ्यन्, कृत्व तथा सुजन्त तक प्रत्यय परे रहते स्त्रीलिंग का पुंवद्भाव हो जाय। बह्वीषु इति बहुत्र। बह्वीषु इस सप्तम्यन्त अर्थ में यहाँ त्रल् प्रत्यय हुआ तो पुंवद्भाव होने पर बह्वी का स्त्रीप्रत्यय हट गया। बहुतरः, बहुतमः, गुरुकल्पः, दर्शनीय-देशीयः।

५९३ **क्यङ्मानिनोश्च** (६-३-३६) क्यङ् और मानिन् प्रत्यय परे रहते भी स्त्रीलिंग शब्दों का पुंवद्भाव हो जाता है। एनी इव आचरति=एतायते। यहाँ एता शब्द से स्त्री प्रत्यय होकर एनी बना था, उससे क्यङ् प्रत्यय होने पर इसका पुंवद्भाव हो गया तो एत् मूल रह गया। इसी से एतायते बना। दर्शनीय मानिनी, दर्शनीयमानी।

५९४ **न कोपधायाः** (६-३-३७) जिसके उपधा में 'क' हो उसका पुंवद्भाव नहीं होता—रसिका भार्या यस्य=रसिका भार्यः।

५९५ **संज्ञा पूरण्योश्च** (६-३-३८) संज्ञावाचक तथा पूरणी शब्दों का भी पूंवद्भाव

नहीं होता । दत्ता भार्या यस्य=दत्ताभार्यः ।
पञ्चमी भार्या यस्य=पञ्चमीभार्यः ।

५९६ **वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्यारक्तविकारे** (६-३-३९) वृद्धि शब्द से जहाँ वृद्धि की जाय और वह वृद्धि रक्तविकार तद्धित को छोड़कर किसी अन्य तद्धित के कारण हुई हो तो उस तद्धितान्त स्त्रीलिंग शब्द का बहुव्रीहि में पुंवदभाव न हो । मगधे भवा मागधी । मागधी भार्या यस्य सः मागधीभार्यः ।

५९७ **स्वाङ्गाच्चेतः** (६-३-४०) अपने अङ्ग के वाचक शब्द से बना हुआ ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द पुंवद् न हो । सुकेशीभार्या यस्य=सुकेशीभार्यः ।

५९८ †**जातेश्च** (६-३-४१) स्त्री प्रत्ययान्त जातिवाचक शब्द का पुंवद्भाव न हो । शूद्राभार्या यस्य=शूद्राभार्यः । ब्राह्मणीभार्या यस्य=ब्राह्मणीभार्यः ।

५९९ **दिङ्नामान्यन्तराले** (२-२-२६) अन्तराल अर्थ में दिशावाचक शब्दों का बहुव्रीहि समास सुबन्त के साथ होना है । ऐसा समस्त पद दोनों के बीच की दिशा का बोधक होता है ।
दक्षिणास्याः पूर्वस्याश्च दिशोऽन्तरालं+दक्षिणपूर्वा, इसी प्रकार उत्तर पूर्वा ।

६०० **तत्रतेनेदमिति सरूपे** (२-२-२७) सप्तम्यन्त तथा तृतीयान्त से जब **"मारने के लिए युद्ध आरम्भ होता है"** इस अर्थ में समान रूप वाले शब्दों का बहुव्रीहि समास होता है । यथा—केशेषु केशेषु आकृष्य इदं युद्धं प्रवृत्तं=केशाकेशि ।
दण्डैः दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तं=दण्डादण्डि ।

६०१ **इच् कर्मव्यतिहारे** (५-४-१२७) बहुव्रीहि समास में कर्म के विपर्यय अर्थ में समासान्त इच् प्रत्यय होता है । केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं= केशाकेशि ।

६०१ अ **बहुव्रीहौसंखयेयेडज बहुगणात्** (५-४-७३) संख्येय अर्थ में बहुव्रीहि समास होने पर समस्त पद से डच् प्रत्यय हो जाता है । यदि अन्त में बहु अथवा गण् शब्द हो तो डच् नहीं होता । डच् से केवल अ शेष रहता है । दशानां

टिप्पणीः—

५९८ अ † **संख्ययाव्ययासन्नादूराधिक संख्याः संख्येये** (२-२-२५) जिसके द्वारा गणना की जाय ऐसे संख्या वाचक शब्द के साथ अव्यय आसन्न, अदूर, अधिक तथा संख्या पदों का बहुव्रीहि समास हो । यथा— दशानां समीपे ये सन्ति=उपदशाः (ब्राह्मणाः) ।

समीपे ये सन्ति ते उपदशाः । यहाँ दशन् शब्द था । उससे डच् होने पर दश बनता है अतः सु आदि आने पर उपदशः, उपदशाः बनते हैं । इसके विपरीत उपवहवः में नहीं हुआ । इसी प्रकार उपगणाः में भी नहीं होता ।

६०१ आ **बहुव्रीहौसक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्** (५-४-११३) बहुव्रीहि समास में निम्नलिखित स्थानों पर समासान्त 'अ' प्रत्यय लगता है तथा उससे पूर्व **"टि"** का लोप हो जाता है । षच् से केवल अ रह जाता है ।

(i) सक्थि और अक्षि जब शरीर के अंग वाचक हों । यथा—
जलजवत् अक्षिणी यस्य स=जलजाक्षः । कमल के समान नेत्र वाला—
कमले इव अक्षिणी यस्याः सा=कमलाक्षी । इसके विपरीत जहाँ शरीर के अवयव न हों तो षच् न होगा । यथा—
स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः । दीर्घसक्थिशकटम् ।

६०१ इ **अंगुलेर्दारुणि** (५-४-११४) यदि अंगुलि शब्दान्त बहुव्रीहि दारु का विशेषण हो तो भी समासान्त अ हो ।

६०१ ई **द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः**(५-४-११५) **अन्तर्बहिर्भ्यांश्च च लोम्नः** (५-४-११७) यदि द्वि या त्रि शब्द पहले हो तो मूर्धन् से और अन्तर् या बहिः शब्द पहले हो तो लोमन् से तथा नक्षत्र अर्थ में नेष्ट शब्द से "अ" होगा । यथा—
द्वौ मूर्धानौ यस्य सः=द्विमूर्धः । त्रयः मूर्धानः यस्य सः=त्रिमूर्धः ।

पर दश के साथ न होगा=दशमूर्धा, अन्तर्लोमः ।

६०२ **अन्येषामपि दृश्यते** (६-३-१३७) यह बात (सूत्र ६०० की प्रवृत्ति) अन्यत्र भी देखी जाती है । यहाँ दीर्घत्व की अनुवृत्ति है ।

मुष्टिभिः मुष्टिभिः सह युद्धं प्रवृत्तं=मुष्टीमुष्टि ।

६०३ **ओर्गुणः** (६-४-१४६) उवर्णान्त भ संज्ञक अङ्ग का तद्धित परे रहने पर गुण होता है । बाहुभ्यां बाहुभ्यां गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्=बाहूबाहु=(इच् करने पर) बाहूबाहवि ।

६०४ **तेन सहेतितुल्ययोगे** (२-२-२८) सह का तृतीयान्त के साथ बहुव्रीहि समास होता है यदि किसी कार्य में समान रूप से भाग ले रहे हों । इसमें सह के स्थान पर विकल्प से स भी हो जाता है जैसा कि अगले सूत्र में

बताया गया है । पुत्रेण सह=सपुत्रः (पुरुषः) सीतया सह=सहसीतः=ससीतः (रामः) ।

६०५ **वोपसर्जनस्य** (६-३-८३) बहुव्रीहि के अवयव सह के स्थान पर "**स**" आदेश हो ।

६०६ **प्रकृत्याशिषि** (६-३-८३) आशिष् अर्थ में बहुव्रीहि समास में सह के स्थान पर सह ही रहे । स्वस्ति राज्ञे सह पुत्राय ।

६०७ **ऊर्ध्वाद् विभाषा** (५-४-१३०) ऊर्ध्वपूर्वक जानु शब्द के स्थान पर विकल्प से ज्ञु आदेश हो । ऊर्ध्वेजानुनी यस्य स=ऊर्ध्वज्ञुः अथवा ऊर्ध्वजानुः ।

६०८ **धनुषश्च** (५-४-१३२) बहुव्रीहि में धनुषन्त शब्द के स्थान पर अनङ् आदेश होता है । सारङ्गं धनुः यस्य स=सारङ्गधन्वन्=सारङ्गधन्वा ।

६०९ **वा संज्ञायाम्** (५-४-१३३) संज्ञा अर्थ में धनुषन्त शब्द के स्थान में विकल्प से अनङ् आदेश होता है । शतंधनुःसंज्ञा यस्य स=शतधन्वन्=शतधन्वा । अन्यथा शतधनुः ।

६१० **उपसर्गाच्च** (६-४-११९) प्रादि उपसर्ग से परे नासिका शब्दान्त बहुव्रीहि पद से अच् प्रत्यय हो और नासिका के स्थान पर नस् हो जाय ।
उन्नता नासिका यस्य=उन्नसः ।

६११ **नञ्दुःसुभ्योहलिसक्थ्योरन्यतरस्याम्** (५-४-१२१) नञ्, दुः और सु से परे बहुव्रीहि समास होने पर हलि और सक्थि से अच् प्रत्यय विकल्प से हो जाय । अविद्यमानः हलि यस्य=अहलः । अहलिः । इसी प्रकार अविद्यमानं सक्थि यस्य स असक्थः, असक्थिः । †

टिप्पणी :—

६११ अ † **पूर्वपदात् संज्ञायामगः** (८-४-३) पूर्व पद में रहने वाले र और ष से परे न का ण हो जाय यदि वह पद संज्ञावाचक हो किन्तु ग के व्यवधान होने पर न हो । यथा—द्रुः इव नासिका यस्य स=द्रुणासः, स्वरणासः ।

६११आ **नित्यमसिच् प्रजामेधयोः** (५-४-१२२) नञ्, दुः और सु से परे प्रजा अथवा मेधा शब्दान्त बहुव्रीहि से असिच् समासान्त हो जाय । असिच् से केवल अस् रह जाता है । अविद्यमाना प्रजा यस्य स अप्रजाः । अविद्यमाना मेधा यस्य=अमेधाः ।

६११ इ **धर्मादनिच् केवलात्** (५-४-१२४) जहां एक ही पद पूर्व में हो ऐसे धर्मान्त बहुव्रीहि समास में अनिच् प्रत्यय होता है । अनिच् से अन् शेष रह जाता है । यथा—कल्याणः धर्मः यस्य=कल्याणधर्मन्=कल्याणधर्मा ।

६१२ **गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः** (५-४-१३५) बहुव्रीहि समास में उत्, पूत, सु और सुरभि शब्द पूर्वक गन्ध शब्द इकारान्त हो जाता है। यथा—
उत्कृष्टं गन्धो यस्य सः उद्गन्धिः। इसी प्रकार पूतगन्धिः सुरभिगन्धिः।

६१३ **पादस्यलोपोऽहस्त्यादिभ्यः** (५-४-१३८) बहुव्रीहि में हस्ति आदि को छोड़ कर उपमान से परे पाद शब्द का लोप समासान्त हो। यहाँ अलोऽन्त्यस्य के के आधार पर अन्त्य अकार का लोप होता है। पाद अकारान्त है। अ लोप होने पर दकारान्त रह जाता है। व्याघ्र इव पादौ यस्य=व्याघ्रपात्। यहाँ हस्ति आदि छोड़कर इसलिए कहा कि इसके रहने पर अ का लोप नहीं होता। यथा—हस्तिपादः, कुसूलपादः।

६१४ **कुम्भपदीषु च** (५-४-१३९) कुम्भपदी आदि में पाद का लोप तथा ङीष् का स्त्रीलिंग में निपातन होता है। कुम्भपदी। स्त्रीलिंग न होने पर कुम्भ-पादः ही रहेगा। †

६१५ **वयसि दन्तस्य दतृ** (५-४-१४१) अवस्था वाचक होने पर संख्या और सु पूर्वक दन्त शब्द के स्थान में दतृ आदेश हो जाय।
द्वौ दन्तौ यस्य=द्विदन्, चतुर्दन्।

६१६ **सुहृद् दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः** (५-४-१५०) सु और दुर् से परे हृदय शब्द का क्रम से हृद् निपातन हो जाय यदि उनका अर्थ क्रम से मित्र और शत्रु हो। शोभनं हृदयं यस्य=सुहृद्। अशोभनं हृदयं यस्य=दुर्हृद्।

६१७ **उरः प्रभृतिभ्यः कप्** (५-४-१५१) बहुव्रीहि में उरस समासान्त से कप् प्रत्यय हो। कप् से क शेष रहता है।
व्यूढम् उरो यस्य=व्यूढोरस्कः (विशाल वक्षस्थल वाला)
प्रियं सर्पिः यस्य=प्रियसर्पिष्कः (जिसे घी प्रिय हो)

६१८ **शेषाद् विभाषा** (८-४-१५४) ऐसे बहुव्रीहि से जो समासान्त नही कहा गया कप् प्रत्यय विकल्प से होता है। शेष से यहाँ अभिप्राय है कि जहाँ किसी समासान्त प्रत्यय का विधान न किया गया हो। महत् यशो यस्य=

---

६१४ अ † **संख्यासुपूर्वस्य** (५-४-१४०) यदि पाद शब्द के पूर्व संख्या या सु हो तो भी समासान्त 'अ' का लोप हो जाय। शोभनौ पादौ यस्य=सुपात्।

६१५ (अ) † **स्त्रियां संज्ञायाम्** (५-४-१४२) स्त्रीलिंग तथा संज्ञा में दन्त का दतृ आदेश हो जाता है। यथा—अयः दन्ताः यस्याः साः अयोदती।

महायशाः । इसमें "आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः" से महत् को आकार अन्तादेश हो गया है । जब कप् प्रत्यय पक्ष में होगा तो महायशस्कः रूप बनेगा ।

६१९ **आपोऽन्यतरस्याम्** (७-४-१५) कप् परे रहने पर आबन्त के स्थान में विकल्प से ह्रस्व होता है । बह्व्यः मालाः यस्य सः =बहुमालकः पक्ष में बहुमालाकः ।

६२० **न संज्ञायाम्** (५-४-१५५) बहुव्रीहि समास में संज्ञा के साथ कप् प्रत्यय नहीं होता । विश्वं यशो यस्य स विश्वयशाः ।

६२१ **ईयसश्च** (५-४-१५६) ईयसन्त बहुव्रीहि समास में कप् प्रत्यय न हो । बहवः श्रेयांसो यस्य=बहुश्रेयान् ।

६२२ **वन्दितेभ्रातुः** (५-४-१५७) प्रशंसा अर्थ में भ्रातृशब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो । शोभनो भ्राता अस्य=सुभ्राता । वन्दित क्यों कहा—? मूर्खभ्रातृकः, दुष्टभ्रातृकः ।

६२३ **नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे** (५-४-१५९) स्वाङ्गवाचक नाडी और तन्त्री शब्दान्त बहुव्रीहि से समासान्त कप् प्रत्यय न हो ।
बहवो नाड्यो अस्य=बहुनाडिःकायः, बहुतंत्री ग्रीवा । स्वाङ्ग क्यों कहा ? बहुतान्त्रिकस्तम्भः । बहुतन्त्रीका वीणा ।

६२४ **सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ** (२-२-३५) सप्तम्यन्त और विशेषण का बहुव्रीहि में पहले प्रयोग हो । जहां सभी प्रथमान्त होते हैं तो यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि किसे पहले रखा जाय । ऐसी दशा में पहले विशेषण रखा जाय । सप्तम्यन्त कहने से यहाँ यह भी सिद्ध होता है कि भिन्न विभक्ति वाले पदों का भी बहुव्रीहि होता है । यथा—कण्ठेकालः, पद्मनाभः आदि ।

६२५ **निष्ठा** (२-२-३६) जिस पद के अन्त में निष्ठा हो उसका बहुव्रीहि में पहले प्रयोग किया जाता है । यथा—
युक्तो योगो येन यस्य वा=युक्तयोगः ।

६२५ अ **वाऽऽहिताग्न्यादिषु** (२-२-३७) आहिताग्नि में क्त प्रत्ययान्त का पूर्व प्रयोग विकल्प से होता है । आहितः अग्निः येन सः=अहिताग्निः । अग्न्याहितः ।

अध्याय २१

सर्वसमासान्त प्रकरण

६२६ **ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे** (५-४-७४) यदि धुरी अर्थ न हो तो ऋक्, पुर, अप, धुर, और पथिन् अन्त वाले समस्त पदों से अकार हो जाय। अविद्यमाना ऋक् यस्मिन् स अनृचः (ब्राह्मणः), इसी प्रकार ब्राह्मण पुरम्, नान्दीपुरम्, अन्तरीपम्, महापुरा, जलपथः। धुरी अर्थ होने पर अक्षस्य धूः= अक्षधूः।

६२७ **द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽपईत्** (६-३-९७) द्वि, अन्तर तथा उपसर्गों से परे अप् शब्द के आदि अक्षर के स्थान में ईत् आदेश होता है।
द्वयोः पार्श्वयोरापो यस्मिन् नगरे तद्द्वीपम्। अन्तर्मध्ये आपो यस्मिन् ग्रामे सोऽन्तरीपः।

६२८ **उदनोर्देशे** (६-३-९८) देश अर्थ में अनु उपसर्ग से परे अप् शब्द के अकार के स्थान में ऊकार आदेश हो जाय। अनूपो देशः।

६२९ **अच् प्रत्यन्वव पूर्वात् सामलोम्नः** (५-४-७५) यदि प्रति, अनु, अव पूर्वक सामन् और लोमन् प्रातिपदिक हों तो उनसे समासान्त अच् प्रत्यय हो।
प्रतिसामम्, अनुसामम्, प्रतिलोमम्, अनुलोमम्, अवलोमम्।

६३० **अक्ष्णोऽदर्शनात्** (५-४-७६) यदि देखना अर्थ न हो तो अक्षि शब्दान्त समस्त पद से अच् प्रत्यय हो। पुष्कराक्षम्। उदुम्बराक्षः। देखना अर्थ में ब्राह्मणाक्षि वनता है।

६३१ **अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुह—ऋक्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुव दारगवार्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तन्दिवरात्रिन्दिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः।**
(५-४-७७) अचतुर आदि २५ शब्द निपातन से सिद्ध होते हैं। निपातन के द्वारा ये सभी अजन्त हो जाते हैं। इनमें से १५ बहुव्रीहि आदि समासों में अच् प्रत्ययान्त निपातन किये जाते हैं। इनमें से सूत्र में पहले तीन अचतुर, विचतुर और सुचतुर बहुव्रीहि हैं। इनके अनन्तर ११ द्वन्द्व समास के है।एक अव्ययीभाव समास है। शेष १० तत्पुरुष समास में आते हैं। यथा—अविद्यमानानि चत्वारि यस्य स अचतुरः। विगतानि चत्वारि यस्य स विचतुरः शोभनानि

चत्वारि यस्य सुचतुरः। ऋक् च साम च=ऋक्सामे (न ऋक्सामनी), वाक् च मनश्च=वाङ्मनसे,(न वाङ्मनसी), स्त्रीच पुमान् च=स्त्रीपुंसौ,(स्त्रीपुमांसौन-भवति) धेनुश्च अनड्वांश्च=धेन्वनडुहौ, (धेन्वनड्वाहौ इति न भवति)।
अक्षि च भ्रूश्च=अक्षिभ्रुवम्(अक्षिभ्रु इति न), दाराश्च गावश्च=दारगवम् (समाहार द्वन्द्व से दारगु नहीं होता) इतरेतर योग से दारगावः बनता। उरू च अष्ठीवन्तौ=उर्वष्ठीवम्। यहाँ निपातन से टि का लोप हो गया है। पादौ च अष्ठीवन्तौ च=पदष्ठीवम्, रात्रौ च दिवा च=रात्रिदिवम्। अहनि च दिवा च=अहर्दिवम्। (अहन्यहनि इत्यर्थः) सरजसम् साकल्य में होता है। यह अव्ययीभाव है। बहुव्रीहि में सरज बनता है।

निश्चितं श्रेयो=निःश्रेयसम् (तत्पुरुष), पुरुषस्य आयुः=पुरुषायुषम्, द्विगु में—द्वे आयुषी समाहृते द्वयायुषम्, त्र्याणाम् आयुषां समाहारः त्र्यायुषम्, इससे आगे द्वन्द्व हैं—ऋचश्च यजूंषि च एषां समाहारः ऋग्यजुषम्। जातश्च असावुक्षा च=जातोक्षः, महान् चासावुक्षा च=महोक्षः, वृद्धश्चासावुक्षा च =वृद्धोक्षः। एक अव्ययीभाव है—शुनः समीपम्=उपशुनम्। गोष्ठे अश्वाः= गोष्ठश्वः, (तत्पुरुष)।

६३२ **अवसमन्धेभ्यस्तमसः** (५-४-७९) अव, सम् और अन्ध शब्दों से परे तमस् आने पर उससे समासान्त अच् प्रत्यय होता है। अवगतं तमः=अवतमसम्, अन्धतमो इति अन्धतमसम्। अवहीनं तम इति=अवतमसम्, सन्ततं तमः इति सन्तमसम्।

६३३ **उपसर्गादध्वनः** (५-४-८५) उपसर्ग से परे अध्वन शब्द का समास होने पर अच् प्रत्यय हो। प्रगतो अध्वानम्=प्राध्वो (रथः) इसी प्रकार प्राध्व शकटम्। यदि उपसर्ग पूर्व में न होगा तो अच् न होगा परमं अध्वानम्= परमाध्वा, इसी प्रकार उत्तमाध्वा।

६३४ **न पूजनात्** (५-४-६९) पूजन वाचक शब्द से परे समासान्त प्रत्यय नहीं होता। यथा—शोभनः राजाः सुराजा।
अतिशयः राजा=अतिराजा, इसी प्रकार सुसखा। (यहाँ राजाहः सखिभ्यः से टच् हो जाता पर इस सूत्र ने रोक दिया)।

६३५ **किमःक्षेपे** (५-४-७०) निन्दा अर्थ में किम् शब्द के समास से भी समासान्त प्रत्यय न हो। कुत्सितः राजा इति किं राजा। यहां समास तो **"किमःक्षेपे"**

से होता है, पर राजाहः सखिभ्यः से जो टच् प्राप्त था। उसका इस सूत्र से निषेध हो गया।

६३६ **नञस्तत्पुरुषात्** (५-४-७१) यदि नञ् से परे तत्पुरुष समास में राजा आदि शब्द आवें तो समासान्त प्रत्यय न हो। न असौ सखा=असखा, नासौ राजा=अराजा, यहां तत्पुरुष समास इसलिए कहा है कि अन्य में न हो—न ऋचः यस्य माणावकस्य=अनृचो माणावकः।

न धुरं यस्य शकटस्य=अधुरं शकटम्।

६३७ **पथोविभाषा** (५-४-७२) तत्पुरुष समास में यदि नञ् से परे पथिन् शब्द हो तो समासान्त प्रत्यय विकल्प से हो। अपथम्—अपन्थाः

अलुक् प्रक्रिया

अलुक् से अभिप्राय है जहाँ समास होने पर भी विभक्ति का लोप न हो।

६३८ **ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः** (६-३-३) तत्पुरुष समास होने पर ओजस्, सहस्, अम्भस्, तमस् शब्दों से परे तृतीया विभक्ति का लोप न हो। ओजसा कृतम्=ओजसाकृतम्, इसी प्रकार सहसा कृतम्, अम्भसा मिश्रितम्, तमसावृतम्।

६३९ **वैयाकरणाख्यायां चतुर्थ्याः** (६-३-७) आत्मन् शब्द से परे चतुर्थी विभक्ति का लोप नहीं होता यदि कोई व्याकरण सम्बन्धी कथन करना हो।

आत्मनेपदम्=आत्मनेपदम्।

६४० **परस्य च** (६-३-८) पर शब्द से परे भी चतुर्थी विभक्ति का लोप नहीं होता यदि व्याकरण सम्बन्धी कथन करना हो। परस्मैपदम्।

६४१ **हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्** (६-३-९) हलन्त और अदन्त से परे सप्तमी विभक्ति का लोप न हो यदि किसी संज्ञा का बोध होता हो। त्वचिसारः (वैल), वनेहरिद्रिका, वने किंशुकाः, अरण्येमाषकाः, युधिष्ठिरः।

६४२ **तत्पुरुषे कृति बहुलम्** (६-३-१४) तत्पुरुष समास में यदि कृदन्त उत्तरपद हो तो सप्तमी का विकल्प से लोप हो। कर्णेजपः, कुरुचरः, कर्णजपः, कुरुपुचरः, मद्रेचरः, मद्रचरः।

६४३ **शयवासवासिष्वकालात्** (३-३-१८) कालवाचक को छोड़कर यदि शय, वास, वासि उत्तरपद हो तो विकल्प से सप्तमी का लोप हो। ग्रामेवासः, ग्रामवासः, पूर्वाह्णेशयः, पूर्वाह्णशयः, भूमौशयः, भूमिशयः।

६४४ **षष्ठ्या आक्रोशे** (६-३-२१) आक्रोशे भी निन्दा का पर्याय है अतः निन्दा अर्थ में यदि उत्तरपद परे हो तो षष्ठी का लोप न हो। चौरस्यकुलम्= चौरस्यकुलम्, यदि निन्दा वाचक न हो तो षष्ठी का लोप हो जाय— ब्राह्मणस्यकुलम्=ब्राह्मणकुलम्।

६४५ **पुत्रेऽन्यतरस्याम्** (६-३-२२) यदि पुत्र उत्तरपद परे हो तो भी आक्रोश अर्थ में विकल्प से षष्ठी का लोप हो।

दास्याः पुत्रः=दासीपुत्रः, आक्रोशे किम्=ब्राह्मणपुत्रः।

६४६ **घरूपकल्पचेलड्ब्रुवगोत्रमतहतेषुङ्योऽनेकाचोह्रस्वः** (६-३-४२) भाषित पुंस्क शब्द से परे ङ्यन्त अनेकाच् शब्द का ह्रस्व हो यदि तरप्, तमप् (घ), कल्पप प्रत्यय परे हों अथवा चेलड् आदि उत्तरपद हो। ब्राह्मणिचेली, ब्राह्मणिगोत्रा, ब्राह्मणिकल्पा, ब्राह्मणितरा।

६४७ **हृदयस्य हृल्लेखयदण्लासेषु** (६-३-५०) हृदय का हृत् आदेश हो जाय यदि लेख, अण् प्रत्यय, यत् प्रत्यय अथवा लास् परे हो। हृदयं लिखतीति हृल्लेखः। हृदयस्य प्रियं=हृदयम्। हृदयस्य इदम्=हार्दम्।

६४८ **वा शोकष्यञ्रोगेषु** (६-३-५१) शोक, ष्यञ् और रोग परे रहते हृदय का हृद् आदेश विकल्प से हो। हृदयस्य शोकः=हृच्शोकः हृदयशोकः। सुहृदयस्य प्रियम्=सौहार्दयम्, सौहृदयम्।

६४९ **पादस्यपदाज्यातिगोपहृतेषु** (६-३-५२) पाद शब्द का पद् आदेश हो यदि आजि, आति, ग, उपहृत उत्तरपद हों।

पदाभ्याम् अजति=पदाजिः, पदातिः, पदगः, पदोपहृतः।

६५० **वाघोषमिश्रशब्देषु** (६-३-५६) पाद का पद आदेश विकल्प से हो यदि उसके परे घोष, मिश्र या शब्द पद हो। पादस्यघोषः=पद्घोषः, पादघोषः, पादस्य मिश्रः=पादमिश्रः, पद्शब्दः, पच्छब्दः।

६५१ **उदकस्योदः संज्ञायाम्** (६-३-५७) उदक शब्द का उद आदेश हो यदि उससे कोई उत्तरपद आकर संज्ञा का वाचक हो। उदकस्य मेघः=उद्मेघः।

६५२ **रात्रेः कृति विभाषा** (६-३-७२) कृदन्त से परे रात्रि शब्द से नुम् का आगम विकल्प से हो।

रात्रौ चरति इति रात्रिंचरः, रात्रिचरः।

अध्याय २२

लिङ्ग विवेचन

संस्कृत में तीन लिंग होते हैं। संस्कृत शब्दों का लिंग निर्धारण अर्थ के आधार पर नहीं बल्कि उनके स्वरूप के आधार पर होता है। एक ही अर्थ वाला शब्द अलग अलग लिंगों में होता है। यथा—

शरीर	शरीरम् (नपुं.), कायः (पुं०), तनुः (स्त्री०)
स्त्री	कलत्रम् (नपुं.), दाराः (पुं०), भार्या (स्त्रीलिंग)

अतः संस्कृत में लिंग का ज्ञान व्याकरण या कोष से ही सम्भव है।

(१) घञ्, अप्, घ, अच्, नङ् तथा कि प्रत्ययान्त शब्द प्रायः पुंल्लिग होते हैं।

(i)	घञ् अन्त वाले	पाकः, हासः, त्यागः, भावः, रागः, रामः, आदि
(ii)	अप् अन्त वाले	गरः, करः,
(iii)	अच् ,, ,,	चयः, जयः,
(iv)	नङ् ,, ,,	यज्ञः, यत्नः, विघ्नः, प्रश्नः,
(v)	कि ,, ,,	जलधिः, आधिः, व्याधिः, उपाधिः विधिः, समाधिः, आदि

(२) न् तथा उ में अन्त होने वाले प्रायः पुंल्लिग होते हैं।

राजन्, करिन्, तक्षन् प्रभुः, इक्षुः,

(३) ऐसे अकारान्त शब्द जिनकी उपधा में क्, ट्, ण्, प्, भ्, म्, य्, र् तथा ष् में से कोई अक्षर हो। यथा—

स्तवकः, घटः, पटः, गणः, पाषाणः, प्रस्तरः, रथः, यूपः, दीपः, दीपकः, क्षुरः, अंकुरः, वत्सः, वृषः, वृक्षः, सुरः, असुरः, दैत्यः, समुद्रः, शरः, स्वर्गः, पुंल्लिग हैं पर इनके अपवाद हैं—चिबुकम्, अंशुकम्, किरीटम्, मुकुटम्, ललाटम्, ऋणम्, लवणम्, पर्णम्, पुष्पम् , पापम्, रूपम्, हृदयम्, इन्द्रियम्, द्वारम्, वक्त्रम्, शरीरम्, उदरम्, अजिरम्, वैरम्, मित्रम्, तन्त्रम्, गोत्रम्, शस्त्रम्, शास्त्रम्, , नेत्रम्चित्रम् कुटीरम् आदि जो सभी नपंसक लिंग हैं।

स्त्रीलिंग

स्त्रीलिंग शब्द दो तरह के होते हैं—मूलतः स्त्रीलिंग शब्द; तथा प्रत्यय के योग से बने हुए स्त्रीलिंग शब्द। मूल शब्दों में लता, माला, मति, कृति, धेनु, लक्ष्मी, मातृ, शरद् आदि हैं। प्रत्ययों के योग से बने शब्दों में मूल शब्द स्त्रीलिंग नहीं होता पर प्रत्यय के जोड़ने से ही वे स्त्रीलिंग बनते हैं। स्त्री प्रत्यय उन प्रत्ययों को कहते हैं जिनके जुड़ने से पुंल्लिग शब्द स्त्रीलिंग बन जाते हैं। ये प्रत्यय केवल आठ हैं—

(i) टाप्, डाप्, और चाप् जिनसे केवल आ शेष रहता है।

(ii) ङीप्, ङीष्, और ङीन् जिनसे केवल ई शेष रहती है।

(iii) ऊङ् जिससे ऊ रह जाता है।

(iv) क्तिन् जिससे ति शेष रहता है।

६५३ **अजाद्यतष्टाप्** (४-१-४) टाप् प्रत्यय का ट् और प् गिर जाता हैं, केवल आ शेष रहता है। यह अजा आदि शब्दों में तथा अकारान्त शब्दों में जोड़ा जाता है। अजा आदि में अजा, एडका, कोकिला, चटका, अश्वा, मूषिका, बाला, वत्सा, मन्दा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा प्रमुख हैं।

अज+टाप्=अजा, एडक+टाप्=एडका।

बाल+टाप्=बाला, गंग+टाप्=गंगा।

इसी प्रकार दक्षा, चपला, निपुणा, चतुरा, उत्तरा, पश्चिमा, पूर्वा। टाप् जोड़ने से पहले यदि शब्द के अन्त में क हो तथा उससे पूर्व अ हो तो अ के स्थान में इ हो जाती है। पर यह तभी सम्भव है जब क किसी प्रत्यय का हो और टाप् लगने से पहले सुप् प्रत्यय न आया हो। यथा—मूषक+टाप्=मूषिका, कारक+टाप्=कारिका, मानक+टाप्=मानिका।
क जब प्रत्यय का न हो क्यों कहा—शंक+टाप्=शंका।

६५४ **डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्** (४-१-१३) बहुव्रीहि समास होने पर मन्नन्त और अन्नन्त शब्दों से परे विकल्प से डाप् प्रत्यय होता है।

बहुयज्वन्+डाप्=बहुयज्वा।
दामन्+डाप्=दामा।

६५५ **यङश्चाप्** (४-१-७४) जातिवाचक यङ् प्रत्ययान्त शब्दों से परे चाप् होता है। यथा—करीषगन्ध्या।

६५६ **उगितश्च** (४-१-६) जिस शब्द के अन्त में उगित प्रत्यय हो उसे स्त्रीलिंग बनाने के लिए ङीप् प्रत्यय जोड़ा जाता है—

भवत्+ङीप्=भवती (यहाँ शप् श्यनोर्नित्यम् से नुम्) आया है।

तुदत्+ङीप्=तुदन्ती,

६५७ **द्विगोः** (४-१-२१) अकारान्त द्विगु से ङीप् होता है।

त्रिलोक+ङीप्=त्रिलोकी।

पञ्चवट+ङीप्=पञ्चवटी।

किन्तु त्रिफला, त्र्यनीका आदि से अजा आदि में पाठ होने के कारण टाप् प्रत्यय ही होता है।

६५८ **वर्णादनुदात्तात् तोपधात् तोनः** (४-१-३९) किसी रंग का वाचक अनुदात्त तथा तकार उपधावाला शब्द जिस प्रातिपदिक के अन्त में हो उससे विकल्प से ङीप् प्रत्यय हो। साथ ही ङीप् होने पर तकार के स्थान में नकार आदेश हो।

रोहित+टाप्=रोहिता रोहित+ङीप्=रोहिणी। एत+ङीप्=एनी, एत+टाप्=एता।

६५९ **वोतो गुणवचनात्** (४-१-४४) उदन्त गुणवाचक शब्द से विकल्प से ङीप् प्रत्यय हो।

मृदु+ङीप्=मृद्वी, मृदुः, इसी प्रकार लघु से लघ्वी, पटु से पट्वी आदि।

६६० **बह्वादिभ्यश्च** (४-१-४५) बहु आदि गण से ङीप् प्रत्यय विकल्प से हो।

बहु+ङीप्=बह्वी, बहुः।

पुराण+ङीप्=पुराणी, पुराणा।

६६१ **षिद्गौरादिभ्यश्च** (४-१-४१) षित् तथा गौर आदि शब्दों से ङीष् प्रत्यय हो जाय। नर्तक+ङीष्=नर्तकी, गौर+ङीष्=गौरी।

६६२ **टिड्ढाऽणञ्-द्वयसच्-दध्नञ्-मात्रच्-तयप्-ठक्-ठञ्-कञ्-क्वरपः।** (४-१-१५) अकारान्त टित् प्रातिपदिक से तथा जिसके अन्त में ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दध्नच्, मात्रच्, तयप्-ठक्-ठञ् और क्वरप् प्रत्ययों से कोई हो तो उन प्रातिपदिकों से ङीप् प्रत्यय हो।

(i) टित् कुरुचर+ङीप्=कुरुचरी, नद+ङीप्=नदी,

(ii) ढ वाराणसेय+ङीप्=वाराणसेयी।

(iii) अण् ऐन्द्र+ङीप्=ऐन्द्री, शैवी

(iv) अव् औत्स+ङीप्+औत्सी

(v) द्वयसच् ऊरुद्वय+ङीप्=ऊरुद्वयसी

इसी प्रकार ऊरुदघ्नी, ऊरुमात्री, पञ्चतयी, आक्षिकी आदि।

६६३ **वयसिप्रथमे** (४-१-२०) प्रथम अवस्था के वाचक अकारान्त प्रातिपदिक से ङीप् प्रत्यय हो। कुमार+ङीप्=कुमारी। (यहाँ यस्येति च से कुमार के अन्तिम अ का लोप हो गया।)

६६४ **पुंयोगाद् आख्यायाम्** (४-१-४८) यदि कोई शब्द पुंल्लिग में प्रयोग होने के कारण स्त्रीलिंग में भी आवे तो उससे ङीप् प्रत्यय हो—यथा गोप से गोपी। (यहाँ गोप शब्द गाय पालने के कारण बना है और यह आवश्यक नहीं कि उसकी पत्नी भी गाय पाले फिर भी वह गोपी कही जाती है) इसी प्रकार शूद्रस्य भार्या=शूद्री।

६६५ **इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृड् हिमारण्य-यव यवन-मातुलाचार्याणाम् आनुक्** (४-१-४९) इन शब्दों से ङीप् प्रत्यय हो तथा आनुक् का आगम हो। आनुक् से आन् शेष रहता है। यह कित् होने के कारण अन्त में आता है।

इन्द्रस्यभार्या—इन्द्राणी, इसी प्रकार भवानी, शर्वाणी, मृडानी, यवानी, यवनानी।

वा० (i) **हिमारण्ययोर्महत्त्वे** हिम तथा अरण्य शब्दों से ङीप् और आनुक् महत् अर्थ में ही हो। महत् हिमम्=हिमानी, महत् अरण्यम्=अरण्यानी।

वा० (ii) **यवात्दोषे** दोष युक्त अर्थ में यव (जौ) से ङीष् और आनुक् हो। यवनानां लिपिः=यवनानी।

वा० (iii) **मातुलोपाध्याययोः** मातुल ओर उपाध्याय शब्द से आनुक् विकल्प से हों। मातुल—मातुलानी, मातुली।

उपाध्याय—उपाध्यायानी, उपाध्यायी।

वा० (iv) **आचार्याद् अणत्वं च** आचार्य शब्द से पुंयोग में ङीष् और आनुक् हों पर न के स्थान में ण न हो।

आचार्यस्य स्त्री—आचार्यानी।

६६६ **नखमुखात् संज्ञायाम्** (४–१–५८) संज्ञा अर्थ वताने में स्वनखाङ्ग वाचक और मुख से ङीष् प्रत्यय न हो। शूर्पाणीव नखानि यस्याः सा शूर्पणखा, यहाँ ङीष् का निषेध होने पर टाप् हो गया।

६६७ **क्रीतात्करण पूर्वात्** (१–४–५०) जिस शब्द से पहले करणकारक हो तथा क्रीत शब्द जिसके वाद में हो ऐसे अकारान्त प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में ङीष् हो—वस्त्रक्रीत+ङीष्=वस्त्रक्रीती।

६६८ **जातेरस्त्री विषयाद् अयोपधात्** (४–१–६३) यदि कोई शब्द अकारान्त जातिवाचक हो पर नित्य स्त्रीलिंग न हो तथा उसकी उपधा में 'य' न हो तो ऐसे अकारान्त शब्द से स्त्रीलिंग वनाने के लिए ङीष् प्रत्यय हो। तट—तटी, वृषल—वृषली, कठ—कठी, वहवृच—वहवृची। उपधा में य न हो क्यों कहा—क्षत्रिया।

६६९ **इतो मनुष्यजातेः** (४–१–६५) मनुष्य जातिवाचक इकारान्त प्रातिपदिक से ङीष् प्रत्यय हो। जातेरस्त्रीविषयाद् केवल अकारान्त से ही ङीष् करता है अतः इकारान्त जातिवाचक से स्त्रीलिंग वनाने के लिए इस सूत्र की परिकल्पना की गयी।

दक्षस्य अपत्यं स्त्री—दाक्षी। यहाँ दक्ष से अपत्य अर्थ में अत इञ् होकर दाक्षि वनता है जो इकारान्त है। अतः इससे ङीष् होकर दाक्षी वना।

६७० **ऊङ् उतः** (४–१–६६) उकारान्त अयोपध्र मनुष्य जातिवाचक प्रातिपदिक से स्त्रीलिंग में ऊङ् प्रत्यय हो।

कुरुजातेः स्त्री—कुरूः। "उपधा में य न हो" ऐसा क्यों कहा? जिससे अध्वर्यु में न हो जाय।

६७१ **ऊरूत्तरपदाद् औपम्ये** (४–१–६९) यदि किसी प्रातिपदिक का पूर्वपद उपमान वाचक हो और उत्तरपद ऊरू शब्द हो तो उससे ऊङ् प्रत्यय हो। करभ इव ऊरू यस्याः=करभोरूः।

६७२ **संहित-शफलक्षणवामादेश्च** (४–१–७०) ऊरू उत्तर पद वाले प्रातिपदिक से पूर्वपद संहित, शफ, लक्षण और वाम होने पर स्त्रीलिंग में ऊङ् प्रत्यय हो। इस सूत्र का प्रयोग उस स्थल के लिए है जहाँ उपमान वाचक शब्द पूर्वपद के रूप में न हो। वामौ ऊरू यस्याः=वामोरूः (सुन्दर जंघा वाली) इसी प्रकार लक्षणोरूः, शफोरूः, संहितोरूः।

६७३ **शाङ्‌र्गरवाऽऽद्यञोङीन्** (४-१-७३) शाङ्‌र्गरव आदि और अञ् का जो अकार तदन्त जातिवाचक प्रातिपदिक से ङीन् प्रत्यय हो। ङीन् से केवल ई शेष रहता है। यह नित् होने से आद्युदात्त होता है। श्रृंगरोः अपत्यं स्त्री=शाङ्‌र्गरवी, विदस्य अपत्यं स्त्री=वैदी। ब्राह्मणस्य अपत्यं स्त्री-ब्राह्मणी।

६७४ **नृनरयोर्वृद्धिश्च** नृ और नर शब्द से स्त्रीलिंग में ङीन् प्रत्यय हो तथा वृद्धि भी हो। यहाँ नृ के ऋकारान्त होने से ऋन्नेभ्यो ङीन् किया गया जिससे चाहा हुआ शब्द मिल सके।

नरजातीया स्त्री-नारी।

६७५ **यूनस्ति** (३-१ ७७) युवन् शब्द से स्त्रीलिंग में ति प्रत्यय हो।

युवन्+ति=युवति। (प्रातिपदिकान्तस्य से यहाँ न् का लोप होता है)

नपुंसकलिंग

१ भावार्थक ल्युट् प्रत्ययान्त तथा भावार्थक क्त प्रत्ययान्त प्रायः नपुंसक लिङ्ग होते हैं—गमनम्, भवनम्, मरणम्, वरणम्, स्मरणम्, गीतम्, गतम्, हसितम्, जातम्, श्रुतम्।

२ भावार्थक त्व, ष्यञ्, यत्, य, ढक्, यक्, अञ्, अण्, वुञ् प्रत्ययान्त नपुंसकलिंग होते है—

त्व—गुरुत्वम्, कृष्णत्वम्, महत्त्वम्, पटुत्वम्, नृपत्वम्।

ष्यञ्—चातुर्यम्, माधुर्यम्, ब्राह्मण्यम्, दाक्षिण्यम्, पाण्डित्यम्।

यत्—स्तेयम्, चेयम्, देयम्, जेयम्, नेयम्, गेयम्।

य—सख्यम्, सौख्यम्, साक्ष्यम्।

ढक्—कापेयम्, नादेयम्, वाराणसेयम्।

यक्—आधिपत्यम्।

अञ्—औष्ट्रम्।

अण्—द्वैपायनम्।

वुञ्—पैतापुत्रकम्।

२ मन में अन्त होने वाले शब्द यदि दो स्वर वाला हो और कर्तृवाचक न हो तो नपुंसक होता है। चर्मन्, वर्मन्, इसके विपरीत अणिमा पुंल्लिग है क्योंकि इसमें कई स्वर हैं और दामा भी पुंल्लिग है क्योंकि यह कर्तृवाचक है।

४ अस् में अन्त होने वाले तथा दो स्वर वाले शब्द प्रायः नपुंसकलिंग होते हैं—मनस्, यशस्, तपस् आदि।

५ पुत्र, छात्र, मंत्र, वृत्र तथा उष्ट्र को छोड़कर त्रकारान्त शब्द प्रायः नपुंसकलिंग होते हैं। पत्रम्, छत्रम्, चरित्रम्, मित्रम्, नेत्रम्

६ निम्नलिखित शब्द तथा उनके पयार्यवाचक सभी शब्द प्रायः नपुंसकलिंग होते हैं—
मुखम्, वक्त्रम्, आननम्, नयनम्, लोचनम्, द्रव्यम्, वित्तम्, धनम्, धनुः, शरासनम्, कोदण्डम्, चापम्, वारि, जलम्, उदकम्, तोयम् नारम्, पानीयम् बलम्, पुष्पम्, प्रसूनम्, नगरम्, स्थानम्।

अभ्यास

१ निम्नलिचित सूत्रों का अर्थ सोदाहरण लिखो—
अव्ययीभावश्च, तृतीया सप्तम्योर्बहुलम्, यावदवधारणे, नदीभिश्च, पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः न निर्धारणे ।

२ नञ् समास से क्या अभिप्राय है ? सोदाहरण समझाइये । असत्य और अनुपस्थित के समासों में क्या अन्तर है ।

३ अलंकृत्य, पुरस्कृत्य, तिरोभूय किन सूत्रों के आधार पर बनते हैं ।

४ कृष्णसखः, पर्वतराजः, महाराजः, पूर्वाह्णः, त्रयोदशः, का विग्रह सहित समास बताओ । ये किन सूत्रों के आधार पर बने यह भी लिखो ।

५ कर्मधारय की परिभाषा लिखो और द्विगु से इसका अन्तर स्पष्ट करो ।

६ च किन किन अर्थों में आता है, इसके किन अर्थों में समास सम्भव है ।

७ निम्नलिखित सूत्रों की व्याख्या करो—
राजदन्तादिषु परम्, द्वन्द्वे घि, अजाद्यदन्तम्, अल्पाच्तरम्, दिवो द्यावा, अनेकमन्यपदार्थे, न कोपधायाः, ओर्गुणः, निष्ठा ।

८ अलुक् प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं ?
परस्मैपदम् और आत्मनेपदम् को सिद्ध करो ।

९. संस्कृत में लिंग निर्णय किस आधार पर होता है ?
आत्मा, निधिः, विधिः, मित्रम्, कलत्रम् छात्रः, शरीरम्, कायः, तनुः, मन्त्रः, पुत्रः को लिङ्गानुसार रखो ।

१० निम्नलिखित सूत्रों की व्याख्या करो—
अजाद्यतष्टाप्, उगितश्च, वयसिप्रथमे, यूनस्ति ।

११ निम्नलिखित श्लोकों से सम्बन्धित शब्दों के पर्याय चुनो—

समुद्रोऽब्धि कूपारः पारावारः सरित्पतिः ।
उदन्वानुदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णवः ॥
रत्नाकरो जलनिधिर्यादःपतिरपाम्पतिः ।
तस्य प्रभेदाः क्षीरोदो लवणोदस्तथापरे ॥

आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम् ।
पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम् ॥

कवन्धमुदकं पाथः पुष्करं सर्वतोमुखम् ।
अम्भोऽर्णस्तोय—पानीयनीरक्षीराम्बुशम्वरम् ॥
भूर्भूमिरचलाऽनन्तारसा विश्वम्भरा स्थिरा ।
धराधरित्रीधरणि क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः ॥
सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा ।
गोत्रा कुः पृथ्वी क्षमाऽवनिर्मेदिनी मही ॥
विपुला गह्वरी धात्री गौरिला कुम्भिनी क्षमा ।
भूतधात्री रत्नगर्भा जगती सागराम्वरा ॥

१२ निम्नलिखित श्लोकों का अर्थ लिखो ।

(अ) निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

हर्षचरित

(आ) एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
श्रृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

राजशेखर

पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः ।
अद्यापि तत्तुल्य कवेरभावात् अनामिका सार्थवती बभूव ॥

यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुरा पुरुषाः ।
अयि विद्युत प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ॥

शूद्रक

क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मन्थनं क्षीरवारिधेः ।
किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः ॥

अध्याय २३

संस्कृत सूक्तियाँ

१ अकरणात् मन्दकरणं श्रेयः ।
न करने से कुछ करना ही अच्छा ।

२ अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।
सज्जन अपने कहे का पालन करते हैं ।

३ अजीर्णे भोजनं विषम् ।
पाचन ठीक न होने पर भोजन विष होता है।

४ अत्यादरः शङ्कनीयः ।
अधिक सम्मान भी शंका का स्थान है ।

५ अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
शरीर जल से शुद्ध होता है पर मन सत्य से ।

६ अनागतं यः कुरुते स शोभते ।
आपत्ति के आने से पहले जो प्रतीकार करता है वह प्रशंसनीय है ।

७ अन्तो नास्ति पिपासायाः ।
लोभ का कोई अन्त नहीं ।

८ अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।
हितकर भी यदि अप्रिय है तो उसका कहने और सुनने वाला दुर्लभ है ।

९ अमृतं प्रियदर्शनम् ।
अपने प्रिय का दर्शन अमृत के समान होता है ।

१० अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
यह मेरा है वह तेरा ऐसी बात तुच्छ हृदय की होती है ।

११ अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।

छोटी छोटी चीजों के भी मिलने से बड़े बड़े काम हो जाते हैं ।

१२ अल्पारम्भः क्षेमकरः ।

थोड़ा आरम्भ भी कल्याणकारी होता है ।

१३ अविवेकः परमापदां पदम् ।

अज्ञान बड़ी बड़ी आपत्तियों का घर है ।

१४ अव्यवस्थितचित्तानां प्रसादोऽपि भयंकरः ।

अव्यवस्थित चित्त वालों की प्रसन्नता भी भयानक होती है ।

१५ असाधुः साधुर्वा हरति महिमानं जनरवः ।

असत्य हो या सत्य लोक की बुराई महिमा घटा देती है ।

१६ आचारः कुलमाख्याति ।

मनुष्य का आचरण उसके कुटुम्ब का परिचायक होता है ।

१७ आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।

अपने प्रतिकूल बात को दूसरे के साथ न करना चाहिए ।

१८ आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति ।

जो सभी प्राणियों को अपने समान देखता है वही ज्ञानी है ।

१९ आपत्काले मर्यादा नास्ति ।

आपत्ति के समय मर्यादा नहीं रहती ।

२० आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।

इन्द्रियों का असंयम आपत्तियों का मार्ग है ।

२१ आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ।

जो आहार और व्यवहार में लज्जा नहीं करता वह सुखी रहता है ।

२२ इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः ।

अपने गुणों का स्वयं बखान करने से इन्द्र भी छोटा हो जाता है ।

२३ उदारचरितानाँ वसुधैव कुटुम्बकम् ।
उदार चरित मनुष्यों के लिए समस्त संसार ही कुटुम्ब है ।

२४ उद्यमी नाऽवसीदति ।
उद्यमशील कभी कष्ट में नहीं पड़ता ।

२५ उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
उद्यम से कार्य सिद्ध होते है मनोरथ से नहीं ।

२६ उद्योगिनं पुरुर्षसिहमुपैति लक्ष्मीः ।
उद्योगी के पास लक्ष्मी स्वयं आती है ।

२७ उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये ।
उपदेश से मूर्ख क्रुद्ध होते हैं शान्त नहीं ।

२८ उपायेन हि यत् शक्यं तन्न शक्यं पराक्रमैः ।
जो काम उपाय से हो सकता है वह पराक्रम से नहीं ।

२९ एकस्तु दोषः तत्रापि रोषः ।
एक तो दोष उस पर भी रोप ।

६० कः शूरो ? विजितेन्द्रियः ।
शूर कौन है जिसने इन्द्रियाँ जीत लीं ।

३१ कालच्युता हि क्रिया फलं न जनयति ।
असमय से किया गया कार्य फल नहीं देता ।

३२ किं करिष्यन्ति वक्तारः श्रोता यत्र न वुध्यते ।
वोलने वाले क्या करें यदि सुनने वाला समझता नहीं ।

३३ किं दूरं व्यवसायिनाम् ?
पुरुषार्थी के लिए क्या दूर है ?

३४ किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।
सुन्दर आकृति वाले के अिए किससे शोभा नहीं होती ।

३५ कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
हमारे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ है तो बाएँ में सफलता है ।

३६ कृतापराधः स्वयमेव शंकते ।
अपराधी व्यक्ति स्वयं शंकित रहता है ।

३७ कृपणकरगतानां संपदां दुर्विपाकः ।
कंजूस के हाथ धन की दुर्गति होती है।

३८ कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ?
दुर्बल के साथ कौन दोस्ती करता है ?

३९ क्रिया सिद्धिः सत्त्वे भवति नोपकरणे ।
बड़े लोगों की कार्य सिद्धि आत्मबल से होती है किसी उपकरण से नहीं।

४० क्रिया हि वस्तूपहता प्रसीदति ।
कोई भी कार्य उचित स्थान पर फलवान होता है।

४१ क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ।
कार्य सिद्ध होने पर उसका कष्ट पुनः नवीनता ला देता है।

४२ क्षण नाशे कुतो विद्या कणनाशे कुतो धनम् ।
एक क्षण का नाश होने पर विद्या कहाँ और कण के नष्ट होने पर धन कहाँ ?

४३ गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ।
गुण ही गुणियों को पूज्य बनाते हैं, उनकी अवस्था या वेष नहीं।

४४ चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः ।
योग्य के साथ योग्य का समागम बहुत उत्तम होता है।

४५ चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ।
दुःख और सुख चक्र की भाँति आते जाते हैं।

४६ चिन्ता जरा मनुष्याणाम् ।
चिन्ता मनुष्य को बूढ़ा बना देती है।

४७ चिन्ता यशसि न वपुषि प्रायः परिदृश्यते महताम् ।
महान् लोग शरीर की नहीं यश की चिन्ता करते है।

४८ छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति ।
संयोग खराब होने से बहुत से अनर्थ होते हैं।

४९ जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।
माता तथा जन्मभूमि दोनों स्वर्ग से भी बढ़कर हैं।

५० जितं सर्वं जिते रसे ।
वासना जीत ली तो सब जीत लिया ।

५१ ज्ञानं भारः क्रियां विना।
क्रिया के अभाव में ज्ञान भाररूप होता है।

५२ तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलगति।
जिसका मन जिससे लगता है उसके लिए वही उत्तम है।

५३ तावच्च शोभते मूर्खो यावत् किंचिन्न भाषते।
मूर्ख तभी तक शोभा देता है जबतक बोलता नहीं।

५४ तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते।
तेजस्वी लोगों की अवस्था नहीं देखी जाती।

५५ दीर्घ सूत्री विनश्यति।
आलसी का विनाश होता है।

५६ दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
भाग्य से सब कुछ मिलता यह नपुंसक कहते हैं।

५७ धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति।
जिसमें सत्य न हो वह धर्म नहीं।

५८ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
कामनाओं के उपभोग से उनकी शान्ति नहीं होती।

५६ न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः।
धीर पुरुष निश्चित से पीछे नहीं हटते।

६० न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः।
वह सभा नहीं जहां वृद्ध नहीं।

६१ नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
संसार में ज्ञान के समान कोई चीज पवित्र नहीं।

६२ नहि विद्या समो बन्धुः।
विद्या के समान कोई भाई नहीं।

६२ नानृतात् पातकं परम्।
झूठ से बढ़ कर कोई पाप नहीं।

६३ निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।
जहाँ कोई वृक्ष नहीं वहाँ रेंड़ ही बड़ा वृक्ष है

६४ नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।
पहिए की धुरी की तरह मनुष्य की दशा नीचे ऊपर होती है

६५ न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।
धैर्यवान् लोग न्याय के मार्ग से विचलित नहीं होते।

६६ परोपकाराय सतां विभूतयः।
सज्जनों की सम्पत्ति परोपकार के लिए होती है।

६७ परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
दूसरे को उपदेश देना सब के लिए आसान है।

६८ प्रणामान्तः सतां कोपः।
सज्जनों का क्रोध प्रणाम तक ही है।

६९ प्रतिक्षणं यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।
प्रतिक्षण नवीनता की प्रतीति ही सुन्दरता का स्वरूप है।

७० बुभुक्षितः किं न करोति पापम्।
भूखा कौन पाप नहीं करता।

७१ मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।
मन सन्तुष्ट होने पर कौन धनी कौन निर्धन।

७२ मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्.।
महा पुरुषों के मन, वचन और काम एक होते हैं।

७३ महाजनो येन गतः स पन्थाः।
मार्ग वह है जिससे अधिक लोग जाते हों।

७४ महान् महत्येव करोति विक्रमम्।
बड़े लोग बड़ों के साथ ही पराक्रम दिखाते हैं।

७५ मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना।
प्रत्येक का अपना अलग विचार होता है।

७६ मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।
एक क्षण जलना अच्छा है बहुत देर धुआना नहीं।

७७ मौनं स्वीकृति लक्षणम्।
मौन होना स्वीकृति का लक्षण है।

७८ यतो धर्मस्ततोजयः ।
जहाँ धर्म रहता है वहीं विजय होती है।

७९ यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
बड़े लोग जैसा आचरण करते हैं वैसा ही छोटे लोग भी ।

८० याच्ञा मोघावरमधिगुणे नाधमे लब्धकामः । (कालिदास)
गुणवान् के पास याचना विफल होना अच्छा पर अधम से याचना की पूर्ति अच्छी नहीं ।

८१ रक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ।
खाली सब कुछ हल्का होता है पर पूरा सदा भारी होता है ।

८२ विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।
विकार पैदा करने वाले कारणों के रहते हुए भी जिनके मन विकृत नहीं होते वे ही धीर हैं ।

८२ विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ।
विनाश के समय बुद्धि उल्टी हो जाती है ।

८४ वीरभोग्या वसुन्धरा ।
पृथ्वी का वीर ही उपभोग करते हैं ।

८५ व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।
जो मूर्ख मायावी के साथ मायावी नहीं बनते वे अपमानित होते हैं । (भारवि)

८६ व्यवहारेण जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ।
व्यवहार से मित्र व शत्रु होते हैं ।

८७ शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।
शरीर धर्म का पहला साधन है ।

८८ षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः ।
छः कान वाला मंत्र फूट जाता है ।

८९ संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ।
विपत्ति या सम्पत्ति में महान पुरुष समान रहते हैं ।

९० संशयात्मा विनश्यति ।
संशय वाले का नाश होता है '

९१ संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।
संसर्ग से दोष तथा गुण होते हैं ।

९२ सत्यमेव जयते नानृतम् ।
सत्य की विजय होती है झूठ की नहीं ।

९३ सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।
सज्जन की संगति से क्या नहीं मिलता ।

९४ सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । (मनु)
दूसरे के अधीन होना ही सबसे बड़ा दुःख और स्वाधीन होना ही सुख है ।

९५ सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ।
सभी गुण धन के ऊपर निर्भर हैं ।

९६ सर्वेषामपि शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् (मनु)
समस्त शुद्धियों में धन सम्बन्धी शुद्धि सबसे बड़ी शुद्धि है ।

९७ सा विद्या या विमुक्तये ।
जो मुक्ति प्रदान करे वही विद्या है ।

९८ सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतः सुखम् ।
सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ और विद्यार्थी को सुख कहाँ ?

९९ स्वभावो दुरतिक्रमः ।
स्वभाव बड़ी कठिनाई से बदलता है ।

१०० हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।
हितकर भी हो और मनोहर भी हो ऐसा वचन दुर्लभ है ।

विषय-सूची

छन्द

अलंकार

(अ) शब्दालंकार

(ब) अर्थालंकार

अध्याय १

छन्द और अलंकार

प्रत्येक समृद्ध भाषा में काव्य का गौरव उसके रस से आँका जाता है। रस काव्य की आत्मा होता है। शब्द और अर्थ काव्य के शरीर होते हैं। जैसे शरीर की शोभा वस्त्र व अलंकारों से होती है उसी प्रकार काव्य के शरीर की शोभा उसके छन्द और अलंकारों से होती है।

छन्द

छन्द दो तरह के होते हैं—**मात्रिक** और **वर्णिक**।

(i) जिसमें मात्राओं की गणना की जाती है—वह **मात्रिक** कहा जाता है।

(ii) जिसमें वर्णों की गणना की जाती है वह वृत्त या (जातिवृत्त) **वर्णिक** छन्द कहा जाता है। आजकल संस्कृत में **वर्णिक** छन्दों की प्रधानता है। ये पुनः तीन प्रकार के होते हैं—

(अ) **समवृत**— जिसके चारों चरण समान हों।

(आ) **अर्धसमवृत्त**— जिसके प्रथम–तृतीय तथा द्वितीय व चतुर्थ समान हों।

(इ) **विषमवृत्त**— जिसके चारों चरण एक दूसरे से भिन्न हों। संस्कृत काव्यों में वहुधा समवृत्त छन्दों का प्रयोग किया गया है। इनमें प्रमुख छन्द इस प्रकार हैं—

अनुष्टुप् (८ वर्णों का समवृत्त)

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
षष्ठं गुरुः विजानीयात् एतत् पद्यस्य लक्षणम् ।।

अर्थात् अनुष्दुभ् छन्द के प्रत्येक चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु होता है, सातवाँ वर्ण दूसरे तथा चौथे में ह्रस्व होता है, तथा षष्ठ सभी में गुरु होता है।

यथा— **महाविद्या महामाया सेवनीया सदाबुधैः ।**
आराध्या परमाशक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः ।। व्यास
सत्यं सत्यं पुनःसत्यं, वेद शास्त्रार्थ निर्णयः ।
पूजनीया पराशक्तिः, निर्गुणः सगुणाथ वा ।।
न दुःखं मे प्रिया दूरे, न दुखं मे हृतेति च ।
एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवर्तते ।। वाल्मीकि

वाल्मीकि और व्यास ने अपने काव्यों में इसी छन्द का बहुत प्रयोग किया है। सारी वाल्मीकि रामायण, महाभारत और पुराण इसी छन्द से भरे पड़े हैं। सम्भवतः इस छन्द में कथात्मक वर्णन करना बहुत सुगम समझा जाता था, क्योंकि वही पाठक को सरलता से बोध करा सकता है। पर जैसे-जैसे लौकिक संस्कृत का प्रसार हुआ कवियों ने अन्य छन्द अपनाये।

(१) इन्द्रवज्रा (११ वर्णों का समवृत्त)

इसे तथा अन्य इस कोटि के छन्दों को समझने के लिए गणों का समझना आवश्यक है। तीन अक्षरों का समूह गण कहा जाता है। यह आठ प्रकार का होता है। इन्हें एक छोटी सी पंक्ति से सरलता से समझाया जा सकता है।

"यमाताराजभानसलगा"

इसमें अन्तिम ल लघु तथा ग गुरु का वाचक है। शेष अक्षर एक-एक गण के प्रथम अक्षर का द्योतन करते हैं। यथा—

(i)	यगण	। S S	जिसका पहला अक्षर लघु हो तथा दूसरे दो दीर्घ हों—
(ii)	मगण	S S S	जिसके तीनों अक्षर गुरु हों।
(iii)	तगण	S S ।	पहले दो गुरु तथा अन्तिम लघु
(iv)	रगण	S । S	जिसके बीच का वर्ण लघु हो तथा पहला और तीसरा गुरु हो—
(v)	जगण	। S ।	बीच का वर्ण गुरु तथा पहला और तीसरा लघु हो।
(vi)	भगण	S । ।	जिसका पहला वर्ण गुरु हो तथा अन्य दो लघु—
(vii)	नगण	। । ।	जिसके तीनों वर्ण लघु हों, यह मगण का उल्टा है।
(viii)	सगण	। । S	पहले दो लघु तथा अन्तिम गुरु।

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः

अर्थात् इन्द्रवज्रा के प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और दो गुरु लेकर ११ अक्षर होते हैं।

S S ।, S S ।, । S ।, S S

सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन्, नाथे कुतस्त्वयिशुभं प्रजानाम् ।
S S । S S । । S । S S
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा ।।

'रघुवंश'

(२) उपेन्द्रवज्रा

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ

उपेन्द्रवज्रा भी ११ अक्षरों का छन्द है। इसमें दो जगणों के बीच एक तगण होता है तथा अन्त में दो गुरु होते हैं। अथवा यह कह सकते हैं कि यदि इन्द्रवज्रा के पहले तगण की जगह जगण कर दें तो उपेन्द्रवज्रा हो जाता है।

। S । , S S । , । S । , S S

यथा—उपेन्द्रवज्रादि मणिच्छटाभिर् भूषणानां छुरितं वपुस्ते ।
। S ।, S S ।, । S ।, S S
स्मरामि गोपीभिरुपास्यमानं सुरद्रुमूलेमणिमण्डपस्थम् ।।

छन्दो मञ्जरी

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या च द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव ।।

ध्यान रहे अन्तिम वर्ण आवश्यकता पड़ने पर दीर्घ मान लिया जाता है।

(३) उपजाति

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।

यदि इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा को मिला दें तो उपजाति बन जाता है। इसमें प्रायः पहला चरण उपेन्द्रवज्रा तथा दूसरा इन्द्रवज्रा का, अथवा प्रथम और तृतीय इन्द्रवज्रा का तथा द्वितीय और चतुर्थ उपेन्द्रवज्रा का रहता है। रघुवंश के दूसरे, पाँचवा, छठा, सातवाँ, तेरहवाँ, चौदहवाँ, सोलहवाँ और अठारहवाँ सर्गों में उपजाति अधिक हैं।

यथा— रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिक मुन्नतत्त्वम् ।
S S । S S ।, । S ।, S S ।, S । S, S । ।, । S ।, S S
न कारणाद्द् विभिदे कुमारः, प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् ।

और भी—
क्वचित् प्रभालेपभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
अन्यत्रमाला सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ।।

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः ।
अन्यत्रकाला गुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥
क्वचित् प्रभाचाग्द्रमसीतमोभिश्छायाविलीनैः शवलीकृतेव ।
अन्यत्र शुभ्राशरदभ्रलेखारन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभप्रदेशाः ॥

रघुवंश १३।५४-५५-५६

(४) द्रुतविलम्बित (१२ अक्षर-समवृत्त)

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ

इसके प्रत्येक चरण में नगण भगण, भगण तथा रगण होते हैं ।

। । ।, ऽ । ।, ऽ । ।, ऽ । ऽ

यथा—

पितुरनन्तरमुत्तर कोसलान् समधिगम्य समाधि जितेन्द्रियः ।
। । ।, ऽ । ।, ऽ । ।, ऽ । ऽ, । । ।, ऽ । ।, ऽ । ।, ऽ । ऽ,
दशरथः प्रशशास महारथो यमवतामवतां च धुरिस्थितः ॥

और भी—

अधिगतं विधिवद्यदपालयत् प्रकृतिमण्डलमात्मकुलोचितम् ।
अभवदस्य ततो गुणवत्तरं, सनगरं नगरन्ध्र करौजसः ॥
उभयमेव वदन्ति मनीषिणः, समयवर्षितया कृतकर्मणाम् ।
वलिनिषूदनमर्थपतिं च तं श्रमनुदं मनुदण्डधरान्वयम् ॥३॥
जनपदे न गदः पदमादधावभिभवः कुत एव सपत्नजः ।
क्षितिरभूत् फलवत्यजनन्दने शमरतेऽमरतेजसि पार्थिवे ॥४॥
दशदिगन्तजिता रघुणा यथा—श्रियमपुष्यदजेन ततः परम् ।
तमधिगम्य तथैव पुनर्बभौ न न महीन महीन पराक्रमम् ॥५॥
न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न शशिप्रतिमाभरणं मधु ।
तमुदयाय न वा नवयौवना, प्रियतमा-यतमानमपाहरत् ॥७॥
न कृपणा प्रभवत्यपि वासवे, न वितथा परिहास कथास्वपि ।
न च सपत्नजनेष्वपि तेन वागपरुषा परुषाक्षरमीरिता ॥८॥

रघुवंश के नवम सर्ग में १—५४ तक यही छन्द है ।

(५) वियोगिनी

विषमे ससजा गुरुः समे सभरालोऽथ गुरु वियोगिनी ।

अर्थात् जिसके प्रथम तथा तृतीय चरणों में दो सगण, जगण, तथा गुरु हो और द्वितीय तथा चतुर्थ में सगण, भगण, रगण तथा एक लघु एक गुरु हो । वही वियो० है।

यथा— सगियं यदि जी वितापं हा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
।।S, ।। S, ।S।, S ।।S, S ।।, S । S, । S
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।।

(६) वंशस्थ (१२ अक्षर, समवृत्त)

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ

अर्थात् इसमें जगण तगण जगण और रगण होते हैं। यह प्रायः वीरता के प्रकरण में लिखा जाता है।

।S।, SS।, ।S।, S।S

यथा— तथा समक्षं दहता मनोभवं, पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती, प्रियेषु सौभाग्य फला हि चारुता ।।
इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां, समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं, तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः ।।

(७) वसन्ततिलका (१४ अक्षर, समवृत्त)

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः

अर्थात् इस छन्द में तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु होते हैं। यह अधिकतर कार्य की सफलता पर लिखा जाता है।

SS।, S।।, ।S।, ।S।, SS

यथा— तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्,
निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचला व्यतिकरा कुलितेव सिन्धुः।
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ।।
अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः।
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ।।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज।
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां न धत्ते ।।

कुमार सम्भव ५।८५, ८६

(८) भुजंगप्रयात (१२ अक्षर सम)

भुजंग प्रयातं चतुर्भिर्यकारैः, ।SS, ।SS, ।SS, ।SS;

अर्थात् इसमें चार यगण होते हैं। यह छन्द भी बहुत मधुर होता है यथा—

न वाणी रसाला न भावो मनोज्ञः, स्वरो मे न मिष्ठः कविर्नास्मिकश्चिद् ।
तथापि त्वदीयं मधुस्वागतं वै वयं मोदभारैर्नता उद्गिरामः ॥
मृदुस्नेहसूत्रे रसाल—प्रवालै—र्मनोभाव पुष्पै रनुस्यूत माल्यैः ।
वयं कोमलै रम्बुजैरर्चयामो, मुहुः स्वागतं ते वदामो वदामः ॥

घनैर्निष्कुलीना कुलीना भवन्ति ।
धनैरापदं मानवा निस्तरन्ति ॥
धनेभ्यः परो वान्धवो नास्ति ।
धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वम् ॥

(६) मालिनी (१५ अक्षर, सम)

ननु मय ययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः

इस छन्द में नगण, नगण, मगण, यगण, यगण होते हैं। इसमें आठ अक्षरो पर यति होती है। यह भी कहा जा सकता है कि पहले दो नगण बीच में मगण तथा अन्त में दो यगण होना चाहिए। प्रायः सर्ग के अन्त में अथवा किसी कार्य के पूर्ण होने पर इसका प्रयोग किया जाता है। यह भी वहुत मधुर छन्द होता है।

कुवलय दलनीलैरुन्नतै स्तोयनम्रै र्, मृदुपवन विधूतैर्मन्दमन्दं चलद्भिः ॥
अपहृतमिव चेतस्तोयदैः सेन्द्रचापैः, पथिकजनवधूनां तदवियोगाकुलानाम् ॥
मुदित इव कदम्बैर्जातिपुष्पैः समन्तात्, पवनचलित शाखैः शाखिभिनृ त्यतीव ॥
हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनां, नवसलिल निषेकच्छिन्नतापोवनान्तः ॥

शिरसि वकुलमालां मालतीभिः समेतां, विकसित नवपुष्पै र्यूथिका कुड्मलैश्च ॥
विकच नव कदम्बैः कर्णपूरं वधूनां, रचयति जलदौघः कान्तवत् काल एषः ॥
नव जल कण सङ्गाच्छीततामादधानः, कुसुमभरनतानां लासकः पादपानाम् ॥
जनित रुचिर गन्धः केतकीनां रजोभिः, परहरति नभस्वान् प्रोषितानां मनांसि ॥
वहुगुण रमणीयः कामिनी चित्तहारी, तरुविटप लतानां वान्धवो निर्विकारः ॥
जलद समय एष प्राणिनां प्राण भूतो, दिशतुतव हितानि प्रायशोवाञ्छितानि ॥
समदमधु कराणां कोकिलानां च नादैः, कुसुमित सहकारैः कर्णिकारैश्च रम्यः ॥
इषुभिरिव सुतीक्ष्णै र्मानसंमानिनीनां, तुदति कुसुम मासे मन्मथोद्दीपनाय ॥

ऋतुसंहार

न खलु न खलु वाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन् ।
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः ॥

क्व वत हरिणकानां जीवितञ्चातिलोलम् ।
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ॥

शाकुन्तलम्

(१०) मन्दाक्रान्ता (१९ अक्षर)

मन्दाक्रान्ताम्बुधि रस नगै र्मों भनौ तौ ग युग्मम् ।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, तथा दो गुरु होते हैं । इसमें ४+६+७ अक्षरों पर यति होती है । कालिदास ने पूरा मेघदूत मन्द्राक्रान्ता में लिखा है ।

यथा— जातं वंशे भुवनविदिते, पुष्करावर्तकानाम् ।
जानामि त्वां प्रकृति पुरुषं कामरूपं मघोनः ॥
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहम् ।
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामः ॥ मेघदूत १/६

कुल्याम्भोभिः प्रसृति चपलैः शाखिनो धौतमूलाः ।
भिन्नो रागः किसलय रुचामाज्यधूमोद्गमेन ॥
एते चार्वांगुपवन भुविच्छिन्न दर्भांकुरायां ।
नष्टा शंका हरिण शिशवो मन्दमन्दं चरन्ति ॥ 'शाकुन्तलम्'

(११) शिखरिणी (१७ अक्षर)

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमन सभला गः शिखरिणी ।

अर्थात् इस छन्द के प्रत्येक चरण में १७ अक्षर होते हैं । इसमें ६ तथा १ पर यति होती है । रस=६, रुद्र=११. इसमें यगण, मगण, नगण. सगण, भगण तथा एक लघु, एक गुरु आता है । यह छन्द बहुत मधुर होता है । कालिदास ने स्थान स्थान पर इसका प्रयोग किया है । गंगालहरी तथा शिवमहिम्न स्तोत्र पूरे शिखरिणी में लिखे गये हैं ।

यथा— समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन् ।
महैश्वर्यं लीला जनित जगतः खण्डपरशोः ॥
शुचीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां ।
सुधा सौन्दर्यं ते सन्लिलमशिवं नः शमयतु ॥

शिवमहिम्नस्तोत्रम्

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां ।
यदद्धा विच्छिन्नं भवति कृत सन्धानमिव तत् ॥
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयोर् ।
न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात् ॥

और भी—

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै ।
रनामुक्तं रत्नं मधुनवमनास्वादित रसम् ॥
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघम् ।
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति भुवि ॥

शाकुन्तलम्

(१२) हरिणी (१७ अक्षर)

न समरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, सगण, मगण, रगण, सगण तथा एक लघु और एक गुरु आता है। इसमें ६+४+७ पर यति होती है।

यथा— अभिजनवतो भर्तुः श्लाध्ये स्थिता गृहिणीपदे ।
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ॥
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं ।
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥

शाकुन्तलम् चतुर्थ अंक १९

और भी—

अथ सविषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे ।
। । ।, । । S, S S S, S । S, । । S, । S
नृपति ककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम् ॥
मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये ।
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥

रघुवंशम् ३।७०

(१३) शार्दूलविक्रीडित (१९ अक्षर)

सूर्याश्वै मसजस्ततः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

इस छन्द के प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण +

एक गुरु होता है। इसमें पहले १२ अक्षरों पर यति होती है। अभिज्ञान शाकुन्तल के चतुर्थ अंक में कालिदास ने सर्वोत्तम श्लोक शार्दूल विक्रीडित छन्द में ही लिखे हैं—

यथा— यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया।
SSS, I IS, ISI, IIS, SSI, SSI+S
कण्ठस्तंभित वाष्पवृत्तिकलुषः चिन्ताजडं दर्शनम्॥
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः।
पीडयन्ते गृहिणः कथन्नु तनया विश्लेष दुःखैर्नवैः॥
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या।
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्॥
आद्ये वः कुसुमप्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः।
सेयं याति शकुन्तला पति गृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥

(१४) स्रग्धरा (७+७+७=२१ अक्षर)

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में सात सात करके २१ अक्षर होते हैं। इसमें मगण रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण आते हैं।

यथा— या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधि हुतं या हविर्या च होत्री।
S S S, S I S, S I I, I I I, I S S, I S S, I S S,
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्॥
यामाहुः सर्ववीज प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः।
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

और भी—

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः।
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्॥
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृत्त मुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा।
पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति वहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति॥

शाकुन्तलम्

(१५) आर्या (विषम वृत्त)

जाति छन्द के गण मात्राओं के अनुसार रखे जाते हैं। इसका सबसे सरल भेद आर्या है। यह नौ प्रकार की होती है।

पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघन चला च।
गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्यागीतिश्च नवधार्या॥

आर्या

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥

अर्थात् जिसके प्रथम तथा तृतीय चरण में १२ मात्राएँ होती हैं, जिसके दूसरे में १८ तथा चौथे में १५ होती हैं।

यथा— प्रतिपक्षेणाऽपि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः ।
अन्यसरितां शतानि हि समुद्रगाः प्रापयन्त्यब्धिम् ॥

महा० ५/१९

अध्याय २

अलंकार

आचार्य विश्वनाथ ने अलंकार की परिभाषा इस प्रकार की है—

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।
रसादीन् उपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥

रस, भाव आदि के उपकारक, शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म अलंकार कहे जाते हैं। जैसे बाजूवन्द आदि भूषण शरीर की शोभा बढ़ाते हैं वैसे ही अलंकार काव्य की शोभा की वृद्धि करते हैं। इस परिभाषा से अलंकार की निम्नलिखित विशेषताएँ झलकती हैं—

१ ये शब्द तथा अर्थ दोनों की शोभा वृद्धि करते हैं। इस आधार पर इनके तीन भेद हो जाते हैं—

(अ) शब्दालंकार, (आ) अर्थालंकार, (इ) उभयालंकार

२ अलंकार अस्थिर होते हैं, अर्थात् ये काव्यों में हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते अतः काव्य में गुणों की तरह इनका होना अनिवार्य नही होता।

३ रीति की भाँति अलंकार काव्य में शोभा उत्पन्न नहीं कर सकते बल्कि ये उसकी (काव्य की) शोभा में केवल वृद्धि करते हैं।

४ जैसे हार आदि आभूषण शरीर की शोभा में वृद्धि करके (आत्मा) के उत्कर्ष बढ़ाने में सहायक होते हैं वैसे ही अलंकार काव्य के शब्द और अर्थ रूपी

शरीर की शोभा को बढ़ाकर रसभाव (आत्मरूप) आदि के सौन्दर्य वर्धन में सहायक होते हैं।

आचार्य मम्मट ने अलंकार की परिभाषा इस प्रकार की है—

उपकुर्वन्ति तं संतं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्ते ऽनुप्रासोपमादयः ॥

अर्थात् शब्द तथा अर्थ रूपी अङ्गों की शोभा के द्वारा काव्य में विद्यमान रस के उपकारक (रस का उत्कर्ष बढ़ाने वाले) अलंकार कहे जाते हैं। ये कण्ठादि अंगों की शोभा बढ़ाकर शरीरी (आत्मा) की भी परम्परा से उत्कर्ष बढ़ाने वाले हार आदि भूषणों के समान होते हैं। अलंकार शब्द का अर्थ भी इसी प्रकार किया जाता है—

अलंकरोति शब्दार्थौ इति अलंकारः।
अलंक्रियते ऽ नेन इति अलंकारः ॥

जैसा बताया जा चुका है, अलंकार तीन प्रकार के होते हैं।

(i) **शब्दालंकार**—जो शब्दों की शोभा बढ़ाते हैं। इनके अन्तर्गत अनुप्रास और यमक आते हैं।

(ii) **अर्थालङ्कार**—जो अर्थ की शोभा बढ़ाते हैं। इनके अन्तर्गत उपमा रूपक आदि पचासों अलंकार होते हैं।

(iii) **उभयालङ्कार**—जो शब्द और अर्थ दोनों की शोभा बढ़ाते हैं—यथा-श्लेष।

शब्दालङ्कार

१ **अनुप्रास** (i) अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्। (विश्वनाथ)
(ii) वर्णसाम्यमनुप्रासः (मम्मट)

अर्थात् स्वर की समानता न होने पर भी शब्द—पद, पदांश की आवृत्ति को अनुप्रास कहते हैं। केवल स्वरों की समानता होने पर अनुप्रास नहीं माना जाता। अनुप्रास शब्द का अर्थ है—

"रसाद्यनुगतः प्रकृष्टो न्यासः अनुप्रासः"

अर्थात् रसभाव आदि के अनुगत न्यास को अनुप्रास कहते हैं। इसी की व्याख्या करते हुए मम्मट ने अपनी वृत्ति में लिखा है—स्वरवैसादृश्येऽपि व्यञ्जन सदृशत्वं वर्णसाम्यम्। यथा—

लताकुञ्जं गुञ्जन् मदवदलिपुञ्जं चपलयन् ।
समालिङ्गन्नङ्गं द्रुततर मनङ्गं प्रबलयन् ।।
मरुन् मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन् ।
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि ।।

यहाँ पर कुञ्जं, गुञ्जन, पुञ्जं में ञ् तथा ज के संयुक्तरूप की आवृत्ति है। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति में ङ् तथा ग की आवृत्ति है । तीसरी में मन्दं मन्दं और अरविन्दं में द की आवृत्ति है। इसी प्रकार चौथी पंक्ति में न तथा द की आवृत्ति तथा दिशि की आवृत्ति है । जहाँ कोई आवृत्ति एक बार होती है तो इसे छेकानुप्रास कहते हैं जैसे दिशि दिशि में, जब यह आवृत्ति अधिक बार होती है तो इसे वृत्यनुप्रास कहते हैं। तीसरी पंक्ति में वृत्यनुप्रास है।

२ यमक अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः ।

अर्थात् सार्थक पद होने पर अलग अलग अर्थ वाले वर्ण समुदाय की पुनः पुनः आवृत्ति हो तो यमक अलंकार होता है। इसके अनुसार यमक चार तरह का हो सकता है—

(i) जिसमें पहला पद सार्थक यथा दूसरा अनर्थक हो।
(ii) जिसमें पहला पद अनर्थक तथा दूसरा सार्थक हो।
(iii) दोनों सार्थक हों।
(iv) दोनों सार्थक होने पर उनके अर्थ अलग अलग हों।

यथा—(i) नव पलाशपलाश वनं पुरःस्फुट पराग परागत पंकजम् ।
मृदुलतान्त लतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ।।

यहाँ पलाश के भिन्न अर्थ हैं—

पहला पलाश — पत्ता
दूसरा पलाश — ढाक

इसी प्रकार प्रथम पराग सार्थक है, दूसरा निरर्थक है। तृतीय चरण में प्रथम लतान्त पद निरर्थक है, दूसरा लतान्त पद सार्थक है, चतुर्थ चरण में सुरभि पद की आवृति मानने पर पहले का अर्थ वसन्त तथा दूसरे का अर्थ सुगन्धित है और रभिसु की आवृत्ति मानने पर दोनों पद निरर्थक हैं।

(ii) विनायमेनोनयताऽसुखादिना, विनायमेनोनयता सुखादिना ।
महाजनोऽदीयत मान सादरं, महाजनो दीयतमानसादरम् ।।

रावण द्वारा घायल जटायु को देखकर लक्ष्मण राम से कहते हैं—

प्राणों के भक्षक यमराज ने इस दुर्जन को हटाने वाले महात्म पक्षिराज जटायु को निरपराध ही सुखादि के भोग से रहित करके और उसके रक्षकों को कष्ट पहुँचा कर शीघ्र ही निजधाम की ओर ले जाते समय (मन और आत्मा से अलग कर दिया) मार डाला।

यहाँ पहला चरण द्वितीय में, तथा तीसरा चौथे में दोहराया गया है। यहाँ वस्तुतः अनेक पदों की आवृत्ति हुई है। पदच्छेद करने पर इनके भिन्न भिन्न अर्थ स्पष्ट हो जायेंगे। यथा—

चरण (i) विनायमेनो नयता — विना+अयम्+एनो+नयता।
,, (ii) विनायमेनो नयता — विना+यमेन+ऊनयता।
, (ii) महाजनोऽदीयत -- महाजनः+अदीयत।
,, (iv) महाजनोऽदीयत — महाज+नोदी+यत।

अतः यहाँ यमक अङ्कार है।

(iii) महौजसो मानधना धनार्चिता, धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
न संहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्।।

किरात १११६

यहाँ वनेचर दुर्योधन के विषय में युधिष्ठिर से कहता है—बहुत ओजस्वी, मान को ही धन मानने वाले धन से सम्मानित संग्राम में यश प्राप्त करने वाले धनुर्धर न परस्पर बहुत मिले हुए और न भिन्न लक्ष्य रखने वाले वीर प्राणों से भी दुर्योधन का हित करना चाहते हैं। यहां पर मानधना—धनार्चिता में धना की पुनरुक्ति है पर अर्थ भिन्न हैं—पहले धन का अर्थ—सर्वस्व, दूसरे का केवल सम्पत्ति है।

(३) श्लेष

शिलष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।

सा० दर्पण

अर्थात् एक ही शब्दावलि होने पर यदि किसी पद या पदों के अर्थ अनेक हों तो श्लेप अलङ्कार होता है। श्लेष शब्द तथा अर्थ दोनों अलङ्कारों में आता है। यदि किसी पर्याय द्वारा शब्द के परिवर्तन करने पर भी श्लेष बना रहे दो यह अर्था-

लङ्कार होता है पर यदि शब्द के बदलने से अलंकार नष्ट हो जाय तो शब्दालंकार होता है।

यथा—(i) अहं च त्वञ्च राजेन्द्र लोकनाथावुभावपि।
बहुव्रीहिरहं राजन्, षष्ठी तत्पुरुषो भवान् ॥

कोई निर्धन राज दरबार में आकर कहता है कि हे राजन् ! मैं और आप दोनों लोकनाथ हैं केवल अन्तर इतना है कि मैं लोकनाथ बहुव्रीहि समास की दृष्टि से हूँ—लोकः एव नाथः यस्य (अर्थात् लोक ही जिसका स्वामी या पोषक हो।) और आप लोकनाथ षष्ठी तत्पुरुष की दृष्टि से हैं—लोकस्य नाथः—लोक के स्वामी। यह अर्थालङ्कार है क्योंकि यहाँ लोक के स्थान में जन भी कर दें तो भी अलङ्कार रहेगा।

(ii) पृथुकार्तस्वर पात्रं भूषित निःशेष परिजनं देव।
विलसत्करेणु गहनं सम्प्रति सममावयोःसदनम् ॥

कोई दरिद्र आगन्तुक धन की आशा से दानी राजा की प्रशंसा करते हुए प्रकारान्तर से अपनी निर्धनता भी व्यक्त कर रहा है।—कहता है—हे देव ! संप्रति आवयोः पृथुकार्तस्वर पात्रं भूषित निः शेष परिजनं विलसत् करेणु गहनं सदनं समम्। यहाँ पर दोनों के सदनों की समानता निम्नलिखित विशेषण पदों के दो अर्थ करने पर ही सम्भव है।

१ पृथुकार्तस्वरपात्रम्—राजा के सदन के पक्ष में उसका अर्थ विशाल स्वर्ण पात्र है।

२ पृथुकार्तस्वरपात्रम्—भिक्षुक के सदन के पक्ष में पृथुकानां आर्तस्वराणां पात्रम् पृथुक-बच्चों के आर्तस्वराणाम् रोने का पात्र

३ भूषित निःशेष परिजनम्—राजा के पक्ष में सभी परिजन जहां अलंकृत हैं।
दीन के पक्ष में सभी कुटुम्बी जहाँ भूमि पर सोते हैं। (भू+उषित)

४ विलसत्करेणुगहनं— राजा के पक्ष में जहां अनेक हथिनियों से घर भरा है। दरिद्र के पक्ष में—चूहों के रेणु से जो गहन है।
बिल—चूहों के बिल

अर्थालङ्कार

१ उपमा

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमाद्वयोः । साहित्यदर्पण

शालिग्राम शास्त्री ने इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है—

वाक्य में दो पदार्थों (उपमान और उपमेय) के वैधर्म्यरहित वाच्य सादृश्य को उपमा कहते हैं। इसका अभिप्राय है कि जब उपमान और उपमेय में पूर्ण समानता हो—दोनों में कोई वैधर्म्य (न्यूनता या अधिकता न हो और वह समानता किसी वाचक पद (सम, इव, तुल्य वत्) के द्वारा कही गयी हो, तो उपमा अलंकार होता है। इस प्रकार उपमा में चार तत्व होते हैं।—

उपमान—उपमेय—साधारणधर्म—तथा वाचक पद।

जब किसी जगह ये सभी वर्तमान होते हैं तो पूर्ण उपमा होती है अन्यथा किसी एक या दो के न होने पर लुप्तोपमा कही जाती है।

यथा— **मधुरः सुधावदधरः पल्लवतुल्योऽति पेलवः पाणिः।**
चकित मृगलोचनाभ्यां सदृशीचपले च लोचने तस्याः॥

इस श्लोक में किसी नायिका के अधर, कर तथा नेत्रों का वर्णन किया गया है। उसका अधर सुधा के समान मधुर है, हाथ पल्लव के समान कोमल है और दोनों नेत्र भयभीत मृग के नेत्रों के समान चञ्चल हैं। इसके चारों तत्वों का विवेचन इस प्रकार है—

(i) **उपमेय— उपमान— साधारणधर्म -- वाचक पद**
अधर— सुधा— माधुर्य वत्
(ii) पाणि— पल्लव— अतिपेलवत्व— तुल्य
(iii) दो नेत्र–भयभीत मृगी के नेत्र–चञ्चलता– सदृशी

दूसरा उदाहरण (ii) **क्षणात् प्रबोधमायाति लंध्यते तमसा पुनः।**
निर्वास्यतः प्रदीपस्य शिखेव जरतो मतिः॥

वृद्ध मनुष्य की बुद्धि बुझते हुए दीपक की लौ की भाँति क्षण में जग जाती है तथा क्षण में ही मन्द पड़ जाती है। यहाँ वृद्ध की बुद्धि उपमेय, दीपशिखा उपमान, मन्द होना या जगना धर्म और इव वाचक पद है।

तीसरा उदाहरण—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥ रघु० ६/६७

यह श्लोक रघुवंश से लिया गया है। इसमें इन्दुमती द्वारा स्वयम्वर में आये राजाओं के सामने जाने का वर्णन किया गया है। राजमार्ग में रात्रि के समय चलती हुई दीप शिखा के सामने से जो भी भवन पीछे रह जाता है वही मलिन हो जाता है। इसी प्रकार इन्दुमती जिस जिस राजा के सम्मुख होकर निकलती है वही उसके आगे बढ़ने पर मलिन (विवर्ण) मुख हो जाता है। अर्थात् राजा उदास हो जाता है। यहाँ उपमेय—पतिंवरा सा, तथा भूमिपालः, उपमान दीपशिखा, नरेन्द्र मार्गट्ट साधारणधर्म—विवर्णभावं, वाचक पद—इव हैं।

चौथा उदा० कालिदास उपमा के लिए प्रसिद्ध है अतः उनकी लिखी एक अन्य उपमा दी जा रही है।

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपा मध्यगतेव संध्या॥ रघु० २/२०

मार्ग में दिलीप द्वारा आगे की गयी और उनकी पटरानी सुदक्षिणा के द्वारा अगवानी की गयी वह नन्दिनी (गाय) सुदक्षिणा और दिलीप के बीच दिन और रात के बीच संध्या की भाँति सुशोभित हुई।

उपमेय	—	उपमान	—	साधारणधर्म	वाचक पद
नंदिनी	—	संध्या	—	कान्तियुक्त होना	इव

(२) रूपक

रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे। सा० दर्पण

निषेध रहित उपमेय में भेद रहित उपमान के आरोप को रूपक कहते हैं। अर्थात् जहाँ उपमेय में भेद रहित उपमान का आरोप किया जाय और उपमेय का निषेध करने वाला कोई शब्द न हो वहाँ रूपक अलङ्कार होता है।

यथा—(i) रावणावग्रह क्लान्तमिति वागमृतेन सः।
अभिवृष्य मरुत् सस्यं कृष्णमेघस्तिरोदधे॥

जिस प्रकार अनावृष्टि (सूखे) से मुर्झाई हुई फसल को अमृत (जल) से सींचकर मेघ छिप जाता है, उसी तरह रावण रूपी (अनावृष्टि) से दुःखी देवताओं को (सस्य रूपी) अपने अवतार की अमृतवाणी सुनाकर कृष्ण (विष्णु) रूपी मेघ अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार रावण में अनावृष्टि का, वाणी में अमृत तथा देवताओं में सस्य का आरोप किया गया है।

उपमा और रूपक में स्पष्ट भेद है। उपमा में वाचक पद उपमेय को उपमान से अलग करता है। जैसे चन्द्र के समान मुख, यह उपमा हुई। रूपक में उपमान और उपमेय का अभेद रहता है जैसे—मुखचन्द्र, चन्द्रमुख आदि।

(ii) दासे कृतागसि भवेदुचितः प्रभूणां,
पादप्रहार इति सुन्दरि नाऽस्मि दूये।
उद्यत कठोर पुलकांकुर कण्टकाग्रै,
र्यत् खिद्यते मृदुपदं न नु सा व्यथा मे॥

अर्थात् यदि कोई सेवक अपराध करता है तो उसे स्वामी द्वारा पाद प्रहार तो उचित ही है, उसका मुझे कोई भी कष्ट नहीं पर तुम्हारे पैर के स्पर्श से मेरे शरीर में उदित हुए रोमांचरूप कठोर काँटों से जो तुम्हारा चरण खिन्न हो रहा है उसका मुझे दुःख है। यहाँ रोमांच में काँटों का अभेद है।

(iii) निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतम्-फणाभृतां छादनमेकमोकसः।
जगत्त्रयैक स्थपतिस्त्वमुच्चकैः अहीश्वरस्तम्भ शिरःसुभूतलम्॥

शिशुपाल वध-१/३४

यहाँ पृथ्वी को छत के रूप में और पाताल को घर के रूप में दिखाया गया है। भगवान् विष्णु एक कुशल शिल्पी के रूप में दिखाये गये हैं। जैसे कोई कुशल शिल्पी प्रासाद के आवरण को उठाकर स्तम्भों पर रख दे उसी प्रकार तीनों लोकों के निर्माता विष्णु ने पृथ्वी को पाताल का आवरण वनाकर शेष के फणों पर रख दिया।

३ उत्प्रेक्षा

भवेत् संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना। सा० दर्पण

जहाँ उपमेय की उपमान के रूप में संभावना की जाती है, वहाँ उत्प्रेक्षा-लंकार होता है।

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।

मम्मट

प्रकृत की (अर्थात् उपमेय) सम (उपमान) के साथ सम्भावना ही उत्प्रेक्षा कही जातीं है। उत्प्रेक्षा तीन प्रकार की होती है।

हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा, वस्तूत्प्रेक्षा।

यथा—(i) हेतूत्प्रेक्षा

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां,
भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द,
विश्लेष दुःखादिव बद्धमौनम् ॥

रघु १३/३३

वनवास की अवधि समाप्त करके राम जब लौटते हैं तो सीता से कहते हैं—"देखो यह वही स्थल है जहाँ तुमको खोजते खोजते मैंने तुम्हारा एक नूपुर देखा था। उस समय वह नूपुर मौन था मानो वह तुम्हारे चरणकमल से अलग होने के वियोग में दुःख से दुःखी होकर मौन हो गया था। नूपुर एक जड़ पदार्थ होता है, उसमें चेतना नहीं होती पर उसमें चेतना की परिकल्पना करके उसमें मौन होने का कारण उत्प्रेक्षित किया गया है। अतः यह हेतूत्प्रेक्षा है।

(ii) लिम्पन्तीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत् पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ॥

मृच्छकटिक

वर्षा काल की रात्रि के समय अंधेरा अंगों को लीप सा रहा है। अर्थात् अलग अलग अङ्ग नहीं दिखायी देते। आकाश मानो काजल की बरसा कर रहा है तथा दुर्जन की सेवा के सामान दृष्टि विफल सी हो रही है। उपमा और उत्प्रेक्षा दोनों में अन्तर यह है कि उपमा में इव शब्द उपमान और उपमेय की समानता बतलाता है जबकि उत्प्रेक्षा में वह केवल संभावना करता है। उत्प्रेक्षा में अधिकतर मन्ये, शङ्के, ध्रुवं, नूनं, प्रायः शब्द आते हैं। इनका प्रयोग उपमा में नहीं होता। इव शब्द दोनों में आता है किन्तु इसकी सबसे बड़ी भेदक पहचान यह है कि उत्प्रेक्षा में यह अधिकांश क्रिया पद के साथ आता है (लिम्पन्तीव तमोऽङ्गानि, वर्षतीवाञ्जनं नभः) उपमा में यह अन्य शब्दों के साथ आता है। उपमा का मूल समानता है किन्तु उत्प्रेक्षा का प्राण सम्भावना।

(iii) फलोत्प्रेक्षा---अनारतं तेनपदेषु लम्भिता विभज्य सम्यग् विनियोगसत् क्रियाः।
फलन्त्युपायाः पतिबृंहतायतीरुपेत्य संघर्षमिवार्य सम्पदः।

किरात १/१५

अर्थात् दुर्योधन के द्वारा उपादेय वस्तुओं का भली भांति विभाग करके समुचित प्रयोग रूप सत्कार को प्राप्त कराये गये साम आदि उपाय मानो परस्पर स्पर्द्धा करके बढ़ी हुई भविष्य वाली सम्पन्न समृद्धियां सदा फलती हैं।

(iv) उन्मेषं यो मम न सहते जाति वैरी निशाया—
भिन्दोरिन्दीवर दलदृशा तस्य सौंदर्य—दर्पः ।
नीतः शान्तिं प्रसभमनया वक्त्रकान्त्येति हर्षात्,
लग्ना मन्ये ललिततनुते पादयोः पद्मलक्ष्मीः ॥

जो चन्द्र मेरा जन्म वैरी है और रात्रि में भी मेरे विकास को सहन नहीं करता, पर इस कमलनयनी ने अपनी मुखकान्ति से उस (चन्द्रमा) के सौन्दर्याभिमान को नष्ट कर दिया है । अतः हे सुन्दर शरीर वाली प्रियतमे ! कमल की लक्ष्मी प्रसन्नता से मानो तुम्हारे चरणों में लिपट गयी है । यह हेतूत्प्रेक्षा है ।

४ अतिशयोक्ति

सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते ।

साहित्य दर्पण

अर्थात् अध्यवसाय के सिद्ध होने पर अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है । अध्यवसाय से तात्पर्य है कि जहाँ उपमेय का निगरण कर उपमान के साथ अभेद बताया जाय । यही अध्यवसाय उत्प्रेक्षा में उपमान के केवल सम्भावनात्मक होने से साध्य (असिद्ध) रहता है किन्तु अतिशयोक्ति में अप्रस्तुत की निश्चित प्रतीति होती है, अतः यह अध्यवसाय सिद्ध होता है ।

यथा–(i) कथमुपरिकलापिनः कलापो विलसति तस्यतलेऽष्टमीन्दुखण्डम् ।
कुवलय युगलं ततो विलोलं तिलकुसुमं तदधः प्रवालमस्मात् ॥

किसी रमणी को देखकर कोई कहता है, "कैसा आश्चर्य है कि सबसे ऊपर मोर की पूँछ है (कलाप) । उसके नीचे अष्टमी का चन्द्रमा विराजमान है । उसके भी नीचे दो चञ्चल नीले कमल हैं जिनके नीचे तिल का फूल तथा उसकी नीचे विद्रुम (मूँगा) का खण्ड सुशोभित है । यहाँ रमणी के केशपाश मोर की पूँछ के रूप में, उसके नेत्र नीले कमलों के रूप में, नाक तिल पुष्प के रूप में तथा अधर मूँगे के खण्ड के रूप में दिखाये गये हैं ।

(ii) कमलमनम्भसि,कमले च कुवलये तानिकनकलतिकायाम् ।
सा च सुकुमार सुभगेत्युत्पात परम्परा केयम् ॥

अपनी प्रियतमा को देखकर नायक उसकी सखी से कहता है—

यह कौन सी अनोखी परम्परा है कि विना जल के कमल है—(नायिका का मुख), उसमें भी दो नील कमल हैं (मुख में दो नेत्र), वे नील कमल तथा वह कमल एक लता में लगे हैं अतः यह सोने की लता (नायिका का शरीर) भी सुकुमार और सुन्दर है।

अकालजलदाऽऽवली किरतु नाम मुक्तावली।
रपर्वणि विधुन्तुदस्नुदतु हन्त शीत द्युतिम्॥

इदन्तु महदद्भुतं यदनपायि विद्युल्लता।
ऽवलम्बि कनकाचलद्वयमधो मुखं नृत्यति॥

आश्चर्य है कि असमय में हुई मेघमाला मोती बरसाये और पूर्णिमा न होने पर भी राहु चन्द्रमा को ग्रसे तथा स्थिर रहने वाली विद्युल्लता में लटके हुए उल्टे मुंह दो कनक के पर्वत हिल रहे हों। वस्तुतः यहाँ स्नान करके तथा अपने केशों को खोलकर एक युवती सूर्य के सम्मुख खड़ी है। उसके लटके केशों से (जो अकाल ही आयी मेघमालारूप हैं।) बूंदें गिर रही हैं और वही केश राहु की भाँति उसके गौरवर्ण रूप मुख (चन्द्र) को ग्रस रहे हैं। वह स्वयं लता के समान है, उसके झुकते ही उसके स्तन भी झुक गये हैं। अतः वे ही दो हिलते हुए कनक पर्वत हैं।

(५) सन्देह

सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः।

अर्थात् उपमेय में उपमान के संशय को सन्देह कहते हैं। यह कवि की प्रतिभा से उत्पन्न होता है और सामान्य रूप से तीन तरह का होता है। (i) शुद्ध सन्देह (ii) निश्चयगर्भ (iii) निश्चयान्त।

मम्मट के अनुसार यह केवल दो प्रकार का होता है—

(i) **ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः।**

जिसमें उपमेय और उपमान के भेद का कथन हो।

(ii) जिसमें उपमेय और उपमान के भेद का कथन न हो।

भेद कथन का उदाहरण—

अयं मार्तण्डः किं ? स खलु तुरगैः सप्तभिरितः।
कृशानुः किं ? सर्वाः प्रसरति दिशो नैष नियतम्॥

कृतान्तः किं ? साक्षाद्य महिष वहनोऽसाविति पुनः ।
समालोक्याजौ त्वां विदधति विकल्पान् प्रतिभटाः ।।

यहाँ शत्रु पक्ष के द्वारा एक राजा का वर्णन किया गया है ? वह कहता है— क्या यह सूर्य है ? नहीं यदि सूर्य होता तो उसके साथ सात घोड़े होते—वे नहीं हैं। तो क्या यह अग्नि है ? नहीं—अग्नि तो केवल ऊपर को उठती है—इसका तेज सभी दिशाओं में फैल रहा है। तब क्या यह यम है ? नहीं यम तो सदा भैंसे पर सवार होता है। तो फिर यह कौन है ? इसका निर्णय नहीं हो पा रहा अतः यहाँ सन्देह अलंकार है।

भेद न कहने का उदाहरण—

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः ।
शृंगारैकरसः स्वयं न मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।।
वेदाभ्यास जडः कथं नु विषय व्यावृत्त कौतूहलो ।
निर्मातुं प्रभवेन्मनो हरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ।।

कालिदास

यह विक्रमोर्वशीयं नाटक से लिया गया है। राजा उर्वशी को देखकर कहता है—ऐसा सुन्दर रूप कोई तपस्वी नहीं उत्पन्न कर सकता । इसे बनाने के लिए या तो चाँदनी देने वाला चन्द्रमा ही स्वयं ब्रह्मा बना होगा या शृंगार रस के देवता स्वयं कामदेव ने इसे बनाया होगा, या फिर वसन्त ने ही इसे रचा होगा, अन्यथा वेद का अभ्यास करते करते पथराये हुए और भोग विलास से दूर रहने वाले ये वृद्ध ऋषि ऐसा सुन्दर रूप कैसे उत्पन्न कर सकते थे। इस उदाहरण में उर्वशी के बनाने वाले के लिए चन्द्र, कामदेव और वसन्त पर सन्देह किया गया है। पर उन्हें ब्रह्मा से अलग नहीं किया गया अतः यह भेद न कहने का उदाहरण है। विश्वनाथ ने निश्चयान्त का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

किं तावद् सरसि सरोजमेतदारा
दाहोस्विन् मुखमवभासते तरुण्याः ।
संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चिद्,
विब्बोकैर्वक सहवासिनां परोक्षैः ।।

पहले कोई शंका करता है कि तालाब में क्या कमल है ? या किसी रमणी का मुख है, पर थोड़ी ही देर में यह देखकर कि यह तो कटाक्ष और विलास दिखा रहा है, यह निश्चित किया कि यह कमल नहीं हो सकता, यह युवती का मुख ही है।

६. भ्रान्तिमान्

साम्याद् अतस्मिन् तद्बुद्धिः भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः ।

सा० दर्पण

भ्रान्तिमान् अन्यसंवित् तत्तुल्यदर्शने ।

कारिका १६६ मम्मट

अर्थात् जहाँ समानता के कारण किसी चीज़ के न होने पर भी उसकी परिकल्पना करली जाय, अथवा किसी पदार्थ में किसी दूसरे पदार्थ की निश्चयात्मक मिथ्या ज्ञान की स्थिति मान ली जाय तो भ्रान्तिमान अलंकार होता है। यहाँ ध्यान देने की वात यह है कि रस्सी में सर्प के मिथ्या ज्ञान की परिकल्पना होती है उसे केवल भ्रान्ति या भ्रम कहते हैं। वहां कोई अलंकार नहीं होता, अलंकार तो कवि की प्रतिमा से निकलता है। यथा—

(i) मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधो वल्लवाः ।
कर्णे कैरवशंकया कुवलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि ॥
कर्कन्धू फलमुच्चिनोति शबरी मुक्ताफला शंकया ।
सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका ॥

अर्थात् चन्द्रमा की धनी चाँदनी किसके मन में भ्रम नहीं उत्पन्न करती? देखो भोले भाले ग्वाले इस चाँदनी को वहता हुआ दूध समझकर थनों के नीचे घड़े लगा रहे हैं, वे स्त्रियाँ जो सफेदी में छिपना चाहती है—(शुक्लाभिसारिका) उसे कुमुद के पुष्प समझकर नीले कमल पहन रहीं हैं तथा भीलों की स्त्रियाँ मोती के धोखे वेर वटोर रहीं हैं।

(ii) कपाले मार्जारः पय इति करान् लेढि शशिनः ।
तरुच्छिद्र प्रोतान् विसमिति करी संकलयति ॥
रतान्ते तल्पस्थान् हरति वनिताप्यंशुकमिति ।
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥

अर्थात् खप्पर में पड़ी हुई चन्द्र की किरणों को विल्ली दूध समझकर चाट रही है, वृक्षों के छेदों (पत्तों के बीच) से निकलती हुई चन्द्रमा की किरणों को हाथी कमल नाल समझकर इकठ्ठा करना चाहता है। कोई स्त्री सुरत के पश्चात् पलंग पर फैली किरणों को चादर समझकर समेटती है। इस तरह चन्द्रमा अपनी चाँदनी से सबको भ्रमित करके परेशान कर रहा है।

सन्देह और भ्रान्ति में सीधा सा भेद यह है कि सन्देह में तो देखने वाले के ज्ञान में निश्चय नहीं हो पाता कि वह क्या देखता है। उसका मन दोनों ओर चलता है, कि अमुक वस्तु यह है कि वह है—पर भ्रान्ति में चित्त की वृत्ति अप्रस्तुत कोटि पर ही ऐसी वैठ जाती है कि मिथ्या को सत्य मानकर आचरण करती है।

(iii) महाराज ! श्रीमन् जगति यशसा ते धवलिते।
पयः पारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते ॥
कपर्दी कैलाशं करिवरमथायं कुलिशभृत्।
कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना ॥

हे महाराज ! आपके यश की वदौलत यह संसार ही सफेद हो गया है, अतः इस समय जब सभी सफेद हो गये हैं तो विष्णु भगवान् क्षीरसागर को, शिवजी अपने कैलास पर्वत को तथा इन्द्र अपने ऐरावत हाथी को, राहु चन्द्र को तथा ब्रह्मा जी अपने हंस को खोज रहे हैं। यहाँ कवि के अनुसार विष्णु, इन्द्र आदि को भ्रान्ति हो गयी है अतः अपनी अपनी चीजें खोज रहे हैं।

७. व्यतिरेक

आधिक्यमुपमेयस्य–उपमानात्–न्यूनताथवा–व्यतिरेकः।

विश्वनाथ

उपमान का अपेक्षा उपमेय का यदि अधिकता से वर्णन हो तो व्यतिरेक अलंकार होता है। उपमान की अपेक्षा उपमेय की न्यूनता बताने में भी यही अलंकार होता है। पर मम्मट उपमेय की न्यूनता को व्यतिरेक नहीं मानते—वे कहते हैं—

उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।

अर्थात् उपमान से यदि कोई अधिकता रखता है तो व्यतिरेक होगा। यह अलंकार मम्मट के अनुसार २४ तरह तथा विश्वनाथ के अनुसार ४८ तरह का होता है। यहाँ इसका सामान्य रूप दिखाया जा रहा है।

यथा—(i) क्षीणः क्षीणोऽपि शशी भूयो भूयोऽभिवर्धते सत्यम्।
विरम, प्रसीद सुन्दरि, यौवनमनिर्वाति यातु तु ॥

अर्थात् हे सुन्दरि ! तुम अब मान करना छोड़ दो और मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि चन्द्रमा बार बार क्षीण होकर भी पुनः पूर्ण हो जाता है, पर यौवन एक बार जाकर फिर नहीं लौटता। यहाँ यौवन में बार बार परिवर्तन न होना ही चन्द्र के गुण से अधिक बताया गया है।

(ii) चन्द्रगता पद्मगुणान् न भुंक्ते-पद्माश्रिताचान्द्रमसीमभिरस्याम् ।
उमामुखन्तु पतिपद्मलोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ।।

कुमारसम्भव १/४३

यह श्लोक कुमार सम्भव से लिया गया है। इसमें पार्वती के सौन्दर्य पर टीका करते हुए कालिदास ने कहा है कि लक्ष्मी जी पार्वती के जन्म के पहले जब रात्रि समय चन्द्रमा में वास करतीं थीं तो उन्हें शीतलता मिलती थी पर कमल की कोमलता नहीं। पर जब वे दिन में कमल में वास करती थीं तो चाँद की शीतलता न मिलती थी। पर जब से वे उमा के मुख में वास करने लगीं तब से उन्हें चन्द्र और कमल दोनों का आनन्द मिलने लगा। यहाँ पार्वती के मुख उपमेय की शोभा को उपमान चन्द्र और कमल दोनों से बढ़कर बताया गया है। अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार हैं।

८. अपह्नुति

प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः

साहित्य दर्पण

अर्थात् उपमेय (प्रकृत) का निषेध करके दूसरे की (उपमान) स्थापना करना ही अपह्नुति अलंकार होता है। इसको मम्मट ने निम्नलिखित रीति से कहा हैं—

"प्रकृतं यन्निषिध्य अन्यत् साध्यते सात्वपह्नुतिः"

अर्थात् उपमेय का निषेध करके उपमान को सत्यता से स्थापित करना ही अपह्नुति अलंकार होता है। यथा—

(i) अवाप्तः प्रागल्भ्यं परिणत रुचः शैलतनये।
कलङ्को नैवायं विलसति शशाङ्कस्य वपुषि ।।
अमुष्येयं मन्ये विगलदमृतस्यन्द शिशिरे।
रतिश्रान्ता शेते रजनि रमणी गाढमुरसि ।।

शिवजी पार्वती से कहते हैं, हे शैलतनया! पूर्णचन्द्र में बढ़ा हुआ यह चन्द्रमा का कलंक नहीं है, वल्कि मुझे लगता है कि यह रजनी रूपी रमणी है जो सुरति से थक गयी है। यहाँ उपमेय रूपी कलङ्क का निषेध करके उपमानभूत रात्रि की स्थापना की गयी है।

(ii) नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः।
नायं शशी, कुण्डलिनः फणीन्द्रो नासौकलङ्कः शयितोमुरारिः ।।

अर्थात् यह आकाश नहीं है, वल्कि समुद्र है, इसमें ये नक्षत्र नहीं हैं वल्कि समुद्र का फेन मण्डल है, यह चन्द्र नहीं है, वल्कि कुण्डली मार कर वैठे हुए शेषनाग हैं। यह कलङ्क नहीं है वल्कि शेषनाग के ऊपर शयन करते हुए भगवान् विष्णु हैं। इस उदाहरण में प्रस्तुत उपमेय गगनमण्डल, तारे, चन्द्रमा और कलङ्क आदि का निषेध करके समुद्र आदि उपमानों की स्थापना की गयी हैं। अतः यहाँ अपह्नुति अलंकार है। अपह्नुति का तात्पर्य छिपाना होता है। इसे दो तरह से किया जा सकता है पहले उपमेय का निषेध करके उपमान की स्थापना की जाय अथवा पहले उपमान की स्थापना कर उपमेय का निषेध किया जाय। यहाँ पहले प्रकार की अपह्नुति दिखायी गयी हैं।

९. प्रतिवस्तूपमा

प्रतिवस्तूपमा सा स्याद् वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः।
एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक्॥

साहित्य दर्पण

अर्थात् जिन दो वाक्यार्थों में सादृश्य प्रतीयमान होता हो, वह वाच्य न हो—उसमें यदि एक ही साधारण धर्म को अलग अलग शब्दों से कहा जाय तो प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। यथा—

विमल एव रविर्विशदः शशी प्रकृतिशोभन एव हि दर्पणः।
शिवगिरिः शिवहास सहोदरः सहज सुन्दर एव हि सज्जनः॥

सूर्य निर्मल है, चन्द्रमा भी विशद है और दर्पण तो स्वभाव से ही सुन्दर है। कैलास शिवजी के हास के समान शुभ्र है और सज्जन भी स्वभाव से ही सुन्दर होते हैं। प्रतिवस्तूपमा में उपमा से तात्पर्य साधारण धर्म से लिया जाता है यद्यपि साहित्य दर्पणकार इसे सादृश्य मानते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में विमल, विशद आदि पदों का भाव लगभग एक ही है जो अलग अलग पदों द्वारा व्यक्त किया गया है। प्रतिवस्तूपमा दो प्रकार की होती है—केवल और माला। यह उदाहरण माला का है। कालिदास ने अपने शाकुन्तल में माला का एक सुन्दर उदाहरण दिया है—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापिरम्यं,
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्मलक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनाऽपि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाऽकृतीनाम्॥

अर्थात् कमल का फूल शिवार मे लपटा हुआ भी अच्छा लगता है, चन्द्र का कलङ्क उसकी शोभा को और बढ़ाता है, इसी प्रकार यह शकुन्तला वल्कल पहने भी अच्छी लगती है। सच है अच्छी आकृति के लिए कुछ भी शृंगार का काम दे सकता है। यहाँ कमल, चन्द्र और शकुन्तला की शोभा एक ही रीति से बढ़ती दिखायी गयी है।

केवल रूप का उदाहरण

(i) मानुषीभ्यः कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः।
न प्रभातरत्नं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ॥

यह रूप मानवी आकृति से कैसे पैदा हो सकता है, प्रातः को छोड़कर और कोई पृथ्वी से प्रकाश नहीं फैला सकता।

(ii) दैवीभावं गमिता परिवाद पदं कथं भजत्वेषा ?
न खलु परिभोग्ययोग्यं दैवरूपांकितं रत्नम् ॥

अर्थात् देवी भाव को प्राप्त यह रानी (पटरानी होकर) सामान्य स्त्री के परिवाद को कैसे समझ सकती है, देवता रूप से अंकित रत्न कभी सामान्य आभूषण के रूप में नहीं आता। इसमें उत्तरार्ध का वाक्यार्थ उपमान रूप है तथा पूर्वार्द्ध उपमेय रूप। इसमें जो धर्म पूर्वार्द्ध में अनौचित्य रूप 'कथं भजत्वेशा' से वही उत्तरार्द्ध में "न परिभोग्ययोग्यम्" से कहा गया है।

१०. दृष्टान्त

दष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

विश्वनाथ

दो वाक्यों में धर्म के साथ उपमान और उपमेय के बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव को दृष्टान्त अलंकार कहते हैं। दृष्टान्त का भाव है जिसमें उपमेय के वाक्यार्थ का निश्चय प्रमाणित या पुष्ट हो जाय। मम्मट ने लिखा है—

"दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्"

अर्थात् उपमान, उपमेय, उनके विशेषण और साधारण धर्म आदि के अलग अलग होते हुए भी उनमें जहाँ बिम्बप्रतिबिम्ब भाव दिखाया जाय वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। यथा—

(i) त्वयि दृष्ट एव तस्या निर्वातिमनो मनोभवज्वलितम्।
आलोके हि हिमांशोर्विकसति कुसुमं कुमुदवत्याः ॥

अर्थात् तुमको देखते ही उस नायिका का काम से जला हुआ मन शान्त हो गया; ठीक ही है चन्द्र को देखने पर ही कुमुद का फूल खिल जाता है।

(ii) अविदित गुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगत परिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला ॥

अच्छे कवि की उक्ति के गुण न ज्ञात होने पर भी वह केवल सुनने से कानों में मधुर धारा बहाती है. ठीक ऐसे ही मालती की माला दूर होते हुए भी (अर्थात् मालती का गन्ध चाहे न आता हो) अपनी ओर खींच लेती है। यहाँ उक्ति तथा मालती माला दोनों में आकर्षक होने का विम्बप्रतिविम्ब भाव दिखाया गया है।

(iii) कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्!
नक्षत्र ताराग्रह संकुलाऽपि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥

कालिदास—रघुवंश

अर्थात् राजा चाहे जितने हों पर इसी राजा के द्वारा भूमि नृपवती है, ठीक ऐसे ही तमाम ग्रह नक्षत्रों से भरी हुई रात्रि केवल चन्द्र से प्रकाशित होती है।

प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त में भेद

प्रतिवस्तूपमा में वस्तुप्रतिवस्तु भाव होता है अर्थात् केवल उपमान और उपमेय में ही सादृश्य दिखायी देता है क्योंकि दोनों का धर्म एक होता हैं, अर्थात् एक ही धर्म को अलग अलग शब्दों में व्यक्त किया जाता है। दृष्टान्त में उपमान, उपमेय तथा उनके धर्म सभी में विम्बप्रतिविम्ब भाव रहता है। इसीलिए मम्मट ने "सर्वेषां प्रतिविम्बनम्" कहा है। दृष्टान्त में भिन्न भिन्न धर्म होते हुए भी परस्पर सादृश्य के कारण उनका पृथक् पृथक् कथन होता है।

११. अर्थान्तरन्यास

सामान्य वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ॥
(साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः।)

सा० दर्पण

अर्थात् (१) जब विशेष से सामान्य अथवा (२) सामान्य से विशेष (३) कारण से कार्य (४) कार्य से कारण एक सा धर्म होने के कारण (साधर्म्य के द्वारा) अथवा धर्म के विपरीत होने से (वैधर्म्य के द्वारा) समर्थित होता है वहाँ अर्थान्तरन्यास

अलंकार होता है। साधर्म्य और वैधर्म्य के विभेद से यह आठ प्रकार का होता है। यथा—

(i) वृहत् सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा।। शिशुपाल वध

बड़े के सहारे से छोटों का भी कार्य हो जाता है। जैसे छोटी नदी बड़ी में मिलकर समुद्र तक पहुँच जाती है। यहाँ पूर्वार्द्ध में जो बात कही गयी है उसी का समर्थन उत्तरार्द्ध से किया गया है। उत्तरार्द्ध एक विशेष रूप है।

(ii) यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः।।

शिशुपाल २/१३

अर्थात् शब्द और अर्थ से संयत वचन बोलकर श्रीकृष्ण चुप हो गये, ठीक भी है महापुरुष स्वभाव से ही मितभाषी होते हैं। यहाँ पूर्वार्द्ध में एक विशेष बात कही गयी है, जिसका समर्थन उत्तरार्ध में सामान्य से किया गया है। दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास दोनों ही अलंकार यद्यपि समर्थ्य समर्थक भाव पर आश्रित होते हैं फिर भी उनमें मौलिक भेद है। दृष्टान्त में सामान्य का समर्थन सामान्य से या विशेष का समर्थन विशेष से होता है जबकि अर्थान्तिरन्यास में सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से होता है।

पृथ्वि स्थिरा भव भुजङ्गम धारयैनां।
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितयं दधीथाः।
दिक्कुञ्जराः कुरुत तत त्रितये दिधीर्षां।
देवः करोति हरकार्मुकमाततज्यम्।।

लक्ष्मण कहते हैं—हे पृथ्वी सम्हल जाओ, स्थिर हो जाओ, हे शेषनाग तुम पृथ्वी को रोके रहना, हे कूर्मराज, तुम इन दोनों को साधे रहना, हे दिग्गज तुम इन तीनों को सम्हालना क्योंकि इस समय श्री रामचन्द्र जी धनुष चढ़ा रहे हैं। यहाँ शिवजी के धनुष का चढ़ाना पृथ्वी आदि के स्थिर होने के लिए चेतना का समर्थक है।

वैधर्म्म का उदाहरण

इत्थमाराध्यमानोऽपि क्लिश्नाति भुवनत्रयम्।
शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः।

हे ब्रह्मा जी इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी वह दुष्ट तारकासुर तीनों भुवनों को क्लेश देता है ठीक ही है। दुर्जन प्रत्यपकार से शान्त होता है उपकार से नहीं। यहाँ उत्तरार्द्ध का सामान्य अर्थ पूर्वार्द्ध के विशेष वाक्यार्थ का समर्थक है।

(iv) गुणानामेव दौरात्म्याद् धुरि धुर्यों नियुज्यते।
असञ्जात किणस्कन्धः सुखं स्वपिति गौर्गलिः॥

गुणों के कारण ही अच्छा बैल अथवा कार्यकुशल पुरुष सदा जुए में जोता जाता है। दुष्ट बैल के कन्धे पर कभी दाग भी नहीं लगता। वह सदा आनन्द से सोता है। गुणवान पुरुष ही कार्य में पीसे जाते हैं, इस सामान्य बात का विशेष दुष्ट बैल के आचरण से समर्थन किया गया है। अतः यह वैधर्म्य का समर्थन है।

१२ तुल्ययोगिता

पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।
एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता॥

सा० दर्पण

अर्थात् केवल प्रकृत या अप्रकृत पदार्थों में एक धर्म के सम्वन्ध का नाम तुल्तयोगिता है। यह धर्म कहीं गुणरूप होता है कहीं क्रियारूप। मम्मट ने इसका लक्षण इस प्रकार कहा है—

नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता।

यहाँ नियत से अभिप्राय है प्रकृत या अप्रकृत। अर्थात् प्रकृत या अप्रकृत का एक धर्म के साथ सम्वन्ध होने पर तुल्ययोगिता अलङ्कार होता है। यथा—

(i) पाण्डुक्षामं वदनं हृदयं सरसं तवालसं च वपुः।
आवेदयति नितान्तं क्षेत्रियरोगं सखि हृदन्तः॥

हे सखि, तुम्हारा पीला पड़ा मुख, स्नेह से भरा हृदय तथा अलसाया हुआ शरीर तुम्हारे हृदय के असाध्य रोग को बतलाता है। यहाँ विरह के अनुभाव रूप मुंह का पीला पड़ना, हृदय में स्नेह होना और शरीर का आलस्य सभी वर्ण्य विषय के प्रकृत धर्म हैं जिनका आवेदयति क्रिया के साथ सम्वन्ध हैं। अतः यहाँ तुल्ययोगिता अलङ्कार है।

(ii) त्वदङ्गमार्दवं द्रष्टुः कस्य चित्ते न भासते ।
मालती शशभृल्लेखा कदलीनां कठोरता ।।

अरे सखि, तुम्हारे शरीर की मृदुता को देखने वाले किस प्राणी के हृदय में मालती, चन्द्रमा और कदलीदल में कठोरता नहीं दिखायी देती । यहाँ मालती आदि चीजें अप्रस्तुत हैं, जिनका सम्बन्ध शरीर की कोमलता के साथ दिखाया गया है । अतः यहाँ भी तुल्ययोगिता है ।

(iii) कुमुद कमल नील नीरजालि ललित विलासजुषोर्दृशोपुरः का ?
अमृतममृत रश्मिरम्बुजन्म प्रतिहतमेक पदे तवाननस्य ।।

नायक नायिका से कह रहा है कि सुन्दर हावभावों से पूर्ण तुम्हारे इन नेत्रों के सामने कुमुद, कमल, और नीलकमल कोई भी बराबरी नहीं कर सकता और तुम्हारे मुख के सामने तो अमृत, चन्द्र और कमल एकदम पराजित हैं । यहाँ पूर्वार्द्ध में नेत्र तथा उत्तरार्ध में मुख प्रकृत हैं, कुमद, कमल, चन्द्र आदि अप्रकृत हैं । इनका सम्बन्ध एक धर्म निन्दा रूप से अलग २ जोड़ा गया है । अतः तुल्ययोगिता अलंकार है ।

१३ दीपक

अप्रस्तुत प्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते ।
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् ।।

सा० दर्पण

यदि प्रस्तुत और अप्रस्तुत पदार्थों का एक धर्म से सम्बन्ध हो अथवा एक ही कारक अनेक क्रियाओं का होता है तो दीपक अलंकार होता है ।
मम्मट की परिभाषा इस प्रकार है :—

सकृद्वृत्तिस्तुधर्मस्य प्रकृता प्रकृतात्मनाम् ।
सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ।।

अर्थात् जहाँ उपमेय (प्रकृत) और उपमान (अप्रकृत) के क्रियादि रूप धर्मों का एक ही बार ग्रहण किया जाय वहाँ दीपक अलंकार होता है । दीपक दो प्रकार का होता है— क्रिया दीपक तथा कारक दीपक । जहाँ एक क्रिया कई कारकों के साथ क्रिया रूप धर्म निभाती है वहाँ क्रिया दीपक होता है, जहाँ अनेक क्रियाओं में एक ही कारक होता है तो कारक दीपक कहते हैं । यथा—

कृपणानां धनं, नागानां फणमणिः, केसराः सिंहासाम् ।
कुलबालिकानां स्तनाः कुतः स्पृश्यन्तेऽमृतानाम् ? ।।

कृपणों का धन, सर्पों की फणमणि, सिंहों के केसर (अयाल) तथा कुलीन लड़कियों के स्तन उनके विना मरे कैसे स्पर्श किये जा सकते हैं, अर्थात् नहीं किये जा सकते । यहाँ एक ही क्रिया के साथ अनेक कर्त्ता हैं अतः यह क्रिया दीपक का उदाहरण है ।

(ii) स्विद्यति, कूणति, वेल्लति, विचलति ।
निमिषति, विलोकयति तिर्यक् ।।
अन्तर्नन्दति, चुम्वितुमिच्छति ।
नव परिणया वधूः शयने ।।

अर्थात् नई वधू पलंग पर जाकर पसीने से तर हो जाती है (आलिंगन करने पर) संकुचित हो जाती है, मुंह फेर लेती है, करवट वदल लेती है, आँखें वन्द कर लेती है, पर वह अन्दर ही अन्दर पुलकित होकर तिरछा देखती है, चूमना चाहती है । यह कारक दीपक का उदाहरण है ।

दीपक और तुल्ययोगिता दोनों में उपमा गम्य होती है पर इनमें एक विशेष अन्तर है । तुल्ययोगिता में केवल प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत का एक धर्म से सम्वन्ध दिखाया जाता है जवकि दीपक में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों का एक धर्म से सम्वन्ध दिखाया जाता है ।

१४ विभावना

विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते । सा० दर्पण

यदि कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति हो तो विभावना अलङ्कार होता है । कारण के कहने अथवा न कहने के आधार पर यह दो प्रकार का होता है ।

क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना । मम्मट सूत्र १६१

अर्थात् कारण का निषेध होने पर भी यदि फल की उत्पत्ति हो तो विभावना अलङ्कार होता है । यथा—

(i) **अनायासकृशं मध्यम शङ्क तरले दृशो ।**
अभूषण मनोहारि वपुर्वयसि सुभ्रुवः ।।

सुन्दर भोंहों वाली इस नायिका का युवावस्था में मध्य भाग विना श्रम के

दुबला हो गया है, विना किसी शंका के इसकी आँखे चञ्चल हो गयी हैं और शरीर विना आभूषणों के ही सुन्दर लग रहा है। यहाँ कारण **"वयसि"** उक्त है। यदि इसी में वयसि सुभ्रुवः के स्थान पर भाति मृगीदृशः कर दिया जाय तो कारण अनुक्त हो जायगा।

(ii) **कुसुमितलताभिरहताऽप्यधत्त रुजमलि कुलैरदष्टापि।**
परिवर्तते स्म नलिनील हरीभि रलोलिताप्यधूर्णत सा॥

खिली हुई लताओं से विना ताडित हुई यह नायिका पीड़ित है। भ्रमर कुल से न काटे जाने पर भी यह तड़प रही है तथा कमलिनियों से युक्त लहरों के चक्कर में विना पड़े ही यह चक्कर खा रही है।

१५ विशेषोक्तिः

सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा।

सा० दर्पण

कारण के होने पर भी यदि कार्य न हो तो विशेषोक्ति अलङ्कार होता है। यह विभावना के विपरीत होती है। यह दो प्रकार की होती है—

(i) **उक्तनिमित्त** — जिसमें कारण का कथन हो।

(ii) अनुक्तनिमित्त-जिसमें कारण का कथन न हो।

यथा— **धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः।**
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः॥

वे महिमाशाली लोग धनी होते हुए भी मदहीन थे, युवा होते हुए भी चञ्चल न थे। शक्ति सम्पन्न होने पर भी प्रमाद हीन थे। मम्मट ने भी लिखा है— **विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।** अर्थात् कारणों के होने पर भी यदि कार्य न हो तो यह अलङ्कार होता है।

(ii) **कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने।**
नमोऽस्त्ववार्यवीर्याय तस्मै मकरकेतवे॥

जो कामदेव कपूर के समान जल जाने पर भी जन जन में शक्तिमान है उस अप्रत्याहित पराक्रम वाले को नमस्कार है।

टिप्पणी—विभावना और विशेयोक्ति दोनों अलंकार कार्यकारणभाव पर आधारित हैं पर दोनों में अन्तर है। विभावना में तो बिना किसी प्रसिद्ध कारण के

कार्य की उत्पत्ति रहती है पर विशेषोक्ति में प्रसिद्ध कारण रहने पर भी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती ।

१६. विरोधाभास

जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः ।
क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां यद्द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः ।।
विरुद्धमिव भासेत विरोधोऽसौ दशाकृतिः ।।

साहित्य दर्पण

जव किन्हीं दो वस्तुओं का ऐसा वर्णन किया जाय जिनमें परस्पर विरोध न होते हुए भी भासित हो तो विरोधाभास अलंकार होता है । यह विरोध कई प्रकार से सम्भव है । यथा---

(i) जाति का जाति से, अथवा गुण, क्रिया या द्रव्य से । ४

(ii) गुण का गुण, क्रिया अथवा द्रव्य से । ३

(iii) क्रिया का क्रिया अथवा द्रव्य से २

(iv) द्रव्य का द्रव्य से १

इस प्रकार ये विभेद १० होते हैं । मम्मट ने इसके लिए लिखा है—

"विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः ।।"

अर्थात् विरोध न होने पर भी जहाँ विरोध की भाँति वर्णन हो वहाँ विरोध या विरोधाभास अलंकार होता है । यथा---

(i) तव विरहे मलयमरुद्दावानलः, शशिरुचोऽपि सोष्माणः ।
हृदयमलिरुतमपि भिन्ने, नलिनीदलमपि निदाघरविरस्याः ।।

तुम्हारे वियोग में उस कामिनी को मलयानिल दावानल हो रहा है, चन्द्रमा की किरणें गरम लग रहीं हैं, भोंरों की गुन्जन हृदय को भेदती है और कमल का पत्ता तो ग्रीष्म ऋतु का सूर्य हो गया है ।

(ii) अभिनवनलिनी किसलय मृणालवलयादिदवदहन राशिः ।
सुभग कुरङ्ग दृशोऽस्या विधिवशतस्त्वद् वियोगपविपाते ।।

अर्थात् हे सुभग, तुम्हारे वियोगरूपी वज्र के गिरने पर उस नायिका के लिए नयी कमलिनी के पत्ते और मृणाल के कंकण आदि जो उसकी अग्नि शान्त करने के लिए रखे जाते थे दावानल का समूह वन जाते हैं ।

१७. परिसंख्या

प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद् वस्तुनो भवेत् ।
तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द अर्थोऽथवा तदा ।। परिसंख्या

जहाँ प्रश्न पूर्वक अथवा विना प्रश्न के किसी वस्तु के वर्णन करने से यदि उसी के समान दूसरी वस्तु का निषेध होता हो तो परिसंख्या अलंकार होता है । परि का अर्थ यहाँ निषेध है तथा संख्या का अर्थ वुद्धि है । अतः परिसंख्या का भाव निषेध वुद्धि होता है । चूँकि निषेध कई प्रकार से सम्भव है अतः इसके विभेद भी होते हैं । यथा—

(ii) **किं भूषणं सुदृढमत्र, यशो न रत्नम् ।**
किं कार्यमार्यचरितं, सुकृत न दोष ।।
किं चक्षुरप्रतिहतं धिषणा न नेत्रम् ।
जानाति कस्त्वदपरः सदसद् विवेकम् ।।

कोई गुरु अपने शिष्य से प्रश्न करता है—

१ इस संसार सुदृढ भूषण क्या है ? यश, रत्न नहीं—

२ काम करने योग्य क्या है ? आर्यचरित् न कि पाप

३ अप्रतिहत चक्षु क्या है ? मनुष्य की वुद्धि, नेत्र नहीं ।

तव गुरु ने कहा—ठीक है तुम्हारे अतिरिक्त अच्छा बुरा और कौन जान सकता है ।

(ii) **किमाराध्यं सदा, पुण्यं, कश्च सेव्यः, सदागमः ।**
को ध्येयो, भगवान् विष्णुः, किंकाम्यं, परमं पदम् ।।

अर्थात् सदा आराधना के योग्य क्या है, पुण्य, इस संसार में सेवनीय वस्तु क्या है, अच्छा शास्त्र, ध्यान के योग्य कौन है भगवान् विष्णु—चाहने योग्य क्या है—परमपद या मुक्ति ।

इन उदाहरणों में शंका के सहित समाधान भी है अतः ऐसी जगह परिसंख्या अलंकार होता है ।

१८ निदर्शना

अभवन् वस्तु सम्बन्ध उपमा परिकल्पकः ।
निदर्शना भवेत् सेयं मम्मटेन यथोदिता ।।

जहाँ परस्पर असंगत होने पर भी वाक्यार्थों या पदार्थों में सम्बन्ध उपमान

उपमेय भाव में परिणत हो जाय वहाँ निदर्शना अलङ्कार होता है। इसके उदाहरण के लिए कालिदास का निम्नलिखित श्लोक प्रायः उद्धृत किया जाता है।

(i) क्व सूर्य प्रभवो वंशः, क्व चाल्प विषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनाऽस्मि सागरम् ॥

रघुवंश

अर्थात् कहाँ सूर्य से उत्पन्न होने वाला वंश, कहाँ मेरी अल्प बुद्धि, मैं वैसे ही आचरण करता हूँ जैसे कोई उडुप के सहारे महासागर को पार करना चाहता है। यहाँ छोटी बुद्धि के द्वारा सूर्यवंश का वर्णन करना छोटी सी नाव से समुद्र पार करने के समान बताया गया है। इसी प्रकार शाकुन्तल में कालिदास ने कहा है—

इदं किल व्याजमनोहरं वपुस्तपः क्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पल पत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ॥

शा० १/८

अर्थात् यह स्वाभाविक मनोहर शरीर, इससे यदि ऋषि तप कराना चाहते हैं तो निश्चित ही वे नीले कमल की पंखुड़ी से शमी का वृक्ष काटना चाहते हैं। काव्य प्रकाश कार ने निम्नलिखित उदाहरण दिया है।

(iii) उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नियाति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वय परिवारित वारणेन्द्रलीलाम् ॥

अर्थात् जिसकी किरणरूपी रस्सियाँ ऊपर को फैल रहीं हैं। ऐसे उष्ण तेज वाले सूर्य के उदय होते तथा शीत प्रकाश वाले चन्द्र के अस्त होते समय यह पर्वत दो लटकते हुए घण्टों के साथ हाथी की शोभा धारण कर रहा है। यहाँ एक पर्वत किसी हाथी की शोभा कैसे धारण कर सकता है ? अर्थात् नहीं कर सकता। अतः कहना होगा कि उसके समान शोभा को धारण कर रहा है। इस प्रकार उपमा में अर्थ के पर्यवसित होने से निदर्शना अलंकार है।

१९. प्रतीप

प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम् ।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते ॥

विश्वनाथ

किसी प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बनाना अथवा उपमान की निरर्थकता का वर्णन करना प्रतीप अलंकार होता है। यथा—

(i) मुखं यदि किमिन्दुना ? यदि चलाञ्चले लोचने—
किमुत्पलकदम्बकैः ? यदि तरङ्ग भङ्गी भ्रुवौ,
किमात्मभवधन्वना ? यदि सुसंयता कुन्तलाः,
किमम्बुवहडम्बरैः ? यदि तनुरियं किं श्रिया ?

अर्थात् यदि मुख है तो चन्द्र से क्या प्रयोजन ? यदि चञ्चल प्रान्त वाले नेत्र हैं तो इन नील कमलों से क्या ? यदि तरङ्गों की तरह तिरछी भौंहें हैं तो कामदेव के धनुष से क्या ? यदि भली भाँति बँधे हुए ये केश हैं तो बादलों से क्या ? फिर यह सुन्दर शरीर है तो लक्ष्मी से क्या प्रयोजन ?

यहाँ चन्द्र आदि अनेक प्रसिद्ध उपमानों को निरर्थक बनाया गया है, अतः यहां प्रतीप अलंकार है।

मम्मट का कथन है—

आक्षेप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता।
तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कार निबन्धनम्॥

अर्थात् उपमान को व्यर्थ सिद्ध करना ही प्रतीप है। ऐसा भी सम्भव है कि किसी उपमान का अनादर करने के लिए उसे उपमेय बना दिया जाय। उस स्थिति में भी प्रतीप होगा।

(ii) **अयि एहि तावत् सुन्दरि कर्णं दत्त्वा शृणुष्ववचनीयम्।**
तव मुखेन कृशोदरि चन्द्र उपमीयते जनेन॥

अर्थात् हे सुन्दरि, जरा इधर तो आओ और कान लगाकर अपनी निन्दा सुन लो, देखो लोग तुम्हारे मुख से चन्द्रमा को उपमा देते हैं। यहां चन्द्र के उपमान वाले गुणों से हीन होने के कारण उसकी निन्दा की गयी है।

२०. व्याजस्तुतिः

व्याजस्तुतिर्मुखे निन्दास्तुतिर्वा रूढिरन्यथा।

मम्मट सूत्र १६८

प्रत्यक्षतः देखने में निन्दा या स्तुति लगती हो, पर वस्तुत उससे भिन्न

(अर्थात्–स्तुति निन्दा में, अथवा निन्दा स्तुति में) सिद्ध होने पर व्याजस्तुति अलंकार सिद्ध होता है।

यथा— हे हेलाजित बोधिसत्त्व ! वचसां किं विस्तरैस्तोयधेः।
नास्ति त्वत्सदृशः परः परहिताधाने गृहीतव्रतः ॥
तृष्यत् पान्थजनोपकार घटना वैमुख्य लब्धायशो।
भारप्रोद वहने करोषि कृपया साहाय्यकं यन्मरोः ॥

अर्थात् हे समुद्र ! आपसे बढ़कर परोपकार व्रत धारण करने वाला दूसरा नहीं है, क्योंकि आप प्यासे पथिकों को जलदान द्वारा उपकार करने से विमुख होने में मरुस्थल के अपयश के बोझ उठाने में उसका हाथ बटाते हैं। जैसे मरुस्थल में पथिक प्यास से मरता है वैसे ही तुम्हारे यहाँ भी प्यासे को जल नहीं मिलता। इस उदाहरण में पहले समुद्र की स्तुति प्रतीत होती है, पर वस्तुतः उसकी निन्दा की गयी है।

अध्याय २५

कुछ प्रमुख निबन्ध

निबन्ध लिखना वस्तुतः एक कला है। यह परिपक्व चिन्तन का प्रयास होता है पर यह कोई वैज्ञानिक शोध नहीं वरन् एक लघु सुव्यवस्थित रचना होती है। इसे न तो अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण और न अतिसरल उपदेशात्मक ही कहा जा सकता है। अपने में पूर्ण यह एक रुचिपूर्ण साहित्यिक रचना होती है जो किसी विषय पर लेखक के आत्म प्रकाशन की प्रतीक मात्र कही जा सकती है।

इस स्थल पर निबन्धों का अपेक्षित निखार प्रस्तुत नहीं किया जा रहा, बल्कि कुछ निबन्ध इस दृष्टि से उपस्थित किये जा रहे हैं कि संस्कृत में सरल और सरस रचनाएँ कैसे की जा सकतीं हैं, इसे पाठक समझ सकें। आज का छात्र अपने भाव प्रकाशन के लिए क्या करे, वह कैसी शब्दावलि का प्रयोग करे तथा वांछित शब्दावलि का अधिग्रहण करने के लिए वह क्या उपाय करे, इस प्रकार के बिन्दुओं पर इनसे पर्याप्त प्रकाश पड़ सकेगा।

इन निवन्धों से यह कल्पना करना भी ठीक नहीं कि छात्र इन्हें कण्ठ कर लें। पर ये निबन्ध उसके लिए मार्ग दर्शक होंगे इसमें सन्देह नहीं। इन्हें बार-बार पढ़ने से संस्कृत शब्दावली को व्यवहार में लाने की उसकी क्षमता बढ़ेगी। इनसे लिखने वाले में स्वाभाविकता आयेगी, उसमें विचारने की शक्ति बढ़ेगी। इनसे उसे ऐसा अनुभव मिलेगा कि वह किसी भी नूतन विषय पर लिखने के लिए अपेक्षित तत्त्वों से परिचित हो सकेगा। इनसे यह भी स्पस्ट हो जायगा कि संस्कृत लिखने तथा बोलने के लिए अनेक नियमों और रूपों की आवश्यकता नहीं होती बल्कि उसका तमाम व्यवहार एक नपी तुली शब्दावलि तथा उसके चलने की प्रकृति पर निर्भर करता है। इस शब्दावलि को दूर से देखने से भय लग सकता है, पर इस बात का ज्ञान कम ही लोगों को है कि उसे अपना सहायक बनाने के लिए बहुत थोड़े से सूत्रों का जानना ही पर्याप्त होता है।

निबन्ध लिखने से पहले छात्र को विषय का चयन भी बड़ी सावधानी से करना चाहिए। जब तक विषय की पूर्ण जानकारी न हो उस पर कलम चलाना

उचित नहीं । परीक्षाओं में प्रायः छात्रों के सम्मुख ऐसे विषय भी आ जाते हैं जो उनके लिए सर्वथा नवीन होते हैं । अनेक छात्र इन विषयों को केवल इस धारणा से लक्ष्य बनाते हैं कि उन पर कम छात्र लिखेंगे । पर विषय के चयन में मूल बात यह होनी चाहिए कि लेखक को उक्त विषय का समुचित ज्ञान है या नहीं, वह उसकी पूर्ण रूप रेखा उपस्थित कर सकता है या नहीं । निबन्ध लिखने में अनेक तत्त्व विचारणीय होते हैं । यथा—१ शीर्षक का बोध, २ भूमिका, ३ मूलकलेवर ४ गुणदोषों का सामञ्जस्य, ५ अन्त, ६ भाषा, ७ शैली । सर्वप्रथम लेखक को शीर्षक का बोध, उसके मन्तव्य का स्पष्ट ज्ञान, उस पर विषयगत आत्मचिन्तन उसके पूर्वापर पर विचार तथा धैर्यपूर्वक तथ्यों का आकलन परम अपेक्षित विन्दु हैं । उदाहरणार्थ, विषय है—**'शान्ति के लिए योजना'** । इसमें लेखक को सर्वप्रथम शान्ति का स्वरूप समझना होगा—वह शान्ति कैसी है—राजनीतिक, मानसिक, सामाजिक अथवा आध्यात्मिक । इस बात का निराकरण होने पर ही आगे विचारों की शृंखला चल सकती है । इसी प्रकार एक विषय है, **"प्रजातांत्रिक जीवन"** इसमें जीवन की व्याख्या उतनी ही आवश्यक है जितनी प्रजातन्त्र की । इसके अनन्तर उनका समन्वय सम्भव है । ऐसे ही अन्य विषय है—**"विज्ञान की विधि"** इसमें विज्ञान की आधुनिक प्रगति विवेचनीय है तभी उसकी विधि पर विचार सम्भव है । सारांश यह है कि निबन्ध लिखने के लिए किसी भी विषय का एकाएक निर्णय लेना भयावह होता है ।

विषय का निर्णय करने के उपरान्त उसे प्रारम्भ करना भी एक कठिन काम है । लेखक को लेख के प्रारम्भ पर सर्वाधिक विचार करना चाहिए । पाठक की मानसिक वृत्ति आकृष्ट करना लेख के आरम्भ का प्रथम लक्ष्य होता है । यदि पिटापिटाया आरम्भ होगा तो आगे अच्छी विषय वस्तु होने पर भी पाठक उसे न पढ़ना चाहेगा । अतः पहला कौशल यही है कि निबन्ध का आरम्भ अत्यन्त चित्ताकर्षक हो । संस्कृत निबन्धों में अधिकांश निवन्ध प्राचीन परम्परा पर लिखे हुए मिलते हैं । वे प्रायः विषय की शब्दावली की व्युत्पत्ति से आरम्भ होते हैं । यदा कदा वे किसी उद्धरण से आरम्भ होते हैं अथवा किसी घटना का आश्रय लेकर । चूँकि पाठक के मस्तिष्क में भी विषय का चित्र होता है, अतः उस चित्र की कल्पना करके उसके ताने बाने को नया रूप देकर खड़ा करना ही लेखक का सबसे बड़ा कौशल है । लेख की भूमिका में रोचक रीति से पाठक को अनायास विषय के सम्मुख खड़ा करना मात्र अपेक्षित होता है ।

भूमिका के अनन्तर निबन्ध पर विषय वस्तु सम्बन्धी विचारों को संगृहीत

करना आवश्यक होता है। कभी कभी कोई विचार देर में उठ सकता है। पर यदि उसका स्थान पहले है तो उसे पहले ही रखना होगा। अतः विषय पर सभी बिन्दु संक्षेप में पहले लिख लिये जायँ, उनका क्रम ठीक कर लिया जाय तभी उनका विवेचन हो। इसमें विषय का क्या, क्यों और कैसे सभी आ जाता है। तथ्य तर्कपूर्ण, न्यायसंगत और एक रस हों यही निबन्ध का प्राण है। निबन्ध का मूल कलेवर इसी बिन्दु पर निर्भर करता है। यही निबन्ध का प्रधान अंग है।

हर कलाकृति का एक अनुशासन होता है। निबन्ध का भी एक अनुशासन होता है। इसका सबसे बड़ा अनुशासन यह है कि विषय पर पक्ष विपक्ष का समन्वय रहे। हर विषय के दो पक्ष होते हैं, हर विषय के गुण दोष होते हैं। लेखक का इनके विवेचन में तटस्थ भाव से व्यवहार सबसे बड़ा अनुशासन है। यही सराह्य है। पाठक को यदि इस बात का आभास हो गया कि लेखक किस पक्ष का है तो निबन्ध की गरिमा कम हो जाती है। लेखक को अपनापन खोकर निबन्ध के साथ न्याय करना है। यदि विषयगत विषयवस्तु में सराहनीय विन्दु हैं तो उनकी सराहना होनी चाहिए। यदि उसमें निन्दनीय पक्ष है तो उसका विश्लेषण होना चाहिए, पर अपने पर संयम रखकर। देशभक्ति सम्बन्धित विषयों तथा धार्मिक विषयों पर लेखक प्रायः संयम खो देता है। शैली की दृष्टि से निबन्ध सदा प्रसादगुण सम्पन्न होना चाहिए। दुरुह शैली कभी भी आनन्दप्रद नहीं होती। संस्कृत में सन्धि और समास के आधार पर शब्द बहुत बड़े २ सम्भव हैं, पर एक सरस कृति के लिए सन्धि या समास की बहुलता उपादेय नहीं होती। इसका अर्थ यह भी नहीं कि जहाँ स्वाभाविक सन्धि है अथवा समास है उससे बचा जाय। जो रस गुणोपेत, रसोपेत, गुणान्वित, रसान्वित में है वह कभी भी गुण से युक्त, रस से भरे में नहीं हो सकता। इसी प्रकार संस्कृत का अधिकांश व्यवहार कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है, वही स्वाभाविक है अतः अंग्रेजी के अनुकरण पर उसे कर्तृ-वाच्य बनाना भूल होगी। अहं गच्छामि, अहं अनुभवामि में वह स्वाभाविकता नहीं है जो मया गम्यते, तथा मया अनुभूयते में है। सबसे बड़ी बात यह है कि ये प्रयोग सरल भी पड़ते हैं, इनके प्रयोग में रूपों के कण्ठ करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। अन्त में यह कहना भी न्यायसंगत होगा कि संस्कृत के विभक्ति परक होने के कारण शब्दों की एकरूपता से अवश्य लाभ उठाना चाहिए—यथा तैः सुकोमलैः, अरविन्ददलैः, विविधवर्णोपेतैः विहगैश्च इदं सूचितं यद् कालोऽयं सुखप्रदः भविष्यति। यहाँ इस प्रकार के उद्धरण बहुत दिये जा सकते हैं पर इसका आभास निबन्धों

में भी मिल जायगा अतः पुनरुक्ति नहीं की जा रही। निबन्ध में लेखक की छाप अवश्य रहती है, वही छाप उसकी आत्मा है, वही उसकी अपनी शैली होती है। आशा है इन विन्दुओं से तथा ऐसे ही अनेक विवेचनों से छात्रों को निवन्ध लेखन में साहाय्य मिलेगा। भाषा कैसी ही हो, यदि उसे समुचित विरामादि युक्त रखा जाय तो अर्थ सन्देह को अवकाश नहीं रहता अतः यथा स्थान इनका भी प्रयोग अपेक्षित है।

धर्मावलम्वी अपने दीन की बुराई नहीं देख सकता। यदि कोई छात्र अच्छे और बुरे विन्दुओं में सामञ्जस्य स्थापित कर लेता है तो उसका निवन्ध स्वाभाविक रीति से अन्त की ओर चलता है। परीक्षक भी प्राय: देखता है कि छात्र विषय को किस रीति से परखता है। उसकी परख तथा विचार शक्ति कैसी है। क्या छात्र अपनी सामग्री तर्कपूर्ण रीति से सम्मुख रखता है ? यदि लेखक विषय में अपने को आत्मगात् करके भी तटस्थ रख सकता हैं तो निवन्ध सर्वोत्तम होगा। इस स्थल पर विषय के प्रत्येक पहलू पर लेखक की दृष्टि जानी चाहिए।

निवन्ध का अगला बिन्दु उसका अन्त है। निबन्ध का अन्त एकाएक न आकर स्वाभाविक रीति से आना चाहिए। उसे पढ़कर ऐसा प्रतीत हो कि विषय पर गहराई से चिन्तन किया गया है। विषय का स्वस्थ चित्र सम्मुख है। विषय के अन्त में लेखक का निष्कर्ष आ सकता है। पर यह न तो उपदेशात्मक हो और न अस्वाभाविक रीति से थोपा गया। इसमें लेखक के विचारों की शृंखला का अवसान हो। यह शीर्षक के अनुरूप हो तथा विषय को अनायास अन्त की ओर ले जाने वाला हो।

निवन्ध लेखन में भाषा का प्रयोग भी एक आवश्यक अंग है। निबन्ध की भाषा परिमार्जित, प्रभावपूर्ण तथा भावानुकूल हो। इसमें कभी भी ऐसा भान न हो कि किसी शब्द को लाने की चाह से उठे विवशतः बिठाया गया है। सरल शब्दों में भी भाव होता है, कठिन में ही नहीं। वस्तुतः शब्दों के चयन में बड़ी सावधानी वरतनी चाहिए। प्रत्येक प्रमुख शब्द की कसौटी यह है कि यदि उसे हटाने से भाव में अन्तर नहीं आता तो अवश्य हटा दिया जाय। यदि उसे बदलने से भाव में प्रौढ़ि आती है तो अवश्य बदल देना चाहिए। यह कार्य केवल अभ्यासवश सम्भव है। इसके लिए वाल्मीकि रामायण, दशकुमारचरित, कादम्बरी तथा भास के नाटक बहुत उपादेय सिद्ध होंगे। संस्कृत शब्दावलि में बड़ा बल है। इसके साहित्य में अतुल सामग्री है, इसमें रस है, पर खेद है कि आज के छात्र को इन बातों का ज्ञान नहीं है।

१ संस्कृत महत्त्वम्

सम्यक् ज्ञायते यत् यस्याः भाषायाः अध्ययने अध्यापने च वयं संप्रति व्यापृता सा देववाणी । वस्तुतः न इयं केवलं देववाणी अपितु भारतीयबौद्धविकासस्य सर्वोत्तमं प्रतीकम् । इयमेव भारतीयदर्शनस्य, धर्मस्य, अस्माकं पूज्यायाः संस्कृतेश्च प्राणभूता । इयं भाषा अपूर्वस्य कस्यचित् साहित्यस्य अक्षयः निधिः । को न जानाति विश्वस्मिन् जगति यदस्याः साहित्ये एव शाश्वतज्ञानोपेताः वेदाः, अनेकेषां महर्षीणां तपःपूतानि धर्मशास्त्राणि, मानवधर्मसंवलिताः स्मृतयः । वस्तुतः आधुनिके युगे यादृशस्य ज्ञानस्य महती आवश्यकता तेनैव आपूरितम् अस्याः साहित्यम् । अद्यतनस्य संघर्षरतस्य स्वार्थपरस्य, परस्परप्रपीडकस्य, भौतिकवादप्रताडितस्य मानवमात्रस्य सुशिक्षणार्थम् इयम् भाषा अतीव उपयोगिनी । इयमेव संप्रति विविधकष्टापन्नाय मानवाय सुखं प्रदातुं समर्था ।

परं तत्रास्ति कष्टमेकं, कष्टं केवलमिदमेव यदद्यतनः युवकः, अद्यतनः अध्येता अस्याः मूल्यं नैव विजानाति । स कथं न जानाति एतदस्माकं अध्यापकानां उत्तर–दायित्वम् । गीर्वाणवाणी सहस्रेभ्यः वर्षेभ्यः विविधवर्गैः, विविधधर्मैः संवर्धिता । इयं न केवलं द्विजानां भाषा, न केवलं हिन्दूनां भाषा, इयं सर्वेषां मानवानां भाषा, कथन्न इयं जैनधर्मावलम्बिनां, कथं न इयं बौद्धधर्मावलम्बिनां, यतः तेषां धार्मिकग्रन्थाः अस्यां भाषायां वर्तन्ते । तैरियं बहुकालम् आलोडिता, अवगाहिता च । अहं तु वक्तुं शक्नोमि, न केवलं भारतीयैः अपितु वैदेशिकैरपि इयं सम्यक्तरत्वेन निरूपिता, निरीक्षिता, अधीता च । यवनैरपि इयं सम्मानिता, कथम्—केवलम् अस्याः साहित्यस्य अमूल्यान् अश्रुतपूर्वान् गुणान् विलोक्य अनुभूय च ।

प्राचीनकालात् अद्यावधि इयं भाषा एतादृशी परिमार्जिता, यत् नान्या काचिद् आधुनिकी भाषा अस्याः तुलनायां स्थातुं शक्नोति । यादृशी वैज्ञानिकीस्वरप्रक्रिया अस्याः भाषायाः, यादृशः कोषः अस्याः अस्ति तथास्ति किमु कस्याश्चित् अन्यस्याः भाषायाः । इदानीमपि नूतनानां शब्दानां कृते वयमस्याः शरणं गच्छामः । कीदृशः अपूर्वः सुसंयतः शब्दभाण्डारः, कीदृशं प्रकृतिप्रत्ययानां साहाय्येन नूतनशब्दानां निर्माणम्, कीदृशं सन्धिसमासयुक्तानां पदानाम् लालित्यम् अत्र वरीवर्ति, नेदं शक्यते निगदितुं मया ।

यद्यपि आधुनिके युगे अस्यां भाषायां मौलिकसाहित्यस्य प्रणयनं न प्रचुरं तथापि अस्याः ग्रन्थानां संख्या अपरासां भाषाणां ग्रन्थानतिशेते । वयम् इदानीमपि नैव

जानीमः कियन्तः विषयाः तत्र अप्रकाशितासु हस्तलिपिषु वर्तन्ते । परमस्याः यत् साहित्यं प्रकाशे आयातं तदेव अस्याः गुणान् प्रकटयितुं अलम् ।

एक एव कालिदासः न केनापि अतिशयितुं शक्यते, किं नाम अन्येषां कवीनां लेखकानाम् च । कीदृशं रसभावपूरितं वर्णनं, कीदृशं प्रकृतिचित्रणं, कीदृशं मनो-वैज्ञानिकं अध्ययनम्, कीदृशम् अनुपमं चरित्रचित्रणम्, इमानि एव सर्वाणि विलोक्य वैदेशिका अपि मुग्धाः जाताः । प्रायशोऽखिल भाषाणां जननीयं संस्कृतभाषैव ।

संस्कृतभाषायामेव प्राचीनैराचार्यैः भौतिकविज्ञानप्रसरेऽपि विविधान् विषयानाश्रित्य लोकोपकारकाः बहवो ग्रन्थाः विरचिताः । अत्र एकतो दर्शनशास्त्रेषु जीवब्रह्मणोः प्रकृतेश्च विषयमाश्रित्य कश्चन अतीव हृदयंगमो विचारो विहितः, अपरतश्च धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र— मोक्षशास्त्र — नीतितन्त्र राजतन्त्र, शिल्पकलादीन् एवं तत्रानुबन्धि विषयान् अवलम्ब्य चमत्कारकाः संदर्भाः भारतीयैः विद्वद्भिः प्राणायिषत । सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं चिन्तनं कुर्वाणैरस्माकं आचार्यैः मनुकौटिल्यप्रभृतिभिः मानवविचारधारायाः उच्चैस्तरं शिखरमपि परिचुम्बितम् आसीत् इत्यत्र न कोऽपि संदेहावसरः । इतरतश्च पुना रससिद्धैः कवीश्वरैः भास---कालिदास—माघप्रभृतिभिः संख्यातीतैः ललितसाहित्यसंदर्भरत्नैः अस्य संस्कृतसाहित्यस्य अक्षय्यो निधिः परिपूरितः । अपरमपि वक्तव्यम्, राष्ट्रस्य समक्षं समस्यानाम् आगमनं तु स्वाभाविकम्, नायं चिन्ताविषयः, किन्तु तासां निवारणाय शक्तेरभावः, संकल्पस्याभावश्चेति चिन्ता-विषयः । को न जानाति संस्कृतस्य महत्त्वं, किन्तु अस्याः कथं समुत्थानं भवेत् इति विचारणीयम् ।

किं बहुना, चेत् भवन्तः वाञ्छन्ति यद् सर्वमिदं रक्षणीयं चेत् भवन्तः वाञ्छन्ति यदस्माकं गीता सुगीता तिष्ठेत्, चेत् भवन्तः अभिलषन्ति यद् भागवतं भगवतः कथाः प्रसारयेत्, तत् किंचित् विचारयन्तु इदानीं ।

मूलप्रश्नस्तु अयं यत् या वाणी पराधीनतायां संरक्षिता अस्माकं पूर्वजैः, या वाणी क्रोडीकृता तदानीं विद्वद्भिः यदास्याः अवलम्बनम् भयास्पदम् आसीत्, यदास्याः आश्रयः दुष्कर आसीत्, सैव इदानीं स्वातन्त्र्यकाले कथं न परिपाल्यते । यदा शासकैः इयत् सौविध्यं दीयेत तत् कथं न किंचित् क्रियतेऽस्माभिः ।

यदि भारतराष्ट्रस्य महत्त्वं संसारे संस्थापनीयमस्ति,
यदि भारतीया संस्कृतिः संरक्षणीया, यदि समस्तराष्ट्रं,
एकस्मिन् सूत्रे निबद्धं स्यात्, इति अभिलष्यते,
तर्हि सुरभारत्याः प्रसारे प्रचारे च सुतरां प्रयासो विधेयः ।

२ गणतन्त्रदिवसः

भारतवर्षं पर्वणां देशः। अस्य देशस्य सांस्कृतिकी परम्परा अतिप्राचीना। इयं वैदिककालादेव समारब्धा। यस्मिन् देशे सांस्कृतिकी परम्परा यावती प्राचीना भवति तस्मिन् तावन्ति एव पर्वाणि भवन्ति। अतो हि भारतदेशेऽपि अनेके महोत्सवाः समये समये आयोज्यन्ते। एषु केचन धार्मिकीं भावनामवलम्ब्य धार्मिकोत्सव-रूपेण सम्पाद्यन्ते, केचन च काञ्चित् राजनीतिकीं घटनामाश्रित्य मन्यन्ते। ये राज–नीतिकीं घटनामवलम्ब्य जायन्ते त एव राष्ट्रियाः महोत्सवाः ज्ञायन्ते। गणतन्त्रदिवसः भारतीयानां राष्ट्रियमहोत्सव–दिवसः। अस्मिन्नेव दिने भारतं गणतन्त्ररूपेण जन्म अलभत।

दिवसोऽयं भारतीयान् ऊनत्रिंशदधिकैकोनविंशतिशततमं वर्षं (१९२९) स्मारयति। अस्मिन् वर्षे अस्यामेव तिथौ रावीनद्यास्तटे लाहोर नगरे तदानीन्तनैः राष्ट्रनेतृभिः उद्घोषः कृतः "सम्पूर्णं स्वराज्यमेव अस्माकं लक्ष्यम्" ततः प्रतिवर्षं जनवरीमासस्य षड्विंशतितमायां तारिकायां भारतीयैः अयमुद्घोषः पुनरावर्तितः। अनेकेषां संघर्षाणां तपस्त्यागानामनन्तरं देशोऽयं सप्तचत्वारिंशदधिकोनविंशतिशततमे वर्षे स्वतंत्रः जातः। ततश्च देशवासिभिः देशस्य नवीनं संविधानं निर्माय जनवरी मासस्य षड्विंशतितमायां तारिकायामेव स्वेभ्यः समर्पितम्। अस्मिन्नेव संविधाने भारतं प्रभुतासम्पन्नं गणतन्त्रमुद्घोषितम्। इतः परं अयमेव दिवसः गणतन्त्र दिवसः इति ख्यातः। परमस्पृहणीयोऽयं दिवसः, आह्लादकरोऽयं दिवसः, चिरस्मरणीयोऽयं दिवसः भारतीयानाम्।

स्वतंत्रे जाते देशेऽस्मिन् त्रिंशत् वर्षाणि व्यतीतानि। अस्मिन् अवधौ न जाने कियत्यः आपदः राष्ट्रस्य पुरतः समागताः—यथा, अयं देशः वैदेशिकैः द्विधा समाक्रान्तः, देशस्य विभाजने जाते शरणार्थिनाम् आवासस्य समस्या समापतिता, आन्तरिकः कलहः संजातः, आन्तरिकी अशान्तिरपि प्रसृता, अतिवृष्टयनावृष्टि—प्रभृतयः प्राकृतिकाः-प्रकोपाः आयाताः, विविधानां राजनीतिक दलानां संघर्षः, खाद्यान्नानामभावः, अन्याश्च अनेकाः समस्याः विकरालरूपेण राष्ट्रस्य समक्षं समागताः। तथापि महान् प्रमोदावसरः यदस्य देशस्य निष्ठावद्भिः कर्णधारैः आसां समस्यानां समये समये सम्यक् समाधानं विधाय देशः समुन्नतिपथे प्रापितः। स्वकीयेन सफलीभूतेन परमाणु विस्फोटेन अणुक्षेत्रे भारतं निखिले संसारे षष्ठमंकितम्, अथ चायंविशालतमः प्रजातान्त्रिकः

देशः संजातः । अतः अस्य राष्ट्रियाः उत्सवाः भारतीयानां समुल्लासानां प्रेरणानाञ्च अवसराः ।

अस्मिन् दिने जनाः प्रातः कालादेव नगरे. नगरे, ग्रामे. ग्रामे, सोल्लासं प्राभातिकीं परिक्रमां कुर्वन्ति । ते संगोष्ठीः आयोजयन्ति, अन्येषां नाटकानां, क्रीडनानां, मनोरमाणां कार्यक्रमाणामायोजनानि सम्पादयन्ति । अस्मिन् अवसरे देशस्य राष्ट्रपतिः, प्रधानमन्त्री, राज्यानां मुख्यमंत्रिणः, राज्यपालाः इत्यनेके प्रमुखाः नेतारः देशवासिनः सम्बोधयन्ति । भारतीयाः इमं दिवसं स्वकीयायाः स्वतंत्रतायाः संरक्षणार्थं देशस्य प्रगत्यै, दीनानामुत्थानाय प्रतीकरूपेण मानयन्ति । राजधान्यां दिल्लीनगरे महान् समारोहः भवति । अस्मिन् समारोहे विविध–शस्त्रोपेतैः सैनिकैः अभूतपूर्वं व्यायामादीनां प्रदर्शनं क्रियते । सम्पूर्णं नगरं सुसज्जितं, विमलं, भव्यं, क्रियाशीलं च जायते । स्थाने स्थाने विविधभाषा-भूषोपेताः प्रमुदिताः आबालवृद्धाः विलोक्यन्ते । जनाः अद्य पारस्परिकं विभेदं विस्मृत्य समुल्लसिताः भवन्ति ।

परं दिवसोऽयं न केवलं प्रमोदावहः अपितु संकल्पस्यावसरः । भारतीयाः संकल्पं गृह्णन्ति यत् ते सर्वे सौभ्रात्रेण व्यवहरिष्यन्ति, स्वकीयया निष्ठया कर्त्तव्य-पालनं करिष्यन्ति । चेत् कदाचित् किमपि काठिन्यम् आगच्छेत्, कापि अप्रत्याशिता आपत्तिः आयाति, ते आत्मविश्वासं न त्यक्ष्यन्ति, साहसेन च स्वकीयानां समस्यानां समाधानं विधास्यन्ति ।

अयं देशः प्रकृतिप्रदत्तैः भाण्डारैः, धनधान्यैः, सस्यैः, वनैः, पर्वतैः, खनिजैश्च सम्पन्नः, अयं पवित्रसलिलाभिस्सरिद्भिः सिक्तः, सुविशालः, रमणीयः, समृद्धश्च । अत्र देवा अपि वासाय स्पृहयन्ति । इयं भूमिः देवानां भूमिः, अवताराणां भूमिः, वीराणां भूमिः, महात्मनां भूमिः, एवं चास्य नागरिकाः स्वभावतः धर्मपरायणाः, धर्म–भीरवः त्यागशीलाश्च । अतीते अस्य देशस्य वासिनां चारित्रिकी शिक्षा उच्चस्तरीया, व्यावहारिकी अनुकरणीया च आसीत् । भारतीयानां शास्त्राणामादेशाः सर्वमान्याः एव यथा "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव" इति, नार्यः अत्र पूज्यन्ते, अत्रत्यं दर्शनं वसुधैव कुटुम्बकम्, एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति" किं बहुना देशोऽयं बहुमान्यः बहुवन्द्यः, दैवैरपि ईप्सितः—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

अनयैव सांस्कृतिकपरम्परया पाश्चात्त्य देशा अपि भारतीयैः प्रभाविताः। अपि च पराधीनेऽपि भारते नेयं कदापि विप्लुता जाता।

तत् कथं न जाने केषुचित् वर्गेषु इदानीं स्वार्थः प्रवृत्तः, न जाने कथमत्र नैराश्यम् आयातम्, अल्पीयसा कालेनैव काऽपि तन्द्रा भारतीयेषु सन्निविष्टा। ये प्राचीनकाले उपदेष्टारः आसन् त एव उपदेष्टव्या साम्प्रतम्। ये उन्नतशिखरे आसन् त एव अधः पतिताः। वैज्ञानिकप्रगतौ तु शोच्यां दशामुपगताः भारतीयाः।

आधुनिके युगे वैज्ञानिकप्रगत्या वस्तुतः निखिलः संसारः लघुत्वेन आपतितः। इदानीं यत् किञ्चत् एकस्मिन् राष्ट्रे भवति तत् क्षणमेव अपरस्मिन् राष्ट्रे विदितं भवति। एकस्य राष्ट्रस्य समस्यानां प्रभावः अन्यस्योपरि आयाति। येन रूपेण सर्वाणि राष्ट्राणि राजनीतिके क्षेत्रे उपनिबद्धानि तेन कोऽपि देशः एकाकी स्थातुं प्रगतिं वा कर्तुं न समर्थः। अतः देशोऽयम् अखिले जगति प्राधान्येन तिष्ठेत्, स्वकीयानां समस्यानां समाधानं साधयेत्, विविधानि दुःसहानि कष्टानि निवारयेत्, इत्येव भारतीयानां संकल्पः, इत्येव तेषाम् ईहा, अयमेव तेषामभिलाषः।

गणतन्त्रदिवसः भारतीयानां तु राष्ट्ररूपेण जन्मदिवसः। अतः अद्य सर्वैः देशवासिभिः आत्मनिरीक्षणं कर्त्तव्यम्, मानवतायाः शाश्वतिकानि मूल्यानि विचारणीयानि स्वार्थंकराणि तु हेयानि।

—:: ::—

(३) जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

परमस्वाभाविकी भावनेयं मानवानां यत् महत्तमं सौख्यं तु स्वर्ग एव लभ्यते। तेषामयमपि विश्वासः यत् स्वर्गे सर्वाणि मानवजीवनोपयोगीनि साधनानि विद्यन्ते, न तत्र किमपि दुःखं, न च दारिद्रयम्, न वा दैन्यं विद्यते। अतः स्वर्गप्राप्तये न जाने कियन्तः प्रयत्नाः विधीयन्ते जनैः, किन्तु स्वर्गादपि श्रेयस्करी जननी जन्मभूमिश्च। यथोक्तं महाकविना वाल्मीकिना—

अपि स्वर्णमयी लङ्का लक्ष्मण मे न रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

कथं जननीजन्मभूमिश्च एतावती श्रेयस्करी मानिता, इदमत्र विचारणीयम्। वस्तुतः यादृशं वात्सल्यं, यादृशं लालनं पालनं च जननी निजवत्सेभ्यः प्रददाति ततोऽधिकं जन्मभूमिः स्वकीयाभ्यः सन्ततिभ्यः प्रयच्छति। यथा जननी पित्राचार्यादिभ्यः पूज्यतमा गण्यते, तथैव जन्मभूमिः अन्याभ्यः भूमिभ्यः। जननी स्वसन्ततिं प्रति न केवलं सहजस्नेहं करोति अपि तु इयं तस्याः कृते स्वप्राणान् अपि दातुम् उद्यता भवति। अतो हि शिशवोऽपि जनन्याः क्रोडे सस्नेहं क्रीडन्ति, सुखं स्वपन्ति, किन्तु ततोऽपि अधिकं सुखं यदि कुत्रापि विद्यते तत् जन्मभूमौ एव। जन्मभूमिः अपि जननीव निजवत्सान् लालयति पालयति च। वस्तुतः जननी जन्म ददाति, सा एकं, द्वौ, त्रीन् वा शिशून् जनयति, परं जन्मभूमिः फलान्नादीन्, पेयाहारांश्च उत्पादयति। एतदतिरिक्तं जन्मभूमिः सममेव निजवत्सान् पश्यति, समदृशैव तैः सह व्यवहरति। सा बलान्वितान्, निर्बलान्, अज्ञान्, विज्ञान्, अलसान्, अनलसान्, अपराधिनः निरपराधिनः वा सर्वान् स्वकीये क्रोडे स्नेहेन धारयति, तान् पोषयति, एतदेव कारणं येन यदा कोऽपि जनः विदेशेभ्यः स्वजन्मभूमिं प्रत्यागच्छति, स अनुपममामोदं, अलौकिकं च सुखं अनुभवति। आंग्लभाषायां अस्यैव भावस्य महती प्रशंसा कृता श्रीमता "स्काट" महोदयेन, साररूपेणदीयतेऽत्र तस्य उक्तिः।

"अस्तिकश्चिद् एतादृशः जनः आत्महीनः
यः विदेशेभ्यः परावर्त्य नानुभवति आत्मनि,
इयं मदीयाजन्मभूमिः, इयं ममजन्मदात्री,
चेत् तत्रास्ति कोऽपि, स मृत एव-न स जीवति।"

समेषां मानवानां, पशूनां, पक्षिणां जन्मभूमिः भवति। जन्मभूमेः पवनः शीतलो वा उष्णो वा, जन्मभूमेः धरा मृद्वी वा कठोरा वा, जन्मभूमेः सलिलं मधुरं वा अमधुरं सर्वं सर्वदा सर्वतोभावेन प्रियं भवति। अद्य विज्ञानबलेन विश्वं लघुत्वम् उपगतं, तथापि जन्मभूमिः जन्मभूमिरेव। जन्मभूमेः रक्षणमपि सर्वैः सदा प्राणपणेन क्रियते। इमां रक्षन्तः न जाने कियन्तः वीराः, साहसिकाः प्राणोत्सर्गं कुर्वन्ति। न जाने कियन्तः जन्मभूमिभक्तिभावनाभाविताः देशभक्ताः अस्याः स्वतन्त्रतायै यावज्जीवं संघर्षमकुर्वन्। ते सुखं समुत्सृज्य दुःखं समालिंगन्। भारतेऽपि एतादृशाः प्रमत्ता असंख्याकाः अभूवन्। को न जानाति देशहितप्रमत्तं चन्द्रशेखर "आजादं",

भगतसिंहं सिंहं वा वीराङ्गनां लक्ष्मीबाई इति नामधेयां महाराज्ञीम्। अनया तु अवलानां नाम सवला' इति साधितम्।

मूलतस्तु सकला विश्वभूमिः अखण्डरूपेण एका एव विद्यते तथापि भौगोलिक-दृष्ट्या इयं विभिन्नेषु भागेषु संविभक्ता वर्तते, यतः विविधानां भूखण्डानां विभिन्नं वातावरणं, विभिन्ना तेषां सांस्कृतिकी परम्परा, विभिन्नाभाषा, भूषा, विविधाश्च विचारधाराः अतः एकस्मिन् भूभागे जातो जनः भागान्तरेषु जातेभ्यः मानवेभ्यः स्वाभाविकरूपेण भिन्नः भवति। फलतः मानवः स्वकीयायां भाषायां, भूषायां, विचार-धारायां सौख्यम् अनुभवति। स अन्यं भूखण्डं गत्वापि स्वीयं न विस्मरति। अतः जनानां जन्मदेशः एव तेषां जन्मभूः। किं बहुना यत्र कस्यचिदपि ममतामयी माता, यत्र तस्य वत्सलः हितसाधकः जनकः, यत्र तस्य सुस्निग्धहृदयाः सहोदराः, रमणीया सुखदुःखभागिनीजाया, स्नेहमूर्तयः तस्य वत्साः, आत्मीयाः, सम्बन्धिनश्च सन्ति तत्रैव मानव हृदयस्य आध्यात्मिकं स्वरूपमपि वर्तते। अतः यादृशः स्वाभाविकः स्नेहः जन्म-भूमौ भवति नहि तादृशः अन्यस्मिन् कस्मिन् अपि स्थाने भवितुमर्हति। अतोहि उक्तं—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

—:: ::—

४ संघे शक्तिः कलौ युगे

अयं तु परमसामान्यो नियमः यत् व्यस्तैः संसाधनैः यदसाध्यं भवति तदेव तैः समस्तैः सुसाध्यं जायते। यथा मन्दपवनान्दोलितैः परिलघुभिः तृणैः न शक्यते साध-यितुं पातयितुं वा किञ्चित् किन्तु तान्येव तृणानि यदा रज्जुरूपेण निबद्धानि भवन्ति तदा तैः प्रमत्ताः बलवन्तः गजा अपि आबद्धुं शक्यन्ते। अतः आधुनिके युगे यत् कार्यं समूहबलेन साध्यते तत् न एकेन केनापि कर्तुं शक्यते। अतः संघे शक्तिः कलौ युगे इति सत्यम्। कलौ इति कथनेन वर्तमानः समयः एव द्योत्यते।

पुरा यः कोऽपि जनः अपूर्वबलसम्पन्नः, विलक्षणसामर्थ्योपेतः, प्रभुतासम्पन्नः, वीरः साहसिको वा आसीत् स किमपि दुष्करं कर्तुमपारयत्। यथा—भारते महा-बलान्वितः भीमः, अद्वितीयः धनुर्धरः अर्जुनः, यूरोपीये देशे—परिश्रमशीलः हरक्यूलीसः, पराक्रमशाली सिकन्दरः, वीरः नैपोलियनः, साहसिकः हिटलरश्चासन् एषु सर्वैः निज-समये एकाकिभिः एव महान्ति दुष्कराणि कार्याणि विहितानि,

स्वकीयानि लक्ष्याणि संसाधितानि किन्तु साम्प्रतं सा स्थितिः तु सर्वथा गता । अस्मिन् कलिकाले संघटने शक्तिः समायाता । अद्यत्वे न वैदुष्यस्य मूल्यं, न व्यक्तिगत पराक्रमस्य, न बलस्य न साहसस्य, अद्य तु जनबाहुल्येन सर्वं सिद्धं भवति । अद्य स्थाने स्थाने संघाः संघटिताः, विविधाः समितयः संस्थापिताः, सामाजिके, धार्मिके, आर्थिके वा राजनीतिके क्षेत्रे सर्वत्र यत् किञ्चित् बहुमतैः निश्चीयते तदेव सम्पाद्यते, तदेव सत्यं, तदेव शिवं, तदेव सुन्दरम् । सर्वत्र समवायशक्तिः इष्टकारिणी । इदानीम् एकाकी महाबलिष्ठोऽपि दुर्बलः, अपूर्वशक्तिसम्पन्नोऽपि शक्तिहीनः, अस्त्रशस्त्रनिपुणोऽपि अनिपुणः, न कोऽपि संघानां विरोधे सति पारयति अघटितघटनां घटयितुम्, संघबलेनैव सर्वाणि कार्याणि साध्यानि विलोक्यन्ते ।

विविधेषु क्षेत्रेषु संघानां विविधानि रूपाणि वर्तन्ते । सामाजिकव्यवस्थासु संघटितानां जनानां प्राधान्यं प्राबल्यञ्च वर्तते । संघटिताः जनाः प्राचीनां सुदृढां परम्परां, वैवाहिकीं व्यवस्थां परित्यक्तुं समर्थाः । तेषां विरोधे न कस्यापि गतिः, न कस्यचित् सामर्थ्यं किमपि कर्तुं दृश्यते । संघटिताः जनाः नवनवाः परम्पराः प्रवर्तयन्ति नवान् उत्सवान् प्रचालयन्ति, अन्ये जनाः तान् सहर्षमनुगच्छन्ति । साम्प्रतं न जाने कियन्तः संघाः समुत्पन्नाः—यथा—छात्राणां संघः, शिक्षकाणां संघः, साहित्यिकानां संघः, कवीनां, लेखकानां, कर्मचारिणां संघः, ये जनानां नेतृत्वं कुर्वन्ति, स्वकीयानि कार्याणि सम्पादयन्ति । यदा कदा इमे संघाः कुमार्गगामिनः भवन्ति, कुचेष्टाः कुर्वन्ति, संघशक्तिः न सर्वदा सदुपयोगिनी भवति, न सर्वदा शुभं विदधाति, ये छात्राः गृहेभ्यः अध्ययनाय विश्वविद्यालयं गच्छन्ति, ये सौम्याः सुशीलाश्च सन्ति, तेऽपि संघीभूय दुःशीलाः जायन्ते । ये कर्मचारिणः निष्ठावन्तः, सदाचारिणः, प्रकृत्या सरलाः, तेऽपि संघबले निपत्य क्रूराः, कुटिलाः, दुर्धर्षाः जायन्ते । वस्तुतः संघशक्तिः मदयति जनान्, इयं अपहरति तेषां विवेकबुद्धिम्, अनया प्रताडिताः जनाः स्वार्थपराः जायन्ते । समुदितायां संघशक्तौ जनः मदान्धः भवति, न स शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न परिचयं रक्षति, नाचारं पालयति, न विशेषज्ञतां विचारयति । नायं अभिजनमीक्षते, न कुलमाद्रियते, न च सत्यमनुबुध्यते । अनया जनाः ग्रहैरिव गृह्यन्ते, मन्त्रैरिव आवेश्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते । छात्राः, कर्मचारिणः विशेषरूपेण दुर्व्यवहरन्ति ।

आर्थिकक्षेत्रेऽपि संघानां बाहुल्यं दरीदृश्यते । कोऽपि एकाकी जनः न किमपि कर्तुं पारयति । पुरा ये श्रमिकाः निष्ठावन्तः, श्रमशीलाः, सरलाश्चासन् त एव साम्प्रतं संघटनबलेन शक्तिशालिनः संजाताः । तेषु न केवलं कर्मकराः अपितु

अराजकतत्त्वानि समायान्ति । तेष्वेव राजनीतिक दलानि गुप्तरीत्या प्रविश्य कार्यस्थगनं, द्वन्द्वञ्च कारयन्ति, वस्तुतः राजनीतिधुरीणाः अपि तैः भीताः तेषां वन्दनं कुर्वन्ति, अधिकारिणोऽपि तेभ्यः बिभ्यति । प्रत्यहं आकाशवाणीतः श्रमिकाणां कल्याणाय विभिन्नाः योजनाः उद्घोष्यन्ते । फलतः देशस्य आर्थिकी स्थितिः शोचनीया जाता । आर्थिके क्षेत्रे सम्प्रति संपत्तौ वैयक्तिकः अधिकारः एव सिद्धान्तरूपेण न गण्यते । तत्र जन-समूहस्य संघस्थ राष्ट्रस्य वा अधिकारः स्वीक्रियते । अयमेव वर्तमानः समाजवादः, अयमेव संघशक्तेः परिणामः, अयमेव न्यायः लोकस्य, इदानीं व्यक्तिगतप्रयासेन न किमपि क्रियते, न च साफल्यम् लभ्यते । व्यक्तिस्तु इदानीं समाजस्य अंगीभूताव-तिष्ठते न च प्राधान्येन ।

राजनीतिकक्षेत्रे तु शासनप्रक्रिया एव परिवर्तिता । प्रायशः सर्वत्र शासनसूत्रं प्राजातान्त्रिकं, गतो महाराजानां कालः, गतः एकाधिपतीनां समयः, नष्टः व्यक्तिगत-शक्तिशालिनां जनानां स्वरः, इदानीं जनाः स्वयमेव शासकाः । अस्मिन् क्षेत्रेऽपि अनुदिनं नवीनाः संघाः निर्मीयन्ते, प्राचीनाश्च विशृंखलिताः जायन्ते । पुरा संघानां निर्माणं देशहिताय आसीत् किन्तु अद्य तेषां स्थापनं स्वार्थाय क्रियते । सन्निकटे अतीते आंग्ल-जनानां विरोधे संघाः निर्मिताः जाताः किन्तु बहिर्गतेषु आंग्लजनेषु जनाः स्वहितार्थं एषां निर्माणं कुर्वन्ति न तु राष्ट्रनिर्माणाय । इदानीं राष्ट्रनिर्माणे न कस्यापि रुचिः, केवलं राजनीतिकपटले व्याजोऽयं दृश्यते । साम्प्रतं सर्वत्र प्रजातंत्रं दृश्यते, दैवात् चेत् कुत्रापि राजत्वम् अस्ति तन्न निरंकुशम् । राजा तु केवलं नामधारकः, तत्र तस्य मन्त्रिपरिषद् कार्यं करोति अथवा संसदादयः कार्यं सम्पादयन्ति । संघानां शक्तिबलेन अयोग्याः जनाः अपि शासकाः भवन्ति, धनिकाः निर्वाचनेषु जयन्ति, किं बहुना संघ-शक्तिः न केवलं देशे, अपितु विश्वे संयुक्तराष्ट्रसंघरूपेण अवतिष्ठते । किमपि राष्ट्रं एकाकि नैव स्थातुं शक्नोति । अतो हि उच्यते संघे शक्तिः कलौ युगे ।

—: ::—

५ नास्ति उद्यमसमो बन्धुः

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥

सत्यमेवाभिहितमिदम् । समीचीनेनोद्योगेनैव सकलं सिद्धिं गच्छति । विविध-संसाधनोपेते आधुनिके युगे इयमुक्तिः सविशेषं सार्थकताम् आवहति । वस्तुतः केवलं संकल्पैः, विकल्पैः, मनोरथैः न किमपि सिध्यति । संप्रति सुविस्तृतं भूमण्डलमिदं वैज्ञानिकप्रगत्या लघुत्वम् उपगतम् । महत्तराणि अन्तराणि संकुचितानि जातानि, सुदूरस्थानि स्थानानि आसन्नानि भूतानि, क्षणेनैव कस्मिन्नपि क्षेत्रे जायमाना घटना अन्यस्मिन् प्रदेशे सुविदिता जायते, क्षितिजलपावकगगनसमीराः सकलाः सर्वथा मानवाधीनाः । इदानीं प्रभुतासम्पन्नः प्रगतिशीलः मानवः शशिनः शिरसि स्वकीयं चरणं निवेशयति—केवलम् उद्यमेनैव ।

विविधानां समस्यानां समाधानं, समापततां दुःखानां निवारणं दुष्कराणां कार्याणां सम्पादनं, समागतानां विपत्तीनां अपाकरणञ्च दुरुहपर्वतरोहणम् इव उद्यमेनैव भवति न तु हस्ते हस्तं निधाय । अपरञ्च आपत्तिकाले बान्धवाः सुहृद् जनाश्च येन रूपेण कस्यचित् सहायकाः भवन्ति तेनैव, उद्यमरूपेणापि सहायकः अतो हि उक्तम **"नास्ति उद्यमसमो बन्धुः"** ये केऽपि जनाः उद्योगपरायणाः, कार्यनिरताः, ये गतिशीलाः त एव वैयक्तिके, आर्थिके, सामाजिके, राजनीतिके च क्षेत्रे साफल्यम् अवाप्नुवन्ति । ईश्वरोऽपि तेषामेव सहायतां करोति ये उद्योगशीलाः । यथोक्तम् आंग्लभाषायाम्—"God helps those who help themselves" उपनिषत्सु अपि उल्लिखितं वर्तते—**"नायम् आत्मा बलहीनेन लभ्यः"** अतो हि वीरभोग्या वसुन्धरा, इति तु अवितथम् एव ।

कलौ संघे शक्तिः प्रोच्यते, किन्तु उद्यमं विना संघटनं न सम्भाव्यते । उद्योगेन पराधीनं भारतं स्वतंत्रं जातम्, उद्योगेनैव अन्ये देशा अपि दासतायाः उन्मुक्ताः, अद्यापि अनेके देशाः स्वकीयायै स्वतंत्रतायै यत्नशीलाः दृश्यन्ते । उद्योगशीलाः कृषीवलाः उद्योगबलेन प्रचुराणि धान्यानि समुत्पादयन्ति, उद्योगेन सुभटाः सैनिकाः रणक्षेत्रे विजयश्रियं लभन्ते, क्रियाशीलाः नेतारः क्षणे क्षणे परिवर्तमानायां राजनीतौ सफलीभूताः भवन्ति । समुचितेन उद्यमेन असम्भवम् अपि सम्पादयितुं शक्यते ।

मानवास्तु स्वभावतया उद्यमशीलाः । श्रुतिरपि अस्माकम् एवम् उपदिशति । **"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः"** तथापि लोके द्विविधाः जनाः विद्यन्ते—

भाग्यवादिनः, पुरुषार्थवादिनश्च । भाग्यवादिनां मते सर्वं दैवाधीनं भवति, दैवम् एव सर्वकार्यक्षमम्, तदेव सर्वाभीष्टं सिद्धिकरं, तदेव सर्वं कर्तुं, अकर्तुं, वान्यथा कर्तुं क्षमम् । यथोक्तं मनीषिभिः—"**भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्**" भाग्यवादिनां विचारोऽयं यत् कस्यचित् समृद्धस्य धनिकस्य गेहे समुत्पन्नः जनः नित्यं निश्चिंतः स्वपिति, स सर्वैः ईप्सितैः संसाधनैः सज्जः भवति, सर्वाणि भौतिकानि सुखानि लभते, किन्तु निर्धनस्य कुटीरे जायमानः अकिंचनः जनः जन्मनः आरभ्य सदैव दुःखानि जानाति, असह्यान् अपशब्दान् शृणोति, नान्नं, न वस्त्रं लभते, स परिश्रमं विधाय अपि अभीष्टं नैव अवाप्नोति । एतद् विपरीते पुरुषार्थवादिनाम् उद्घोषः अस्ति यत् पुरुषार्थं विना न किमपि लब्धुं शक्यते । तेषां मते चेत् कोऽपि अस्मिन् जन्मनि धनिकस्य गेहे समुत्पन्नः तत् पूर्वकृतकर्मणः फलम् एव । पूर्वकृत पुण्येनैव पुरुषार्थः भाग्यं सम्भवति ।

सत्यमिदम्—उद्योगहीनः जनः कियदपि धनं लभेत, उद्योगं बिना न तद् सुरक्षितं भवेत् । एवं कौटुम्बिकाः, परिजनाः, अन्ये सहयोगिनः उद्योगहीनस्य कियतीमपि सहायतां कुर्युः किन्तु सर्वा सहायता निष्फला भवति ।

इदानीं निखिले विश्वे सर्वे प्राणिनः गतिशीलाः, गतिहीनं जलमपि दूषितं भवति । चन्द्रः गतिमान्, गतिमान् सूर्यः, ग्रहतारकाः गतिमन्तः, नद्यः गतिमत्यः वाताः गतिमन्तः, सर्वं गतिशीलम्, गतिः एव प्राणाः, तत् कथन्न उद्योगः करणीयः, साम्प्रतं अस्माकं कृते उद्योगस्य महती आवश्यकता, अस्माकं राष्ट्रं विकासशीलं अतोऽस्य विकासाय उद्यमः परमोऽपेक्षितः, अनेकाः समस्याः राष्ट्रस्य पुरतः विद्यन्ते तासां समाधानं उद्यमेनैव सम्भवति । उद्यमशीलत्वं एको विशिष्टो गुणः, अयमेव स्पृहणीयः अयमेव समुन्नतिसाधकः । अयमेवमानवानां श्रेष्ठः बन्धुः ।

———

६. माघे सन्ति त्रयो गुणाः

"मेघे माघे गतं वयः", "नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते",

"माघे सन्ति त्रयो गुणाः" इति सूक्तयः कवि शिरोमणेः माघस्य कविरूपेण प्रतिष्ठां प्रख्यापयितुं सर्वथा प्रभवन्ति । कीदृशी प्रसादगुणोपेता सरसा च तस्य पदावलिः, कीदृशी महती कमनीया तस्य कल्पना, कीदृशी भावानामुदात्तता, कीदृशं चालंकरणं तस्य काव्ये विलसति एतत्तु न तिरोहितं कस्यचित् । तस्य महाकवेः पाडित्यपूर्णे

महाकाव्ये पदे पदे पदलालित्यं समुल्लसति । अतः तस्य काव्यस्य विवेचनम् अपि माधुर्यसन्निवेशं दास्यति नात्र कापि विप्रतिपत्तिः ।

माघस्य काव्ये महाकवेः भारवेः व्यापकः प्रभावः सुस्पष्टः सुनिश्चितश्च दरीदृश्यते । विलक्षणं साम्यं तत्र वर्तते किराते शिशुपालवधे च । उभयोः काव्ययोः कथानकस्य स्रोतः महाभारतम्, उभयोः आरम्भः श्री शब्देन विहितः, उभयोः अवसानं लक्ष्मीशब्देन, उभयोः प्रथमे सर्गे संदेशवर्णनं, द्वितीये सर्गे च तस्य विषयविश्लेषणम् उभयोः पथप्रदर्शनं केनचित् ऋषिणा सम्पाद्यते, उभयोः काव्ये पर्वतवर्णनं दूतप्रेषणं, द्वन्द्वयुद्धात्पूर्वं सेनयोः संघर्षः, अनयोः साम्यं वक्तुमलम् । वस्तुतः माघेन अनेकेषु स्थलेषु भारवेः भावाः अपि गृहीताः । तथापि इयमुक्तिः नोपेक्षणीया—यत् "तावद् भा भारवेर्भाति यावद् माघस्य नोदयः" अतो हि माघस्य स्थानं वृहत्त्रय्याम् असंदिग्धम् एव । माघस्य काव्ये कलापक्षस्य प्राधान्यं विलोक्यते । अस्मिन् काव्ये यादृशी प्रौढिः, यादृशी प्रभावोत्पादकता, यादृशं लालित्यं न तत् सर्वं वर्तते अन्यत्र ।

माघः न केवलं कविरासीत् । तस्य विश्रुतिः पाण्डित्येन वैयाकरणत्वेन च अति प्रचुरा । वस्तुतः तस्य युगस्य एतादृशी परिकल्पना आसीत् यत् पाण्डित्यं विना कवित्वं व्यर्थमेव । इममेवाधारम् आदाय महाकविना भट्टिना स्वकीये काव्ये व्याकरणस्य सन्निवेशः विहितः । माघेन स्वकाव्ये न केवलं व्याकरणं, अपितु सांख्यं, योगः, राजनीतिः, न्यायः बौद्धदर्शनं, वेदः, काव्यशास्त्रं, पुराणं, संगीतं पशुपक्षिणां ज्ञानं च सम्यक्तरत्वेन प्रदर्शितम् । अतः यदि कालिदासः मूलतः मौलिकः कविः, भारविः राजनीतिपटुः, भट्टिश्च उद्भटवैयाकरणः, तदा माघः सर्वतन्त्रस्वतंत्रः, अप्रतिमः महाकविरासीत् । कस्यचित् समालोचकस्य एषा उक्तिरपि विवेचनीया—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

अनया दृष्ट्या माघस्य काव्ये अनुपमाः उपमाः विलसन्ति, तत्र अर्थगाम्भीर्यं वर्तते, स्थले स्थले रमणीयः पदविन्यासो विद्यते । यद्यपि उपमाविषये कालिदासः कालिदासः एव, स न केनापि अतिशयितुं शक्यते किन्तु कालिदासादीनां काव्येषु केवलं एकैकः गुणः प्रकीर्त्यते, माघस्य काव्ये तु त्रयोऽपि गुणाः एकस्मिन् ग्रन्थे वर्तन्ते । माघस्य पदानां कीदृशं रमणीयत्वं, कीदृशं गाम्भीर्यं, कीदृश्यः उपमाः तत्र सन्ति एतदधोलिखितैः पदैः स्फुटं भविष्यति ।

१. रमणीयत्वम्

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः ॥

शिशुपालवधम् ६/२

मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ॥

शिशुपालवधम् ६/२०

कीदृशं लालित्यपूर्णं स्वाभाविकं वर्णनमेतत् इति तु स्पष्टमेव ।

२. व्याकरणज्ञानम्

परितः प्रमिताक्षरापि सर्वं विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम् ।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित् परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा ॥

शिशुपालवधम् १६/८०

अस्मिन् श्लोके परिभाषायाः ज्ञानं आज्ञाव्याजेन प्रदत्तम् ।

३. राजनीतिविश्लेषणम्

स्वशक्त्युपचये केचित् परस्य व्यसनेऽपरे ।
यानमाहुस्तदासीनं त्वामुत्थापयति द्वयम् ॥

शिशुपालवधम् २/५७

शत्रुः कदा आक्रमणीयः इत्यस्मिन् श्लोके स्फुटं भवति ।

४. सामान्यनीतिः

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्य कारणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥

सम्पदः कदा आयान्ति, कार्यं कथं करणीयम् एतत् सर्वम् अतिसारल्येन अत्र प्रदर्शितम् । इयमुक्तिः माघस्य अनुभवं प्रकटयति ।

५. सांख्यज्ञानम्

उदासितारं निगृहीतमानसैः गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन ।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग् विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः ॥

सांख्ये पुरुषः निर्विकल्पः, क्रियाहीनश्च उच्यते, १/३३
स कथं ज्ञेयः कैश्च ज्ञेयः इत्युक्त्वा श्रीकृष्णस्य महत्ताऽत्र प्रदर्शिता ।

६. उपमा

क्षणमतुहिनधाम्नि प्रोष्य भूयः पुरस्ताद्,
उपगतवति पाणिग्राहवद् दिग्वधूनाम् ।
द्रुततरमुपयाति स्रंसमानांशुकोऽसा-
वुपपतिनीचैः पश्चिमान्तेन चन्द्रः ॥

अस्मिन् श्लोके चन्द्रः उपपतित्वेन वर्णितः । स सूर्ये गते केन रूपेण उपपतित्वं भजते एतत् प्रदर्शितं किन्तु कालिदासस्य उपमासु यादृशः प्रवाहः वर्तते न तादृशः अत्र विद्यते ।

७. रसाभिव्यक्तिः

यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षीं,
सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव ।
निःशंकमन्याः सममाहितेर्ष्यैः,
तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः ॥

अपरश्च

विपुलेन सागरशयस्य कुक्षिणा,
भुवनानि यस्य पपिरे युगक्षये ।
मदविभ्रमासकलया पपे पुनः,
स पुरस्त्रियैक तमैकया दृशा ॥

माघेन उत्प्रेक्षा रूपक निदर्शनादीनां विविधानामलंकाराणां प्रयोगः स्वकाव्ये स्वाभाविकरूपेण कृतः । अतः अयं महाभागः अलंकरणशैल्यां प्रधानः तिष्ठति । प्रायशः प्रतिपदं अलंकारसन्निवेशः वर्तते । अतोऽधिकम् एकस्मिन् पदे यदा कदा अनेके अलंकाराः समाविष्टाः । माघः भारविणा कालिदासेन च प्रभावितः एतत् तु सत्यं किन्तु माघस्य प्रतिभा विलक्षणासीत् इत्यपि न विवादविषयः ।

———

७. वार्तापत्रम्

मानवः एकः सामाजिकः जीवः। स समाजे जन्म लभते, समाजे वृद्धिं गच्छति, समाजे एव विनश्यति। स समाजे निवसति, समाजं विलोकयति, समाजम् आकर्णयति, तत्रैव च स्वकीयं विचारमपि प्रकटयितुं वाञ्छति। तेन सह समाजस्य पारस्परिकः विविधव्यवहारः, पारस्परिकं आदानं प्रदानं च सम्मेलनं, संघर्षो वा अनुदिनं भवति किन्तु अद्यतनः समाजः एतावान् विशालः संजातः यद् मानवस्य समस्तः पारस्परिकः सम्पर्कः केवलं परस्परसम्भाषणेन न भवितुम् अर्हति। अयं तु वार्तापत्रैः सम्यक्-तरत्वेन सम्पाद्यते। अद्य मानवः न केवलं स्वकीयस्य देशस्य वृत्तं ज्ञातुमभिलषति अपि तु निखिलविश्वस्य वार्तां गृहे एव तिष्ठन् ज्ञातुमिच्छति। अतः वार्तापत्रम् अस्माकं दैनिक व्यवहारस्य आवश्यकम् अङ्गम्। धनिकः, निर्धनो वा, शिक्षितो अशिक्षितो वा नागरिकः, ग्रामीणो वा प्रातः उत्थाय ज्ञातुमिच्छति यदद्य किं नूतनं जातम्। कोऽद्य विजयी जातः, कः पराजितः, केन अमुकं पदमलंकृतम् को वा पदच्युतः। महदाश्चर्यंकरं तु इदं यद् मानवस्य परिसरे यत्किंचित् घटितं तद् ज्ञातुं न स तादृशः आकुलः यादृशः कस्मिंश्चित् अन्यस्मिन् भागे घटितं वृत्तं ज्ञातुं भवति। अस्य कारणं स्पष्टमेव यत् तस्य जीवने, अन्येषां देशानां राजनीतिकसामाजिकार्थिकानां परिवर्तनानां सुस्पष्टः प्रभावः आयाति। विश्वस्य एकस्मिन् भागे यत् किंचिदपि जायते तस्य प्रभावः अन्य-स्मिन् भागे स्थिते जने आपतति। न कोऽपि अधुना एकाकी स्थातुं शक्नोति। अतः पारस्परिकः सहयोगः, पारस्परिकः सम्पर्कः परमावश्यकः भवति।

अस्मिन् देशे वार्तापत्रस्य जीवनं न दीर्घकालिकम्, केवलं १८३५ ई० इति वर्षात् प्राक् भारते एकमांग्लपत्रं प्रचलितमासीत्। एवं केवलं सार्धशतैकवर्षाणि व्यतीतानि यदारभ्य वार्तापत्रस्य भारते आविर्भावः जातः। ततः परं अद्यावधि अस्मिन् क्षेत्रे आशातीता प्रगतिः सम्भूता।

इदानीं विविधभाषासु अगणितानि लघुदीर्घाणि वार्तापत्राणि प्रकाशितानि दृश्यन्ते। एषु कानिचित् धार्मिकाणि, कानिचित् राजनीतिकानि, कानिचित् आर्थिक-क्षेत्र सम्बद्धानि, कियन्ति दैनिकानि, कियन्ति मासिकानि, त्रैमासिकादीनि च। यत् किंचिदपि उद्देश्यमभिलक्ष्य कस्यचित् वार्तापत्रस्य प्रकाशनं क्रियते तस्यैव विषयस्य तस्मिन् पत्रे प्राधान्यं वर्तते। सर्वेषु समुन्नतेषु राष्ट्रेषु विविधानि वार्तापत्राणि प्रकाश्यन्ते। इमान्येव वस्तुतः तस्य राष्ट्रस्य वाणी, एषां माध्यमेनैव जनाः स्वीयानि सुखदुःखानि प्रकटयन्ति।

राष्ट्रियजीवनस्योन्नयनम् अपि वार्तापत्रैः शक्यते सम्पादयितुं । राष्ट्रियविचाराणां जागर्तिः एवं जायते । वार्तापत्रैः लेखनं, पठनं, पाठनं, सम्पादनं, ज्ञानप्रसारणञ्च भवति । अगणितानां जनानां जीविकासाधनानि वार्तापत्राणि एव । वार्तापत्राणामेकः उद्योगः संजातः यस्मिन् लेखकाः, सम्पादकाः, सन्देशवाहकाः, कर्मकराः, लिपिकाः कार्यरताः । एतत्कृते विज्ञानवलं सराहनीयं येन विविधानि मुद्रणयन्त्राणि विकसितानि । वार्तापत्रैरेव सकलं भूमण्डलम् एकस्मिन् सूत्रे निवद्धं जातम् । वार्तापत्रैः देशस्य विचारधारा परिवर्तिता जायते, प्रायः जनान्दोलनानि पत्रैरेव उपचीयन्ते, अधिकारिणः वार्तापत्राणि विलोक्य जागरूकाः जायन्ते । एभिः साहित्यक्षेत्रे नवनवानां लेखानां, काव्यानां, कथानां, नाटकानाञ्च सम्वर्द्धनं भवति, एभिः राजनीतिके क्षेत्रे नेतृणां समुन्नयनं, धार्मिकक्षेत्रेषु महात्मनां सम्मानः, व्यावसायिकक्षेत्रे व्यवसायिनां प्रचारः अनुदिनं क्रियते । वार्तापत्रेषु प्रतिदिनं वस्तूनां मूल्यानि प्रदत्तानि भवन्ति । चित्रपटादीनां पुरोगमाः, क्रीडनानां वृत्तानि प्रकाशितानि भवन्ति । वस्तुतः नास्ति कोऽपि एतादृशः विषयः य वार्तापत्रैः न व्यवह्रियते । अन्येषां राष्ट्राणां प्रगतिं विलोक्य देशवासिनः प्रेरणां गृहणन्ति । वार्तापत्राणि जनसाधारणस्य संघर्षं समुत्साहं समेषां पुरतः संस्थापयन्ति । निर्वाचनसमये तु वार्तापत्राणि महान्ति उपयोगीनि भवन्ति । अनेन रूपेण अद्यतनं जीवनं वार्तापत्रैः संचाल्यते । विश्वमिदं वार्तापत्राधीनमेव ।

परन्तु अस्मिन् विश्वे न किमपि केवलं गुणयुक्तम्, यत्र गुणाः भवन्ति तत्रैव दोषा अपि आयान्ति, एतत् तु शाश्वतिकः नियमः । यदा कदा वार्तापत्रैः भ्रामकाः असत्यप्रचाराः प्रकाश्यन्ते भ्रान्तयः समुत्पाद्यन्ते । एभिः अश्लील विज्ञापनानि दीयन्ते यैः नवयुवकाः कुपथगाः युवतयश्च कुमार्गगामिन्यः भवन्ति एभिः प्रेरिताः धार्मिकसंघर्षाः अपि जायन्ते यैः अपूरणीया क्षतिः जायते । अतः परमावश्यकमिदं यत् एतेषां सम्पादकाः स्वनियोगं पक्षपातरहितभावनया कुर्युः । युवका अपि वार्तापत्राणि कार्यकारणविश्लेषणं कृत्वैव पठेयुः ।

०—०

८ उपमा कालिदासस्य

सहृदयहृदयाह्लादकः, सरसकविताकामिनीकान्तः, सुरभारतीसमुपासकः, कविकुलगुरुः कालिदासः कस्य श्रुतिपथं नायातः। अप्रतिमस्यास्य कविशिरोमणेः कीर्तिसौरभं न केवलं स्वदेशे अपितु निखिले दिग्दिगन्तरे विश्वे व्याप्तम्। कीदृशं रसभावपूरितं महाकाव्यं, कीदृशोऽलौकिकानाम् उपमानां विन्यासः, कीदृशानि मनोहराणि नाटकानि अनेन महाभागेन प्रणीतानि इति न तिरोहितं कस्यचित्। वस्तुतः महाकविकालिदासेन स्वीयाभिः विविधाभिः सारगर्भाभिः रचनाभिः समलंकृता देववाणी, न तु वाण्या कालिदासः। कालिदासस्य वर्णनानि अद्यापि तेनैव रूपेण हृदयहारकाणि येन रूपेण तस्य जीवनकाले तानि आसन्। तानि तु शाश्वतिकानि सत्यानि कालातीतानि च। तस्य काव्येनैव भारतवासिनः काव्यक्षेत्रे उन्नतमस्तकाः। संस्कृतसाहित्याकाशे स एव एकः देदीप्यमानः समुज्ज्वलो दिनकरो द्योतते।

परं महत् कष्टं यत् कालिदासेन स्वजीवनविषये न किमपि उल्लिखितम्। अयं कदा जातः, को देशः अनेन महाभागेन स्वजन्मनालंकृतः इत्यपि अस्माभिः न ज्ञायते। अस्मिन् विषये विदुषां महान् विवादः। तत्र प्रचलन्ति परस्पर विभिन्नाः जनश्रुतयः याः इमं प्रश्नमधिकं जटिलं विदधति। अतोऽधिकं कष्टतरम् इदमेव यत् भारतीयसाहित्ये अनेके कालिदासाः विक्रमादित्याश्च जाताः। अतः केन कालिदासेन कतमा रचना विरचिता, कः कस्य विक्रमादित्यस्य सभायामासीत् एतत्तु नैव निश्चेतुं शक्यते। अद्यावधि यत् किमपि प्रमाणं प्रकाशे आयातं तदनुसारं स गुप्तकाले अथवा ईसवीतः प्राक् प्रथमायां शताब्द्याम् इमां भारतभुवमलंचकार इति तु निश्चप्रचम्।

अनेन महाकविना साहित्यक्षेत्रे यादृशी समृद्धिः समर्पिता तस्याः कीर्तनं अल्पीयसि काले न शक्यते विधातुं। अतः तदंशमात्रप्रशंसयैव समर्प्यते तस्मै श्रद्धासुमनसामञ्जलिरधुना। अनेन महाभागेन न केवलं महाकाव्यं अपितु मेघदूतसमं खण्डकाव्यं ऋतुसंहारमुक्तकश्च विरचितम्। स्वकीयेषु ग्रंथेषु अनेन भारतीयानां प्राचीनां परम्परामधिकृत्य स्वीयाः अनुपमाः उपमाः, दिव्याः अनुभवाः, विचित्राणि मनोहराणि प्रकृतिचित्राणि, मनोज्ञा रसाभिव्यक्तिः, चमत्कारयुक्तालंकाराश्च विन्यस्ताः—यथोक्तम् बाण महाभागेन—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

अनेन महाकविना उपमां प्रति विशिष्टः पक्षपातः प्रदर्शितः अतो हि उक्तम् **"उपमा कालिदासस्य"** । कालिदासस्योपमानां वैशिष्टयमेव वस्तुतः तस्य ख्यातेः मूलकारणम् । अतः तस्य उपमानां वैशिष्ट्यमत्र विलोकनीयमेव । यथा—

(i) तस्य विन्यस्तानि उपमानानि उपमेयस्य अत्यन्त सदृशानि ।

हरस्तु किंचित् परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥

कुमारसम्भवम् ३/६७

अत्र शिवस्य उपमा समुद्रेण सह तयोः गाम्भीर्यमवलम्ब्य प्रदर्शिता । यथा चन्द्रोदये गभीरः समुद्रः विचलति, तथैव गम्भीरः शिवोऽपि उमायाः मुखचन्द्रं विलोक्य विचलितः जातः । उभयोः न केवलं गभीरत्वे साम्यं अपितु संक्षोभेऽपि दरीदृश्यते ।

(ii) अन्यत्रापि विलोकनीयं कीदृशी उपयुक्ता रमणीया च कालिदासस्य उपमा राजते—

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुःशैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ॥

कुमारसम्भवम् ५/८७

अत्र शिवं विलोक्य पार्वती सहसैव स्तब्धा जायते । कविः तां स्तब्धतामेव वर्णयति—कम्पमाना पार्वती स्वमुद्धृतं पदम् उत्थापयन्ती एव तथैवातिष्ठत् यथा कापि पर्वतारुद्धा नदी न अग्रे चलितुं शक्नोति न च स्थिरा भवति ।

(iii) कालिदासस्य उपमाः अपूर्वाः, मौलिकाः, स्वाभाविकाः प्रसंगानुरूपाश्च । यथा—

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टान्,
पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं सन्निवृत्तं तथैव ।
चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिःपक्ष्मभिश्छादयन्तीं,
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥

मेघदूतम् १/२३

मेघदूते वियोगव्यथान्वितायाः अश्रुपूर्णनेत्रायाः यक्षस्य पत्न्याः स्वरूपं वर्णयन् कालिदासः एकामश्रुतपूर्वां नवीनां कल्पनां अस्माकं पुरतः समुपस्थापयति । स कथयति चेत् कस्मिंश्चित् दिवसे सूर्यः मेघाच्छन्नः भवति तदा स्थलकमलिनी स्वभावतः विकचितुम् अभिलषति किन्तु भानुं समक्षं न प्राप्य सा न विकचति तथैव यक्षस्य कान्ता चन्द्रं विलोक्य सोल्लासं वहिस्तु आगच्छति किन्तु पतिमनुपलभ्य प्रत्यावर्तते । सा स्वीयम् अश्रुपूर्णं नयनं नोन्मीलयति न च निमीलयति ।

(iv) उपमानां कृते कालिदासेन सर्वदा नूतनाः कल्पनाः विहिताः।
यथा—

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

रघुवंशम् ६/६७

कालिदासप्रयुक्तासु उपमासु इयमतीव लोकप्रिया। अत्र इन्दुमती यदा स्वयम्वरे स्वपत्युः वरणाय सभायां गच्छति सा तत्रोपस्थितान् नृपान् क्रमेण विलोकयति। सा एकैकं राजानं विलोक्य यदा तं विहाय अन्यमुपसरति स नृपः तथैव विवर्णभावं भजते यथा रात्रौ राजमार्गे सञ्चरन्त्यां दीपशिखायां पृष्ठतः त्यक्तं भवनं मलिनं प्रकाशहीनञ्च जायते।

(v) कालिदासस्य उपमाः व्यापकक्षेत्रात् गृहीताः।

यथा—स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां, छायेव भूपतिरन्वगच्छत्॥

रघुवंशम् २।६

अत्र भूपतेः दिलीपस्य उपमा छायया सह प्रदर्शिता। येन प्रकारेण कस्यापि छाया तं सदानुगच्छति, न कदापि जहाति तेनैव रूपेण दिलीपः धेनौ स्थितायाम् अतिष्ठत्, प्रयातायां तस्याम् अन्वगच्छत् तां, तां तिष्ठन्तीं विलोक्य स्वयम् उपाविशत्, तां जलं पाययित्वा च स्वयं जलाभिलाषी भूत्वा तामन्वगच्छत्।

(vi) अपरमपि विलोकनीयम्। सरसायां भाषायाम् उपनिबद्धास्ताः काव्ये सौष्ठवमादधते न तु अवरोधम्। यथा—

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव संध्या॥ रघुवंशम् २।२०

यदा दिलीपेनानुगम्यमाना धेनुः वनात् गृहमायाति राज्ञी सुदक्षिणा तस्याः स्वागतं करोति। तस्मिन् क्षणे सा धेनुः तथैव अभासत यथा दिनक्षपामध्ये संध्या भवति। दिनम् उज्ज्वलं नृप इव, क्षपा प्रकाशहीना राज्ञी इव, मध्ये धेनुः संध्या इव प्रत्यभात्। अनेन प्रकारेण एतादृश्यः अगणिताः उपमाः कालिदासेन स्वकीयेषु काव्येषु पदे पदे प्रदर्शिताः। अतः वाणीविलासो विलक्षणया प्रतिभया भासमानः, कविता कामिन्या प्रकामं काम्यमानः भावकुसुमानां गुम्फने पटीयान् कालिदासः अमरतामभजत।

६. सत् संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्

विचित्रोऽयं संसारः। शुभाशुभानि, शिवाशिवानि वस्तूनि अत्र विद्यन्ते। अस्मिन् जगतीतले सन्ति दुर्जनाः सज्जनाश्च किन्तु न कोऽपि जन्मना सज्जनः न च दुर्जनः भवति। संसर्गादेव सज्जनाः दुर्जनाश्च जायन्ते, यथोक्तम्—**संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति**। यः जनः यादृशीं संगतिं करोति, यादृशेन जनेन सह उपविशति, वसति, व्यवहरति, तादृशः स्वयं भवति। प्राणिनां दैनिकजीवने दुर्जनानां सज्जनानां समेषां पारस्परिकः सम्पर्कः भवति। सज्जनानां सम्पर्कः सुखप्रदः, दुर्जनानाञ्च दुःखप्रदः भवति। अतः सर्वदा सतां संगः ग्राह्यः।

सत्संगत्या सद्विचाराः, सद्भावनाः सौजन्यादिगुणाः जायन्ते। सतां साहाय्येन जनाः उन्नतिपथं प्राप्तुं प्रभवन्ति। कुत्सिताः अपि जनाः सत्सङ्गत्या महान्तः भवन्ति। तथा हि—देवानां शिरसि विनिवेशितानि पुष्पाणि पूजार्हाणि भवन्ति न तु कदाचित् शवस्थितानि। कुसुमानां संगत्या कीटोऽपि देवानां शिरांसि अधितिष्ठति। वक्रोऽपि चन्द्रः महामहिमशालिनः हरस्य शिरसि विराजते। संगत्यैव युधिष्ठिरस्य सारमेयः सदेहं स्वर्गं गतः। अधःपाति जलं नलसम्पर्केण उच्चशिखरम् आरोहति। दुर्दान्तः वाल्मीकिः सत्संगत्यैव महर्षिः वाल्मीकिः संजातः इति लोके प्रसिद्धिः। वस्तुतः सत्संगेन मानवेषु सद्बुद्धिः जायते, सद्बुद्धि सम्पन्नाः मनोरथेषु सफलीभूताः भवन्ति। सत्संगत्या अकिंचनानां मानवानां जन्म दारिद्र्यं विनश्यति। यथोक्तम्—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं।
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोतिं॥
कीर्तिं तनोति वितनोति च दिक्षु लक्ष्मीं।
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

मानवः स्वजीवनं समुन्नेतुं विविधानि साधनानि संचिनोति किन्तु यावत् सद्बुद्धिः न समुदेति तावत् सर्वाणि साधनानि वितथानि भवन्ति। सज्जनाः स्वकीयेन ज्ञानमयेन प्रकाशेन हृदिस्थितमपि तमः समूलं छिन्दन्ति। ते सकलानि पापानि

दूरीकुर्वन्ति, चेतांसि प्रसादयन्ति। अन्यच्च सद्बुद्धिसम्पन्नाः, ज्ञानवन्तः, स्वाध्याय-निरताः, परोपकारपरायणाः जनाः सर्वेषां संकटहारकाः भवन्ति। तैः साकं सदा सत्संस्काराः जायन्ते।

किं बहुना सज्जनानां सम्पर्के दुर्जनाः अपि सज्जनताम् उपयान्ति।

यथोक्तम्—

कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते,
सा कामधुक् कामितमेव दोग्धि।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते,
सतां तु संगः सकलं प्रसूते॥

इदं न केवलं मानवेषु, न वा पशुपक्षिषु सत्यं प्रत्युत राष्ट्रेष्वपि। अद्यत्वे संसारे लघुविशालानि बहूनि राष्ट्राणि विद्यन्ते। लघूनि राष्ट्राणि विशालानां छायायाम् आगत्य सुखेन तिष्ठन्ति अन्यथा अन्यैः दुराचारिभिः विविधरूपेण पीड्यन्ते। अस्मिन् आधुनिके वैचित्र्योपेते जगतीतले स्वोन्नत्यै समेषाम् ईहा वर्तते। परं अवाप्तुम् अभि-प्रेतान् विषयान्, अधिगन्तुं स्वोद्देश्यानि सत्संगतिरेव सर्वोत्तमं साधनं कथिता बुधैः। अतो दुर्जनानां अनाचारिणाम्, असत्यवादिनाम्, अविवेकिनां सहवासः न कर्त्तव्यः।
यथोक्तम्—

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा,
यत्राश्रिता हि तरवस्तरव त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण,
कंकोलनिम्ब कुटजा अपि चन्दनाः स्युः॥

सत् संगतिम् अधिगन्तुं सद्ग्रन्थाः अध्येतव्याः, महात्मनः समाश्रयणीयाः, सत्-स्थानानि सेवितव्यानि। सततं परीक्ष्यैव अपरिचितैः साकं व्यवहर्तव्यम्। अद्यत्वे बालकाः बालिकाश्च चलचित्राणि पश्यन्ति, एभिः चलचित्रैः तेषां मनसि कुविचाराः जायन्ते। कुविचारैः प्रभाविताः ते कुमार्गगामिनः भवन्ति। अनेन रूपेण राष्ट्रस्य हानिः भवति। अतो हि सत्संग एव सदा विधातव्यः।



६. सत् संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्

विचित्रोऽयं संसारः। शुभाशुभानि, शिवाशिवानि वस्तूनि अत्र विद्यन्ते। अस्मिन् जगतीतले सन्ति दुर्जनाः सज्जनाश्च किन्तु न कोऽपि जन्मना सज्जनः न च दुर्जनः भवति। संसर्गादेव सज्जनाः दुर्जनाश्च जायन्ते, यथोक्तम्—**संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति**। यः जनः यादृशीं संगतिं करोति, यादृशेन जनेन सह उपविशति, वसति, व्यवहरति, तादृशः स्वयं भवति। प्राणिनां दैनिकजीवने दुर्जनानां सज्जनानां समेषां पारस्परिकः सम्पर्कः भवति। सज्जनानां सम्पर्कः सुखप्रदः, दुर्जनानाञ्च दुःखप्रदः भवति। अतः सर्वदा सतां संगः ग्राह्यः।

सत्संगत्या सद्विचाराः, सद्भावनाः सौजन्यादिगुणाः जायन्ते। सतां साहाय्येन जनाः उन्नतिपथं प्राप्तुं प्रभवन्ति। कुत्सिताः अपि जनाः सत्सङ्गत्या महान्तः भवन्ति। तथा हि—देवानां शिरसि विनिवेशितानि पुष्पाणि पूजार्हाणि भवन्ति न तु कदाचित् शवस्थितानि। कुसुमानां संगत्या कीटोऽपि देवानां शिरांसि अधितिष्ठति। वक्रोऽपि चन्द्रः महामहिमशालिनः हरस्य शिरसि विराजते। संगत्यैव युधिष्ठिरस्य सारमेयः सदेहं स्वर्गं गतः। अधःपाति जलं नलसम्पर्केण उच्चशिखरम् आरोहति। दुर्दान्तः वाल्मीकिः सत्संगत्यैव महर्षिः वाल्मीकिः संजातः इति लोके प्रसिद्धिः। वस्तुतः सत्संगेन मानवेषु सद्बुद्धिः जायते, सद्बुद्धि सम्पन्नाः मनोरथेषु सफलीभूताः भवन्ति। सत्संगत्या अकिंचनानां मानवानां जन्म दारिद्र्यं विनश्यति। यथोक्तम्—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं।
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोतिं॥
कीर्तिं तनोति वितनोति च दिक्षु लक्ष्मीं।
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

मानवः स्वजीवनं समुन्नेतुं विविधानि साधनानि संचिनोति किन्तु यावत् सद्बुद्धिः न समुदेति तावत् सर्वाणि साधनानि वितथानि भवन्ति। सज्जनाः स्वकीयेन ज्ञानमयेन प्रकाशेन हृदिस्थितमपि तमः समूलं छिन्दन्ति। ते सकलानि पापानि

दूरीकुर्वन्ति, चेतांसि प्रसादयन्ति। अन्यच्च सद्बुद्धिसम्पन्नाः, ज्ञानवन्तः, स्वाध्याय-निरताः, परोपकारपरायणाः जनाः सर्वेषां संकटहारकाः भवन्ति। तैः साकं सदा सत्संस्काराः जायन्ते।

किं बहुना सज्जनानां सम्पर्के दुर्जनाः अपि सज्जनताम् उपयान्ति।

यथोक्तम्—

कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते,
सा कामधुक् कामितमेव दोग्धि।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते,
सतां तु संगः सकलं प्रसूते॥

इदं न केवलं मानवेषु, न वा पशुपक्षिषु सत्यं प्रत्युत राष्ट्रेष्वपि। अद्यत्वे संसारे लघुविशालानि बहूनि राष्ट्राणि विद्यन्ते। लघूनि राष्ट्राणि विशालानां छायायाम् आगत्य सुखेन तिष्ठन्ति अन्यथा अन्यैः दुराचारिभिः विविधरूपेण पीड्यन्ते। अस्मिन् आधुनिके वैचित्र्योपेते जगतीतले स्वोन्नत्यै समेषाम् ईहा वर्तते। परं अवाप्तुम् अभि-प्रेतान् विषयान्, अधिगन्तुं स्वोद्देश्यानि सत्संगतिरेव सर्वोत्तमं साधनं कथिता बुधैः। अतो दुर्जनानां अनाचारिणाम्, असत्यवादिनाम्, अविवेकिनां सहवासः न कर्त्तव्यः।
यथोक्तम्—

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा,
यत्राश्रिता हि तरवस्तरव त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण,
कंकोलनिम्ब कुटजा अपि चन्दनाः स्युः॥

सत् संगतिम् अधिगन्तुं सद्ग्रन्थाः अध्येतव्याः, महात्मनः समाश्रयणीयाः, सत्-स्थानानि सेवितव्यानि। सततं परीक्ष्यैव अपरिचितैः साकं व्यवहर्तव्यम्। अद्यत्वे बालकाः बालिकाश्च चलचित्राणि पश्यन्ति, एभिः चलचित्रैः तेषां मनसि कुविचाराः जायन्ते। कुविचारैः प्रभाविताः ते कुमार्गगामिनः भवन्ति। अनेन रूपेण राष्ट्रस्य हानिः भवति। अतो हि सत्संग एव सदा विधातव्यः।



१०. परोपकाराय सतां विभूतयः

शमदमादिसद्गुणोपेताः, उदारमतयः, निसर्गत एव धर्मबुद्धयः सन्तः केषां न हरन्ति चेतांसि ? ये नित्यं परगुणपरमाणून् पर्वतीकुर्वन्ति, ये दुःखितानां दुःखं विलोक्य स्वयमेव व्यथयन्ति, ये कस्यचित् करुणक्रन्दनमाकर्ण्य द्रवीभूताः भवन्ति, ये निःस्वार्थं पीडितानां पीडां जानन्ति चापाकुर्वन्ति, ये स्वीयां चिन्तां विहाय सततं परोपकारे निरताः तिष्ठन्ति, त एव वस्तुतः महामान्याः, श्रद्धेयाः, त एव धन्याः, त एव सज्जनाः। सज्जनानां चेतांसि करुणोपेतानि भवन्ति, तानि विषमाद् विषमतरे समुपस्थितेपि समये विक्रियाम् न उपयान्ति । अतः परोपकारपरायणाः सन्तः "आत्मवत् सर्वभूतेषु, लोष्ठवत् परद्रव्येषु" इति महतीं श्लाघ्यां विचारधाराम् अवलम्ब्य समाजे व्यवहरन्ति । ते सदा मनसा वाचा कर्मणा सकलं स्वीयं परार्थे समपर्यन्ति । यथोक्तम् —

उपकर्तुं प्रियं कर्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ।।

परोपकाराय प्राणत्यागिनां, परहिताय सर्वस्वदातॄणाम् अमरचरितैः आपूरिता भारतीया सांस्कृतिकी परम्परा । तथा हि—सर्वभूतहिते रतः, त्यागशीलः, पितृभक्तः, लोकाह्लादकरः, मर्यादा पुरुषोत्तमः रामः कस्य न प्रियो जातः, परार्थाय एवं स्वशरीरत्यागिनः शिवेर्नाम केन न गीयते, एवं दानवीरकर्णः, त्यागवीरः दधीचिश्च कस्य श्रुतिपथं नायातः, इमे महानुभावाः सर्वस्वं स्वकीयं परेभ्यः प्रायच्छन् । एतेषां महानुभावानां विभूतयः परार्थाय एव गताः । ईदृशानां जनानां विषये उक्तं साहित्ये—

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः,
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः,
परोपकाराय सतां विभूतयः ।।

अपरञ्च

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै
र्नवाम्बुभिः भूरि विलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।

वस्तुतः वैचित्र्योपेते जगतीतलेऽस्मिन् परोपकारः एव मानवानां परमस्पृहणीयो गुणः। यद्यपि आधुनिके युगे विरला एव एतादृशाः संयताः जनाः, एषां मनसि जातिकृतो, देशकृतो वा भेदो न वर्तते किन्तु साम्प्रतमपि न शून्येयं वसुन्धरा त्यागशीलैः महापुरुषैः। तत्र सन्ति त्रिविधाः जनाः अस्मिन् असारे संसारे—

(i) ये स्वार्थहानिं विधाय परोपकारं कुर्वन्ति।

(ii) ये स्वार्थहानिं विना परोपकारं कुर्वन्ति।

(iii) ये परार्थं विनाश्य स्वार्थं साधयन्ति।

येषु प्रथमायाः श्रेण्याः महामानवाः हि वस्तुतः करुणापराः, त एव सज्जनाः, त एव लोकोपकारकाः। यथोक्तम्—

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णम्।
शमयति परितापं छाययोपाश्रितानाम्॥

साम्प्रतं समाजस्य स्थितिः अतीव विषमा संजाता। जनाः स्वार्थपूर्तिं वाञ्छन्ति किन्तु मानवजीवनस्य सार्थकता वस्तुतः लोककल्याणे एव जायते। मनुजस्य प्रमुखः धर्मः लोकसेवा एव। येन रूपेण वीजम् आत्मानं विनाश्य रमणीयफलदायकाय तरुवराय जन्म प्रददाति, तेनैव रूपेण मानवजीवनेऽपि प्राणी आत्मानं परिहिताय समर्प्य जीवनस्य सार्थकताम् अभिलषति। अतः परोपकारः एका महत्तमा भावना यस्याः जन्म प्रेमकरुणयोः भवति। यस्य मानवस्य हृदयं यावत् विशालं भवति स तावानेव कल्याणरतः भवति। कस्मैचित् संकटापन्नाय साहाय्यम्, कस्मैचित् बुभुक्षाय भोजनम्, पिपासिताय जलम्, आतुरायौषधम् इति सर्वाणि परोपकारस्वरूपाणि। परोपकररताः जनाः परोपकारं विधाय आन्तरिकम् आनन्दं, वास्तविकमुल्लासम् अनुभवन्ति। ते व्यासमहाभागानां वचनानि परिपालयन्ति।

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

उदारमतयः जनाः न कदापि कस्मैचित् कष्टं दातुम् अभिलषन्ति। गीतायामपि उक्तं भगवता कृष्णेन—

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।

अद्य विश्वे जनबाहुल्यं जातं, जीवनोपयोगिनां वस्तूनां सर्वथा अभावः, अतः प्रायः सामान्य जनाः स्वार्थपराः दृश्यन्ते। एतादृशे समये राष्ट्रनिर्माणाय परोपकार-

निरतानां मानवानां महती आवश्यकता वर्तते । प्राचीनकाले कूपखननं आश्रयभवनानां निर्माणं, मार्गेषु वृक्षारोपणं, उद्यानानां परिकल्पना, तीर्थेषु भोजनप्रदानम् परोपकारवृत्यैव अक्रियन्त । अद्य तादृशी प्रवृत्तिः ह्रासम् उपगता, तथापि भारतीयसंस्कृतिपोषकाः महान्तः पुरुषाः, धनधान्यसमृद्धाः परोपकाराय यतन्ते इति । वस्तुतः सतां विभूतयः परोपकाराय एव ।

---

११ संस्कृतशिक्षणसुधाराः

इदं सुविदितं विपश्चितां यत् सुरभारती पञ्चसहस्र वर्षाणि यावत् विभिन्नेषु झंझावातेषु दृढं स्थित्वा स्वीयां क्षमतां साधु साधितवती । इदमपि नाविदितं यदस्यामेव वेदानां शाश्वतः ज्ञानराशिः, तपःपूतानि शास्त्राणि, मानवधर्मसंवलिताः स्मृतयः, रसमयानि च महाकाव्यानि नाटकादीनि च विद्यन्ते । परं यदि कस्यापि पुरतः मिष्टान्नस्य केवलं कीर्तनं क्रियेत न चास्मै भोक्तुं दीयेत तत् कथं स मिष्टान्नाय यतेत । संस्कृतस्य अनुपमो मधुरिमा, अपरिमिता व्यावहारिकी शक्तिः, महत् उपयोगि साहित्यं चेत् पाठकैः न ज्ञायेत तर्हि कथं ते अस्य कृते यतेरन् । केवलं रामः रामौ इति कृत्वा संस्कृतस्य अध्ययनं नैव सम्भाव्यते न अनेन सामान्यजनेषु अभिरुचिः जागरयितुं शक्यते । यावत् अध्येतारः नैव जानन्ति यत् संस्कृतसाहित्ये किं परमरमणीयं किं च लाभकरं, तावद् अपठने तेषां को दोषः ।

पुरा तु संस्कृतं जीवनस्योन्नायकं, सुखशान्तिसाधकं, ज्ञानालोकप्रसारकं, आचारसंचारकं इति कृत्वा पठ्यते स्म । तदधुना गतम् । अस्मिन् प्रगतिशीले युगे नवीनाः आचाराः, नवीनाः विचाराः अतः संस्कृतं न केऽपि पठन्ति । ये केऽपि पठन्तः दृश्यन्ते ते वस्तुतः स्वयं नैव वान्छन्ति, अपितु बलात् वृत्यादिना आकृष्यन्ते । येषां कृते अन्येषां विषयाणाम् अध्ययनं सुलभं सुकरञ्च न भवति त एव इमां पठन्ति ।

तत् विचारणीयमस्माभिः संस्कृतस्य ह्रासे किम् अध्यापकानां दोषः वा शासकानां दोषः, शिक्षाप्रणाल्याः दोषः आहोस्वित् अन्यः कश्चित् दोषः । शासनेन संस्कृतपरीक्षाणाम् अन्येषां विषयाणां परीक्षाभिः सह साम्यं प्रदत्तं, संस्कृतविश्वविद्यालयः स्थापितः, एतत्कृते पर्याप्तः धनराशिः प्रतिवर्षं समायोज्यते । अतो हि न शासकाः दोषभाजः भवितुम् अर्हन्ति । तत् सुनिश्चितमिदं यद् अध्यापकानां दोषः, अध्यापनप्रणाल्याः दोषः येन स्वतंत्रे भारतेऽपि संस्कृतस्य इयं शोचनीया दशा । अद्य संस्कृताध्यापकस्य अर्थः दैन्यम् ।

अध्यापनप्रणाल्यनुसारं तत्र सन्ति तिस्रः धाराः—

(i) माध्यमिक विद्यालयेषु अनिवार्यरूपेण संस्कृताध्ययनम् ।

(ii) माध्यमिककक्षातः स्नातकोत्तरकक्षापर्यन्तं वैकल्पिकविषयरूपेण संस्कृताध्ययनम् ।

(iii) संस्कृतविश्वविद्यालये अन्येषु च तत्सम्बद्धेषु संस्कृतविद्यालयेषु संस्कृताध्ययनम् ।

आसु धारासु प्रथमायां तु संस्कृते चञ्चुप्रवेशोऽपि न जायते । छात्राः येन केनापि रूपेण परीक्षोत्तरणाय अध्ययनं कुर्वन्ति । यदा कदा ते अध्ययनं विनैव स्वकार्यं सम्पादयन्ति ।

द्वितीयायां धारायां ये विद्यार्थिनः इमां भाषां पठन्ति ते साहित्यदृष्ट्या इमां जानन्ति । तेऽस्याः विषयवस्तु अवगच्छन्ति परं तेषु प्रायशः प्रतिशतं दश अपि अस्यां न व्यवहरन्ति । तेषाम् अध्यापकाः अपि भाषारूपेण अस्याः व्यवहारं नैव कुर्वन्ति । अतः छात्रेषु प्रतिशतं नवनवत्यां न कदापि भाषारुचिः जागर्ति । न ते अस्यां भाषायां लिखन्ति न च संलपन्ति । तेषु अल्पीयांसः एव अनया स्वकीयाम् आजीविकां प्राप्नुवन्ति ।

तृतीयायां धारायां छात्राः प्राचीनया परिपाट्या एव अध्याप्यन्ते । तत्र आधुनिक-मनोविज्ञानस्य न काऽपि गणना । यद्यपि तेषां संस्कृतज्ञानं सापेक्षरूपेण सुष्ठु भवति तथापि तत्रापि ह्रासः समायातः ।

अतः संस्कृतोत्थानाय किं करणीयमिदानीम् इति विचारणीयम् । अत्र दीयन्ते कतिचित् उपचाराः । आशास्यते विचारभाजः भविष्यन्ति विदुषाम् ।

१ सर्वासु धारासु एकयैव प्रणाल्या इयं पाठनीया ।

२ का सा प्रणाली भवेत् इति सांप्रतिकीं व्यवस्थां विलोक्य संगोष्ठीनां माध्यमेन विवेचनीया विद्वद्भिः । प्राचीनपरिपाट्यां चेत् व्यावहारिकं मनोवैज्ञानिकं स्वरूपं दीयेत तदा काचिद् अनुपमा प्रणाली आविर्भवेत् इति अस्माकम् अनुभवः ।

३ संस्कृताध्यापकानां चयनं तावत् न भवेत् यावत् तेषु अस्यां भाषायां धारा-वाहिक सम्भाषणस्य लेखनस्य च क्षमता न भवेत् ।

(iv) प्रारम्भकेषु संस्कृतपुस्तकेषु रुचिकराः पाठाः भवेयुः येषु बालकस्य परिवेशस्य चर्चा भवेत्, भाषायाः स्वाभाविकं स्वरूपं चायात् ।

(v) शुद्धसंस्कृतम् अलिखित्वा संस्कृतपरीक्षोत्तरणं न भवेत् ।

(vi) विद्यालयेषु प्रतिमासं संस्कृतसम्भाषणप्रतियोगिताः भवेयुः ।

(vii) संस्कृते विलिखिताभ्यः कथाभ्यः कविताभ्यः अथ चास्यां भाषायां विरचितेभ्यः नाटकेभ्यः पुरस्काराः प्रदेयाः ।

(viii) संस्कृतव्याकरणस्य सरलीकरणं भवेत् ।

(ix) संप्रति ये मर्मज्ञाः विद्वांसः न्यायव्याकरणादीनां क्लिष्टानां विषयाणां अध्यापने समर्थाः तेषां परम्परा अन्त्या प्रतीयते । अतः आगामिनी पंक्तिः छात्रेभ्यः चयनं कृत्वा शासकैः निर्मेया अन्यथा पारम्परिकाणां दुरूहविषयाणाम् अध्यापनं असम्भवं भविष्यति । संप्रति संस्कृत–अकादमी विद्यते एतदेव कार्यम् अनया यदि सम्पाद्येत अस्याः स्थापनं सफलं स्यात् ।

(x) प्रशिक्षणविद्यालयाः संस्कृताध्यापकानां प्रत्यक्षपद्धत्या प्रशिक्षणं कुर्युः ।

(xi) संस्कृतविद्यालयानां सक्रियं निरीक्षणं प्रचुरसाहाय्यं काले काले अचिरं भवेत् ।

(xii) सर्वत्र संस्कृताध्यापकस्य कृते संस्कृतविश्वविद्यालयपरीक्षोत्तीर्णता अपेक्षिता भवेत् ।

(xiii) संस्कृताध्यापकानां काले काले शास्त्रार्थसभाः कार्याः विजेतृभ्यः पुरस्काराः प्रदेयाः ।

———

१२ भारवेरर्थगौरवम्

गीर्वाणगिरो गगने भारूपः, भगवतः धूर्जटेः परमोपासकः, भावोपेतकाव्यप्रणेता भारविः षष्ठ्यां शताब्द्यां खिस्तीयायां भारतभुवमलंचकार । दक्षिणात्यः अयं महाभागः पुलकेशि द्वितीयस्य अनुजस्य विष्णुवर्धनस्य सभायाः एकममूल्यं रत्नमासीत् । अस्य स्थितिकालः बीजापुरस्थितेन ५५६ इति शकाब्दांकितेन ऐहोल शिलालेखेन सम्यग् निर्णीयते । †

---

† पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च ।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥

येनायोजिन वेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदास भारविकीर्तिः ॥

केनचित् जैन कविना रविकीर्तिना तत्रोल्लिखितं वर्तते यत् तस्य प्रतिभा कालिदासभारवितुल्या एव किन्तु बाणमहाभागेन भारवेरुल्लेखः अन्यैः कविभिः सह न विहितः। अनेन प्रतिभाति यदस्य कीर्तिसौरभं उत्तरभारते तावत्कालपर्यन्तं न प्रसृतम् आसीत्। अपरतः माघस्य काव्ये अस्य काव्यस्यानुकरणं दृश्यते येन निश्चीयते यदयं महाभागः माघस्य पूर्ववर्ती कालिदासस्य च परवर्ती कविरासीत्।

महाकवेः भारवेः प्रशस्तिः तस्य एकमात्रकीर्तिकलेवरे किरातार्जुनीये महाकाव्ये आधारिता। किरातार्जुनीयस्य स्रोतः महाभारतस्य वनपर्वणि वर्णितं कथानकमस्ति। अस्मिन् कथानके एकं संक्षिप्तं वृत्तं प्रदत्तम्—तथा हि—यदा द्यूते पराजिताः पाण्डवाः द्वैतवने निवसन्तः आसन् तदैव एकः वनेचरः दूतः युधिष्ठिरं दुर्योधनस्य शासनव्यवस्थायाः स्वरूपं वर्णयति। इदं वृत्तं विज्ञाय भीमः द्रौपदी च युधिष्ठिरं दुर्योधनेन सह योद्धुं प्रेरयतः किन्तु युधिष्ठिरः तत् नाङ्गीकरोति। ततः परं महर्षिः व्यासः तत्रैवागत्य पाण्डवेभ्यः परामर्शं ददाति यदर्जुनः इन्द्रकीलपर्वते तपः कृत्वा पाशुपतास्त्रं प्राप्नुयात्। अर्जुनः तत्र गत्वा तपश्चरति। तस्मिन्नेव समये किरात—वेशधारी शिवः अर्जुनेन सह युध्यति। अर्जुनस्य साहसेन पराक्रमेण च शिवः प्रसन्नः जायते च तस्मै पाशुपतास्त्रं यच्छति। इदमेव केवलं कथानकम् अवलम्ब्य भारविना एतत् महाकाव्यं विरचितम्। अस्मिन् प्रसंगे सरसं ऋतुवर्णनं, पर्वतवर्णनं, आलंकारिकं जलक्रीडादीनां अन्येषां च वस्तूनां वर्णनं महाकाव्यपद्धत्यनुसारं प्रदर्शितम्।

तस्य अभिनवशैली—

संस्कृत साहित्यस्य विविधासु धारासु महाकविः भारविः महाकाव्यप्रणेतृषु अन्यतमः आसीत्। अनेन महाभागेन महाकाव्यक्षेत्रे कस्याश्चित् नूतनायाः कलापक्ष-प्रधानतायाः परिपाट्याः प्रवर्तनम् समारब्धम्। अस्याः एव परिपाट्याः अनुसरणं अन्यैः परवर्तिभिः माघादिभिः कविवरैः अपि अङ्गीकृतम्। अस्यां शैल्यां काव्ये भाव-पक्षस्य स्थाने कलापक्षस्य प्राधान्यं वर्तते। अस्यां पद्धतौ यादृशं ध्यानं आलंकारिकतां प्रति प्रदीयते न तादृक् रसं भावं प्रति प्रदर्श्यते। किमपि सूक्ष्मातिसूक्ष्मं वृत्तमादाय महाकाव्यस्य प्रणयनं क्रियते। कालिदासस्य रचनासु भावपक्षस्य कलापक्षस्य च समन्वयः विलोक्यते अतः तस्य महाभागस्य प्रसादगुणः न कदापि अपह्रियते, तस्य रस-परिपाके न कोऽपि अवरोधः जायते। तथापि भारविः सर्वथा प्रचलितेषु शब्देष्वपि अत्यधिकं भावं सन्निवेष्टुं समर्थं इति तु न विवदनीयम्। अनेन महाकविना स्वकीयस्य विविधविषयसम्बन्धिनः कस्यचित् अगाधस्य ज्ञानस्य परिचयोऽपि स्वकाव्ये प्रदत्तः। अत्र नीतिशास्त्रम्, राजनीतिः, प्रकृतिचित्रणम्, व्याकरणं, काव्यशास्त्रं तु प्रदत्तमेव, एतैः

सह भावगाम्भीर्यं, अलंकाराणां समायोजनमपि प्रदत्तम्। भारविः न्यूनतमैः शब्दैः अधिकाधिकं भावं प्रकटयितुं क्षमः। अर्थगाम्भीर्याय कृते सः कीदृशः सावधानः तत्परश्च आसीत् इति तु तस्यैव उक्त्या प्रकटीक्रियते—किराते भीमस्य कथनस्य सराहनां कुर्वता युधिष्ठिरेण प्रोच्यते—

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्॥

केन रूपेण वाणी सार्थिका भवति इत्यस्य प्रमाणमपि तस्यैव उक्त्या क्रियते—

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती॥ १२/३

न केवलं अयं श्लोकः तस्य अर्थगाम्भीर्यं प्रकटयति अपि तु पदे पदे अस्य काव्ये अर्थगौरवं विद्यते। इदं सर्वं विलोक्यैव श्री मल्लिनाथ महाभागेन उक्तम्—

नारिकेल फलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद् विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्॥

अस्य समर्थनं कृतं श्रीमद्भिः कृष्णमहाकविभिः स्वीये भरतचरिते—

प्रदेश वृत्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्ती रसमादधाना।
सा भारवेः सत्पथ दीपिकेव रम्याकृतिः कैरिव नोपजीव्या॥

कृष्णमहाभागानाम् अयमाशयः यत् सत्यपि अर्थगाम्भीर्ये तत्र माधुर्यं नापहीयते। महाकविना भारविना किराते विविधविषयाणां स्वकीयं ज्ञानं प्रदर्शितम् एतत् न तिरोहितं कस्यचित्—स नीतिज्ञः राजनीतिपटुरासीत्—

तेनोक्तम्—

क्रियासु युक्तैर्नृप चारचक्षुषो न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः॥ १।४

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः॥१।३०

तस्य प्रकृतिचित्रणमपि नोपेक्षणीयम्। तथाहि—

निरीक्ष्यमाणा इव विस्मयाकुलैः पयोभिरुन्मीलितपद्मलोचनैः।
हृतप्रिया दृष्टि विलासविभ्रमा मनोऽस्य जह्रुः शफरी विवृत्तयः॥४।३

कपोल संश्लेषि विलोचनत्विषा विभूषयन्तीमवतंसकोत्पलम्।
सुतेन पाण्डोः कलमस्य गोपिकां निरीक्ष्य मेने शरदः कृतार्थता॥ ४।६

मृणालिनीनामनुरञ्जितं त्विषा विभिन्नमम्भोजपलाशशोभया ।
पयः स्फुरच्छालिशिखापिशङ्गितं द्रुतं धनुष्खण्डमिवाहिविद्विषः ।। ४/२७

मुखैरसौ विद्रुमभङ्गलोहितैः शिखाः पिशङ्गी कलमस्य बिभ्रती ।
शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला धनुःश्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति ।। ४/३६

विततशीकरराशिभिरूच्छ्रितैरुपलरोधविवर्तिभिरम्बुभिः ।
दधतमुन्नतसानु समुद्धतां धृतसितव्यजनामिव जाह्नवीम् ।। ५/१५

रुचिरपल्लवपुष्पलतागृहैरुपलसज्जलजैर्जलराशिभिः ।
नयति सन्ततमुत्सुकतामयं धृतिमतीरुपकान्तमपि श्रियः ।।

तस्य अलंकारयोजना वस्तुतः सर्वान् अन्यान् गुणानतिशेते—
तथाहि—

(i) न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ।। १५/१४

(ii) देवाकानिनि कावादे वाहिकास्व स्वकाहि वा ।
काकारेभभरे काका निस्वभव्यव्यभस्वनि ।। १५/२५

तस्य सूक्तयस्तु विश्वविदिताः—तथाहि—

(i) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।
(ii) सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः ।।
(iii) वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु ।
(iv) प्रभवन्त्वभिमानशालिनां मदमुत्तम्भयितुं विभूतयः ।
(अभिमानशालिनां मदावरोधाय ऐश्वर्यमेव समर्थम्)
(v) सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
(vi) वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ।
(vii) भवन्ति भव्येषु हि पक्षपातः ।
(viii) विश्वासयत्याशु सतां हि योगः ।।

अनेन एतत् तु सुनिश्चितं जायते यत् भारविः अनुभवशीलः स्वाभिमानी कविरासीत् । युधिष्ठिरं प्रति भीमस्य द्रौपद्र्याश्च वचनानि तस्य स्वाभिमानं सम्यक्

सूचयन्ति । तेन सर्वदा मर्यादायाः पालनमपि कृतं, वनेचरस्य वर्णने सर्वं मर्यादानुकूलमेवाभिहितम् । वस्तुतः भारविः स्वकीयं मतं महत्या युक्त्या पुरस्थापयति, अपरेषां युक्तीनां खण्डनं च करोति । अतः बृहत्त्रय्याम् किरातार्जुनीयम् अन्यतमः ग्रन्थः गण्यते ! सकले संस्कृतसाहित्ये एतादृशमोजोगुणसमन्वितं काव्यं न दृश्यते ।

—:: ::—

१३. बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

सहृदयहृदयानंदजननी, काव्यवैभवनिदर्शनी, रसभावनिर्झरिणी (कादम्बिनी) कादम्बरी कस्य मनः न मदयति । गद्यरूपमपीदं काव्यं स्वविलासेन पद्यकाव्यात् प्रचुरतरं आह्लादं कस्य हृदये न जनयति । सुरभारतीवाङ्मयस्य अप्रतिमरत्नस्य बाणस्य कृतिरियम् मोहयति जगत् सकलम् । गद्यलेखने तु सविशेषमियं सर्वातिशायिनमामोदं वितरति । अस्य महाकवेः विविधेषु वर्णनेषु अपूर्वं वैशारद्यं विलोक्य को न जातः मन्त्रमुग्धः, को न वा अनुभवति तस्य माधुर्यम् । वस्तुतः संस्कृतसाहित्ये यादृशी प्रचुरता कवीनां दृश्यते न तादृशी गद्यलेखकानाम् । बाण महाभागः प्राधान्येन गद्यकाव्य कविरासीत् परं हर्षस्य विषयः यदस्य जीवनविषये न कापि अनिश्चितता संदिग्धता वा वर्तते । अयं महाभागः परमविख्यातस्य नृपस्य हर्षस्य सदसः कविरासीत् । तेन स्वयमेव स्वकीयस्य हर्षचरितस्यादौ स्ववंशविवरणं विस्तरेणोल्लिखितम् । परं बाणस्य ख्यातिः वस्तुतः तस्य कादम्बरीमाश्रिता । संस्कृतवाङ्मये गद्यकाव्यस्य सर्वथा अभावः किन्तु ये केऽपि अस्मिन् क्षेत्रे स्वीयां प्रतिभां प्रादर्शयन् ते कविभ्यः प्रशस्यतराः मूर्धन्याः जाताः । एकाकी बाणः एव स्वकीयेन रचनागाम्भीर्येण गद्यकाव्यापूर्तिं कर्तुं क्षमः, यथोक्तम् —

वीणापाणिपरामृष्ट वीणानिक्काणहारिणीम् ।
भावयन्ति कथं वान्ये भट्टबाणस्य भारतीम् ॥

एवमनेके विपश्चितः अमुं स्वीयया विलक्षणया दृष्ट्या व्यलोकयन् - यथा— "हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः" जयदेवः—

अपरमपि विलोकनीयम्

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरेऽ
लंकारे कतिचित्तदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।

आः सर्वत्र गभीरधीर कविता विंध्याटवी चातुरी—
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ।।

जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह ।।

बाणमहाभागः वर्ण्यस्य वस्तुनः अणुमात्रमपि न प्रजहाति। स एतादृशानि व्यापकानि, मनोहराणि, भावपूर्णानि वर्णनानि अकरोत् येन उच्यते—

"बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् ।

अयं महाभागः बाल्यकाले स्वच्छन्दः व्यहरत् किन्तु तस्मिन् विहरणेऽपि स्वकीयया प्रतिभया अनेन महान्तमः ज्ञानराशिः अधिगतः, अस्य भ्रमणस्य बलेनैव स्वीयासु रचनासु तेन अलौकिकाः मौलिका अनुभवाः प्रदत्ताः तेन नानारसपरिपाक-पुष्टा विविधालंकारसमलंकृता रचना प्रस्तुता या साहित्यसेविनां मनांसि सततं मोदयति ।वस्तुतः तेन स्वीया सर्वातिशायिनी काव्यप्रतिभा प्रदर्शिता। संस्कृतसाहित्ये गद्याभावः तावत् न क्लेशयिष्यति साहित्यसेविनः यावत् तत्र विलसति कादम्बरी।

एतत् तु सुस्पष्टमेव यत् पद्यरचनायाः गद्यरचना दुरूहतरा, पद्यरचनायां यत्र तत्र उक्तिवैचित्र्याद् रचना मनोज्ञा जायते किन्तु गद्यरचनायाः यादृशी प्रौढिः प्रारम्भे प्रदर्श्यते चेत् न तादृशी सम्पूर्णग्रन्थे परिलक्ष्यते, ग्रन्थस्य सम्मानः न भवति। गद्य-रचनायां तु पदे पदे वाग्वैलक्षण्यं, भाववैभवं तथा कल्पनानैपुण्यं अपरिहार्यम्। अतो हि उच्यते—

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" अस्य कृतयः निःसन्देहं गद्यकाव्यस्य चरमोत्कर्षं प्रदर्शयन्ति। ग्रन्थद्वयमेव तस्य वास्तविकः निधिः—हर्षचरितं—कादम्बरी चेति- इमे एव प्राधान्येन तस्य कृती स्वीक्रियेते मनीषिभिः । तत्र सन्ति अन्या अपि किन्तु तास्तु विवादग्रस्ताः। उभयोः ग्रन्थयोः अनेके प्रसङ्गाः सारगर्माः, सरसाः—यथा—हर्षचरिते—प्रभाकरवर्णनम्, यशोवत्याः वर्णनम्, सिंहनादस्य उपदेशः, दिवाकरमित्रस्य राज्यश्रीसांत्वनम्, कादम्बर्याम् तु तस्य गौरवगरिमाहर्षचरितम् अपि अतिशेते। यथा—प्रभातवर्णनम्, शबरसेनापतिवर्णनम्, हारीतवर्णनम्, विंध्याटवीवर्णनम्, जाबालिवर्णनम् संध्यावर्णनम् अच्छोदसरोवरवर्णनम्, महाश्वेतवर्णनम्, कादम्बरी वर्णनम्। कादम्बर्यां न जाने कियन्ति विशदानि मनोहराणि वर्णनानि सन्ति । तत्र विविधानि नदीवनसरोवरनगरचन्द्र धूलिपटलराजकुलानि वर्णितानि।

हर्षचरिते प्रदत्तेन वृत्तेन ज्ञायते यद् बाणस्य एकः पूर्वजः कुबेरनामा संस्कृत पण्डितः आसीत् । कुबेरस्य पौत्रः अर्थपतिः बाणस्य पितामहः, बाणस्य जनकः चित्रभानुः च तस्य जननी राज्यदेवी आसीत् । शैशवे एव बाणः अभिभावकविहीनः संजातः, अतः तस्य प्रारम्भिकः समयः न सुव्यवस्थितः व्यतीतः । तथापि अनेन महाभागेन हर्षस्य राज्यसभा समासादिता यत्र स्वकीयस्य वैदुष्यस्य प्रभावेण स प्रारम्भिकं कलंकं क्षालयितुं समर्थः जातः । तत्रैव अनेन हर्षचरितस्य प्रणयनमकरोत् यस्मिन् महाराजस्य हर्षस्य जीवनवृत्तमस्ति । इतः परं तेन कादम्बरी विरचिता, या एका कविकल्पना जनिता प्रेमकथा एव । कादम्बर्या एव तस्य कीर्तिसौरभं चतुर्दिक्षु प्रसृतम् । अनेन महाभागेन स्वकीयायाः लेखनशैल्याः आदर्शः हर्षचरिते प्रकटितः—

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥

अनेनैव आदर्शेन निबद्धः सः स्वकृतिषु गुंफितशैल्याः परिचयं प्रयच्छति । तस्य गद्य शैली पाञ्चली इति ज्ञायते—

शब्दार्थयोः समोगुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते । बाणेन कस्याश्चित् अपूर्वस्याः शैल्याः स्वरूपं उपस्थापितं यत्र तेन एकतः दीर्घाणि समस्तपदयुक्तानि वाक्यानि विलिखितानि, अपरतः अत्यन्त लघूनि वाक्यानि समुपस्थापितानि । तस्य वर्णनेषु प्रत्येकं स्थले भाषा विषयानुरूपिणी । एकतः स केषांचित् भयंकराणां विकटानां वर्णनानां कृते कठोरवर्णा—अपरतः रमणीयस्य कस्यचित् वर्णनस्य कृते सरलां, सुमधुरां, लघुवाक्योपेतां कोमलां पदावलीं प्रयुंक्ते । पदे पदे तस्य भाषायां प्रकृतिचित्रणं, वस्तुनिरूपणं, अलंकाराः रसाभिव्यक्तिः, चरित्रचित्रणश्च समुपलभ्यन्ते । यथा—प्रकृति चित्रणं ।

"एकदा तु प्रभातसंध्यारागलोहिते गगनतलकमलिनीमधुररक्तपक्षसंपुटे वृद्ध हंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपरजलनिधितटमवतरति चन्द्रमसि..........संध्यामुपासितुमुत्तराशावलम्बिनि मानससरस्तीरम् इवावतरति सप्तर्षिमण्डले.......इतस्ततः संचरत्सु वनचरेषु ।

विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि पम्पासरः कलहंसकोलाहले—क्रमेण च गगनतल मार्गमवतरतो दिवसकरवारणस्य अवचूलचामरकलाप इव उपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठरागलोहिते किरणजाले शनैः शनै रुदिते भगवति सवितरि—

वस्तुनिरूपणे स विचित्रं शव्दगाम्भीर्यमवलम्ब्य स्वकीयं कौशलं दर्शयति—यथा—

कर्ता महाश्चर्याणां, आहर्ता क्रतूनां, आदर्शः सर्वशास्त्राणाम्, उत्पत्तिः कलानाम्, कुलभवनं गुणानां, आगमः काव्यामृतरसानाम्, उदयशैलो मित्रमण्डलस्य, उत्पातकेतुरहितजनस्य—

(ii) अच्छोदवर्णनम्—प्रविश्य च तस्य तरुखण्डस्य मध्यमागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्याः, स्फटिकभूमिगृहमिव वसुन्धरादेव्याः, निर्गमनमार्गमिव सागराणां, निस्यन्दमिव दिशां, अंशावतारमिव गगनतलस्य, तुषारगिरिमिव विलीनम्, चन्द्रातपमिव रसतामुपेतम् ।

(iii) तस्य अलंकारेषु उपमारूपकोत्प्रेक्षाविरोधभासपरिसंख्या—श्लेषादयः तस्य प्रियाः अलंकाराः–तत्रापि विरोधाभासः सविशेषं—यथा—

परिसंख्या–यस्मिश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढवन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता ।

विरोधाभासः—आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अत्यन्तशुद्धस्वभावमपि कृष्णचरितम् ।

श्लेष—उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थ संचयम्, नाटकमिव पताकाङ्कशोभितम्, पुराणमिव विभागावस्थापितसकलभुवनकोशम्, व्याकरणमिव प्रथममध्यमोत्तमपुरुष विभक्तिस्थितानेकादेशकारकाख्यातसंप्रदानक्रियाव्ययप्रपंचसुस्थितम् ।

उत्प्रेक्षा—अपरसागराम्भसि पतितेदिनकरे पतनवेगोत्थितमम्भः सीकर निकरमिव तारागणमम्बरमधारयत् ।

लघुवाक्यानि—न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन् , न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्ति अर्चनीयान्,........

हा हतोऽस्मि, हा दग्धोऽस्मि, हा वञ्चितोऽस्मि, हा किमिदमापतितम् किं वृत्तम्—अतः बाणस्तु बाण एव ।

———

१४. कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

वेदशास्त्रपारगेन, परमकारुणिकेन वाग्विभूतिना भवभूतिना करुणरसे जगत् अद्यापि तथैव निमज्जितं प्रतीयते यथा तस्य काले जातं स्यात्। सर्वप्रथमं महाकविना वाल्मीकिना प्रसृतं कारुण्यं इह जगतीतले किन्तु तेन श्रुतं काव्यं प्रणीतं न तु दृश्यं। ततः परं भासकालिदासशूद्रकादिना मनोहराणि नाटकान्यपि विरचितानि परं न केनापि तादृशं करुणरसप्राचुर्यं प्रवाहितं यादृशं महता नाटककारेण भवभूतिना स्वीये उत्तर-रामचरिते। भवभूतिस्तु भवभूतिरेव। यद्यपि भवभूतिना स्वीयासु रचनासु अन्येषां रसानां भावानाञ्च अभिव्यञ्जना महता साफल्येन विहिता तथापि अनेन महाभागेन करुणरसस्य यादृशः परिपाकः, यादृशं तन्नैपुण्यं प्रदर्शितं न शक्यते केनापि अन्येन विधातुम्। भवभूतिः करुणम् एव प्रधानं रसं स्वीकरोति अन्यान् रसान् तस्य अङ्गी-भूतान् आकलयति यथोक्तम् तेन उत्तररामचरिते नाटके—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्त बुद्बुद् तरंगमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥ ३/४७

यथा जलं मूलतः एकम् एव भवति किन्तु निमित्तभेदात् आवर्तबुद्बुदतरंगाणां विकाराणां स्वरूपे परिणमते तथैव भवभूतिमते मूलतः एकः एव रसः करुणः यः अन्येषां रसानां माध्यमेन परिलक्ष्यते। वस्तुतः प्राचीना उक्तिः सत्यम्—उत्तरेरामचरिते तु भवभूतिर्विशिष्यते।

उत्तररामचरितस्यनाटकस्य प्रथमे अङ्के एव यदा रामः चित्रवीथ्यां अतीतस्य चित्राणि विलोकयति तदैव भवभूतिः अतिनैपुण्येन करुणायाः बीजं वपति। रामभद्रः तत्र समागतानाम् अतीतवृत्तानां स्मृत्यैव न केवलं स्वयं व्यथयति अपितु पाठकान् विकलयति, दर्शकानाञ्च हृदयेषु जनयति कारुण्यम्। स कथयति—

जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसाः गताः॥ उ० रा० १/१९

अत्रैव सीताहरणचित्रंप्रदर्शयन् लक्ष्मणोऽपि व्यथयति—

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्म विधिना।
... वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि॥

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितैः ।
अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।।

उत्तररामचरितस्य तृतीयाङ्के भवभूतिः एकं विलक्षणं चमत्कारं प्रदर्शयति, एकतः रामः पञ्चवट्यां स्वीयानि परिचितानि स्थानानि विलोक्य विलपति, स सीतायाः अभावेन दुःखितः सन् मूर्च्छितः जायते, अपरतः तत्रैव छायासीता रामस्य स्नेहमयं स्मरणं विलोक्य आत्मानं धन्यां मन्यमाना अदृश्या एव तस्यस्पर्शसुखमनुभवति च तस्मै सुखं प्रयच्छति । अत्र वनवासं प्रदाता रामः सीतायै येन रूपेण विलपति तेन वस्तुतः कविः सीतायाः अपमानितं हृदयं शमयति ।

इदं सर्वं विलोक्य उक्तं केनापि—

जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूत् गिरा ।
ग्रावाप्यरोदीत् पार्वत्याः हसतःस्म स्तनावपि ।।

लोकाराधनाय स्वप्रियतमां प्रवास्य लोकाभिरामः रामः केन प्रकारेण स्वीयेन हृदयोद्वेगेन विह्वलः जायते यत् तस्य विलापेन दर्शकाः अपि विह्वलाः जायन्ते । रामः कथयति --

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः ।
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा ।
विष्वङ् मोहः स्थगयति कथं मन्द भाग्यः करोमि ।।

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते ।
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात् ।
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ।।

एतत् सर्वं विलोक्य दर्शकः विस्मरति यत् स नाटकं विलोकयति । का कथा दर्शकानां हृदयस्य, रामस्य करुणक्रन्दनं श्रावं श्रावं न केवलं सचेतनाः प्राणिनः द्रवन्ति अपि तु वज्रोऽपि द्रवति । एतदेव भवभूतेः साफल्यं, एतदेव तस्य कास्यम् । भवभूतिना मानवस्य आन्तरिकीं कोमलां ग्रंथिं संस्पृश्य अलौकिकं काव्यं प्रस्तुतम् । एतादृशं नाटकं अन्यासु भाषासु अपि दुर्लभम् ।

अनेन महाभागेन स्वनाटकानां प्रस्तावनासु स्वीयः परिचयः प्रदत्तः, तदनुसारं अयं वर्तमान वरार इति नामकस्य प्राचीन विदर्भदेशस्य पद्मपुर स्थानस्य वास्तव्यः आसीत् । अयं उदुम्बरवंशीयः ब्राह्मणः । अस्य पितामहः श्री भट्टगोपालः, जनकः श्रीनीलकण्ठः मातुर्नाम जतुकर्णी आसीत् । कल्हणस्य राजतंरगिण्या ज्ञायते यदयं कान्यकुब्ज नृपतेः यशोवर्मणः आश्रितः आसीत् । अतोऽस्य स्थितिकालः ६५० ईसवीतः ७५० ई० पर्यन्तम् अनुमीयते विपश्चिद्भिः । विशेषरूपेण तस्य कारणं यत् सप्तम शताब्द्याः पूर्वार्द्धे स्थितेन बाणेन अस्य चर्चा न कृता । परं ८०० ई० लिखिते स्वकीये काव्यालंकार सूत्रे वामनेन उत्तररामचरितस्य "इयं गेहे लक्ष्मी" इति श्लोकः उद्धृतः ।

शिवभक्तः, उद्भटः वेदशास्त्रपारंगतः भवभूतिः लब्धकीर्तिः नाटकप्रणेता आसीत्, किन्तु तस्य कीर्तिः उत्तरभारते विलम्बेन प्रसृता इति प्रतिभाति । तस्य ग्रन्थत्रयं मालतीमाधवम्, महावीरचरितम्, उत्तररामचरितम् तस्य कीर्तिकौमुदीं प्रसारयितुं अलम् । उक्त नाटकेषु "महावीर चरितम्" तस्य प्रथमं नाटकं प्रतिभाति, अस्मिन् सप्त अंकाः सन्ति, येषु रामायणस्य कथा प्रारम्भतः रामस्याभिषेक पर्यन्तं प्रदत्ता । तस्य द्वितीयं नाटकं मालती माधवम् अस्ति यस्मिन्दश अंकाःसन्ति एषु मालत्याः माधवस्य च प्रणयगाथा वर्णिता । तस्य तृतीयं नाटकम् उत्तररामचरितम् उत्कृष्टतमं वर्तते ।

कला दृष्ट्या तस्य प्रथमं नाटकं न प्रशस्यं मन्यते–किन्तु उत्तररामचरितम् करुणायाः साक्षात् प्रतीकम् इदं । सर्वथा अभिनेयम् अतः भवभूतिः करुणरसविशिष्टः कविः आसीत् । अतः तस्य नाट्यकलायाः उन्मुक्तं स्वरूपं नैव प्राप्यते । । भवभूतेः कवित्वं प्रशस्यतरं वर्तते, न तावत् तस्य नाटकत्वम् । तस्य नाटकेषु काव्यकलायाः पक्षः बलीयान्, तस्य काव्येऽपि भावपक्षस्य प्राधान्यं वर्तते, यद्यपि भारवेरनन्तरं भावपक्षस्य अपेक्षया कलापक्षस्य प्राधान्यमायातम्, तथापि अस्मिन् प्रसङ्गे भवभूतिः स्वकालप्रभावाद् उन्मुक्तः प्रतीयते ।

तस्य काव्ये विभिन्नानां रसानां भावानाञ्च अभिव्यक्तिः दृश्यते किन्तु कारुण्ये तेन अश्रुतपूर्वं नैपुण्यं प्रदर्शितम् इति न तिरोहितं कस्यचित् । करुणरसस्य प्रतिपादने भवभूतिना अलौकिकाः उपमाः विन्यस्ताः किन्तु तस्य अलंकाराः रसानुगामिनः एव । स्थाने स्थाने तस्य भाषायां दर्शनशास्त्रस्य पारिभाषिकाः शब्दाः अपि एतादृश्या स्वाभाविकरीत्या प्रयुक्ताः यत् नाटककर्तुः तैः सह सततं चिन्तनं सुस्पष्टम् । भवभूतिः स्वयं गम्भीरस्वभावशीलः आसीत् । तेन स्वीयया अनुभूत्या संसारे विषमः विषादः

विलोकितः । तेन मूर्तपदार्थाः अमूर्तैः सह तुलनायां संस्थापिताः, अमूर्ताश्च कारुण्येन द्रविताः प्रदर्शिताः । चरित्रचित्रणे स विशेषरूपेण पटुः दृश्यते । यः रामः नृपत्वेन स्वीयां प्रियतमां जनहिताय सहर्षं त्यक्तुं क्षमः, स एव मानवरूपेण सीतायै भृशं विलपति । यः लक्ष्मणः भ्रातुराज्ञां शिरोधार्यं विवशः सन् सीतां वने विसृजति स एव तस्यै भृशं रोदिति । भवभूतिना यया स्वाभाविक्या रीत्या सर्वं विनिवद्धं तत् वस्तुतः सिद्धहस्तेनैव सम्भाव्यम् । अतो हि भवभूतिः संस्कृतसाहित्ये व्याकरण्यस्य मूर्तिः करुणायाश्च प्रतीकम् ।

—: ::—

१५ वसन्तर्तुः

सुरासुरैः समुपासितायां विविधभूभागैराकलितायां, विशदायां, भारतवसुन्धरायां विलसन्ति प्रतिवर्षं पर्यायेण यथाकालं षड्ऋतवः । सामान्यतया इमे सर्वे एव येन केनचिद् रूपेण सर्वहितसाधकाः जनमानसानन्दप्रदाश्च भवन्ति, किन्तु एषु ऋतुषु समेषां लोकानां अभीप्सितः सर्वाह्लादकरः कुसुमाकरः ऋतुराजः प्राधान्येन राजते ।

ऋतुराजः शिशिरानन्तरमागत्य वसुधायाः शैत्यं हरति । अस्मिन् ऋतौ धनधान्यादिभिरलंकृता वसुमती आमोदयति जनान् यतः अस्मिन् समये न ग्रीष्मवत् तपति वसुन्धरा न वा वाति सन्तापजनकः समीरणः, न वर्षावद् इदानीं भवति क्लिन्नं वसुधातलं, न वा जायते मलिनं सलिलम् अथवा दूषितं वायुमण्डलम् । अस्मिन् ऋतौ शीतलः सुरभिश्च पवनः द्रुमाणां छायायां विश्रम्य विश्रम्य मन्दं मन्दं सरति । वस्तुतः पत्रपुष्पविरहिताः तरवः लताश्च परमरमणीये वसन्ते नवनवैः सुकोमलैः किसलयैः समलंकृताश्च जायन्ते । इदानीं विविधवर्णानि कुसुमानि विकसन्ति । पीतपुष्पैः युक्ताः सर्षपाः कृषकाणां मनांसि हरन्ति । मोदमानाः कृषकाः श्रमसाध्यं स्वीयं फलान्वितं सस्यं विलोक्य विस्मरन्ति शैत्यं दुःखं श्रमञ्च । अस्मिन् ऋतौ लताकुञ्जेषु सरागं कूजन्ति विहगाः । अथ च विमलजलानां सरितां तटेषु, सुरम्येषु आरामेषु, कलकलनिनादपूर्णेषु निर्झराणां कूलेषु विचरन्ति पशवः विहरन्ति च मानवाः । मञ्जर्युपेतेषु सहकारविटपेषु कूजन्ति कोकिलाः । किं बहुना प्रकृतिः स्वयं काञ्चित नवीनामलौकिकीं शोभां दधाति । मानवेषु नवोल्लासः समायाति । नवीना चाशा सर्वत्र परिलक्ष्यते ।

बालकाः बालिकाश्च अस्मिन् समये सर्वत्र पीतत्वं निरूप्य स्वीयानि वस्त्राणि

पीतानि रञ्जयन्ति । अतो हि अयं ऋतुः कवीनां परमः प्रेयान् । तैरयं विविधरूपैः उपवर्णितः ।

तथाहि—त्रिगुणोपेतेन माघेन एवं स्वीयेन काव्यरसेन अग्रमभिनन्दितः—

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिंसुरभिं सुमनोभरैः ।।

वस्तुतः मन्दं मन्दं सरन्तं, सुरभिसम्पत्तिं वहन्तं समीरणं संस्पृश्य नवनवाभिः मञ्जरीभिराकलितान् सहकारविटपान् विलोक्य मधुमधुरं कोकिलकूजितं श्रुत्वा कस्य सचेतसश्चेतो न प्रमुदितं जायते । कस्य मनो न हरति ऋतुराजः । का कथा गृह-स्थानां संयमिनाम् अपि धैर्यं विनश्यति । यथोक्तं कालिदासमहाभागेन—

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं,
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः ।
सुखाः प्रदोषाः दिवसाश्च रम्याः
सर्वंप्रियं चारुतरं वसन्ते ।।

—:: ::—

१६ ग्रीष्मर्तुः

यथा लोके सुखानि दुःखानि च चक्रनेमिक्रमेण आयान्ति यान्ति च तथैव भारते षड् ऋतवः आयान्ति । मानवोऽपि स्वभावेन सदा एकस्मिन् वायुमण्डले नैव स्थातुं वाञ्छति । अस्मिन्नेव क्रमे अतः वसन्तस्यावसाने समायाति प्रचण्डतपनतापितो भीष्मो ग्रीष्मः । ग्रीष्मस्य आरम्भः वस्तुतः शैत्यं हरति किन्तु अस्य यौवनं सन्तापयति लोकान् । सामान्यरूपेण उष्णत्वमेव जीवनम्, अस्याभावे न किमपि जीवितुं पारयति किन्तु अस्याधिक्यं नैव स्पृहणीयम् । लोके यदा शीताधिक्यं जायते जनाः ग्रीष्मं स्मरन्ति । सर्वे अभिलषन्ति यद् ग्रीष्मः शीघ्रम् एव आगच्छेत् किन्तु आगते प्रचण्डे ग्रीष्मातपे ते पुनः शैत्यम् अन्वेषयन्ति ।

वस्तुतः ग्रीष्मर्तुः भारताय प्राणदः भवति । अस्मिन्नेव ऋतौ मेघाः समुद्रात् जलं गृह्णन्ति, अस्मिन्नेव समये अनेके हानिप्रदाः कीटाणवः म्रियन्ते, वायुमण्डलं स्वच्छं, विशुद्धं च जायते । धनिकाः अस्मिन् ऋतौ सुखेन पर्वतीयेषु खण्डेषु विहरन्ति, मनोहराणि प्राकृतिकानि दृश्यानि विलोकयन्ति । ते जलेषु क्रीडन्ति । अस्मिन् ऋतौ जलावगाहनं तु विशेषेण आनन्दप्रदं, यथोक्तं महाकविना कालिदासेन—

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभि वनवाताः ।
प्रच्छाय सुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ॥

परम् अस्यापरोऽपि पक्षः । यदायं ऋतुः उग्रं स्वरूपं धारयति, यदा भानुः प्रचण्डत्वम् उपयाति, तदा वायुः उष्णतां वहति, प्रचण्डेन सूर्यातपेन प्रतप्ता धरा ज्वालान् मुञ्चति । सरितां सलिलानि शुष्यन्ति, दिनानि वृद्धिं गच्छन्ति, हरितत्वं विनश्यति, निदाघस्य भयंकरं स्वरूपम् उदेति, न कुत्रापि शैत्यमनुभूयते, पिपासाकुलाः पथिकाः, पशवः, विहगाश्च जलाय इतस्ततः पर्यटन्ति, सर्वे वारंवारं वर्षाकालं स्मरन्ति, विरलछायायां समाश्रयन्ति, प्रचण्डातपेन प्रतप्ताः पारावताः निराहाराः गवाक्षेषु तिष्ठन्ति । न जाने कियन्तः जनाः भीषणेनातपेन अकालं कालकवलिताः जायन्ते । स्वकीये ऋतुसंहारकाव्ये कालिदासेन अस्य ऋतोः समीचीनं स्वरूपं प्रदर्शितम् तथा हि—

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः, सदावगाहक्षतवारिसञ्चयः ।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो, निदाघकालोऽयमुपागत प्रिये ॥

मृगा प्रचण्डातपतापिताभृशं, तृषा महत्यापरिशुष्कतालवः ।
वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्यभिन्नाञ्जनसन्निभं नभः ॥

खेर्मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथि तप्तपांशुभिः ॥
अवाङ्मुखोजिह्मगतिः श्वसन्मुहुः फणीमयूरस्य तलेनिषीदति ॥

तृषा महत्या हत विक्रमोद्यमः श्वसन् मुहुर्दूर विदारिताननः ।
न हन्त्यदूरेऽपि गजान् मृगेश्वरो विलोलजिह्वश्चलिताग्रकेसरः ॥

—:: ::—

१७ वर्षर्तुः

यदा प्रखरेण निदाघेन प्राणधारणं दुष्करं भवति, यदा सूर्यस्य प्रचण्डाः किरणाः धरातलं भस्मसात् इव कुर्वन्ति, यदा जलाशयाः शुष्यन्ति, पादपाः लताश्च हरितपत्र-रहिताः जायन्ते, यदा मानवाः, पशवः, पक्षिणश्च भीषणेन ग्रीष्मेण संत्रस्ताः जायन्ते, यदा सर्वत्र सूर्याग्निः प्रतपति, प्रसृतं च भवति, तदैव निदाघस्य उष्णत्वहारकः, जन-सुखदायकः वर्षर्तुः समायाति । अस्मिन् ऋतौ दयालवः जलपूरिताः जलदाः वसुधायाः पिपासां स्वीयेन मधुरेण जलेन शाम्यन्ति । ते वसुमत्यां वसून् उत्पादयन्ति, सस्यान् हरितान् कुर्वन्ति ।

पावने वर्षर्तौ सिञ्चितायाः धरायाः तलं हरितं जायते, सरितः, सरांसि जलैः आपूरिताः संजायन्ते, अहर्निशं वारिधाराः निपतन्ति, वृक्षाः लताश्च हरिताः कुसुमान्विताः विलसन्ति । अस्मिन् ऋतौ सजलानां जलदानां मन्द्रं गर्जनम् आकर्ण्य मत्ताः मयूराः इतस्ततः नृत्यन्ति, प्रमुदिताः प्लवंगमाः निजशब्दैः जलाशयान् दिग्दिगन्तरान् च आपूरयन्ति । इदानीं हरितां शाटिकां दधाना सुसज्जिता धरा नववधूरिव शोभते, प्राणिनः सुखं सन्तोषं चानुभवन्ति । मोदमानाः कृषकाः क्षेत्राणि कर्षन्ति, नीललोहिते गगने विविधवर्णाः मेघाः विचरन्ति, प्रसन्नाः खगाः, लतासु, पादपेषु कुञ्जेषु सानन्दं कूजन्ति । ते स्वच्छन्दतया जलाशयेषु उच्छलन्ति, क्रीडन्ति, ऐन्द्रचापं दिग्भागान् विविधवर्णैः रञ्जयति, सर्वत्र शाद्वलस्थलानि भूमिम् आच्छादयन्ति ।

वस्तुतः वर्षर्तुः निदाघस्य उष्णत्वं हरति, सर्वत्र हरितं सस्यं विलोक्य जनमानसं प्रसीदति । जनाः नभो मण्डले अभ्रमालां निरूप्य अमन्दमानन्दमनुभवन्ति । महाकविना महर्षिणा वाल्मीकिना अस्य ऋतोः अतीव मनोहारकं वर्णनं कृतम्, तथाहि—

मेघ कृष्णाजिनधरा धारा यज्ञोपवीतिनः ।
मारुतपूरितगुहाः प्राधीताः इव पर्वताः ॥

रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायुर्निदाघदोषप्रसराः प्रशान्ताः ।
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान् ॥

व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं पर्वतधातुताम्रम् ।
मयूरकेकाभिरनुप्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥

समुद्वहन्तं सलिलातिभारं बलाकिनो वारिधरा नदन्तः ।
महत्सु शृंगेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति ॥

वलेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन ।
गात्रानुवृत्तेन शुकप्रभेण नारीव लाक्षोक्षित कम्बलेन ॥

अङ्गार चूर्णोत्कर सन्निकाशैः, फलैः सुपर्याप्त रसैः समृद्धैः ।
जम्बू द्रुमाणां प्रविभान्ति शाखा, निलीयमाना इव षट्पदौघाः ॥

तडित्पताकाभिरलंकृतानामुद्गीर्ण गम्भीर महारवाणाम् ।
विभान्ति रूपाणि बलाहकानां रणोद्यतानामिव वारणानाम् ॥

मुक्ता सकाशं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम् ।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहंगाः सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति ॥

षट् पादतन्त्री मधुराभिधानं, प्लवंगमोदीरितकण्ठतालम् ।
आविष्कृत्तं मेघमृदङ्ग-नादैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ।।
प्रहृष्टसंनादित वर्हिणानि सशक्रगोपाकुलशाद्वलानि ।
चरन्ति नीपार्जुनवासितानि गजाः सुरम्याणि वनान्तराणि ।।
नवाम्बुधाराहतकेसराणि, द्रुतं परित्यज्य सरोरुहाणि ।
कदम्ब पुष्पाणि सकेसराणि, वनानि हृष्टा भ्रमराः पतन्ति ।।
मत्ता गजेन्द्रा मुदिता गवेन्द्रा वनेषु विक्रान्ततरा मृगेन्द्रा ।
रम्या नगेन्द्रा निभृतानरेन्द्रा प्रक्रीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः ।।

किष्किन्धा काण्डे २८ सर्गः

अनेन रूपेणायं ऋतुः अतीव लाभप्रदः । अस्मिन् ऋतौ धरातलस्य सर्वं कालुष्यं अचिरं विनश्यति । ग्रामाणां, नगराणां च सञ्चितं मालिन्यं वर्षाजलेन यथा दूरीक्रियते न तथा केनाप्यन्येनोपायेन । सुखप्रदेऽस्मिन् ऋतौ सर्वत्र प्रसन्नतायाः साम्राज्यं दरीदृश्यते । वालकाः वालिकाश्च श्रावणे दोलायां उद्दोलयन्ति, गायन्ति, नृत्यन्ति. मधुरेण संलपन्ति ।

"अति सर्वत्र वर्जयेत्" इति कृत्वा वर्षागमः यदा उग्रं स्वरूपं धारयति, वर्षा भयंकरी भवति, सप्तधासप्तवाता प्रताडिताः मेघाः घोरं गर्जन्ति, तडित् उद्घोषं करोति, वारिधाराभिः भूमिम् आप्लावितां कुर्वन्ति, नद्यः सवेगम् उच्छलन्ति, यत् किंचित् तासां सम्मुखम् आयाति तत् सर्वं समुद्राभिमुखं गच्छति, गृहाणि विनश्यन्ति, सर्वत्र जलम् एव दृश्यते, जलप्लावेन कृषकाः दुःखिनः जायन्ते, सर्वा वसुन्धरा जलमयी दृश्यते, गतागतमपि दुष्करं जायते, मार्गाः पंकिलाः जायन्ते, मानवाः संत्रस्ताः भवन्ति, मार्गेषु रात्रौ विविधाः सर्पादिकाः जीवाः परिभ्रमन्ति, सलिलं मलिनं भवति, वायुमण्डलं च दूषितं जायते, दैवाधीनं सर्वं भवति किन्तु अस्मादपि संकटात् उद्धारः भवति । भूमिः उर्वरा जायते, सस्यादिकं उत्पन्नं भवति । अतः लाभप्रदः एव वर्षर्तुः ।

———

१८. शरद् वर्णनम्

"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" इत्युनुसारं भारतवर्षे यथा-कालं षड् ऋतवः प्रवर्तन्ते। अस्मिन् जगतीतले सन्ति अनेके देशाः यत्र एक एव ऋतुः प्रवर्तते, तत्र वर्षं यावत् समानः समयः, समं वायुमण्डलं तिष्ठति कस्मिश्चित् देशे सर्वदा भीषणमुष्णत्वम्, कस्मिश्चित् देशे प्राणहारकं शैत्यं प्रवर्तते किन्तु अस्माकम् अलौकिके दिव्ये च भारते षड् ऋतवः समुल्लसन्ति। एषु ऋतुषु शरद् ऋतुः वस्तुतः श्रेष्ठः यतः अस्मिन् नाधिकं शैत्यं, न चोष्णत्वं जायते। सर्वत्र मनोहारिणी, विलक्षणा प्राकृतिकी शोभा राजते।

व्यतीते वर्षाकाले समायाति नवधान्यदायिनी, विमलसलिलकारिणी, चारु-चन्द्रभासिनी, मानसोल्लासिनी, विकचपद्महासिनीयं शरत्। अस्मिन् ऋतौ निर्मलं गगनमण्डलं, धवलचन्द्रिकया धवलिताधरा, नवनवानामरविन्दानां परागः। मन्दं मन्दं गुञ्जन्तो भ्रमराः रञ्जयन्ति चेतांसि लोकानाम्।

वस्तुतः विगते वारिधरे, विमले गगनमण्डले, देदीप्यमानः सुधांशुः सुशीतलैः निजकरनिकरैः आनन्दयति जनान्। अस्मिन् ऋतौ वर्षा अवसानं गच्छति, धरा निर्मला जायते, नभीमण्डलं स्वच्छं भवति, रात्रौ विशेषरूपेण चन्द्रिकया चर्चिताः सर्वाः दिशः लोके प्रमोदं वितरन्ति, मार्गाः विगतपंकाः जायन्ते, जलाशयानाम् आविलत्वं निलीयते, इदानीं श्वेतानि कासपुष्पाणि वर्षायाः वार्धक्यं व्यज्जयन्ति, मानसमरालाः मानसात् पुनरागच्छन्ति। शरद् ऋतौ राकायां चन्द्रिकायाः धवलितया धवलिता धरा श्वेतच्छदावृता इव एकस्मिन् वर्णे अनुरञ्जिता प्रतिभाति।

शारदीयां राकायां भारते "ताज महल" इत्याख्यस्य भवनस्य सर्वलोकानन्द-कारिणी विमला श्वेतद्युतिः अपूर्वां, अश्रुतपूर्वां शोभां धारयति। अनेन आकृष्टाः वैदेशिकाः इदं भवनं अस्मिन्नेव ऋतौ विलोकयन्ति।

शरद् ऋतुः शुभान् सन्देशान् आनयति। नवसस्यशालिनी, शुभ्रवसनधारिणी, नूतनसुमनसौरभवाहिनी श्रमिकान्, कृषकान्, अन्यान् च जनान् आह्लादयति, समेषां प्राणिनां चेतांसि मोदयति, व्यापार वर्गेषु उल्लासं जनयति, भ्रमरेभ्यः विकसितानां जलजानां मधुवितरति। अयं ऋतुः कविभिः विविध रूपेण गीयते, तथाहि—

न तज्जलं यन्न सुचारु पंकजं,
न पंकजं तद् यदलीन षट् पदम्।

न षट्पदोऽसौ कलगुञ्जितो न यो,
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः ॥ भट्टिः

वाल्मीकि महाभागेन एवं अर्चितः अयं ऋतुः—

पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् ।
शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम् ।
दृष्ट्वा विमलं व्योम गत विद्युतवलाहकम् ।
सारसारवसंघुष्टंविललापार्तया गिरा ॥
निस्वनं चक्रवाकानां वापीः काननानि वनानि च ।
पुण्डरीकविशालाक्षी कथमेषा भविष्यति ॥

किष्किधा काण्डे ३०

कालिदास महाकविना निम्नलिखित रूपेण अयं वर्णितः ।

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा,
सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या ।
आपक्वशालि रुचिरानतगात्रयष्टिः,
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या ॥
काशैर्मही शिशिर दीधितिना रजन्यो,
हंसैर्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि ।
सप्तच्छदैः कुसुमभारनतैर्वनान्ता,
शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः ॥
मन्दानिलाकुलित चारुतराग्रशाखः,
पुष्पोद्गमप्रचयकोमलपल्लवाग्रः ।
मत्तद्विरेफ परिपीत मधुप्रसेकश्चित्तं,
विदारयति कस्य न कोविदारः ॥
शरदि कुसुम संगाद् वायवो वान्ति शीताः,
विगतजलदवृन्दा दिग्विभागा मनोज्ञाः ।
विगत कलुषमम्भः श्यानपंकाधरित्री,
विगत किरणचन्द्रं व्योमतारा विचित्रम् ॥

ऋतुसंहारात्

———

१९. यौतुकसमस्या

कान्तियुक्तानां, सरसानां, मदभराणां प्रमदानां प्रमादस्तु प्रसिद्ध एव किन्तु नैराश्यपूर्णां, दीनवदनां, सुशिक्षितां, विवाहयोग्यामपि अविवाहितां बालां विलोक्य कस्य मनो न दूयते । अद्यतने प्रगतिशीलेऽपि संकीर्णे हिन्दूसमाजे न जाने कियत्यः एतादृश्यः कन्याः स्वकीयां मनोव्यथाम् अकथयन्त्यः प्रत्यहं स्वजनकानां भारभूताः भवन्ति । कष्टं भोः यः पिता स्वदुहितुः कृते यौतुकं विना स्वल्पतमेन व्ययेन योग्यतमं वरं वाञ्छति स एव स्वपुत्राय विपुलं यौतुकम् अभिलषति । यौतुकं वस्तुतः समाजस्य एकं परिहार्यं कलङ्कम् ।

अस्माकं समाजे विवाहसंस्कारः एकः परमः पावनः संस्कारः मन्यते । अयं संस्कारः प्राचीनकालात् अद्यावधि अविच्छिन्नरूपेण प्रवर्तते । प्राचीनकाले उद्वाहसमये कन्यादानेन समं सामर्थ्यानुसारं किंचित् दानं, स्वल्पां सम्पत्तिं च स्वाह्लादाय कन्यायाः सुखाय च अदीयत किन्तु समागच्छति काले तद्दानं कन्यायाः मूल्यस्वरूपं संजातम् । मध्यकाले सामन्ताः, धनिकाः, धनधान्योपेताः जनाः स्वकन्यायाः विवाहे अपारधनधान्यं सुखसाधनानि च प्रायच्छन् । ततः परं इदं दानं परम्परारूपेण सर्वेषु जनेषु प्राचलत् । अतो हि वरपक्षः कन्यापक्षात् श्रेयान् गणितः, कन्यापक्षस्तु दयनीयः अकिंचनः कष्ट-भाक् संजातः । ततः परं वरपक्षतः कन्यां स्वीकर्तुं विविधाः पृच्छाः समारब्धाः, परि-णामतः निर्धनानां जनकानां कन्याः बहुकालं यदा कदा आजीवनम् अविवाहिताः अतिष्ठन्

अस्याः परम्परायाः मूले सन्ति अनेकानि कारणानि । जनकाः स्वात्मजां योग्य-तमाय वराय दातुं स्वोदरम् अपूरयित्वा स्वसुखं शान्तिञ्च परित्यज्य वरपक्षस्य अश्रुत-पूर्वां पैशाचीं क्षुधां शमयितुं यतन्ते । यस्य जनकस्य अनेकाः कन्याः भवन्ति स ताभ्यः सम्यक् पोषणमपि कर्तुं न समर्थः, का कथा तासाम् उद्वाहस्य । एतदतिरिक्तं लोके विवाहसमये स्ववैभवप्रदर्शनस्य यादृशी प्रवृत्तिः प्रचलिता तया सर्वेऽपि शिक्षिताः अशिक्षिताः इयन्तः अभिभूताः यत् यावद् उद्वाहे भूरिशः व्ययः न क्रियते, यावत् तत्र विद्युतदीपानां समीचीनः प्रकाशः न स्यात्, यावत् नृत्यगीतादिकं न भवेत्, तावत् अयमुत्सवः आनन्दमयः न जायते, तावदयं संस्कारः पूर्णः न भवति । अतः एतादृशी लालसा सर्वान् जनकान् सर्वदा सन्तापयति । फलतः इदानीं इयं परम्परा भीषणरूपेण समाजे सन्निविष्टा । कष्टं यत् अल्पीयसा यौतुकेन समं समागता वधू न कुत्रापि समाद्रियते ।

कथमस्याः परम्परायाः विच्छेदो भवेत्, कथं वा वरपक्षस्य पिपासा वितृप्ता जायेत एतत् सर्वं सम्यक् विचिन्तनीयम् । साम्प्रतं मञ्चतः सर्वे आक्रोशं दर्शयन्ति किन्तु स्वात्मजस्य उद्वाहे येन केनचित् व्याजेन कन्यायाः धनमपहरन्ति । एतत् दुःखावहं वस्तुजातं विलोक्यैव प्रोक्तं केनचित् कविना—

सुधांशुरश्मिप्रचयै विनिर्मिता, गुणोत्तमा स्नातकविद्ययावृता ।
सुतातुषारैरिव यौतुकार्थिभिः कुमुद्वतीव व्रजति कश्मलम् ॥

विलोभिनं साग्रह यौतुकार्थिनं विलोकयन्ती पितरं च निर्धनम् ।
सुवर्णवर्णापि वहुश्रमात्मजा शशाद् भीता चटकेव वेपते ॥

वरात् समाकर्ण्य विवाहदक्षिणां स्ववंशमालोक्य च दातुमक्षमम् ।
दहन्ति देहं विसृजन्त्यसून् स्वयं दवानलस्पृष्टलतेव कन्यकाः ॥

अतः अस्याः परम्परायाः उच्छेदाय कतिचित् उपायाः अत्र प्रस्तूयन्ते :—

१ प्रत्येकम् उद्वाहः शासने ज्ञापितः, अंकितश्च भवेत् ।

२ शासन द्वारा गुप्तरूपेण विलोकनीयं यदि कुत्रचिदपि नियमोल्लंघनं जायेत तत्र वरपक्षः दण्डनीयः भवेत् ।

३ महिलानां संघाः संघटिताः भवेयुः यैः यौतुकं विना उद्वाहाः समाधेयाः इति निश्चेतव्यम् ।

४ वराणां परिचयाः समाचारपत्रेषु प्रदेयाः, अस्याभावेऽपि वरपक्षः दण्ड्यः भवेत् ।

५ नैतिकमूल्यानि समाश्रयणीयानि सर्वैः भारतीयैः ।

६ अनेके उद्वाहाः एकस्मिन् मण्डपे भवेयुः ।

७ उद्वाहेषु व्ययभारः निर्धारितः भवेत् ।

———

२०. भारतीया संस्कृतिः

"धन्या भारत भूः प्रकामवसुधा प्रत्ना च तत् संस्कृतिः"

विश्वविख्याता, व्यापिका, परमप्राचीना, अन्यतमा, धर्मप्रधाना, श्रेष्ठा च भारतीया संस्कृतिः कस्य न प्रिया । इयं प्राचीनकालात् अद्यावधि भगवती भागीरथी इव अपराः समागताः संस्कृतीः आत्मसात् कुर्वाणा भारतवसुन्धरां पावयति । यदा सुदूरे अतीते अन्ये देशाः संस्कारहीनाः, आचरणविहीनाः दीनाश्चासन् तदापि भारतीया

संस्कृतिः स्वकीये चरमोत्कर्षे विराजमाना लोकहितञ्च कुर्वाणा आसीत्। "वसुधैव कुटुम्बकम्", "सर्वे भवन्तु सुखिनः", "अहिंसा परमो धर्मः" इत्यादीन् सदुपदेशान् लोकोपकारकान् अन्यान् सिद्धान्तान् इयमेव उपदिशन्ती अभासत।

चेतसः संस्करणं यया जायते सैव संस्कृतिः। कस्यचित् समाजस्य सभ्यता तस्य वाह्य' स्वरूपं प्रकटयति, तस्य संस्कृतिः तस्यान्तरं स्वरूपम् इति। वयं किं धारयामः, किं अश्नीमः, कीदृशे गृहे निवसामः इत्यस्माकं सभ्यता किन्तु वयं कमर्चामः, कस्य वा सम्मानं कुर्मः, कीदृशमाचरणं कुर्मः इत्यस्माकं संस्कृतिः। संस्कृतिः लोकस्य मलमपनयति, स्वातन्त्र्यं प्रसारयति, आत्मानञ्च पावयति। भारतीया संस्कृतिः एका अनुपमा संस्कृतिः। अस्यां अन्यासां संस्कृतीनां विविधानि तत्त्वानि समागतानि। इयं वैदिककालात् सततं एकरसं प्रवहन्ती प्रचलति, यद्यपि अस्यां जैनसंस्कृतेः, बौद्धसंस्कृतेः, यवनसंस्कृतेः, आंग्लसंस्कृतेश्च तत्त्वानि विद्यन्ते। आधुनिके युगे अस्यां पाश्चात्त्यसंस्कृतेः भूयान् प्रभावः दरीदृश्यते, तथापि मूलरूपेण भारतीया एव इयं संस्कृतिः अलौकिकी विलसति। वस्तुतः इयं काचिद् विलक्षणा, सारगर्भा, शाश्वती धारा विद्यते या अन्याः सर्वाः आदाय भागीरथीवत् भागीरथीं करोति। अस्यां निम्नलिखितानि वैशिष्ट्यानि विद्यन्ते :—

१. इयमाध्यात्ममूलिका, इयं भारतीयानां महर्षीणामनुभूतानां संस्काराणाम् आधारमाश्रित्य तिष्ठति। इमे संस्काराः अध्यात्ममूलकाः, फलतः भारतीयाः सर्वं कार्यम् आत्मतत्त्वं विचिन्त्य तस्यैव सुखाय, तस्यैव मोक्षाय समाचरन्ति। एतेषां महानुभावानाम् आचारे विचारे सदा इयमेव भावना आयाति यद् तैः अन्यो लोको गन्तव्यः, पुनर्जन्म लप्स्यते, अतः अस्मिन् जन्मनि आत्मनः मुक्तये तैः प्रयतितव्यम्।

२. भारतीयायां संस्कृतौ तपसः, त्यागस्य, दानस्य महान् महिमा वर्तते। अस्यां न जाने कियन्तः त्यागशीलाः, दानवीराः तपस्विनः अजायन्त यैः परार्थं सर्वस्वं स्वकीयं प्रदत्त' येषामनुकरणम् अद्यापि भारतीयैः क्रियते। भारतीयानां अमोघः विश्वासः अस्ति यद् अस्मिन् भूतले प्रदत्त' दानं अपरस्मिन् लोके प्रतिफलं दास्यति, तत् सर्वं पुण्याय भविष्यति अतः निर्धनाय, अकिंचनाय, याचकाय अवश्यं स्वशक्त्यनुसारं दानं प्रदातव्यम्।

३. अस्याः संस्कृतेः सर्वोत्तमं वैशिष्ट्यं मोक्षोन्मुखता वर्तते। अस्याः अनुसारं जनाः आत्मतत्त्वं विचिन्त्य, देहबन्धात् तस्य मुक्तिं वाञ्छन्ति। ते तत् कृते अहर्निशं

यतन्ते । तेषां जीवनस्य चरमं लक्ष्यं मोक्षावाप्तिरेव भवति । यत्र पाश्चात्य-संस्कृतिः ऐहिक सुखानां भोगेषु विनिवद्धा तत्रैव भारतीया संस्कृतिः त्यागे, तपसि च दृढमाश्लिष्टा । इयं भोगसुखपराङ्मुखा । यथा महर्षिणा मनुना प्रोक्तम्—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
र्विहषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

अतः जीवनकाले मानवाः भोगेभ्यः विरतिम् अभिलषन्ति । का कथा भोगानां—कर्म कुर्वन्तोऽपि मानवाः भगवता व्यासेन फलेच्छां त्यक्तुं समादिष्टाः । यस्यां संस्कृतौ कर्मफलकामनैव नास्ति कथं तत्र ऐहिकसुखानां भौतिकानां संभोगः भवितुम् अर्हति ।

४. अस्यां संस्कृतौ जीवनं चतुर्षु आश्रमेषु विभक्तं, येषु अन्तिमः सन्यासः, यस्मिन् सर्वस्वत्यागः अपेक्षितः । अतः वैभवादिकस्य न तत्र कापि गणना । याज्ञवल्क्य पत्न्या सुष्ठु भणितं, "नाहं येन अमृतः स्याम् किं तेनाहं कुर्याम्" अतः देहावसानात् प्रागेव मानवः देहाभिमानं सुखञ्च परित्यक्तुं यतते, तत्रैव च निजजीवनस्य साफल्यं मन्यते ।

अस्यां संस्कृतौ तपसोऽपि विपुलं महत्त्वं वर्तते । प्राचीनकाले भारतदेशे स्थाने स्थाने जनाः तपः आचरन् अद्यापि कतिचित् जनाः पर्वतानाम् उपत्यकासु, गुहासु निलीनाः तपः आचरन्ति । तेषां न कापि ईहा । तपस्विजीवनम् एकं असामान्यं जीवनं यस्य कृते अनेके स्पृहयन्ति, किन्तु साम्प्रतं स्वल्पाः जनाः तत्र सफलीभूताः भवन्ति ।

५. भारतीय संस्कृतौ धर्मस्यापि एकं विशिष्टं स्थानं विद्यते । अत्र धर्मः न उपासनार्चनादीनां धार्मिक कृत्यानां वाचकः अपितु कर्त्तव्यस्य वाचकः, प्रतीकः विद्यते । उच्यते केनापि मानवानां कृते, धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः । यमाः, नियमाः दमाः अत्र परिपालनीयाः । योगः समाधेयः । आचारः परमो धर्मः, वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति याति च । अक्षीणो वित्ततः क्षीक्षोवृत्तस्तुहतो हतः । इमानि वाक्यानि भारतीयसंस्कृतेः स्वरूपं विनिश्चेतुं समर्थानि । अस्माकं उपनिषद् वाक्यं चिरस्मरणीयम्—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

———

२१. अस्माकं महाविद्यालयस्य महोत्सवः

यावान् प्राचीनः विद्यागमः तावानेव उपाधिवितरणमहोत्सवः, भवतु नाम अस्य स्वरूपं स्थले स्थले पृथक् भवेत्। प्राचीनकालात् अद्यावधि अस्य परम्परा विभिन्नेषु देशेषु विविध रूपेण परिपाल्यते। अस्माकं देशेऽपि नगरे नगरे महाविद्यालयेषु इयं प्रचलति। अस्माकं महाविद्यालयेऽपि प्रतिवर्षं दिसम्बरमासे उपाधिवितरणमहोत्सवः सम्पन्नः भवति। अस्मात् दिनात् प्रागेव विद्यालयस्य भवनं सुधया धवलितं क्रियते, सम्पूर्णं क्षेत्रं स्वच्छं क्रियते, तोरणादिकाः विधीयन्ते। अस्मिन् अवसरे महाविद्यालयस्य कार्यकलापं सम्यक्तरत्वेन विधातुं अध्यापकाः, छात्राः, कर्मचारिणश्च स्वे स्वे नियोगे सन्नद्धाः, निष्ठया निरताश्च दृश्यन्ते। सर्वे अन्तिमदिवसस्य कार्यक्रमं सफलीकर्तुं मनोयोगेन चेष्टन्ते।

अस्माकं महाविद्यालये एतदर्थं प्रथमं तावत् एकं विशिष्टं मण्डपं कार्यते। महाविद्यालयस्य सुरम्ये सुसज्जिते प्राङ्गणे सुविशाले मण्डपे सभायाः समायोजनं विधीयते। अस्यां सभायां न केवलं महाविद्यालयस्य अपि तु तदितरे जनाः आयान्ति। अयं उत्सवः प्रायः छात्राणां परीक्षानन्तरं सम्पन्नः भवति अतः उत्सवात् पूर्वं तेषा ज्ञानक्रीडनयोः प्रतियोगिताः अपि आयोज्यन्ते। आसु प्रतियोगितासु समीपवर्तिनां विद्यालयानां छात्रा अपि प्रतियोगिनः भवन्ति। इमाः प्रतियोगिताः कबड्डी-करकन्दुकः-पादकन्दुक क्रीडासु, उच्चैः कूर्दने, आयाम कूर्दने, धावने, गोलादिप्रक्षेपेषु भवन्ति। ज्ञानप्रतियोगितासु छात्राणां सहयोगः, तेषां स्पर्धाभावः, परिश्रमः, अभ्यासः, दलगतव्यक्तिगतक्षमतायाः प्रदर्शनं जायते। वस्तुतः विद्याध्ययनस्य एकं विशिष्टं अङ्गं इदमपि भवति। एवं छात्राणां सर्वतो विकासः जायते। स्वविद्यालयस्य कृते त्यागभावोऽपि जायते।

अस्य सत्रस्योत्सवे प्रदेशस्य शिक्षामन्त्रिणः दीक्षांतं भाषणं कर्तुं आमन्त्रिताः आसन्। अतो हि अस्योत्सवस्य आयोजने महान्तः समारम्भाः कारिताः। अस्यायोजनं पूर्वनिश्चिते मण्डपे सायंकाले चतुर्वादने जातम्। अतः चतुर्वादनतः प्रागेव अतिथयः, अध्यापकाः छात्राश्च, सभामण्डपमलंचक्रुः। शिक्षामन्त्रिणां स्वागताय तत्रासीत् सन्नद्धं स्वयंसेवक दलम्। तथैव मन्त्रिमहोदयाः तत्र समागताः वादकमण्डलेन स्वयंसेवकदलेन तेषां अभिनन्दनं विहितं। प्रधानाचार्यः तेभ्यः पुष्पमालाः समर्पयत्। पीठासीने मन्त्रिमहोदये सभामण्डपे हर्षध्वनिः संजातः। कार्यक्रमः बालिकानां सुमधुरेण स्वरेण सरस्वती वन्दनया समारब्धः। तदनन्तरं महाविद्यालयस्य प्रधानाचार्यः

मुख्यातिथेः अभिनन्दनम् अन्येषां समागतानां अतिथीनां स्वागतमकरोत् । ततः परं विद्यालयस्य मन्त्रिमहोदयेन विद्यालयस्य वार्षिकं विवरणं प्रस्तुतं । अस्मिन् विवरणे विद्यालयस्य प्रगतिः, छात्राणां समुपलब्धयः, अध्यापकानां, कर्मचारिणां च समस्यानां विवरणं प्रदत्तम् । अतः परं शिक्षामन्त्रि महोदयाः स्वाशिषप्रदानाय प्रार्थिताः ।

एतदनन्तरं शिक्षामन्त्रि महोदयानां भाषणं समारब्धम् । तेनोक्तं, "सर्वविदित-मेतत् यत् गीर्वाणवाणी ज्येष्ठा, श्रेष्ठा, प्राचीना समृद्धा च भाषा, सुनिश्चितं यदस्याः भाषायाः साहित्यं अमूल्यानां रत्नानां भाण्डारः, एतदपि नाविदितं कस्यचित् यद्स्यामेव भारतीया संस्कृतिः उपनिबद्धा । परं कष्टं यत् साम्प्रतं इयं भाषा समाजे न व्यवह्रियते । अस्याः स्नातकाः न तथा समाद्रियन्ते यथा अन्यासां भाषाणां स्नातकाः समादृताः भवन्ति । एवं मन्त्रिमहोदयैः संस्कृतस्य महत्त्वं प्रतिपादितं तस्य प्रसाराय प्रचाराय च यत्नाः प्रकीर्तिताः, शासनस्य साहाय्यप्रदानाय अपि तैः समाश्वासनं प्रदत्तम् । अतः तेषां सारपूर्णं, प्रेरकं भाषणमाकर्ण्य सर्वेजनाः तारस्वरेण करतलध्वनिभिः तेषामभि-नन्दनं अकुर्वन् । अचिरं समस्तं सभामण्डपं हर्षोल्लासेन आपूरितं जातम् । एतदनन्तरं तैः उपाधिवितरणं कृतम्, तैः पुरस्कार विजेतृभ्यः पुरस्काराः अपि प्रदत्ताः ।

अन्ते मम महाविद्यालयस्य अध्यक्षः महापौरः शिक्षामन्त्रिमहोदयेभ्यः विशेष-रूपेण अन्येभ्यो विद्वद्भ्यः समागतेभ्यश्च धन्यवादाञ्जलीन् व्यतरत् । उत्सवस्य इयं परिपाटी अतिसुखप्रदा, लाभप्रदा प्रेरका च भवति । साम्प्रतं विद्यालयाः दलगत–राजनीतिकेन्द्राणि संजातानि । अतः तादृशी विद्यायाः पूता परम्परा न दरीदृश्यते यादृशी प्राचीनकाले आसीत् । अस्माकं नेतृजनाः विचारयन्तु तावत् कथं सरस्वती–समुपासकानां, अध्येतृणां वातावरणं विशुद्धं जायेत । केवलं एभिः सुसज्जितैः मण्डपैः विद्युतदीपै रेवज्ञानज्योतिः नायास्यति । ज्ञानाय सत्य निष्ठा अपेक्ष्यते । सैव वरणीया ।

—०—०—

२२. काचिद् मनोरमा यात्रा (शिमलानगरस्य)

पर्यटनं सदा सुखदायकं न भवति तथापि जनाः इतस्ततः पर्यटन्ति । इत्थं सामान्या धारणा लोकानां यत् पर्वतीयानि अञ्चलानि अतीव रमणीयानि भवन्ति अतो हि ते ग्रीष्मे पर्वतेभ्यः धावन्ति । ग्रीष्मे तेषां यात्रा सुखदात्री भवति किन्तु शीतकाले सैव कीदृशी कष्टप्रदा जायते नैतदनुमातुं शक्यते । एकदाहं कार्यवशात् शीततौ माघमासे शिमलानगरम् अगच्छम् एव । शीतकाले पर्वतानां यात्रायाः कष्टानि अनु–

भूय एव ज्ञातुं शक्यन्ते न तु कल्पनया। पर्वतेष्वपि शिमलानगरस्य यात्रा सविशेषं भयावहा जायते यतः नगरमिदं शीतकाले पूर्णतया हिमाच्छादितं भवति। तदानीन्तनस्य शीतस्य अनुमानं तम् अविलोक्य तथैव दुष्करं यथा युद्धभूमेः वर्णनम्। तथाहि पर्यटकः कदा कुत्र पर्वतखण्डेषु पतिष्यति, कुत्र स शैत्याभिहतः भविष्यति, कुत्र हिमे निमज्जिष्यति एतत्सर्वं महत्त्वपूर्णम् विचारणीयं च। यद्यपि विज्ञानवलेन अनेकानि सुखसाधनानि जगति समायोजितानि तथापि प्रकृतिः अद्यावधि अजेया। सा इदानीमपि न पार्यते नियन्तुम्। भवतु नाम कष्टपरम्परा। शिमलानगरं शीतकालेऽपि दर्शनीयं, अत्र प्रकृतेः अनुपमायाः शोभायाः भाण्डारः विराजते, प्रकृतिः उद्घोषयति नाहं मानवाधीना। न कोऽपि मदीयां शोभाम् अतिशयितुं समर्थः।

कालकातः शिमलां प्रति रेलयानमार्गः ८९ कि० मीटर परिमितोऽस्ति। यद्यपि तत्र बसयान द्वारा यात्रामार्गः न्यूनतरः तथापि प्रायः जनाः रेलयानेन यात्रां कुर्वन्ति। पर्वतेषु यद्यानं चलति तत् क्रीडनकवत् भवति। पर्वतीयः मार्गः वक्रः वर्तुलाकारश्च भवति। अतः पर्वतमार्गेषु रेलयानं सर्पवत् सरति। यत्र कुत्रापि मार्गावरोधः आसीत् तत्र पर्वतान् विभिद्य शतशः सुरङ्गाः विनिर्मिताः, अतः रेलयानं तेषाम् अभ्यन्तरेषु प्रविशति। यानाभ्यन्तरे तिष्ठन् पर्यटकः न बहिः द्रष्टुं शक्नोति। दिनेऽपि तदा रात्रिः समागता इति प्रतिभाति। यदा कदा स भयभीतः जायते, स चिन्तयति चेत् यानस्य गतिः अवरुद्धा जायेत, चेत् तस्य प्रचलनं न भवेत् तदा किं भविष्यति। येन केन प्रकारेण सुरङ्गानां साहाय्येन वाष्पगन्त्री सरलतया पर्वतशिखरे उपगच्छति। अत्र सुरङ्गाः केवलं तावत्यः विस्तृताः यत् रेलयानमेव केवलं सरितुं पारयति तत् उभयतः न कोऽपि जनः स्थातुं शक्नोति। यदा रेलयानं सुरङ्गात् बहिरागच्छति तस्य सम्मुखं दृश्यं चलचित्रांकितम् इव भवति। सर्वत्र सर्वाणि वस्तूनि श्वेतवस्त्रावृतानि इव आभान्ति।

अस्मिन् मार्गे धर्मपुरात् प्रागेव" सरलवृक्षाणाम् वनानि समक्षम् आयान्ति। अत्रत्यानां पर्वतानां शोभा देवदारुसरलपादपानां प्राधान्येन भवति। अत्रैव सोलननामकम् एकं नगरं यत्र अनेके पर्यटकाः पर्यटितुं गच्छन्ति। इदमेकं व्यापारिकं केन्द्रम्। यदा रेलयानं सोलनतः कुण्डाघाटं प्रति चलति तदानेके विद्युत् दीपकाः उडुगणवत् प्रतीयन्ते। रेलयानं यदा अधस्तात् उच्चैः गच्छति तदा एतत् प्रतिभाति यदेतत् नक्षत्राणि स्प्रष्टुं वाञ्छति। यथा जनाः उच्चैः गच्छन्तः शक्तिम् आदधति तथैव रेलयानमपि शक्तिमादाय खुड़ खुड् इति शब्दं कुर्वत् उच्चैः धावति। मार्गेषु मेषपालकाः, कृषकाः, भारं वहन्त्यः विविधवर्णोपेताः ललनाः दृश्यन्ते। अत्रैव पर्वताग्रेषु प्रवहन्ती

वारिधारा पर्यटकानां मनांसि मोहयति । कीदृशं स्वच्छं, शीतं, वेगपूर्णं जलं तत्र भवतीति न शक्यते वक्तुम् । यदा रेलयानं कियत् दूरं चलति अनेकानि लघूनि विशालानि च क्षेत्राणि परिलक्ष्यन्ते । तत्र इयन्ति दृश्यानि सम्मुखम् आयान्ति यान्ति च यत् तेषां राजिः न कदापि छिन्ना जायते ।

आगते शिमलानगरे पर्यटकस्य सर्वं कष्टं विलीनं जायते । अत्र घनीभूतं हरितत्वं, हिमस्य श्वेतत्वं यात्रिणां मनः मोहयति । दूरात् शिमला पर्वतस्य क्रोडे स्वपिति इति प्रतिभाति । अत्रत्याः पण्यशालाः विविधाभिः सुखसाधनसामग्रीभिः आपूरिताः । अत्रैव मालमार्गः अति विस्तीर्णः सुविशालश्च । "रिज" इत्याख्यस्यस्थले महार्घैः वस्त्रैरुपेताः यात्रिणः आयान्ति, आतपाय स्पृहयन्ति, किन्तु कष्टं यः सूर्यः मरुभूमौ प्रचण्डतां धारयति सोऽत्र रुग्णः, पीतः, निर्बलश्च प्रतीयते । अहो कीदृशः महिमा भगवतः येन एतादृशं विचित्रं स्वकीयं विश्वं विरचितम् । अत्र प्रतिवर्षं प्रायः लक्षपरिमिताः यात्रिणः आयान्ति, प्रकृतिक्रोडे सुखेन विहरन्ति ।

अत्र मुख्यापणे यथा धनिकानां वाहुल्यं तथैव अस्य पार्श्वभूमौ निर्धनाः, नग्नाः, अर्धनग्नाः, शीताक्रान्ताः जनाः दृष्टिपथम् आयान्ति । धनिकानां सर्वं सुखं, सर्वं वैभवं एतेषां निर्धनानां परिश्रमेणैव सुलभम् । इमे निर्धनाः स्वजीविकायै कठिनं दुःसहं शीतं सहन्ते, वर्णनातीतं श्रममाचरन्ति ।

अत्रागत्य गगनभेदिनां पर्वतानां हिमाच्छादितानि शृंगाणि, तेषां श्वेतत्वं विलोक्य पर्यटकः सहसा विचारयति इदं श्वेतत्वं न कस्मिन्नपि मानवीये पदार्थे सम्भाव्यते, नेदं दुग्धस्य, नेदं फेनस्य, नेदं रजतस्य, नेदं चन्द्रिकायाः, नेदं सूर्यस्य तथापि श्वेतत्वमिदं, इदम् अलौकिकं, दिव्यं, वस्तुतः यदा एतादृशं समुज्ज्वलं जलं भगवत्याः भागीरथ्याः प्रारम्भे प्रचलति तदैव समभूमौ आगत्य मलिनतां न गृह्णाति । अत्र हिमः दुग्धवत् धवः सर्वत्र प्रसरति । सौधानामुपरि अयं सुधालेपनम् इव आभाति । रात्रौ अयं पुष्पाणि वत् वर्षति, प्रातःकाले वस्त्रवत् भूमिम् आच्छादयति । अयं पर्यटकान् बारंबारं आह्वयति चात्मानं विलोकयितुं विवशान् करोति । वस्तुतः रात्रौ अस्य नगरस्य शोभां विलोक्य एतत् प्रतीयते यदमरावती स्वकीयाम् आभां प्रदर्शयितुम् एव भूमौ समायाता । अत्रत्यानां ज्योतिष्मन्तो दीपाः कथयन्ति, वयं क्षणस्थायिनः । आगच्छन्तु, विलोकयन्तु अत्र नैव बहुकालं स्थास्यामः ।

अन्ततः इयं यात्रा कियती सुखकरी आसीत्, यत् तत्रागतानि व्यवधानानि विस्मृतानि । शिमला नगरं विलोकनीयं, तत्रत्या प्राकृतिकाभा प्रशंसनीया, तत्रत्ये शैत्येऽपि सुखम्, एतदेव विचित्रम् । न विस्मरणीया यात्रेयम् ।

२३. मम प्रियं पुस्तकम्

जगतीतलेऽस्मिन् लोकानां विभिन्नाः रुचयः, विभिन्नाः परिस्थितयः, विभिन्नानि च तेषां मनोरंजनसाधनानि किन्तु सुनिश्चितमेतत् यत् सर्वे आमोदाय स्पृहयन्ति, सर्वे सुखमभिलषन्ति, सर्वे ऐहिकं पारलौकिकञ्च आनन्दं कामयन्ते । एतदर्थं केचन जनाः चित्रपटं विलोकयन्ति, केचन अभिनयं पश्यन्ति, केचन देश-देशान्तरं पर्यटन्ति केचन तपः आचरन्ति, केचन गृहे स्थिता एव पुस्तकानि अधीत्य आनन्दं लभन्ते । अध्ययनात् वस्तुतः आनन्दावाप्तिः तु सर्वसुलभा किन्तु पुस्तकानामध्ययनेऽपि एका विचित्रा कथा । तत्र विद्यन्ते विविधानि पुस्तकानि एषु कानिचिद् उपादेयानि, कानिचिद् मनोरंजकानि, कानिचिद् धार्मिकाणि वा सामाजिकानि । साम्प्रतं अस्मिन् प्रगतिशीले युगे न कोऽपि सर्वाणि पुस्तकानि अध्येतुं समर्थः, न च सर्वाणि पुस्तकानि अध्येतव्यानि भवन्ति । अतः सर्वेजनाः स्वरुच्यनुसारं सम्यक् विचार्य पुस्तकानाम् अध्ययनं कुर्वन्ति । यादृशे ग्रंथे भाषालालित्यं, अविरलरसप्रवाहः, विविधाः परिपक्वाः अनुभूतयः, प्रकृतिवर्णनं, सजीवं चरित्रचित्रणं स तु अध्येतव्य एव ।

अनया दृष्ट्या मदीया अभिरुचिः वाल्मीकि-रामायणे समापतिता । महर्षिः वाल्मीकिः आदिकविः स्वीक्रियते । तेन भगवतः मर्यादापुरुषोत्तमस्य रामस्य उदात्तं मंगलमयञ्च चरितमाश्रित्य यादृशं रुचिकरं सारगर्भं, सुविशालं पवित्रं, भावमयञ्च काव्यं विरचितं न तादृशम् अन्यत्र उपलब्धुं शक्यते । महर्षेः वाल्मीकेः अलौकिकी प्रतिभा आसीत् । ब्रह्मणा प्रेरितेन तेन क्रौञ्चवधमवलोक्य सहसा न्यगादि—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

अनन्तरं नारदद्वारा निर्दिष्टेन रूपेण तेन यादृशं व्यापकम् अलौकिकञ्च काव्यं प्रणीतं, यादृशं समुज्ज्वलं, मनोहारि, स्वाभाविकञ्च वर्णनं विहितं न तादृशं अन्यासां भाषाणां साहित्ये वर्तते । इदमेव काव्यं रामायणम् इति ख्यातम् ।

रामायणे न केवलं रामचरितं अपितु अनेन व्यपदेशेन जनानां पारस्परिकः व्यवहारः सम्यक्तरत्वेन प्रदर्शितः । कीदृशः पिता, कीदृशः पुत्रः, कीदृशः भ्राता, कीदृशी च माता भवेत् इति सर्वम् एकाम् साधारणीं कथामवलम्ब्य महर्षिणा वाल्मीकिना अस्मिन् काव्ये प्रकटितम् ।

अस्मात् ग्रंथात् प्रेरणामादाय जनाः स्वीकीयं जीवनं मङ्गलमयं शान्तिमयञ्च विधातुं शक्नुवन्ति । अस्य ग्रंथस्य अध्ययने भावा याः तादृशः प्रवाहः समुपलभ्यते यत्

पाठकः वारमेकम् आरम्य न कदापि तत् त्यक्तुम् अभिलषति । तत्र कीदृशानि रसभाव-पूर्णानि वर्णनानि, कीदृशानि प्रकृतिचित्राणि, कीदृशानि अलौकिकानि चरितानि, युद्धवर्णनादीनि उपनिबद्धानि एतत् नैव शक्यते वक्तुम् । तथाहि वर्षावर्णनं पठिव्यम्—

क्वचित् प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति ।
क्वचित् क्वचित् पर्वतसन्निरुद्धं रूपं यथा शान्तमहार्णवस्य ॥१॥

जाताः वनान्ताः शिखिसम्प्रनृत्ता जाताः कदम्बाः सकदम्बशाखाः ।
जाता वृषा गोषु समानकामा जाता मही सस्यवनाभिरामा ॥२॥

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।
नद्यो घना मत्तगजा बनान्ताः प्रिया विहीनाः शिखिनः प्लवंगाः ॥३॥

धारानिपातैरभिहन्यमानाः कदम्बशाखासु विलम्बमानाः ।
क्षणार्जितं पुष्परसावगाढं शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति ॥४॥

क्वचित् प्रगीता इव षट्पदौघः क्वचित् प्रनत्ता इव नीलकण्ठैः ।
क्वचित् प्रनत्ता इव वारणेन्द्रैः विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ॥५॥

क्वचित् प्रनत्तैः क्वचिदुन्मदद्भिः क्वचिच्च वृक्षाग्रनिषण्णकायैः ।
व्यालम्बवर्हाभरणै मंयूरैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम् ॥६॥

स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धाः विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धाम् ।
अनेकरूपाकृतिवर्णनादा नवाम्बुधाराभिहता नदन्ति ॥७॥

नीलेषु नीलाः प्रविभान्ति सक्ताः मेघेषु मेघाः नववारिपूर्णाः ।
दवाग्निदग्धेषु दवाग्निदग्धाः शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः ॥८॥

मेघाः समुद्भूतसमुद्रनादा महाजलौघैर्गगनावलम्बाः ।
नदीस्तटाकानि सरांसिवापीं महीं च कृत्स्नामपवाहयन्ति ॥९॥

नरैर्नरेन्द्रा इव पर्वतेन्द्रा सुरेन्द्रदत्तैः पवनोपनीतैः ।
घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्यमाना रूपं श्रियं स्वामिव दर्शयन्ति ॥१०॥

शैलोपलप्रस्खलमानवेगाः शैलोत्तमानां विपुलाः प्रयाताः ।
गुहासु सन्नादित बर्हिणासु हारा विकीर्यन्त इवाविभान्ति ॥११॥

रामायणे किष्किंधाकाण्डे २८ तमः सर्गः

चरित्र चित्रणम्

रामस्य उक्तिः इदं सम्यक् प्रतिपादयति । सः मातरं कैकेयीं प्रति कथयति—

अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशंवचः ।
अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं मज्जेयमपि चार्णवे ।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥
तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम् ।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥

आसु पंक्तिषु रामस्य पितृभक्तिः, तस्य त्यागः, दृढता च पारिस्फुरन्ति । रामं प्रति दशरथस्य स्नेहोऽपि विवेचनीय एव —तथाहि—

यदा विश्वामित्रः रामं नेतुम् आगतः तदा दशरथेन उक्तम्—

तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम् ।
मुहूर्तमिव निःसंज्ञः संज्ञावानिदमब्रवीत् ॥

ऊनषोडश वर्षो मे रामोराजीवलोचनः ।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥
इयमक्षौहिणी सेना यस्याहं पतिरीश्वरः ।
अनया सह गत्वाहं योद्धाहं तैः निशाचरैः ॥
इमे शूराश्च विक्रान्ता भृत्या मेऽस्त्र विशारदः ।
योग्यारक्षोगणैः योद्धुं न रामं नेतुमर्हसि ॥
अहमेव धनुष्पाणिः गोप्तासमरमूर्धनि ।
यावत् प्राणान् धरिष्यामि तावत् योत्स्ये निशाचरैः ॥

रावणस्य चरित्रं, तस्य दम्भमपि वाल्मीकिना सम्यक् प्रतिपादितम् । यथा—

अस्मिन् मुहूर्ते गत्वैको निवर्तयिष्यामि वानरान् ।
प्रविष्टान् सागरं भीममम्बरं वा रसातलम् ॥
सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु महाराजेन संगता ।
अहमेको हनिष्यामि राघवं सहलक्ष्मणम् ॥
एकोऽहंभक्षयिष्यामि तां सर्वां हरिवाहिनीम् ।
स्वस्थाः क्रीडन्तु निश्चिन्ताः पिबन्तु मधुवारुणम् ॥
अहमेको वधिष्यामि सुग्रीवं सहलक्ष्मणं,
साङ्गदं च हनूमन्तं सर्वांश्चैवान्न वानरान् ॥

अनुपमाः अनुभूतयः

सुलभाः पुरुषाः राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।।

× × × ×

शोकस्य च किल कालेन गच्छता ह्यपगच्छति ।
मम चापश्यतः कान्तामहन्यहनिवर्धते ।
न मे दुःखं प्रिया दूरे, न मे दुःखं हृतेति च ।
एतदेवानुशोचामि वयोऽस्या ह्यतिवर्तते ।।
वाहि वात यतः कान्ता तां स्पृष्ट्वा मां स्पृश ।
त्वयि मे गात्र संस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टि समागमः ।।

एवम् अस्मिन् काव्ये रामस्य जन्मतः आरभ्य समस्तं जीवनं प्रदर्शितं । पदे पदे महर्षिणा वाल्मीकिना रामस्य प्रशंसा कृता, तथापि तेन रामः ईश्वररूपेण नाराधितः रामः सर्वंगुणसम्पन्नः, परहितेरतः, सत्यनिष्ठः, बलवान्, उदारचरितः, महापुरुषः इति अंकितः । अस्मिन् काव्ये महर्षिणा वाल्मीकिना रामस्य जीवनं विशदतया वर्णितम् । केन रूपेण रामेण शास्त्रं, शस्त्रं चाधिगम्य राक्षसानां वधः अकारि, केन रूपेण धनुर्भंगानन्तरं तस्य उद्वाहः जातः, कथं स वनं गतः, यत्र तेन रावणसदृशः अमोघ-बलसम्पन्नः शत्रुः पराजितः, केनरूपेण रामेण मुनयः त्राताः, राक्षसानां विनाशं विधाय लोके सत्यस्य महिमा प्रतिष्ठापितः एतत् सर्वं सजीवं रामायणे वर्णितम् । अस्मिन् ग्रंथे चतुर्विंशतिः श्वोकाः सन्ति । काव्यमिदं प्रसादगुणोपेतं मनोमोहकं शिक्षा-प्रदं चास्ति । रामचरितस्य व्यपदेशेन अस्मिन् विभिन्नानि शास्त्राणि सर्वजनसुल-भानि विहितानि ।

अतः एतादृशं लोकोपकारकं, सर्वहितसाधकं मनोरमं च काव्यं कस्य सहृदयस्य मानसं न मोदते, कमिदं नाह्लादयति । रामायणे वस्तुतः तत्सर्वमेवास्ति यत् कस्मादपि श्रेष्ठग्रंथात् अपेक्षितं भवति । अस्मिन् काव्ये न केवलं रामस्य इतिवृत्तं वर्तते अपितु कल्पनानां प्राचुर्यं, भावानामुदात्तता, प्रबन्धपाटवं, भाषासौन्दर्यादिकं सर्वमस्ति ।

अतो हि काव्यमिदं लोकप्रियं सिद्धिदायकञ्च । पठितव्यम् इदम् इत्येव मदीया अभिरुचिः, इत्येवमभ्यर्थना ।

०—०

२४. नहि सत्यात् परोधर्मः

जन्माद्यस्य यतोन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् ।
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ॥
तेजोवारिमृदां यथाविनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा ।
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परंधीमहि ॥

महामुनिना भगवता व्यासेन सत्यम् ईश्वररूपेण पूजितम् । वस्तुतः सतेहितम् सत्यम् । यत् किमपि शाश्वतं, अपरिवर्तनशीलं, सत्स्वरूपं तदेव सत्यम् । महर्षिणा पतञ्जलिना स्वकीये योगे "सत्यं यथार्थे वाङ्मनसी" इति प्रतिपादितम् । अर्थात् मनसा यत् विचार्यते, तदेव चेत् वाण्या निगद्यते, तत् सत्यम् । मनुना महाभागेन मानवधर्मे धर्मस्य दश लक्षणानि प्रकीर्तितानि, तत्रापि सत्यम् धर्मस्य एकमङ्गम् इति निरूपितम् ।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

अस्माकं व्यवहारे यथा दृष्टं, यथाश्रुतं, यथा वा कृतं तेनैव रूपेण चेत् तस्य प्रतिपादनं क्रियते तदापि तत् सत्यम् इति उच्यते । संक्षेपेण वक्तुं शक्यते यत् सर्वेषु, देशेषु, सर्वेषु कालेषु, सर्वेषु जनेषु, धर्मेषु च सत्यस्य स्वरूपं प्रतिष्ठापितं वर्तते । सर्वत्र सत्यस्य महिमा गीयते । धर्माणां तु मूलम् सत्यम् एव । धर्मेषु सत्यस्य गौरवम् अक्षुण्णं मन्यते ।

गीतायामपि भगवता श्रीकृष्णेन सत्यं तपःसु गणितम् ।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितञ्च यत् ।
स्वाध्यायभ्यासञ्चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

अन्ततोगत्वा सर्वमेतद् विविच्य एकः स्वाभाविकः प्रश्नः समक्षम् आयाति, अहो कीदृशं तत् सत्यं, कीदृशं बलं सत्यस्य, किं तत्र सत्ये वैचित्र्यं, कथमेतत् सम्भाव्यते, केन रूपेण सत्यबलेन सर्वं सम्पन्नं भवति । कथं योगशास्त्रप्रणेतृभिः महर्षिणा पतञ्जलिनाऽपि मानवानां मानसिक दोषानां शमनाय यमेषु सत्यस्य आकलनं विहितम्, कथं मनुना प्रोक्तम्—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।

वस्तुतः मानवजीवने विविधाः व्यापाराः, विविधाः आचाराः, विविधाः विचाराः सततं सम्मुखं समायान्ति । केचन इन्द्रियानुकूलाः, केचन इन्द्रियाणां संयमेनैव सम्पाद्यन्ते । सत्यस्य पालनाय इन्द्रियाणां शमनम् अपेक्षितम् । यदा इन्द्रियाणां संयमः जायते, तदैव मानवस्य बुद्धिः विशुद्धा जायते, तदैव इयं विमला संजायते । विमलया बुद्धया यदेव

विधीयते तदेव सत्यं, तदेव शिवं, तदेव सुन्दरम् । यः कोऽपि इन्द्रियाणि संयमितुं न समर्थः स सत्यपालनं कर्तुमपि न पारयति । अतः सत्यपालने दुराचारस्य न कदापि सम्भावना । दुराचारस्य प्रवृत्तिः तदैव सम्भाव्यते यदा पापस्याच्छादनम् असत्याश्रयेण क्रियते । इन्द्रियानुकूलत्वं तदैव सम्भाव्यते यदा पापस्य गूहनं क्रियते । अतः सत्यस्य पालने न कापि दुष्प्रवृत्तिः । यथा दुष्प्रवृत्तिः न जायते तदाकथं निर्बलत्वम् ? वस्तुतः सत्यपालनेन मानवः निर्भयः, निश्छलः, निष्पापः भवति । तस्य तेजः, तस्य वलं, यशश्च वर्धन्ते । सत्यभाषणशीलस्य मनुजस्य वाक् कदाचित् अप्रतिहतशक्त्या सम्पन्ना जायते । स यदेव कथयति असम्भवमपि तत् सम्भवं जायते ।

परं कष्टं यत् सत्यपालनं न सुकरम् । आधुनिके युगे तु एतत् दुष्करमेव । सत्यपालने अनेकानि कष्टानि आयान्ति । ये केऽपि धुरीणाः, मनस्विनः संयमिनः भवन्ति त एव सत्यस्य पालनं कर्तुं पारयन्ति । अतः लोके ये केऽपि सत्यवादिनः, ये सदाचरणशीलाः, ये सत्पथगामिनः सन्ति ते सदा पूज्याः, वन्दनीयाः त एव महाजनाः ।

प्राचीनकालात् अद्यावधि अनेकानि निदर्शनानि संजातानि येषु सत्यपालनेन जनाः कष्टापन्नाः संजाताः । यथा राजा हरिश्चन्द्रः स्वकीयं सर्वस्वं सत्यपालनाय अत्यजत् । तत एव स सत्यहरिश्चन्द्रः जातः । दशरथः स्वान् प्राणान् सत्यपालनाय एव अपर्यत् । आधुनिके युगे महात्मना गान्धिना सत्यपालने अनेके प्रयोगाः कृताः । एकवस्त्रोपेतः स सर्वशक्तिसम्पन्नेभ्यः आंग्लजनेभ्यः न कदापि भीतः । तेन सत्यबलेन आत्मशक्तिः जागरिता । सत्यमवलम्ब्य तेन भारतराष्ट्रस्य हितसाधनं विहितं । अतः स एव भारते पितृतुल्यः पूज्यते ।

सत्यपालनं तु तपसः आचरणं भवति । लोके इदं प्रतिभाति यत् असत्यवादिनः सुखिनः सत्यवादिनश्च कष्टभाजः भवन्ति । परं नैव एतादृशं भाव्यं, एतादृशी भावना न समीचीना । सत्यवादिनां यशः शाश्वतं भवति, अन्ततोगत्वा सदा सत्यस्य विजयो जायते, असत्यस्य पराजयः भवति । कियानपि वलसम्पन्नः, धनसम्पन्नः असत्यगर्ते निपत्य सदा पराजितः जायते । यथा—रावणः, दुर्योधनश्च ।

सत्यपालनाय अहिंसा पालनं परमावश्यकं । एतत् कृते ब्रह्मचर्यपालनमपि अपेक्ष्यते । यः कोऽपि मनसा वाचा कर्मणा अहिंसकः स एव कर्तुं समर्थः सत्यपालनं सत्यपालनम् अभ्यासेनैव आयाति । ऐहिकसुखार्थिनः न कदापि सत्यपालनं कर्तुंक्षमः । अतः सत्यं कथनीयं, सत्यमाचरणीयम् सत्यं मननीयम् । सुष्ठु उक्तम्

नहि सत्यात् परोधर्मः

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।
अलुब्धैः दानशूरैश्च सप्तभिर्धार्यतेमही ॥

२५. जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः

विशिष्टेयं परम्परा अस्मिन् जगतीतले यत् प्रकृतेः प्रत्येकं कार्यं क्रमेण पूर्णतां याति । जीवः जन्म लभते, शनैः शनैः पुष्टिं प्राप्नोति, कालान्तरे वर्धते, मानवरूपेण व्यवहरति । एवं लताः, पादपाः अहर्निशं वृद्धिम् उपयान्ति, समये आगते फलान्विताः भवन्ति । सूर्यः प्रातः उदेति, शनैः शनैः ऊर्ध्वं गच्छति, लोकञ्च तापयति, अन्ते अस्तं गच्छति । नदीनां स्रोतसः क्षीणा धारा प्रचलति, शनैः शनैः विशालतां गच्छति, यदा कदा तु इयं भयंकरतामुपैति । पदार्थेषु रसायनक्रिया अपि शनैः शनैः भवति कालान्तरे काष्ठान्यपि प्रस्तराणि जायन्ते । सदा बीजादेव प्ररोहः जायते, अंकुरः प्रस्फुटति, शनैः शनैः समयेन सुविशालः तरुवरः समक्षम् आयाति । किं बहुना अयं हेतुः सार्वभौमः तथापि विद्यायाः अभ्यासे, धनस्योपार्जने, धर्मस्य चाचरणे विशेषरूपेण उपयुक्तः जायते । यथोक्तं केनचित् कविना—

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥

अर्थात् यथा जलबिन्दुनिपातेन घटः पूर्यते तथैव कणं कणं संगृह्य विद्यागमः, धनागमः भवति । बालकाः आरम्भे वर्णज्ञानं कुर्वन्ति, अनन्तरं पारंगताः विद्वांसः जायन्ते । धनार्जनं तु यदा कदा अचिरम् भवति किन्तु विद्यार्जनं न कदापि युगपदेव आगच्छति । अनायासं प्राप्तं धनं अचिरं नश्यत्येव, वारमेकमधिगता विद्या न कदापि नश्यति । यथोक्तं केनचित् कविना—

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थंश्च चिन्तयेत् ।
क्षणत्यागे कुतो विद्या कणत्यागे कुतोधनन् ॥

अपरमपि उक्तम्—

शनैः पंथाः शनैः कन्थाः शनैः पर्वतलंघनम् । लोके प्रतिदिनं पथिकाः शनैः शनैः गच्छन्तः स्वीयं गन्तव्यं प्राप्नुवन्ति । शनैः शनैः वैज्ञानिकाः चन्द्रतलमगच्छन् । अत्युच्चशिखरेषु आरोहन्, गभीरेषु जलेषु प्राविशन् । अनुदिनं ते प्रकृतिं विजित्य नवीनं कीर्तिमानं स्थापयन्ति । एतद् नाविदितं कस्यचित् विपश्चितः यत् आरम्भे मानवः अत्यन्तम् अविकसितः आसीत् । शनैः शनैः तेन अतुलनीयः अकल्पनीयः परिश्रमः विहितः, तेन साहसेन, धैर्येण च सदा प्रकृतिविजयाय प्रयत्नाः कृताः, भौतिकानां तत्त्वानाम् अध्ययनं कृतं, प्रकृतेः कार्यकलापस्य अनुदिनं सूक्ष्म निरीक्षणं, गहनम्

अध्ययनं कृतं, अतएव अद्य मानवस्य महतीशक्तिः समुत्पन्ना। स सुसभ्यः सुखसाधन-सम्पन्नः यत्र कुत्रापि रोचते तत्रैव विहरति। एवं समाजस्य विकासः शनैः शनैः संजातः। अनेनैव विकासेन समुन्नतः मानवः समस्ते जगति पर्यटितुं समर्थः।

भारतीय स्वातन्त्र्यमपि शनैः शनैः विहितैः प्रयत्नैः अधिगतम्। स्वातन्त्र्यानन्तरं राष्ट्रस्य विकासोऽपि शनैः शनैः जातः। वस्तुतः कस्यापि कार्यस्य पूर्तयेऽसकृत् प्रयत्नः विधेयः, तत्र अभ्यासः कर्त्तव्यः। भगवता श्रीकृष्णेन उक्तम् अर्जुनं प्रति अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। कलानामभ्यासः शनैः शनैः भवति, अभ्यासेन मानवाः विशालं जलधिं तरन्ति, अभ्यासेनैव गिरिशिखरेषु शीतेषु स्थलेषु हिमेषु संचरणं कुर्वन्ति। अभ्यासेन अश्वानां धावनं, शस्त्राणां चालनं, शास्त्राणामवगाहनम् भवति। महान्तः कवयः शनैः शनैः महाकाव्यानि व्यरचयन्। शनैः शनैः सर्वासु दिक्षु समुन्नतिः जायते। साम्प्रतं समस्तं विश्वं एकं लघु राष्ट्रवत् संजातं, विश्वसम्मेलनानि भवन्ति मानवीय समस्यानाम् अनुदिनं समाधानं अन्वेष्यते—मानवः किं विधास्यति नास्य कुत्रापि आकलनम्—अतः उक्तम् जलबिन्दुनिपातेन—

---

२६. वैज्ञानिका आविष्काराः वरदानमभिशापो वा

साम्प्रतं वयं गृहे तिष्ठन्तः जगतीतलस्य कस्मिन्नपि भागे जायमानां घटनां क्षणेन जानीमः। वयम् अहर्निशं विद्युत्प्रकाशे तिष्ठामः, वयं कृत्रिमैः इन्धनैः भोजनं पचामः, वयं नित्यं दूरदर्शनेन सर्वं विलोकयामः आकाशवाणीतः गीतानि श्रृणुमः, किं बहुना वयं चन्द्रतले विचरामः। कथमेतत् सर्वं सम्भवं जातम्, एतत् विज्ञानबलेनैव सञ्जातं नात्र कस्यचित् विप्रतिपत्तिः। मानवजीवनस्य विविधेषु क्षेत्रेषु विज्ञानं समायातम्। विज्ञानेन मानवाय अश्रुतपूर्वाणि सुखसाधनानि समायोजितानि। अद्य रिक्शाचालकोऽपि, श्रमिकोऽपि रेडियो यन्त्रमादाय मार्गे गच्छति।

वस्तुतः विविधकर्मप्रपञ्चशीले अस्मिन् विज्ञानयुगे सर्वत्र विज्ञानस्य साम्राज्यं दरीदृश्यते। अद्य चलचित्रम् अस्माकं प्रमुखं मनोरंजन साधनम्। गताः ते व्यवसायिनः ये प्राचीनकाले प्राणिनां व्यक्तिगत सेवां समाचरन्। गतास्ते दिवसाः यदा मानवः सर्वं

स्वहस्ताभ्याम् अकरोत् । गतानि सर्वाणि पूर्वप्रचलितानि साधनानि । इदानीं यन्त्रैः विनिर्मितं वस्त्रं, यन्त्रैः प्रदत्तं पवनं, यन्त्रैः सञ्चारितं जलं वयं प्राप्नुमः । यन्त्रैरस्माकं यातायातं, यन्त्रैः परिवहनं, किं अन्यत्, सकलः कार्यकलापः विविधैः यन्त्रैः परिचाल्यते । एकस्मिन् दिनेऽपि यन्त्राणामभावः अस्माकं कृते दुःखप्रदः । अतः विज्ञानमेव अस्माकं शरणं, विज्ञानमेव अस्माकं मरणम् । अस्माकं लघूनि, लघुतमानि आहोस्वित् महान्ति, महत्तमानि कार्याणि विज्ञानवलेनैव साध्यन्ते । अद्य मानवस्य प्रत्येकस्मिन् क्षेत्रे विज्ञानं समाविष्टं । तस्य शयने, अशने, गमने, वस्त्रे, विहरणे सर्वत्र विज्ञानं विज्ञानमेव । मानवः विज्ञानस्य इदानीं वशंवदो जातः ।

चिकित्साक्षेत्रे तु विज्ञानेन आश्चर्यंकरी प्रगतिः समानीता । विविधाः चिकित्सा-पद्धतयः आविष्कृताः, विशेषरूपेण शल्यचिकित्सायां विज्ञानेन महत् वैशिष्टयं प्रदर्शितम् । मानवस्य शरीरे अद्य अन्यजीवानां अङ्गानि प्रतिरोप्यन्ते । अनुदिनं मृत्योः प्रतिशतं न्यूनातिन्यूनतरं जायते, जनबाहुल्यञ्च वर्धते । विविधानि औषधानि नित्यं निर्मीयन्ते आविष्क्रियन्ते, वितीर्यन्ते । इदानीम् अस्माकं वैज्ञानिकैः महान्तः लाभप्रदाः विद्युत् किरणाः आविष्कृताः । साम्प्रतम् अस्माकं यात्रा पद्भिः नैव । इदानीं तत्र सन्ति वायुयानानि, जल-यानानि, वेगवत्यः गन्त्र्यः, रौकेटयानं, पनडुब्बी इत्याख्यानि तरणयानानि येषां वलेन कुत्र-चिदपि भयंकरीणां नदीतरणं सरलं, दूरस्थितानि स्थानानि समीपस्थानि संजातानि, येषां वलेन प्रचुरभारवहनादिकं कार्यं अनायासेनैव सम्पन्नं जायते । येषां वलेन मानवः गभीरतमस्य महासिन्धोः तले गच्छति, उच्चतमस्य पर्वतस्य शिखरमारोहति । वस्तुतः एभिः यानैः अखिलं जगत् अत्यन्तं लघुत्वं गतम् । गगनमण्डले, भूलोके, पाताले, स्थले, जले, दुरवगाहे सागरे सर्वत्र मानवस्य गतिः विलोक्यते । दूरभाषयन्त्रेण वयं नित्यं दूर-देशैः सह सम्पर्कं विदध्मः । प्रायः आकाशवाण्या विना तारादिकसम्वलैः केवलं किरणानां साहाय्येन देशविदेशानां सम्पर्कः जायते । साम्प्रतं प्राकृतिकग्रहवत् अस्माकं प्रक्षिप्ताः कृत्रिमग्रहाः भूलोकं परितः भ्रमन्ति ।

कृषिक्षेत्रेऽपि वैज्ञानिकैः महती समुन्नतिः अधिगता । कृषेरुत्पादनं वर्धितुं विविधा रसायनपदार्थाः, विविधानि यन्त्राणि आविष्कृतानि । स्वल्पेनैव कालेन कृषौ धान्यानि उत्पाद्यन्ते ।

मुद्रणकलायां यज्जातं तत्तु न वर्णयितुं शक्यते । प्राचीनयुगे पुस्तकानि हस्त-लिखितानि आसन् । अद्यत्वे प्रातः उत्थाय प्रतिदिनं मानवः सर्वप्रथमं समाचारपत्रं पठति । होरावधौ सहस्र संख्याकानि पृष्ठानि मुद्रितानि भवन्ति । अगणिताः ग्रन्थाः इदानीं मुद्रणालयेषु मुद्र्यन्ते । मुद्रणेन न केवलं ग्रंथाः सर्वजनसुलभाः कारिताः अपितु न्यूनतमेन मूल्येन ते समुपलभ्याः ।

किन्तु यद् विज्ञानं अस्माकं कृते सुखप्रदं तदेव अभिशापोऽपि भवति । युद्धस्थले यादृशी प्रगतिः विज्ञानस्य वर्तते तया तु महायुद्धानि स्थगितानि । साम्प्रतम् एता-दृशानि अणु–उद्रजन—कोवाल्टादीनि—बम्बास्त्राणि वैज्ञानिकैः विनिर्मितानि, बैलेस्टिक मिजाइलाख्यानि अस्त्राणि सृष्टानि यद् स्वल्पैः अस्त्रैः सर्वं जगत् भस्मसात् कर्तुं शक्यते । इदानीं युद्धानन्तरं न विजेतुः न पराजितस्य चिह्नं स्थास्यति । अद्य तादृ-शानि हाहाकाराणि यन्त्राणि विद्यन्ते यैः सर्वं वैभवं, सर्वं भौतिकं जगत् क्षणेनैव विना-शयितुं शक्यते । अतः विज्ञानस्य सदुपयोगः भवेत् चेत् तदैव मानवकल्याणः भविष्यति ।

—० ०—

२७. मद्यनिषेधः

एका प्रसिद्धा कथा अस्ति । कदाचित् शुद्धोदनस्य आत्मजः सिद्धार्थः भ्रमणार्थम् उद्यानं गतः । मार्गे गच्छतः तस्य दृष्टिपथे कोऽपि आतुरः समायातः । तस्य वेदनां विज्ञाय सिद्धार्थः भ्रमणात् व्यरमत गृहं च प्रत्यावर्तत । अपरस्मिन् अहनि भ्रमणाय गच्छता सिद्धार्थेन एकः क्षीणकायः वृद्धः दृष्टः । तं विलोक्य स पुनः प्रतिनिवृत्तः । एवं तृतीयेऽहनि शवं चतुर्थे च सन्यासिनं दृष्ट्वा सिद्धार्थः स्वराज्यं वैभवञ्च विहाय वनं गतः । आधुनिके युगे तत्र प्रतिदिनं लुण्ठनं जायते, स्तेयं भवति, मद्यपानं भवति, नारीणां सम्मानः बलात् अपह्रियते किन्तु न कोऽपि वैराग्यं भजते । अद्यत्वे मद्यपाः महता परिश्रमेण अर्जितं स्वकीयं धनं विनाश्य कस्मिंश्चिदपि मलिने स्थले अथवा नाल्यां शोचनीयाम् अवस्थां गच्छन्ति । तेषां कुटुम्बिनः धनाभावे बुभुक्षिताः नग्नाश्च तिष्ठन्ति । ते मार्गे गच्छन्तः पथिकान् अपशब्दैरभिनन्दन्ति । ते निजं क्षणिकम् आनन्दं न परित्यजन्ति । न च कश्चिदपि तान् वारयितुं समर्थः । एतेषां कुमार्गगामिनां दुर-वस्थां विलोक्यापि न कोऽपि अस्याः निराकरणं करोति न च कोऽपि वैराग्यं भजते ।

परमप्रमोदविषयः यद् भारतः भूः सत्पुरुषेभ्यः न कदापि रिक्ता आसीत्। अत्र जाताः अनेके वीराः, तपस्विनः, त्यागिनः देशभक्ताश्च। अद्यापि सन्ति अस्माकं देशे कार्यकुशलाः, प्रशासकाः निष्ठावन्तश्च जनाः। तथाहि अस्माकं प्रधानमन्त्रिणा भारतस्य इमं कलङ्कम् प्रमाष्टुं दृढः संकल्पः कृतः। तेन निर्णयः विहितः यदनुसारं १।४।७८ इति दिनात् मद्यपानं वर्जितम्। प्रारम्भे एतदर्थं शासनेन कतिपयेयु स्थलेषु एव निषेधाज्ञा प्रसारिता। अत्र विचारणीयं किमिदं समुचितं वा अनुचितं जातम्।

अस्मिन् विषये मद्यपः श्रमिकः कथयति, "सम्पूर्णं दिनं यावत् घोरं परिश्रमं विधाय चेत् सायमहं स्वीयेन क्षणिकेनानंदेन तं विस्मरामि तत्र का हानिः। नाहं चौरः, नाहं तस्करः, नाहं लुण्ठकः, अहं स्वीयं धनं स्वेच्छया प्रयुनज्मि। अपरमपि विचारणीयं चेत् कश्चित् सभ्यः वारुणीं पिबति स सभ्यः तिष्ठति, चेत् सांसदः पिबति स महाजनः विनोदं करोति, चेद् न्यायाधीशः पिबति स न्याय्यात् उपरि वर्तते, सदा न्यायं विदधाति चेत् तान्त्रिकः पिबति स धर्मम् आचरति। एषु न कोऽपि अपराधं करोति तदा कोऽपराधः मदीयः, केवलं निर्धनत्वम्। सोऽग्रे कथयति-- मया ज्ञायते देवा अपि पिबन्ति, तेषां पानं सोमरसः, मया ज्ञायते समुद्रमन्थने प्राप्तेषु रत्नेषु वारुणी अपि आसीत्। कस्मिन् युगे, कस्मिन् देशे न पीता सुरा। सुरापानेन सुरत्वम् आयाति। धनिकाश्चेत् एतादृशाः भाग्यवन्तः यत् ते सुरां निर्विघ्नं पिबन्ति, कथन्नाहं स्वीयां दीनदुःखनिवारिणीं देशजां सुधां पिबानि। तपस्विनां ब्रह्मानन्दः समाधौ भवेत्, अस्माकं तु अस्यामेव। एषः मदीयः अधिकारः, अहं स्वीयं अभिलषितं वस्तु पातुं समर्थः, कः मां वारयितुमर्हति।

परं तत्रास्ति द्वितीयोऽपि पक्षः। मद्यनिषेधस्य पक्षपातिनः कथयन्ति— श्रमिकस्य स्वकीयायाम् आजीविकायां तस्य कुटुम्बिनाम् अंशः वर्तते, श्रमिकः स्वांशं नाशयेत् किन्तु स्वात्मजस्य, जायायाः, अंशं नाशयितुं नाधिकृतः। एतदतिरिक्तं केवलं सुरापानमेव आनन्दं न प्रयच्छति। आधुनिके युगे सन्ति तत्र अनेकानि रुचिकराणि मनोरञ्जनसाधनानि। मदिरापानेन स्वास्थ्यं नश्यति, बुद्धिः भ्रष्टा जायते, एषा तु राष्ट्रस्य हानिः। मदिरापानेन अन्ये दुर्गुणाः दुर्भावाः कामक्रोधादिजन्याः उपचीयन्ते।

यदा मदिरासेविनां सन्निधौ धनं न भवति ते धनाय पापमाचरन्ति, कलहं कुर्वन्ति, एकं पापम् अन्यानि पापानि अनुसरन्ति । प्राणघातिनः लुण्ठकाः मदिरां पीत्वैव प्राणान् हरन्ति । मदिराम् आसेव्य न कोऽपि कस्यचिदन्यस्य हानिं कर्तुं क्षमः । अतः मद्यनिषेधः परमः आवश्यकीयः । मद्यनिषेधेन देशस्य नूतनं निर्माणं सम्भवम् । ये देशाः शीतप्रधानाः तेषां कृते तु वस्तुतः मदिरायाः उपयोगिता वर्तते । भारतं तु उष्णदेशः अत्र नास्याः कापि आवश्यकता । निर्धने देशे धनस्य सदुपयोगः करणीयः न तु अपव्ययः । मद्यनिषेधः समाश्रयणीयः । श्रीमद्भागवते पुराणेऽपि मद्यपानं त्याज्यं वर्णितं व्यासमहाभागैः ।

तथाहि—

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ।
द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः, ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ।
अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित्—विशेषतोधर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥

अत्र नृपोऽपि वारितः का कथा निर्धनस्य अत। मद्यनिषेधः कर्त्तव्य एव ।

———

सूत्राणामनुक्रमणिका

—० ०—